UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182076

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY
Call No 131.3462 Acc No PGH 3428
H
P88M

मनोविश्लेषण

फ्रायड सिगमंड

फ्रायड

महान् मनोविज्ञानवेत्ता
सिगमंड फ्रायड की अमर कृति

मनोविश्लेषण

'ए जनरल इंट्रोडक्शन टु साइकोनेलसिस'
का पूर्ण और प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद

मूल्य

दस रुपये

Checked 1969

प्रथम संस्करण [illegible]

आवरण [illegible]

प्रकाशक [illegible]

मुद्रक [illegible]

विषय-सूची

पहला भाग : ग़लतियों का मनोविज्ञान

१. विषय-प्रवेश १
२. गलतियों का मनोविज्ञान १०
३. ग़लतियों का मनोविज्ञान २४
४. गलतियों का मनोविज्ञान ४२

दूसरा भाग : स्वप्न

५. कठिनाइयां और विषय पर आरम्भिक विचार ६३
६. आरम्भिक परिकल्पनाएं और निर्वचन की विधि ८०
७. व्यक्त वस्तु और गुप्त विचार ९३
८. बच्चों के स्वप्न १०५
९. स्वप्न-सेन्सर ११५
१०. स्वप्नों में प्रतीकात्मकता १२७
११. स्वप्न-तंत्र १४७
१२. स्वप्नों के उदाहरण और उनका विश्लेषण १६०
१३. स्वप्नों में अतिप्राचीन और शैशवीय विशेषताएं १७४
१४. इच्छा-पूर्ति १८८
१५. संदिग्ध पहलू और समीक्षात्मक विचार २०२

तीसरा भाग : स्नायु-रोगों का सामान्य सिद्धान्त

१६. मनोविश्लेषण और मनश्चिकित्सा २१५
१७. लक्षणों का अर्थ २२७
१८. उपघातों पर बद्धता : अचेतन २४२
१९. प्रतिरोध और दमन २५४
२०. मनुष्य का यौन जीवन २६८
२१. लिबिडो या राग का परिवर्धन और यौन संगठन २८४
२२. परिवर्धन और प्रतिगमन के अनेक पहलू : कारणता ३०२
२३. लक्षण-निर्माण के मार्ग ३१९
२४. साधारण स्नायविकता ३३६
२५. चिन्ता ३४९
२६. राग का सिद्धान्त : स्वरति ३६६
२७. स्थानान्तरण ३८४
२८. विश्लेषण-चिकित्सा ४०१

अनुवादक की ओर से

आज किसी शिक्षित व्यक्ति को सिगमंड फ्रायड का परिचय देने की आवश्यकता नहीं। उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दियों में मानव-चिन्तन को सबसे अधिक प्रभावित करने वाली चार विभूतियां हैं : मार्क्स, डारविन, गांधी और फ्रायड। इनमें से फ्रायड ने मन और उसके अचेतन व्यापारों के जो रहस्य उद्घाटित किए, और अपनी खोजों के आधार पर हजारों स्नायु-रोगियों को स्वस्थ करके जो नई चिकित्सा-शैली स्थापित की, उसका चिकित्सा-जगत् के साथ-साथ मानवीय अध्ययन की अन्य शाखाओं पर भी क्रांतिकारी प्रभाव पड़ा है। हिन्दी आलोचना-साहित्य में भी फ्रायड के साहित्य विषयक विचारों को लेकर बहुत काफी खंडन-मंडन हुआ है।

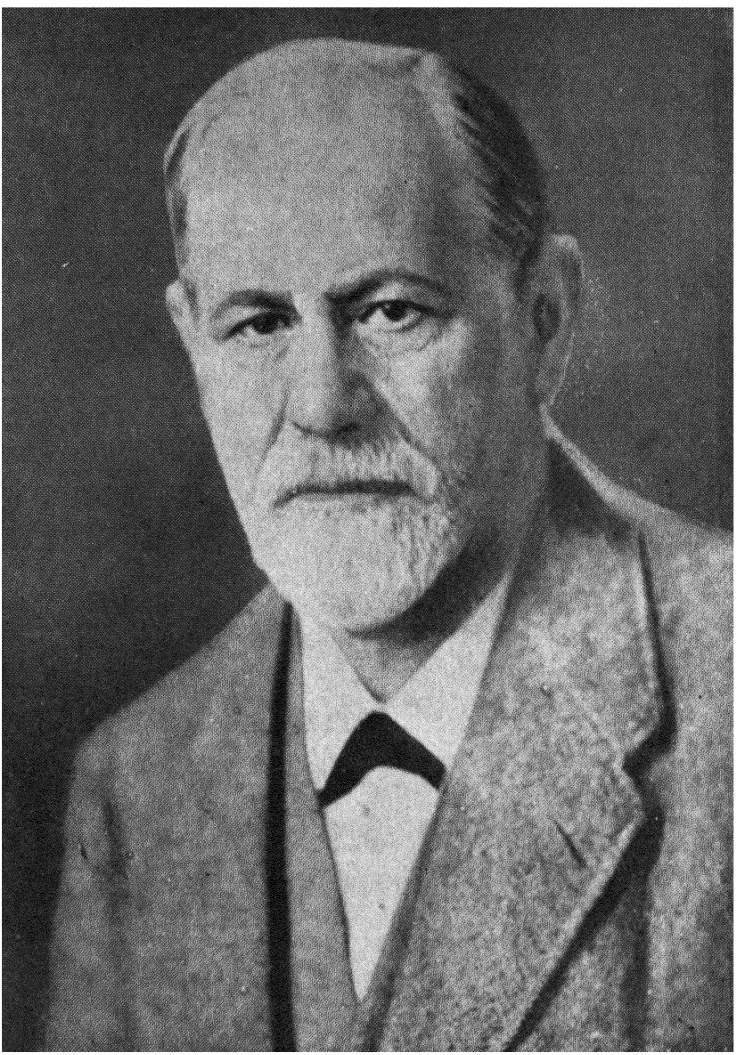
परन्तु अंग्रेजी न जानने वाले पाठकों के पास फ्रायड के सिद्धान्तों का मूलरूप जानने का कोई उपाय नहीं था। कई आलोचक फ्रायड के तथाकथित सिद्धान्त सारांश रूप में देकर अपना खंडन या मंडन का काम चला लेते थे। इसी कारण इस विषय में बहुत कुछ अज्ञान लेखन हुआ है।

इन व्याख्यानों में फ्रायड ने बिलकुल बातचीत की भाषा में अपने मनोविश्लेषण विषयक सिद्धान्त पेश किए हैं। इसलिए इस विषय का ज्ञान न रखनेवाले पाठक को इनसे सरल और प्रामाणिक सामग्री अन्यत्र नहीं मिल सकती। पहले भाग में 'गलतियों' पर विचार किया गया है। भाषा-विज्ञान और मनोविज्ञान का मौलिक कार्य हिन्दी में उपलब्ध न होने के कारण अनुवाद में मूल जर्मन के, या उसके अंग्रेजी अनुवाद के उदाहरण लेने पड़े पर इन उदाहरणों को हिन्दी के पाठकों के लिए सुबोध बनाने का भरसक यत्न किया गया है। दूसरे भाग में 'स्वप्न' पर प्रकाश डाला गया है। एक-एक बात को पूरी तरह हृदयंगम करके आगे बढ़ने पर यह प्रकरण समझने में कठिनाई नहीं होगी। तीसरा भाग 'स्नायु-रोगों' के बारे में है जो बहुत कुछ टेक्निकल है, पर यदि पहली बात मन में स्पष्ट रूप से बैठाकर आगे पढ़ा जाएगा तो, परिश्रम और धैर्य से, इसे भी पूरी तरह समझने में सफलता मिलेगी, और कुल उपलब्धि से सारे परिश्रम की क्षति-पूर्ति हो जाएगी।

मनोविश्लेषण के सिद्धान्त कई बार बड़े सरल रूप में रख दिए जाते हैं, और सुनने वाला उनके आधार पर कुछ धारणाएं बनाकर अपनी जानकारी को पूर्ण समझने लगता है। इन व्याख्यानों में कोरा सिद्धान्त-वर्णन नहीं है, जो अपेक्षया आसान काम था—इनमें फ्रायड ने यह दिखलाया है कि ये सिद्धान्त किन तथ्यों के कारण अनिवार्यत: बनाने पड़े और इन सिद्धान्तों को न मानने पर चिकित्सा और

वैज्ञानिक व्याख्या में किस तरह त्रुटि रहती थी। इसलिए सारा निरूपण क्रमिक सिद्धान्त-प्रतिपादन की शैली से हुआ है, और क्रमशः सारी बात समझते जाने पर ही सिद्धान्त स्पष्ट होगा। किसी भी जगह सब सिद्धान्त निष्कर्ष रूप में लिखे हुए नहीं मिलेंगे।

नये विषय के अनुवाद में अनेक कठिनाइयां रहती हैं, फिर यह तो मनोविश्लेषण जैसा वैज्ञानिक और टेक्निकल विषय है। अनुवाद की भाषा यथासंभव सरल और सुबोध रखी गई है, और टेक्निकल शब्दों के अंग्रेजी पर्याय फुटनोटों में दे दिए गए हैं। मूल का आशय पाठक को ज्यों का त्यों समझाने के लिए अनुवाद में, अपनी ओर से, पूरी सावधानी बरती गई है। फिर भी इस नए और कठिन कार्य में त्रुटियां न होना ही आश्चर्य की बात होगी। जो विद्वान् पाठक त्रुटियों की ओर ध्यान खींचेंगे, उनका आभारी हूंगा।



सिगमंड फ्रायड

सिगमंड फ्रायड

सिगमंड फ्रायड का जन्म चेकोस्लोवाकिया के एक छोटे कस्बे फ्रीडबर्ग में ६ मई, १८५६ को हुआ था। उनके माता-पिता यहूदी थे, और वे स्वयं भी यहूदी धर्म के अनुयायी रहे।

फ्रायड के पिता का परिवार पहले राइन नदी पर कोलोन में रहता था, पर १४वीं या १५वीं शताब्दी में यहूदियों पर अत्याचार आरम्भ होने पर वह पूर्व की ओर भाग गया था, और १९वीं शताब्दी में वह लियुआनिया से गैलीशिया होकर जर्मन आस्ट्रिया में आ बसा था।

चार वर्ष की आयु में फ्रायड वियेना आए थे, और उनकी सारी शिक्षा यहीं हुई। आप खेल-कूद में सात वर्ष तक अपनी कक्षा में प्रथम रहे, और अच्छे खिलाड़ी होने के कारण आपके परीक्षाएं पास करने पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था।

फ्रायड के पिता की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी न होने पर भी उसने उन्हें अपनी प्रवृत्ति के अनुसार पेशा चुनने की छूट दे दी थी। चिकित्सा की ओर फ्रायड का कोई विशेष झुकाव नहीं था, पर प्राकृतिक रहस्यों की अपेक्षा मानवीय रहस्यों के विषय में उन्हें अधिक कुतूहल था, और इसकी निवृत्ति के लिए प्रेक्षण उन्हें सबसे अच्छा उपाय प्रतीत हुआ। अपने से बड़े एक मित्र के प्रभाव से फ्रायड ने कानून की शिक्षा प्राप्त करने का विचार किया, पर उन्हीं दिनों डारविन के सिद्धान्त ने, जो उस समय ज्वलंत चर्चा का विषय बना हुआ था, उन्हें बहुत आकर्षित किया; क्योंकि इससे संसार को समझने की दिशा में बड़ी प्रगति होने की आशा थी। उन्हीं दिनों गेटे का प्रकृति विषयक एक निबन्ध सुनकर उन्होंने चिकित्सा-क्षेत्र में जाने का निश्चय कर लिया।

१८७३ में विश्वविद्यालय में प्रविष्ट होने पर फ्रायड को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, क्योंकि वहां यहूदियों को हीन और विदेशी समझा जाता था। इन कठिनाइयों ने उन्हें बहुमत के विरोध में खड़े होने का बल दिया जो बाद में उनके बड़ा काम आया। विश्वविद्यालय में अपने कार्य के लिए सुविधाएं न मिलने पर वे अर्न्स्ट ब्रुक की कार्यिकीय प्रयोगशाला (Physiological Laboratory) में स्थान पा गए और वहां उन्होंने स्नायु संस्थान की औतिकी (Histology of the Nervous System) पर गवेषणा-कार्य किया। १८७६ से १८८२ तक प्रायः सारे समय आप इसी जगह कार्य में लगे रहे। फ्रायड को मनश्चिकित्सा (साइकिएट्री) के अतिरिक्त और किसी चिकित्सा-शाखा में विशेष दिलचस्पी नहीं थी।

इसका परिणाम यह हुआ कि वे बहुत देर बाद १८८१ में, एम. डी. की उपाधि प्राप्त कर सके।

१८८२ में फ्रायड के जीवन में एक मोड़ आया। उनके गुरु ने, जिसके प्रति ये बड़ी श्रद्धा रखते थे, इनसे अपने पिता की आर्थिक कठिनाई को दूर करने के लिए क्रियात्मक चिकित्सा-कार्य करने के लिए कहा। फ्रायड वियेना के जनरल हास्पिटल में चिकित्सक हो गए और वहां रहकर इन्होंने मनुष्य के केन्द्रीय स्नायु-संस्थान का अध्ययन किया। जनरल हास्पिटल के अध्यक्ष मेनर्ट के कहने से इन्होंने मस्तिष्क के शारीर का ही अध्ययन करने का निश्चय कर लिया था। पर आर्थिक लाभ के लिए फ्रायड ने स्नायु-रोगों का अध्ययन आरम्भ किया।

१८८५ में फ्रायड स्नायु-रोगिकी (न्यूरोपैथोलौजी) के लेक्चरर हो गए और विशेष अध्ययन के लिए पेरिस गए। वहां आपने अपने गुरु चारकोट के व्याख्यानों का जर्मन में अनुवाद किया। पेरिस से लौटने पर १८८६ में सिगमंड फ्रायड वियेना में चिकित्सा-कार्य करने लगे और अपनी प्रेमिका से, जो चार वर्ष से एक दूर के नगर में आपकी प्रतीक्षा कर रही थी, विवाह कर लिया।

परन्तु स्नायु-रोगियों के इलाज से जीविका चलना कठिन था। इसलिए उन्होंने विद्युत्-चिकित्सा और सम्मोहन या हिप्नोटिज्म को अपनाया। कुछ ही समय बाद उन्हें पता चल गया कि विद्युत्-चिकित्सा की प्रामाणिक पुस्तक (डब्ल्यू० अर्ब लिखित) भी कल्पित बातों से भरी पड़ी है। इसके बाद वे सम्मोहन से ही हिस्टीरिया का इलाज करते रहे और इसमें उन्हें अच्छी सफलता मिली, पर उसका परिणाम अस्थायी रहता था। १८८६ से १८९१ तक फ्रायड इसी कार्य में लगे रहे।

रोगी सम्मोहित होने पर प्रश्नों के जो उत्तर देता था, वे जागने पर उसे या तो बहुत कम याद होते थे, और या बिलकुल भी याद नहीं होते थे। यहां से उनकी मनोविश्लेषण सम्बन्धी खोज आरम्भ हुई। इस दिशा में आगे चलते-चलते उन्होंने अपने प्रेक्षणों के आधार पर वे सब सिद्धान्त प्रतिपादित किए जो आजकल 'फ्रायड के मनोविश्लेषण सम्बन्धी सिद्धान्तों' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

फ्रायड के इन सिद्धान्तों से शिक्षित जगत् में बड़ी हलचल मची और उनका बड़ा विरोध भी हुआ, पर विरोध के बावजूद उनकी बातों की सत्यता समाज के मन में प्रवेश करती गई और उनकी खोजों के प्रकाश में शिक्षा में अनेक परिवर्तन किए गए। अपने जीवन-काल में फ्रायड ने अपने सिद्धान्तों का विरोध भी देखा, खंडन भी सुना और फिर उन्हें व्यापक रूप से अपनाया जाता हुआ भी देखा। आपने अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने के लिए देश-विदेश में अनेक व्याख्यान दिए और अनेक पुस्तकें लिखीं। १९३९ में फ्रायड की लोक-लीला समाप्त हो गई।

* * *

पहला भाग

ग़लतियों का मनोविज्ञान

विषय-प्रवेश

मैं नहीं जानता कि मनोविश्लेषण के विषय में आपने पहले कितना पढ़ या सुन रखा है, और आपको इस विषय की कितनी जानकारी है। पर मेरे व्याख्यानों का शीर्षक ही 'मनोविश्लेषण पर परिचयात्मक व्याख्यान' होने के कारण मैं स्वभावतः यह मानकर चलूंगा कि आप इस विषय में कुछ नहीं जानते और आपको इसकी आरंभिक बातों का भी परिचय कराने की आवश्यकता है।

परंतु, मैं समझता हूं, इतना तो आप अवश्य जानते हैं कि मनोविश्लेषण स्नायु-रोगियों की चिकित्सा करने की एक विधि है। अब मैं आपको इस बात का एक दृष्टांत दे सकता हूं कि मनोविश्लेषण की प्रक्रिया अन्य चिकित्सा-पद्धतियों में प्रचलित प्रक्रिया से भिन्न होती है, और बहुत बार तो उससे उल्टी होती है। जब हम किसी रोगी को किसी नई चिकित्सा-पद्धति से इलाज कराने के लिए कहते हैं, तब, प्रायः उसकी कठिनाइयां कम करके बताते हैं, और बड़े विश्वास के साथ उसे इसके सफल होने का यकीन दिलाते हैं। मेरी राय में यह सर्वथा उचित है, क्योंकि इस तरह सफलता की संभावना बढ़ जाती है। पर किसी स्नायु-रोगी का मनोविश्लेषण द्वारा इलाज करते हुए हमारा तरीका दूसरा होता है। हम उसे समझाते हैं कि इस विधि में कठिनाइयां हैं, बहुत देर लगती है, और तुम्हें ये-ये परेशानियां उठानी पड़ेंगी और ये-ये त्याग करने होंगे। परिणाम के बारे में हम उससे कह देते हैं कि हम कोई निश्चित वायदा नहीं कर सकते—हम कहते हैं कि सफलता इस बात पर निर्भर है कि तुम स्वयं कितनी कोशिश करते हो, कितनी समझदारी और धीरज से काम लेते हो और अपने आपको कहां तक परिस्थितियों के अनुकूल बनाते हो। यह उल्टा दिखाई देने वाला तरीका हम कुछ महत्वपूर्ण कारणों से अपनाते हैं, जिनका थोड़ा परिचय शायद आपको आगे चलकर मिले।

जिस तरह की बात मैं अपने स्नायु-रोगियों से कहा करता हूं, उसी तरह की आपसे भी कहने के लिए माफ़ी चाहता हूं। मैं आपको निश्चित रूप से यह सलाह देता हूं कि आप दूसरी बार मेरे व्याख्यान सुनने न आएं। और इसी इरादे से मैं

आपके सामने यह कहता हूं कि मनोविश्लेषण के बारे में मुझसे आपको अधूरी ही जानकारी मिल सकती है, और उन कठिनाइयों की चर्चा करता हूं जो आपके स्वतंत्र निर्णय करने के मार्ग में बाधक होंगी। मैं आपको यह बताऊंगा कि आपकी शिक्षा-दीक्षा का जो सारा ढंग रहा है, और आपको जिन रीतियों से विचार करने का अभ्यास पड़ गया है, उन सबने आपको अनिवार्यतः मनोविश्लेषण का विरोधी बना दिया है। मैं यह भी बताऊंगा कि अपने मन के इस सहज विरोध को काबू में रखने के लिए आपको अपने मन पर कितना नियंत्रण रखना होगा। स्वभावतः मैं अभी यह नही बता सकता कि मेरे व्याख्यानों से आप मनोविश्लेषण को कितना समझ पाएंगे, पर मैं इतना निश्चित रूप से कह सकता हूं कि ये व्याख्यान सुनकर आप न तो मनोविश्लेषण-संबंधी जांच-पड़ताल करना सीख पाएंगे और न मनो-विश्लेषण-चिकित्सा करने के योग्य हो जाएंगे। और फिर, यदि आपमें से कोई सज्जन मनोविश्लेषण के ऊपरी परिचय से संतुष्ट न रहकर इससे स्थायी नाता जोड़ना चाहेगा तो उसे मैं निरुत्साहित ही नही करूगा, ऐसा करने के विरुद्ध चेता-वनी भी दूगा। कारण यह है कि आज की परिस्थितियों मे इसे जीवन-कार्य के रूप में अपनाने वाला व्यक्ति विद्या के क्षेत्र में सफलता पाने के मौको से तो वंचित हो ही जाएगा, और बाद में व्यवसाय के रूप मे यह कार्य आरंभ करने पर उसे पता चलेगा कि वह एक ऐसे समाज के बीच रह रहा है जो उसके लक्ष्यों और आशयों को ग़लत रूप में समझता है, उसे संशय और शत्रुता की दृष्टि से देखता है, और उसे अपनी तमाम छिपी हुई दुष्टताओं से तंग करता है। इस समय योरप मे हो रहे युद्ध के दुष्कार्यो से शायद आप यह अनुमान कर सकते है कि उसे कैसे असंख्य विरोधो का सामना करना पड़ता है।

परंतु सदा कुछ ऐसे लोग हुआ करते है जिन्हें ज्ञान-वृद्धि का इतना प्रबल आकर्षण होता है कि वे ऐसी सब असुविधाएं झेल जाते है। यदि आप मे कुछ ऐसे लोग है जो मेरी चेतावनी के बाद भी मेरा दूसरा व्याख्यान सुनने आएंगे तो उनका मैं स्वागत करूंगा। पर मनोविश्लेषण की जिन सहज कठिनाइयो की मैंने चर्चा की है, उनका तो आप सबको ही पता होना चाहिए।

सबसे पहले, यह विषय पढ़ाने और प्रस्तुत करने की समस्या है। डाक्टरी पढ़ते हुए आपको अपनी आंखों का प्रयोग करने की आदत पड़ गई है। शरीर के अवयवों के नमूने, रासायनिक क्रियाओं के अवक्षेप और मांसपेशी की स्नायुओ के उद्दीपन से पेशी का सिकुड़ना आप आखों से देखते है। बाद में आप रोगियो को देखते है; अपनी ज्ञानेन्द्रियों से आपको रोग के लक्षणों का ज्ञान होता है; रोगा-वस्था-संबंधी प्रक्रम आपके सामने प्रदर्शित किए जा सकते है, और बहुत बार तो उनके उत्तेजक कारण भी, अलग करके, आपके सामने प्रस्तुत किये जा सकते है। सर्जरी या शल्य-चिकित्सा में आप रोगियों पर किये जाने वाले कार्य देखते है, और

आपको भी वे कार्य अपने हाथ से करने का मौका दिया जाता है। मनश्चिकित्सा[1] में भी रोगियों का, तथा उनके भाव, वचन और व्यवहार में हुए परिवर्तनों का आंखों के सामने प्रदर्शन किया जाता है जिससे बहुत-से तथ्य आपके मन पर गहरी छाप छोड़ जाते हैं। इस प्रकार चिकित्सा-शास्त्र के अध्यापक का अधिकतर कार्य किसी विवरण बताने वाले पथप्रदर्शक का-सा होता है, जो मानो आपको एक संग्रहालय में घुमा रहा है; इस तरह, वहां प्रदर्शित वस्तुओं से आपका सीधा या प्रत्यक्ष संबंध कायम हो जाता है और आप यह मानने लगते हैं कि उन नए तथ्यों के अस्तित्व को आपने स्वयं अनुभव किया है।

पर, बदकिस्मती से, मनोविश्लेषण में यह सब नहीं होता। मनोविश्लेषण द्वारा इलाज में रोगी और चिकित्सक के बीच सिर्फ़ कुछ शब्दों का आदान-प्रदान होता है। रोगी बात करता है, अपने पिछले अनुभव और इस समय की अनुभूतियां बताता है, शिकायतें करता है, और अपनी इच्छाएं तथा भाव या मनोविकार प्रकट करता है। चिकित्सक ध्यान से उसकी बात सुनता है, उसके विचार-मार्ग को किसी दिशा में ले जाने की कोशिश करता है, उसे याद दिलाता है, कुछ विशेष दिशाओं में ध्यान ले जाने के लिए उसे मजबूर करता है, उसके सामने कुछ स्पष्टीकरण पेश करता है, और इस तरह उसमें इसे समझने या इसका खंडन करने की जो प्रतिक्रियाएं पैदा होती हैं, उन्हें ध्यान से देखता है। यह हालत देखकर रोगी के नासमझ रिश्तेदार अपना अविश्वास प्रकट किये बिना नहीं रह सकते—"सिर्फ़ बातचीत से भी कहीं बीमारी का इलाज हो सकता है?"—ये लोग कोई वैसी 'हरकत' देखकर ही प्रभावित होते हैं जैसी सिनेमा में दिखाई जाती है। उनका सोचने का तरीका निःसंदेह तर्कहीन और असंगत होता है, क्योंकि ये वही लोग हैं जो सदा यह विश्वास रखते हैं कि स्नायु-रोगियों की तकलीफें "उनकी अपनी कल्पना में ही होती हैं।" शुरू में, शब्द और जादू एक ही चीज थे, और आज भी शब्दों में कुछ जादुई शक्ति कायम है। शब्दों द्वारा एक आदमी दूसरे को अधिक से अधिक सुख भी पहुंचा सकता है और उसे घनी से घनी निराशा में भी डाल सकता है; शब्दों द्वारा ही अध्यापक अपना ज्ञान छात्रों को देता है; शब्दों द्वारा ही कुशल वक्ता अपने श्रोताओं को हंसाता और रुलाता है और उनसे अपना मनचाहा फ़ैसला करा लेता है। शब्द भावों को जगाते हैं और इनके द्वारा मनुष्य सब देशों और कालों में, दूसरे मनुष्यों पर अपना प्रभाव डालता है। इसलिए यदि मानसिक चिकित्सा में सिर्फ़ शब्दों का प्रयोग होता है तो हमें इसी कारण इसे हलकी नज़र से नहीं देखना चाहिए, और चिकित्सक तथा रोगी के बीच होनेवाली बातचीत को पर्दे की ओट से सुनकर ही संतोष करना चाहिए।

---

१. Psychiatry.

पर इतना भी नहीं हो सकता। सवाल-जवाब ही विश्लेषण है, और उस समय किसी और को वहां नहीं रखा जा सकता; यह प्रक्रम प्रत्यक्ष नहीं दिखाया जा सकता। अलबत्ता यह हो सकता है कि मनश्चिकित्सा पर व्याख्यान देते हुए स्नायु-दुर्बलता या हिस्टीरिया का रोगी दिखा दिया जाए। पर वह अपनी अवस्था और अपने रोग-लक्षणों की कहानी-भर सुना देगा——इससे अधिक नहीं। वह विश्लेषण के लिए आवश्यक बातें सिर्फ़ तब बताएगा जब वह चिकित्सक के साथ अपना विशेष स्नेह का संबंध अनुभव करने लगे; यदि एक भी ऐसा आदमी मौजूद होगा, जिसके प्रति रोगी का उदासीन भाव है, तो वह बिलकुल गूगा बन जाएगा। कारण यह है कि जो बातें वह बताएगा, वे उसके बिल्कुल निजी और गुप्त विचारों और भावनाओं से सम्बन्धित होंगी; वे ऐसी बातें होंगी जो सामाजिक दृष्टि से स्वतन्त्र व्यक्ति होने के नाते उसे दूसरों से अवश्य छिपानी हैं; वे ऐसी बाते होगी जिन्हे वह अपने आपसे भी छिपाना चाहता है क्योकि वह उन्हें अपने लिए अनुचित मानता है।

इसलिए यह असंभव है कि मनोविश्लेषण द्वारा इलाज के समय आप स्वयं मौजूद रह सकें; इसके बारे में आपको बताया ही जा सकता है, और ठीक-ठीक कहा जाए तो आप सुन-पुनाकर ही मनोविश्लेषण सीख सकते हैं। इस तरह दूसरे आदमी के ज़रिये मिलनेवाली शिक्षा से आपके लिए उस विषय मे स्वयं अपना फ़ैसला करना बहुत कठिन हो जाता है——आपका फ़ैसला अधिकतर इस बात पर निर्भर है कि आप जिस आदमी के ज़रिये जानकारी प्राप्त कर रहे ह, वह कितना भरोसे का है।

अब जरा देर के लिए आप यह कल्पना कीजिए कि मनश्चिकित्सा के बजाय आप इतिहास का कोई व्याख्यान सुन रहे थे, और कि व्याख्याता सिकन्दर महान् के जीवन और विजयों का बखान कर रहा था। उसने आपको जो कुछ बताया, उसपर विश्वास करने के लिए आपके पास क्या दलील है? यहा मनोविश्लेषण वाले मामले से भी अधिक असंतोषजनक हालत नजर आएगी, क्योकि सिकन्दर के युद्धों में इतिहास के प्रोफेसर ने उतना ही हिस्सा लिया है, जितना स्वयं आपने; मनोविश्लेषक तो फिर भी आपको वही बातें बता रहा है जिनमें वह स्वयं शामिल था। पर तब यह प्रश्न पैदा होता है कि इतिहासकार के पास अपने समर्थन में क्या प्रमाण है। इतिहासकार उन पुराने लेखकों के लेखों की दुहाई देगा जो घटनाओं के समय या उनके कुछ समय बाद जीवित थे, जैसे डायोडोरस, प्लूटार्क, एरियन तथा अन्य लोग; वह राजाओं के पुराने सिक्के और स्टेच्यु या मूर्तियां पेश करेगा और पौंपियाई की उन चित्रकृतियों के फोटो दिखाएगा जिनमें इसस नामक स्थान का युद्ध अंकित होगा। तो भी, ठीक-ठीक कहा जाए तो इन काग़ज़-पत्रों और अन्य प्रमाणों से इतना ही सिद्ध होता है कि पुरानी पीढ़ी के लोग सिकन्दर के अस्तित्व और उसके कार्य को सत्य मानते थे, और यहा से

आप फिर नए प्रश्नों पर विचार शुरू कर सकते हैं। और तब आप देखेंगे कि सिकंदर के बारे में जो कुछ कहा गया है, वह सबका सब विश्वास-योग्य नहीं, और बहुत-सी छोटी-मोटी बातों को सिद्ध करनेवाला कोई प्रमाण नहीं है, पर फिर भी मैं यह नहीं मान सकता कि व्याख्यान के बाद आपको सिकन्दर महान् के कभी सचमुच होने के बारे में भी संदेह होगा। आप मुख्यतः दो बातें सोचकर अपने फ़ैसले पर पहुंचेंगे--एक तो यह कि ऐसा कोई कारण समझ में नहीं आता जिससे व्याख्याता आपको ऐसी बात पर विश्वास करने के लिए कहे, जिसपर उसे स्वयं विश्वास नहीं है, और दूसरी यह कि सिकन्दर महान्-सम्बन्धी घटनाओं के बारे में सबके सब प्रामाणिक लेखक प्रायः एकमत हैं। पुराने लेखकों को भी आप इन्हीं कसौटियों पर कसेंगे--कि वैसा लिखने में उनका क्या मतलब हो सकता था, और वे सब एकमत हैं। सिकंदर के विषय में इस तरह की जांच से आप निश्चित रूप से कायल हो जाएंगे पर मूसा और निमरोद जैसे व्यक्तियों के बारे में आप उस तरह कायल न हो सकेंगे। आगे चलकर आपको यह काफ़ी स्पष्ट हो जाएगा कि मनोविश्लेषण के व्याख्याता को विश्वास-योग्य मानने में कौन-कौनसे संशय उठाए जा सकते हैं।

अब आप यह प्रश्न पूछ सकते हैं--यदि मनोविश्लेषण का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है, और उसका प्रक्रम भी प्रत्यक्ष नहीं दिखाया जा सकता तो फिर इसका अध्ययन ही कैसे हो सकता है, या अपने आपको इसकी सत्यता का निश्चय कैसे कराया जा सकता है? सचमुच इसका अध्ययन आसान काम नहीं, और न ऐसे लोगों की संख्या ही इतनी अधिक है जिन्होंने इसे पूरी तरह सीखा हो; फिर भी इसे सीखने का उपाय अवश्य है। मनोविश्लेषण सबसे पहले अपने ऊपर, स्वयं अपने व्यक्तित्व का अध्ययन करके सीखा जा सकता है। यह पूरी तरह वही चीज़ नहीं है जिसे आत्म-परीक्षण[1] कहते हैं; पर इसके लिए अधिक अच्छा शब्द न होने के कारण हम इसे इस शब्द से पुकार सकते हैं। आत्म-विश्लेषण की रीति सीख लेने पर, बहुत सामान्य और सुपरिचित मानसिक घटनाओं की एक पूरी की पूरी श्रेणी को विश्लेषण की सामग्री बनाया जा सकता है। इस प्रकार मनुष्य मनोविश्लेषक द्वारा बताए गए प्रक्रमों की असलियत का, और इसकी अवधारणाओं[2] की सचाई का काफ़ी निश्चय कर सकता है, पर इस तरह वह कुछ सीमा तक ही बढ़ सकता है। अपने-आपको किसी कुशल विश्लेषक के सामने विश्लेषण के लिए पेश करके, विश्लेषण का कार्य अपने मन पर करवाकर, और इस प्रकार विश्लेषक द्वारा प्रयोग में लाई गई रीति की बारीकियों को समझने का अवसर पाकर मनुष्य बहुत आगे बढ़ सकता है। यही तरीका सबसे अच्छा है, पर यह एक आदमी के लिए चल सकता

---

१. Introspection; २. Conception.

है, छात्रों की पूरी कक्षा के लिए नहीं।

पर, मनोविश्लेषण के सम्बन्ध में आपको जो दूसरी कठिनाई होगी, उसके लिए आप स्वयं ज़िम्मेदार हैं, विशेषत: वहां तक जहां तक आप अपनी डाक्टरी की पढ़ाई से प्रभावित हैं। आपकी शिक्षा ने आपके मन का वह ढांचा बना दिया होगा जो मनोविश्लेषण के ढांचे से बहुत भिन्न होता है। आपको सिखाया गया है कि जीवपिंड[1] के कार्यों[2] और विक्षोभों[3] की शारीरीय[4] आधार पर स्थापना करो, रसायन[5] और भौतिकी[6] के शब्दों में उनकी व्याख्या करो और उन्हें जैविकीय[7] दृष्टि से मानो; पर जीवन के मानसिक पहलुओं में आपकी दिलचस्पी कभी नहीं जगाई गई--यद्यपि अद्भुत जटिलताओं वाले जीवपिंड के परिवर्धन[8] की अंतिम परिणति उसीमें होती है। इस कारण, मन के मनोवैज्ञानिक ढांचे से आप अभी अपरिचित हैं। इसे संदेह की नजर से देखने और अवैज्ञानिक मानने और इसे आम जनता, कवियों, तांत्रिकों और दार्शनिकों के लिए छोड़ देने की आपको आदत पड़ी हुई है। आपका इस तरह सीमा में बंध जाना आपकी डाक्टरी दक्षता को हानि पहुंचाने वाला है; कारण यह है कि जैसे अधिकतर मानवीय सम्बन्धों में होता है वैसे ही रोगी में भी उसका मानसिक पहलू सबसे पहले हमारी निगाह मे आता है, और मुझे डर है कि आपको इसकी यह सजा मिलेगी कि आप जितना इलाज करने का लक्ष्य रखते हैं, उसका कुछ हिस्सा आपको नीमहकीमों, तान्त्रिकों और जादू-टोने वालों के लिए छोड़ना पड़ेगा, जिन्हें आप नीची नजर से देखते हैं।

मैं मानता हूं कि आपकी पहले की शिक्षा में यह कमी कुछ उचित कारणों से है। ऐसा कोई सहायक दार्शनिक विज्ञान नही है जो आपके पेशे में आपको लाभ पहुंचा सके। विचारात्मक दर्शन[9] या वर्णनात्मक मनोविज्ञान[10] या तथाकथित प्रायोगिक मनोविज्ञान[11] (जो ज्ञानेंद्रियों की कार्यिकी[12] के सिलसिले में पढ़ाया जाता है), जिस रूप में स्कूलों मे पढ़ाए जाते हैं, उस रूप में वे मन और शरीर के बीच के सम्बन्धों के बारे मे कोई उपयोगी बात नही बता सकते, या मानसिक कार्यों में होनेवाली गडबड़ को समझने की राह नही दिखा सकते। यह सच है कि चिकित्सा-शास्त्र की मनश्चिकित्सा शाखा पहचानने योग्य मानसिक विक्षोभों[13] के विभिन्न रूपों का वर्णन करती है, और इलाज की दृष्टि से उनके कुछ लक्षण-समूह बनाती है, पर असल में खुद मनश्चिकित्सकों को भी यह सन्देह है कि उनके बिलकुल वर्ण-

---

१. Organism; २. Functions; ३. Disturbances; ४. Anatomical; ५. Chemistry; ६. Physics; ७. Biological; ८. Development; ९. Speculative philosophy; १०. Descriptive psychology; ११. Experimental psychology; १२. Physiology; १३. Mental disturbances.

नात्मक समूहों को विज्ञान कहना चाहिए या नहीं। जिन लक्षणों से ये रोग-चित्र बनते हैं, उनके आरम्भ, कार्य की रीति, और आपसी सम्बन्ध का कुछ पता नहीं चला है। या तो मस्तिष्क में होनेवाले प्रदर्शन-योग्य परिवर्तनों से उनका सम्बन्ध जोड़ा ही नही जा सकता, अथवा यदि जोड़ा भी जा सकता है तो सिर्फ़ ऐसे परिवर्तनों से, जो किसी भी तरह उनकी व्याख्या नहीं करते। इन मानसिक विक्षोभों पर इलाज का असर तभी होता है जब यह पता चल जाए कि वे किस शारीरिक रोग के कारण हुए हैं।

मनोविश्लेषण इसी कमी को दूर करने की कोशिश कर रहा है। यह मनश्चिकित्सा को वह मनोवैज्ञानिक आधार देने की आशा रखता है, वह सामान्य आधार खोजना चाहता है, जिसपर शारीरिक और मानसिक रोग का आपसी सम्बन्ध समझ में आ सके। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए उसे सब तरह के बाहरी, पहले से बने हुए विचारों को—चाहे वे शरीर-सम्बन्धी हों, और चाहे रसायन-सम्बन्धी या कायिकी-सम्बन्धी हों—दूर रखना होगा, और शुद्ध रूप से मनोवैज्ञानिक ढंग के विचारों से वास्ता रखना होगा और इसी कारण मुझे यह डर है कि शुरू में यह आपको अजीब लगेगा।

अगली कठिनाई के लिए मैं आपको, आपकी शिक्षा को, या आपके मानसिक ढंग को दोषी नही बताऊंगा। मनोविश्लेषण के दो सिद्धान्त ऐसे हैं जो सारी दुनिया को नाराज करते हैं, एक तो बौद्धिक पूर्वग्रहों[1] अर्थात् बने हुए संस्कारों को चोट पहुंचाता है और दूसरा नैतिक तथा सौन्दर्य-सम्बन्धी संस्कारों या पूर्वग्रहों को। इन पूर्वग्रहों को मामूली चीज़ नही समझना चाहिए। ये बड़ी जबर्दस्त चीज़ हैं और मनुष्य के विकास की मंजिलों के कीमती और आवश्यक अवशेष हैं। उन्हें भावनाओं के बल से कायम रखा जाता है और उनसे बड़ा कड़ा मुकाबला है।

मनोविश्लेषण की इन बुरी लगने वाली बातों में से पहली यह है कि मानसिक प्रक्रम असल में अचेतन[2] (अर्थात् अज्ञात) होते हैं, और जो चेतन (अर्थात् ज्ञात) होते हैं, वे कोई इक्के-दुक्के काम होते हैं, और वे भी पूर्ण मानसिक सत्ता के हिस्से होते हैं। अब आप जरा यह याद कीजिए कि हमें इससे बिल्कुल उल्टी, अर्थात् मानसिक और चेतन को एक समझने की, आदत पड़ी हुई है। चेतना—हमें मानसिक जीवन को सूचित करने वाली विशेषता मालूम होती है और हम मनोविज्ञान को चेतना-सम्बन्धी अध्ययन ही समझते हैं। यह बात इतनी साफ़ और सीधी लगती है कि इसका खण्डन बिलकुल बकवास मालूम होता है, पर फिर भी मनोविश्लेषण को तो इसका खण्डन करना ही होगा और चेतन तथा मानसिक को एक मानने का विरोध करना ही पड़ेगा। मनोविश्लेषण के अनुसार मन की परिभाषा यह है कि इसमें अनुभूति, विचार और इच्छा के प्रक्रम होते हैं, और मनोविश्लेषण यह कहता

१. Prejudice; २. Unconscious.

है कि अचेतन विचार और अचेतन इच्छाएं भी होती हैं। पर इस रास्ते पर चलते हुए मनोविश्लेषण शुरू में ही गम्भीर और वैज्ञानिक ढंग के लोगों की हमदर्दी खो बैठा है और उसे रहस्यमय काल्पनिक पन्थ समझा जाने लगा है। स्वयं आपको भी यह समझने में कठिनाई होगी कि मैं इस तरह की दिखाई न देने वाली बात को, जैसे कि 'मानसिक चेतन होता है', पूर्वग्रह क्यों बता रहा हूं। आप यह भी अनुमान नहीं कर सकते कि यदि अचेतन सचमुच है, तो विकास के किस क्रम के कारण उसका निषेध किया जाने लगा, और उसके निषेध से क्या लाभ हो सकता है। यह दलीलबाज़ी करना कि मानसिक जीवन को चेतना की सीमा तक रहने वाला माना जाए या उससे भी आगे तक फैला हुआ माना जाए, बेकार का शब्दों का झगड़ा मालूम होता है, पर मैं आपको यह विश्वास दिलाना चाहता हूं कि अचेतन मानसिक प्रक्रमों को स्वीकार करना दुनिया में और विज्ञान में एक नई दिशा की ओर निश्चित कदम बढ़ाना है।

आप यह खयाल भी नहीं कर सकते कि मनोविश्लेषण के इस पहले साहसभरे कदम में, और उस दूसरे कदम में, जिसकी मैं अभी चर्चा करने वाला हूं, कितना नज़दीकी सम्बन्ध है। कारण यह है कि यह दूसरी बात, जिसे हम मनोविश्लेषण के एक आविष्कार के रूप में प्रस्तुत करते हैं, यह है कि स्नायु-सम्बन्धी और मानसिक गड़बड़ें पैदा करने में उन आवेगों[1] का खास तौर से बहुत बड़ा हिस्सा होता है, जिन्हें काम-सम्बन्धी[2] ही कहा जा सकता है—यहां 'काम' शब्द का प्रयोग मैं इसके संकुचित और विस्तृत, दोनों अर्थों में कर रहा हूं। इतना ही नहीं; मुझे यह भी कहना है कि इन काम-आवेगों ने मनुष्य के मन को, संस्कृति, कला और समाज के क्षेत्रों में, ऊंची से ऊंची उन्नति करने में कीमती मदद दी है।

मेरी राय में मनोविश्लेषण-सम्बन्धी जांच के नतीजों को नापसन्द करने के कारण ही इसका सबसे अधिक विरोध हुआ है। आप पूछेंगे कि इसके लिए हम खुद कैसे जिम्मेदार हैं? हम यह मानते हैं कि सभ्यता का निर्माण ज़िन्दा रहने का संघर्ष करते हुए आदिम आवेगों की तृप्ति का त्याग करके ही हुआ है, और प्रत्येक व्यक्ति मानव-समुदाय में जन्म लेकर आम जनता की भलाई के लिए अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति के सुखों का त्याग करता है, और इस तरह सभ्यता का निर्माण सदा आगे बढ़ता जाता है। इस काम में आनेवाली सबसे महत्व की वस्तु मनुष्य-स्वभाव की वे शक्तियां हैं जिन्हें हम यौन-शक्तियां या काम-आवेग कहते हैं। वे शक्तियां इस तरह ऊंचाई की ओर उठ जाती हैं, अर्थात् उनकी कार्य-शक्ति या ऊर्जा अपने यौन-उद्देश्य से हटकर दूसरे उद्देश्यों की ओर मुड़ जाती है—ये उद्देश्य काम-सम्बन्धी नहीं होते और समाज की दृष्टि से बहुत कीमती होते हैं; और इस तरह बननेवाला ढांचा कच्चा होता है क्योंकि काम-आवेगों या यौन-प्रवृत्तियों को वश में

१. Impulses, २. Sexual.

करना बड़ा कठिन काम है। हमेशा यह खतरा रहता है कि जो आदमी सभ्यता के निर्माण में हिस्सा ले, उसके अन्दर काम-आवेगों या यौन-प्रवृत्तियों का विद्रोह खड़ा हो जाए और वह ऊर्जा या कार्य-शक्ति को दूसरी ओर मोड़ने का विरोध करे। समाज की संस्कृति के लिए सबसे भयंकर खतरा वह होगा जो काम-आवेगों को खुली छूट मिलने से और उनके फिर अपने शुरू वाले लक्ष्य की ओर चलने से पैदा होगा। इसलिए समाज अपने परिवर्धन की इस नाजुक जगह का स्पर्श पसन्द नहीं करता; स्वाभाविक यौन-प्रवृत्ति की शक्ति को पहचाना जाए और मनुष्य के यौन-जीवन का महत्व सबके सामने खोलकर रख दिया जाए, यह बात इसके हितों के बहुत विरुद्ध पड़ती है। संयम क़ायम करने की दृष्टि से ही तो इसने ध्यान को इस सारे के सारे मामले से हटाकर इसे दूसरी ओर ले जाने का रास्ता अपनाया है। इसी कारण मनोविश्लेषण से खुलनेवाली बातों को यह सह नहीं सकता, और उन्हें देखने-सुनने में भद्दा, सौन्दर्य-भावना को चोट पहुंचानेवाला, नैतिक दृष्टि से घृणित या खतरनाक बताकर इससे दूर रहना चाहता है। परन्तु इस तरह के एतराजों को उन परिणामों के खिलाफ़ दलील के रूप में मंजूर नहीं किया जा सकता, जो वैज्ञानिक जांच-पड़ताल के प्रत्यक्ष स्पष्ट परिणाम होने का दावा करते हैं। इसलिए इस विरोध को प्रकट करने से पहले बुद्धि से समझ में आनेवाले शब्दों का रूप देना होगा। मनुष्य-स्वभाव नापसन्द बात को सदा झूठी मान लेना चाहता है, और इसके बाद इसके खिलाफ़ दलीलें भी आसानी से तलाश कर लेता है। इस प्रकार, समाज जो बात नहीं मानना चाहता, उसे झूठी बताता है। वह मनोविश्लेषण के परिणामों का तर्क-संगत और ठोस दलीलों से खण्डन करता है--परन्तु ये दलीलें भावना के आधार पर होती हैं--और जब उनका जवाब देने की कोशिश की जाती है तब वह पूरे हठ के साथ अपनी बात पर डटा रहता है।

इसके विपरीत, हमलोग इस आक्षेप-योग्य विचार को किसी भावना या प्रवृत्ति के वशीभूत होकर नहीं पेश करते। हमारा एक ही आशय रहा है--कि तथ्यों को हमने अपनी मेहनत-भरी खोजों के समय जिस रूप में देखा है, उसी रूप में उन्हें स्वीकार करें। और अब वैज्ञानिक खोज के क्षेत्र में हम किसी भी शर्त पर यह सवाल लाने देने को तैयार नहीं कि इस तरह की खोज व्यवहार की दृष्टि से उचित है या नहीं--ऐसा कोई सवाल तभी पैदा हो सकता है जब यह फ़ैसला हो चुका हो कि जिस भय से व्यवहार-सम्बन्धी औचित्य का सवाल हमारे सिर पर लादा जाता है, वह भय स्वयं भी उचित है या नहीं।

इस प्रकार मैंने आपके सामने कुछ ऐसी कठिनाइयां रखी हैं, जो मनोविश्लेषण की ओर मुंह करते ही आपके सामने आकर खड़ी हो जाएंगी। शायद आरम्भिक रूप में मैंने काफ़ी से ज्यादा कह दिया है। अगर इन कठिनाइयों से आपका हौसला पस्त न हुआ तो हम आगे बढ़ेंगे।

व्याख्यान | २

ग़लतियों का मनोविज्ञान

अब हम सिद्धान्तों के बजाय एक जांच-पड़ताल से अपनी बातचीत शुरू करेंगे। इसके लिए हम कुछ ऐसी घटनाएं देंगे जो बहुत होती ह। हम रोज़ देखते है, और नज़रंदाज़ कर देते है, और जो किसी बीमारी के कारण नही होती, क्योकि हर स्वस्थ आदमी में वे दिखाई देती है। मेरा मतलब उन गलतियों से है, जो हर आदमी करता है; जैसे, आदमी कुछ कहना चाहता है, पर ग़लत शब्द बोल जाता है; या इसी तरह की भूल लिखने में कर जाता है, और उसपर उसका ध्यान नही जाता; या कोई आदमी किसी छपी या लिखी हुई चीज को गलत पढ़ जाता है, या आदमी से जो कुछ कहा गया है उसे वह गलत सुन लेता है, हालांकि उसकी श्रवण-इन्द्रिय मे कोई रोग नहीं है। इसी तरह की दूसरी घटनाएं वे है जिनमें आदमी किसी बात को कुछ समय के लिए भूल जाता है, पर सदा के लिए नही, जैसे उदाहरण के लिए, कोई आदमी कोई नाम बहुत अच्छी तरह जानता है, पर उसे सोचने पर वह याद नही आता हालांकि चीज़ देखकर वह उसे तुरन्त पहचान लेता है; या कोई आदमी कोई काम करना चाहता है पर भूल जाता है, लेकिन बाद मे उसे वह याद आ जाता है, और इसलिए वह इसे कुछ ही समय के लिए भूला था। तीसरी तरह की घटनाएं वे है, जिनमें उतनी थोड़े समय की भूल नही होती, जैसे कोई चीज कही रख बैठना और फिर उसे ढूढ़ न सकना। यह भुलक्कड़पन आम भुलक्कड़पन से कुछ दूसरी तरह का होता है। इसका कोई कारण समझने के बजाय, आदमी इसपर चकित या परेशान होता है। इसके साथ सम्बन्ध रखनेवाली कुछ भूलें होती है, जिनमें फिर वही थोड़े समय तक होने की बात दिखाई देती है; जैसे, एक आदमी किसी बात को कुछ समय के लिए सच मानता है, पर उसके पहले और उसके पीछे वह इसे झूठ समझता है, और इसी तरह की कई बातें दिखाई देती है जिनके हमने अलग-अलग नाम रख रखे है।

जर्मन भाषा में इस तरह की सब घटनाओं में मौजूद कुछ भीतरी सम्बन्ध 'Ver' उपसर्ग का प्रयोग करके सूचित किया जाता है। यह ऊपर की घटनाओं के

वाचक सब शब्दों में लगाया जाता है।[1] ये सब शब्द प्रायः महत्वहीन क्रियाओं के वाचक है। ये क्रियाएं आम तौर पर बहुत थोड़ी देर रहने वाली होती हैं और जिन्दगी में उनका कोई खास महत्व नही होता। ऐसा बहुत कम होता है कि इस तरह की घटना का व्यवहार में कोई महत्व हो, जैसे कोई चीज खो जाने पर, इसी कारण ऐसी घटनाओं पर कोई ध्यान नही दिया जाता, और उनके विषय में कोई विशेष भावना नही पैदा होती।

अब मैं आपसे इन घटनाओं पर गौर करने के लिए कहना चाहता हूं। पर आप बड़े परेशान होंगे, और यह एतराज उठाएंगे : "इस लम्बी-चौडी दुनिया में, और आत्मा के छोटे-से दायरे में इतनी सारी और इतनी बडी-बड़ी पहेलियां पड़ी हुई है, मनके रोगों के क्षेत्रमें इतनी सारी गुत्थियां मौजूद ह,जिन्हें हल करना और सुलझाना है, ऐसी स्थिति में इन छोटी-छोटी बातों पर अपनी मेहनत बर्बाद करना सचमुच बेकार मालूम होता है। अगर आप हमें यह समझा सकते कि किस तरह ठीक आंख और कान वाला कोई आदमी दिन में सबके सामने ऐसी चीजें देख और सुन सकता है जो कही भी नही है, या कोई आदमी किस तरह एकाएक यह मान सकता है कि उसके इष्ट मित्र उसे सता रहे है, या बच्चे को भी बेहूदा लगने वाले भ्रम को कोई आदमी किस तरह बड़ी-बडी अक़्लमन्दी की दलीलें देकर सही ठहरा सकता है; तब तो हम मनोविश्लेषण को सचमुच कोई चीज मानने को तैयार हो सकते थे, परन्तु यदि मनोविश्लेषण इस तरह की छोटी-मोटी बातो मे, कि कोई आदमी क्यों गलत शब्द का प्रयोग करता है या कोई गृह-लक्ष्मी क्यों अपनी चाबियां रखकर भूल गई है, ज़्यादा दिलचस्प कोई बात नही पेश कर सकता, तो हम अपने समय और अपनी दिलचस्पी का कोई और अधिक अच्छा उपयोग तलाश कर लेंगे।"

मेरा जवाब यह है, जरा धीरज रखे। आपकी आलोचना सही रास्ते पर नही चल रही। यह सच है कि मनोविश्लेषण यह हेकडी नही मारता कि इसने कभी छोटी बातो पर विचार नही किया। इसके विपरीत, इसकी जाच-परख की चीजें आम तौर से वे हर जगह होने वाली मामूली घटनाएं ही होती है, जिन्हे दूसरे विज्ञानों ने निरर्थक, या यों कहे कि इस घटनामय संसार का कूडा, समझकर परे फेंक दिया है; पर आप जो आलोचना कर रहे है, उसमें समस्या के महत्व को और उस समस्या के दिखाई देने वाले रूप को गडबडा तो नही रहे? क्या यह नही हो सकता कि किसी समय और कुछ अवस्थाओं मे बडी महत्व की बातें बहुत हल्के संकेतों द्वारा अपनी झांकी दे जाती हों? मैं इसके बहुत-से उदाहरण आसानी से दे सकता हूं। उदाहरण के लिए, किसी तरुणी के हृदय का समर्पण आप नौजवानों को

१. हिन्दी में 'अप' उपसर्ग इस अर्थ का वाचक होता है। उदाहरण के लिए अप-श्रवण, अप-स्मरण, अप-भाषण आदि—अनुवादक।

कितने हल्के संकेत से पता चलता है ! क्या आप साफ़ शब्दों में उसकी घोषणा, या प्रगाढ़ आलिंगन की आशा करते हैं, या आप एक कटाक्ष मात्र से, एक शर्मीली मुस्कान से, या एक सेकंड ज़्यादा हाथ मिलाने से सन्तुष्ट नही हो जाते; या मान लीजिए कि आप जासूस हैं और एक हत्या का पता लगाने निकले हैं, तो क्या आप यह समझते है कि हत्यारा हत्या की जगह अपना नाम और पता लिखा हुआ फोटो छोड़ गया होगा ? क्या आपको, मजबूरन, हत्यारे से सम्बन्ध रखने वाले मामूली और अनिश्चित संकेतों से ही सन्तोष नहीं करना पड़ता ? इसलिए छोटे चिह्नों को मामूली मत समझिए। हो सकता है कि उनसे ही हम बड़ी-बड़ी बातों पर पहुंच जाएं। इसके अलावा, आपकी तरह मैं भी यह समझता हूं कि संसार की और विज्ञान की बड़ी-बड़ी समस्याओं की ओर हमें पहले ध्यान देना चाहिए। पर, कुल मिलाकर, इसका कोई लाभ नहीं होता कि आदमी किसी एक बड़ी समस्या की जांच का पक्का इरादा कर ले। इसके बाद, वह आमतौर से इस उलझन में पड़ जाता है कि अब आगे क्या करूं। वैज्ञानिक काम में यही अच्छा होता है कि किसी बात की खोज के रास्ते में जो मसला आए, उसे ही हल किया जाए, और यदि आपने उसे पूरी तरह हल कर लिया और किसी जमे हुए संस्कार या पहले से बने हुए विचारों के भंवर में न फंसे तो ऐसे मामूली काम को करते हुए भी आपको खुश-किस्मती से, और हर चीज़ का हर दूसरी चीज़ से एक नाता (और इसलिए छोटी चीज़ का बड़ी चीज से नाता) जुड़ा होने के कारण बड़े मसलों को समझने का रास्ता भी मिल सकता है।

इसी दृष्टि से मैं चाहता हूं कि आप आम स्वस्थ आदमियों की, ऊपर से छोटी दीखने वाली, गलतियों पर दिलचस्पी से गौर करें। अब आप यह देखिए कि मनो-विश्लेषण की जानकारी न रखने वाला आदमी हमारे पूछने पर इन घटनाओं की क्या व्याख्या करता है।

सबसे पहले वह निश्चित रूप से यह जवाब देगा : "ओह, इनकी क्या व्याख्या होती। ये तो योंही मामूली गलतियां है।" उसकी इस बात का क्या अर्थ है ? क्या वह यह कहना चाहता है कि कुछ घटनाएं इतनी छोटी है कि वे कार्य-कारण के नियम से बंधी हुई नही होती, कि वे जिस रूप में हुई है, उससे दूसरे रूप में भी हो सकती थी ? जो आदमी इस तरह किसी एक भी बात को प्राकृतिक घटनाओं के कार्य-कारण के नियम से अछूता बताता है, उसने तो दुनिया के बारे में विज्ञान के सारे नज़रिये को ही उखाड़ फेंका। हम उससे कह सकते है कि इससे तो संसार के बारे में धार्मिक दृष्टिकोण ही अधिक अटल है, जो बलपूर्वक हमें यह भरोसा कराता है : "तेरी इच्छा के बिना, हे प्रभू मंगलमूल; पत्ता तक हिलता नहीं, खिले न कोई फूल।" मैं समझता हूं कि हमारा दोस्त अपने पहले जवाब से तर्क द्वारा निकलने वाले अन्तिम नतीजे तक नहीं जाना चाहेगा। वह हार मान जाएगा और कहेगा

कि अगर आप इन बातों पर ग़ौर करना चाहते हैं तो मैं जल्दी ही इनकी कोई व्याख्या ढूढ़ निकालूंगा। इसका कारण शरीर के अंगों के कार्यों में कोई गड़बड़ी, या मन के कार्य करने में कोई कमी होगी, जिसकी अवस्थाओं का पता लगाया जा सकता है। जो आदमी वैसे सही बोलता है, वह इन तीन अवस्थाओं में ग़लत बोल सकता है: १. जब वह थका हुआ या अस्वस्थ हो, २. जब वह उत्तेजित हो, या ३. जब उसका ध्यान किसी और चीज पर जमा हुआ हो। इसकी सचाई आसानी से जांची जा सकती है। बोलने की ग़लती सचमुच तब ही सबसे अधिक होती है जब आदमी थका हो, उसके सिर-दर्द हो या उसे ऐसा महसूस हो कि उसे आधा-सीसी का दर्द शुरू होने वाला है। इन हालतों में व्यक्तियों आदि के नाम प्रायः याद नहीं रहते। बहुत-से लोग व्यक्तियों आदि के नाम याद न आने से चौकन्ने हो जाते हैं कि अब आधा-सीसी का दर्द शुरू होने वाला है। उत्तेजना में भी आदमी शब्दों को या चीजों को मिला डालता है, गलत तरीके से काम करता है; और जब आदमी का ध्यान किसी और चीज पर जमा रहता है, तब वह मन में आई हुई बात भूल जाता है, और ऐसे ही कई अनचाहे काम करता हुआ दिखाई देता है। इस तरह मन कहीं और होने का एक प्रसिद्ध उदाहरण **फ्लीगेंन्ड ब्लैटर** (Fliegende Blatter) का वह प्रोफेसर है, जो अपनी नई पुस्तक के विषय के ध्यान में डूबा हुआ अपना छाता भूल जाता है, और किसी दूसरे का टोप लगा लेता है। हम सब लोग भी रोज तजुर्बे में देखते हैं कि अपनी मन की इच्छा या वायदे के बाद कोई अधिक ध्यान खींचने वाली बात हो जाने पर हम अपनी इच्छा या वायदे भूल जाते हैं।

इस तरह यह बात पूरी-पूरी समझ में आती है, और इसका खण्डन भी नहीं किया जा सकता। शायद यह बहुत, या जितनी हम चाहते थे उतनी मजेदार बात नहीं है। अब गलतियों की इस व्याख्या पर जरा बारीकी से ग़ौर कीजिए। इन घटनाओं के होने के लिए जिन अनेक अवस्थाओं का होना जरूरी बताया गया है, वे सब एक तरह की नहीं हैं। शरीर के सामान्य कार्यों की गड़बड़ का कार्यिकीय आधार रोग और रक्तसंचार की गड़बड़ी भी हो सकता है; उत्तेजना, थकावट और मनोविक्षेप या ध्यान-बंटाई[1] कुछ दूसरी तरह की अवस्थाएं हैं, जिन्हें मनो-कार्यिकीय[2] कहा जा सकता है। इन बाद वाली अवस्थाओं को आसानी से एक सिद्धान्त का रूप दिया जा सकता है। श्रान्ति, अर्थात् थकावट, और मन के इधर-उधर भटकने या मनोविक्षेप या ध्यान-बंटाई और शायद सामान्य उत्तेजना से भी ध्यान गड़बड़ हो जाता है, जिसका यह मतलब हो सकता है कि ऊपर बताए गए

---

१. Distraction; २. Psycho-physiological.

कार्य की ओर काफ़ी ध्यान नहीं दिया गया। उस अवस्था में यह बहुत आसान है कि काम गड़बड़ हो जाए और बिलकुल ठीक तरह पूरा न किया जा सके। मामूली बीमारी या स्नायु-संस्थान के केन्द्रीय अंग में रक्त के संचरण में परिवर्तन का भी यही नतीजा हो सकता है, और इस तरह इन अवस्थाओं से असली बात, अर्थात् ध्यान, पर वैसा ही असर पड़ेगा। हर सूरत में, यह शारीरिक या मानसिक कारणों से ध्यान गड़बड़ होने के परिणामों का ही सवाल रहेगा।

पर इस सबमें मनोविश्लेषण-सम्बन्धी जांच के लिए कोई दिलचस्पी की बात दिखाई नही देती। हमारा मन होगा कि इस विषय को छोड़कर आगे चले। सही बात तो यह है कि तथ्यों की ओर बारीकी से जांच करने पर यह पता चलता है कि वे सबके सब इस तरह की गलतियों के 'ध्यान' वाले सिद्धान्त से मेल नही खाते, या कम से कम हर चीज़ इससे सीधे-सीधे नही निकाली जा सकती। हम देखते है कि ऐसी ग़लतियां और भुलक्कड़पन तब भी होते है, जब लोग थके हुए या उत्तेजित नही होते, बल्कि हर तरह से अपनी सामान्य अवस्था में होते है--यह बात और है कि इन ग़लतियों के कारण ही हम बाद में यह कहने लगे कि वे उत्तेजित अवस्था में थे, जबकि वे स्वयं यह बात मंजूर नही करते। और न यह मामला इतना सीधा हो सकता है कि यदि ध्यान खूब केन्द्रित हो तो कार्य सफलतापूर्वक हो जाएगा या ध्यान कम हो तो उसके बिगडने का डर रहेगा। कारण यह कि बहुत सारी क्रियाएं बिलकुल स्वतःचालित मशीन की तरह बहुत थोड़े ध्यान से की जाती है, पर फिर भी वे ठीक हो जाती है। चलते हुए आदमी को शायद यह पता भी न हो कि वह कहां जा रहा है, पर वह सही रास्ते पर जाएगा और बिना भटके अपनी मंजिल पर पहुंचकर ठहर जाएगा। कम से कम आमतौर से तो यही होता है। अभ्यस्त पियानो बजानेवाला बिना सोचे ठीक स्वरों पर हाथ रखता है। हो सकता है कि वह कभी कोई भूल भी कर जाए, पर यदि आपसे आप,अर्थात् स्वतःचालित, वादन से ग़लतियों का खतरा बढ़ जाता है,तो अभ्यस्त वादक की,जिसकी उंगलियां निरंतर अभ्यास से बिल्कुल स्वतःचालित की भांति चलती ह, सबसे अधिक ग़लतियां होनी चाहिएं, पर इसके विपरीत, हम देखते है कि बहुत-से कार्य तब बहुत सफलतापूर्वक हो जाते है जब उनपर ध्यान खास केन्द्रित नही किया जाता, और गलतियां ठीक उस समय हो जाती है जब आदमी सही काम करने के लिए बहुत उत्सुक होता है, अर्थात् जब आवश्यक ध्यान के लिए कोई भी बाधा नही होती। तब यह कहा जा सकता है कि यह 'उत्तेजना' का प्रभाव है, पर यह बात समझ में नहीं आती कि उत्तेजना ध्यान को उस लक्ष्य पर केंद्रित क्यों नहीं कर देती, जिसे प्राप्त करने की इतनी तीव्र इच्छा है। इसलिए यदि कोई महत्वपूर्ण भाषण करते हुए कोई व्यक्ति अपने अभिप्राय से उलटी बात कह देता है तो मनोकायिकीय या ध्यान के सिद्धान्त से इसकी व्याख्या नही की जा सकती।

इन ग़लतियों के सिलसिले में और भी बहुत-सी छोटी-छोटी बात हैं, जिन्हें हम नहीं समझ पाए, और जो इन स्पष्टीकरणों से अधिक सुबोध नहीं हो जातीं। उदाहरण के लिए, जब कोई आदमी कोई नाम थोड़ी देर के लिए भूल जाता है, तब वह परेशान होता है, उसे याद करने का पक्का इरादा करता है और इस कोशिश से बाज़ नहीं आ सकता। क्या कारण है कि इस तरह परेशान होने के बावजूद, वह आदमी उस शब्द को, जिसके बारे में वह कहता है कि यह मेरी ज़बान पर चढ़ा हुआ है, और जिसे सामने आने पर वह तुरन्त पहचान लेता है, अपना ध्यान ले जाने में प्रायः सफल नही होता। या एक और उदाहरण लिया जाए; एसी अवस्थाएं भी होती हैं जिनमें गलतियों की संख्या बढ़ती जाती है। वे एक-दूसरे से जुड़ जाती हैं या एक-दूसरे की स्थानापन्न[1] बन जाती हैं। पहली बार आदमी अपने किसी नियत कार्य को भूल जाता है; अगली बार वह इसे न भूलने का विशेष संकल्प कर लेता है, परन्तु वह देखता है कि इस बार वह दिन या समय के बारे में भूल कर गया। या मनुष्य किसी भूले हुए शब्द को याद करने की तरह-तरह से कोशिश करता है और इस तरह करते हुए एक ऐसा नाम भूल जाता है जिससे वह सारी कड़ी के उससे पहले वाले नाम को याद कर पाता। यदि तब वह दूसरे नाम को पकड़कर चलता है तो तीसरे को भूल जाता है और इसी तरह आगे होता रहता है। इस बात की बड़ी बदनामी है कि गलत छपाई, जो असल में कम्पोजीटर की गलती है, बार-बार उसी रूप में होती जाती है। कहते हैं कि इस तरह की एक अडियल गलती एक सोशल डिमोक्रेटिक अखबार में निकल गई थी, जिसमें एक उत्सव का समाचार देते हुए ये शब्द छप गए थे : "उपस्थित व्यक्तियों में हिज हाईनेस क्लाउन प्रिंस भी थे।"[2] अगले दिन भूल-सुधार की कोशिश की गई। अखबार ने माफ़ी मांगी और लिखा : "यह वाक्य इस तरह होना चाहिए था 'दी क्रो प्रिंस'।"[3] इसी तरह, एक युद्ध-संवाददाता ने एक प्रसिद्ध सेनापति से, जिसकी कमजोरियां काफ़ी प्रसिद्ध थी, मिलने के बाद जो वर्णन लिखा उसमें सेनापति का उल्लेख 'यह बैटल-स्केअर्ड वैटरन' (अर्थात् युद्धभीत योद्धा) छपा। अगले दिन भूल-सुधार और क्षमा-प्रार्थना में ये शब्द लिखे हुए थे :"ये शब्द इस तरह होने चाहिए थे 'बौटल-स्कार्ड वैटरन" (यहाँ Scarred शब्द तो ठीक कर दिया गया किन्तु बैटल=Battle के स्थान पर बौटल=Bottle छप गया जिसका यहां कुछ भी अर्थ नही निकलता)। हम इन

---

१. Substitute; २. अंग्रेजी Clown=क्लाउन=विदूषक; असली शब्द Crown Prince=युवराज था; इसमें 'r' अक्षर के स्थान पर 'l' अक्षर कम्पोज हो गया था--अनुवादक। ३. The Crow Prince, जिसमें Crown शब्द का 'n' छूट गया है जिससे बचे हुए शब्द 'Crow' का अर्थ कौआ होता है।
—अनुवादक।

घटनाओं का कारण 'प्रेस के भूतों' अर्थात् छापनेवालों की असावधानी को बता दिया करते हैं––इससे कम से कम इतना तो ध्वनित होता है कि ग़लत छपाई का कारण मनोकायिकीय सिद्धान्त से कुछ अधिक है।

मुझे नहीं मालूम कि आप इस तथ्य से परिचित हैं या नहीं कि बोलने की ग़लतियां मनो-आदेश[1] द्वारा दूसरे में पैदा भी की जा सकती हैं। एक छोटे-से उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी। एक बार एक नाटक में किसी नौसिखुए को **मेड ऑफ़ ऑरलियन्स** में राजा के सामने यह एलान करने का महत्वपूर्ण काम सौपा गया : "कान्स्टेबल अपनी स्वर्ड (अर्थात् तलवार) वापस भेजता है।" मुख्य अभिनेता ने रिहर्सल में डरते हुए नौसिखुए के सामने असली शब्दों के बजाय ये शब्द कई बार मज़ाक में दोहराये : "कोमफोर्टेबल (घोड़ा-तांगा) अपना स्टीड (घोड़ा) वापस भेजता है।" नाटक खेले जाने के समय उस अभागे अभिनेता ने सचमुच इसी ग़लत एलान के साथ पदार्पण किया, हालाकि उसे बार-बार यह चेतावनी दे दी गई थी कि ऐसा न करना––शायद इस चेतावनी के कारण ही उसने ऐसा कर डाला।

गलतियों की ये सब छोटी-छोटी विशेषताएं ध्यान बंट जाने के सिद्धान्त से स्पष्ट नहीं होती, पर इसका यह मतलब भी नही कि इतने से वह सिद्धान्त गलत सिद्ध हो जाता है, सम्भव है कि बीच की कोई ऐसी कड़ी गायब हो जिसके होने पर यह सिद्धान्त बिल्कुल सन्तोषजनक हो जाए। पर बहुत सारी गलतियों पर एक और पहलू से विचार किया जा सकता है।

अपने प्रयोजन के लिए सबसे उपयुक्त समझकर हम बोलने की ग़लतियों पर विचार करेंगे। इसी तरह, लिखने या पढ़ने की ग़लतियां भी ली जा सकती हैं। अब हमें सबसे पहले यह ध्यान में ले आना चाहिए कि अब तक हमने सिर्फ़ यह विचार किया है कि ग़लत शब्द कब और किन अवस्थाओं में मुह से निकल जाता है और हमें इसी प्रश्न का उत्तर मिला है। अब उस भूल के स्वरूप पर विचार किया जा सकता है और यह प्रश्न पैदा हो सकता है कि ग़लती से यह शब्द क्यों निकला, अन्य कोई क्यों नही निकला। आप देखेंगे कि जब तक इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता और भूल के कार्य की व्याख्या नही होती, तब तक वह घटना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से निरी आकस्मिक बनी रहती है, चाहे उसकी कायिकीय व्याख्या हो चुकी हो। जब मैं किसी शब्द में भूल करता हूं तो ज़ाहिर है कि मैं यह भूल हज़ारों तरह कर सकता था। मैं सही शब्द के स्थान पर अन्य हज़ारों शब्दों में से कोई भी बोल सकता था या सही शब्द को हज़ारों रूपों में बिगाड़ सकता था; तो क्या कोई ऐसी बात है जो मुझे, इस ख़ास उदाहरण में, यही एक भूल करने को मजबूर

---

१. Suggestion.

करती है, या यह सिर्फ़ आकस्मिक और अकारण है, और इसकी कोई बुद्धि-संगत व्याख्या नहीं हो सकती ?

दो लेखकों, मेरिंगर और मेयर, ने (जिनमें से एक भाषातत्व-वेत्ता और दूसरा मनश्चिकित्सक था) १८९५ में बोलने की ग़लतियों की समस्या पर इस दिशा से सोच-विचार करने की सचमुच कोशिश की थी। उन्होंने उदाहरण जमा किये और पहले शुद्ध वर्णात्मक दृष्टि से उनपर विचार किया। निःसन्देह सिर्फ़ इतनी बात से कोई व्याख्या नही हो जाती पर इससे व्याख्या का रास्ता सूझ सकता है। उन्होंने अभिप्रेत पदावली में गलती के कारण होनेवाले विकारों को इन भागों में बांटा: (शब्दों, अक्षरों या वर्णों की स्थितियों में) विपर्यय[1] या अदला-बदली, पूर्वोच्चारण[2], अर्थात् बाद की बात पहले कह देना, निरर्थकावृत्ति[3] या बार-बार वही बात दोहराना, (शब्द) मिश्रण[4] और स्थानापन्नता,[5] अर्थात् एक शब्द के स्थान पर दूसरा शब्द बोल देना। इन लेखकों द्वारा बनाए गए मुख्य वर्गों से उदाहरण मैं आपके सामने पेश करता हूँ। शब्दों के स्थान की अदला-बदली अर्थात् विपर्यय, के उदाहरण के रूप में, कोई आदमी 'भारत की राजधानी दिल्ली' के बजाय 'दिल्ली की राजधानी भारत' कह सकता है। प्रसिद्ध स्पूनर प्रवृत्ति या स्पूनरिज़्म में कुछ वर्णों का स्थान अदल-बदल जाता है; जैसे, एक उपदेशक ने कहा था : "हम अपने भीतर कितनी ही बार हाफ वार्म्ड फिश (हाफ-फॉर्ड विश) अनुभव करते है !" पूर्वोच्चारण का उदाहरण यह हो सकता है : "दि थॉट लाइज़ हैविली आव माई हार्ट" के स्थान पर कोई कहता है:"दि थॉट ला इज़ हार्टिली...।" निरर्थकावृत्ति का उदाहरण उस भोज वाले वाक्य में है, "सज्जनों, मै आपसे (**औफ** : जर्मन शब्द) हमारे प्रधान जी के स्वास्थ्य के लिए औफत्सुस्टोसेन (हिचकी लेने) के लिए निवेदन करता हूं। (**औफ** त्सुस्टोसेन के स्थान पर वह **एन**त्सुस्टोसेन अर्थात् शराब पीने के लिए, कहना चाहता था। पर 'से' के अर्थ में जो **औफ** शब्द पहले प्रयोग किया जा चुका था, उसकी दूसरे शब्द के पूर्वार्ध में निरर्थक आवृत्ति कर बैठा जिससे **पीने** के स्थान पर **हिचकी लेने** का अर्थ हो गया)।

और जब ब्रिटिश लोकसभा के एक सदस्य ने एक दूसरे सदस्य को 'मेंबर फार सेन्ट्रल हल (एक चुनाव क्षेत्र का नाम)' के बजाय 'मेंबर फार सेन्ट्रल हेल (नरक)' कह दिया था, तब यह भी निरर्थकावृत्ति का उदाहरण था। इसी प्रकार, एक सैनिक ने अपने एक मित्र से कहा : "मै चाहता हूँ कि इस मोर्चे पर हमारे हजार मैन मोर्टिफाइड (अर्थात् आदमी मर जाते)। असल में वह कहना चाहता था कि **मैन फोर्टिफाइड** (अर्थात् सैनिक दुर्गबद्ध) हो जाते। पहले उदाहरण में, '**एल**' ध्वनि

---

१. Interchange; २. Anticipation; ३. Perseveration; ४. Compounding or Contamination; ५. Substitution.

में पहलेवाले पदों, **मेम्बर** फार सेन्ट्रल की 'ए' ध्वनि की निरर्थकावृत्ति हो गई है और दूसरे में, **मैन** की 'म' ध्वनि की निरर्थकावृत्ति होकर 'मोर्टिफाइड' बन गया है। ये तीन तरह की ग़लतियाँ बहुत आम नहीं हैं। वे ग़लतियाँ अधिक होती हैं जिनमें शब्द-मिश्रण या शब्दों के सिकुड़कर एक बन जाने की घटना होती है; उदाहरण के लिए एक नौजवान एक महिला से कहता है कि क्या मैं रास्ते में आपको **बेग्लीट-डाइजेन** (begleit-digen–जर्मन भाषा में) = इन्सौर्ट (अंग्रेजी में) कर सकता हूं। यह मिश्रित रूप बेग्लीटेन (begleiten) = हिफाज़त से पहुंचाना और बेलीडाइजेन (beileidigen) = अपमान करना, का मिश्रण है। (अंग्रेज़ी में बेग्लीटेन = एस्कौर्ट तथा बेलीडाइजेन = इन्सल्ट, और दोनों का मिश्रण = इन्सौर्ट)। (और प्रसंगतः, किसी महिला से इस तरह की बात कहने पर नौजवान को विशेष सफलता होने की आशा तो नहीं है)। स्थानापन्नता का उदाहरण यह है कि जब कोई दीन औरत कहती है कि "मुझे असाध्य **इन्फर्नल** (अंग्रेजी नारकीय; वह कहना चाहती थी **इन्टर्नल** = भीतरी या गुप्त) रोग है"; या जब श्रीमती मैलाप्राप कहती हैं, "स्त्रियों के **इनेफेक्च्युअल** (निष्फल; कहना चाहती थी इन्टेलेक्च्युअल = बौद्धिक) गुणों का मूल्य आंकना बहुत थोड़े लोगों को आता है।"

इन दोनों लेखकों ने अपने उदाहरण-संग्रह के आधार के रूप में जो व्याख्या पेश की है, वह विशेष रूप से अपर्याप्त है। उनका कहना है कि शब्द की ध्वनियों और अक्षरों[1] का अलग-अलग मान[2] होता है, और कि अधिक मानवाली ध्वनियों का स्नायु-दीपन[3] कम मानवाली ध्वनियों का बाधक बन सकता है। स्पष्ट है कि उनके निष्कर्ष का आधार पूर्वोच्चारण और निरर्थकावृत्ति के उदाहरण हैं, जो बहुत कम होते हैं। यदि यह मान भी लें कि ध्वनियों के मान अलग-अलग होते हैं, तो भी बोलने की गलतियों के और रूपों में इस तरह ध्वनियों के अधिक मान वाली होने का प्रश्न पैदा ही नहीं होता; सबसे अधिक होनेवाली ग़लती वह है जिसमें मनुष्य किसी शब्द के स्थान पर उससे मिलता-जुलता दूसरा शब्द बोल जाता है, और दोनों के सादृश्य को इस ग़लती का काफ़ी कारण मान लिया जाता है। उदाहरण के लिए, कोई प्रोफ़ेसर अपने आरंभिक व्याख्यान में कह सकता है, "मैं अपने पूर्ववर्ती प्रोफेसर के गुणों का मूल्यांकन करने के लिए इच्छुक (geneigt) (उसे कहना था, योग्य = geeignet) नहीं हूँ।" कोई दूसरा प्रोफेसर कहता है, "स्त्री की जननेन्द्रिय के बारे में, आसक्तिजनक (Versuchungen)....मेरा मतलब है, आयासजनित Versuche....

परन्तु सबसे अधिक होने वाली और सबसे अधिक नज़र आने वाली बोलने की ग़लती वह है जिसमें आदमी जो कुछ कहना चाहता है, ठीक उससे उलटी बात कह

---

१. Syllables, २. Value, ३. Innervation.

जाता है। इन उदाहरणों पर ध्वनियों के संबंधों या सादृश्य के कारण होनेवाली गड़बड़ी का कोई प्रभाव नहीं होता, और इसलिए और कोई कारण दिखाई न देने पर आदमी का ध्यान इस बात पर जाता है कि विरोधी अर्थों में परस्पर प्रबल अवधारणीय[1] संबंध होता है, और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उनका निकट सम्बन्ध होता है। इस तरह के बहुत-से प्रसिद्ध प्रसंग हैं। उदाहरण के लिए, हमारी पार्लियामेंट के अध्यक्ष ने एक बार अधिवेशन का उद्घाटन, इन शब्दों में किया: "सज्जनो, मैं घोषणा करता हूं कि कोरम पूरा है और अब मैं अधिवेशन को **बंद** घोषित करता हूँ।"

कोई और साझा संबंध भी इसी तरह कार्य कर रहा हो सकता है, जैसे एक-दूसरे की विरोधी बातों का संबंध। इसीलिए इस तरह की एक घटना है कि एच० हेल्म होल्ट्ज़ की एक सन्तान का प्रसिद्ध आविष्कारक और उद्योगपति डब्ल्यू० सीमन्स की किसी संतान से विवाह हो रहा था। उत्सव के बाद प्रसिद्ध कार्यिकी-वेत्ता डुबौयरेमंड से भाषण करने के लिए कहा गया। उन्होंने निःसन्देह बड़ा शानदार भाषण दिया, पर अंत में मंगल-कामना इन शब्दों में की: "यह नई साझेदारी, सीमन्स और हाल्स्के सफल हो!"—**हाल्स्के** असल में पुरानी फ़र्म का नाम था। बर्लिन में रहने वाले के मन में इन दोनों नामों का साहचर्य उसी तरह जमा हुआ होगा जैसे लन्दन निवासी के मन में 'क्रास एंड ब्लैकवेल' का।

इस प्रकार, शब्दों में ध्वनि-मानों और सादृश्यों के साथ-साथ शब्द-साहचर्यों[2] का भी विचार करना होगा। परन्तु इतना भी काफी नही है। एक तरह के उदाहरण में ग़लती की पर्याप्त व्याख्या पर पहुंच सकने से पहले हमें किसी ऐसे वाक्यांश या पदावली पर अवश्य विचार करना चाहिए जो पहले कही गई है, या शायद सिर्फ सोची गई है। यह फिर निरर्थकावृत्ति हुई, जैसा कि मेरिंगर का कहना है, पर इसका जनक कारण अधिक दूर है—मैं मानता हूं कि मुझे यही मालूम हो रहा है कि हम बोलने की ग़लतियों का कारण समझने से अब भी पहले जितने ही दूर हैं।

पर मुझे आशा है कि मेरा यह विचार ग़लत नहीं है कि ऊपर के उदाहरणों की जांच करते हुए हमारे मन में एक चित्र बन गया है जो शायद आगे हमारे लिए उपयोगी होगा। अब तक हमने बोलने की गलतियां होने की सामान्य दशाओं पर, और ग़लती में दिखाई देनेवाली विकृति के कारणभूत प्रभावों पर ही विचार किया है, पर अब तक हमने गलती के परिणाम पर ज़रा भी विचार नही किया, जो अपने-आप में दिलचस्पी का विषय है—यह प्रश्न अलग है कि उसके पैदा होने का कारण क्या है। यदि हम इसपर विचार करें तो अंत में हमें साहस से कहना

---

१. Conceptual connection, २. Word-association.

होगा कि कुछ उदाहरणों में ग़लती का भी अपना अलग अर्थ है। इस कथन का क्या मतलब हुआ कि "उसका भी अपना अलग अर्थ है।" इसका अर्थ यह है कि शायद ग़लती के परिणाम को अपने आप में एक मान्य मानसिक प्रक्रम कहलाने का हक है जो अपने प्रयोजन की ओर बढ़ रहा है, और वस्तु तथा अर्थ से युक्त कथन है। अब तक हमने सिर्फ़ ग़लतियों की चर्चा की है, पर अब ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे कभी-कभी ग़लती सर्वथा उचित कार्य भी हो सकती है,—कि जैसे बात इतनी ही है कि यह अधिक प्रत्याशित या अभिप्रेत के स्थान पर ज़बर्दस्ती आ कूदी है।

कुछ उदाहरणों में ग़लती से निकलने वाला अर्थ समझ में आनेवाला और भ्रांतिरहित प्रतीत होता है। जब अध्यक्ष पार्लियामेंट के अधिवेशन का उद्घाटन-भाषण देते हुए इसे बंद घोषित करता है, तब उस गलती के होने की परिस्थितियों को जानने पर हमें उसमें एक अर्थ दिखाई देने लगता है। उसे अधिवशन से कोई अच्छा परिणाम निकलने की आशा नही है, और यदि यह न हो तो उसे खुशी होगी; इस ग़लती का अर्थ या तात्पर्य निकालना कुछ कठिन नही। या जब कोई महिला किसी दूसरी महिला की तारीफ़ करती हुई मालूम होती है और कहती है, "निश्चय से **आपने** ही यह सुन्दर टोप **औफगोपात्स्ट**" (फेंका होगा), जबकि उसे **औफगेपुत्स्ट** (सिआ होगा) कहना था, तब संसार का कोई भी वैज्ञानिक सिद्धान्त हमें यह सोचने से नहीं रोक सकता कि उसके मन में यह विचार है कि टोप कुशल हाथों का बना हुआ नहीं है। या जब कोई तेज़ मिज़ाजवाली महिला यह कहती है, "मेरे पति ने डाक्टर से पूछा था कि उसे किस तरह की खुराक दी जाए। पर डाक्टर ने कहा कि उसे किसी विशेष खुराक की जरूरत नही है; वह, जो मैं चाहूँ सो, खा सकता है", तब यह ग़लती साफ़ तौर से एक सुसंगत योजना की भ्रांतिरहित अभिव्यक्ति मालूम होती है।

अब मान लो कि यह बात सिद्ध हो जाए कि बोलने की ग़लतियों और दूसरी सामान्य ग़लतियों में से कुछ का ही नही, बल्कि उनके बहुत बड़े भाग का कुछ अर्थ होता है तो ग़लती का अर्थ ही, जिसकी ओर अब तक हमने कोई ध्यान नही दिया, हमारे लिए सबसे बड़ी दिलचस्पी का विषय हो जाएगा, और यह उचित ही है कि तब और सब प्रश्न गौण हो जाएंगे। तब सब कायिकीय और मनोकायिकीय दशाओं को नज़रंदाज़ किया जा सकता है, और गलतियों के **अभिप्राय,** अर्थात् अर्थ या आशय, की शुद्ध मनोवैज्ञानिक जांच-पड़ताल की ओर सारा ध्यान दिया जा सकता है। इसलिए इस दृष्टि से हम कुछ और उदाहरणों पर विचार करेंगे।

पर इस रास्ते पर चलना शुरू करने से पहले मैं आपका ध्यान एक और बात की ओर खींचना चाहता हूं। बहुत बार कोई कवि बोलने की ग़लती या किसी दूसरी ग़लती का, कलात्मक अभिव्यक्ति के रूप में प्रयोग करता है। इस तथ्य से

ही यह सिद्ध होता है कि वह यह समझता है कि ग़लती, उदाहरण के लिए बोलने की गलती, का कुछ अर्थ होता है; क्योंकि वह जान-बूझकर ऐसी रचना करता है। यह सम्भव नहीं, कि कवि से अचानक लिखने की ग़लती हो गई हो और इसे उसने बोलने की ग़लती के रूप में अपनी रचना में बना रहने दिया हो। ग़लती के द्वारा वह कुछ बात प्रकट करना चाहता है, और हम यह पूछ सकते हैं कि वह इसके द्वारा क्या बात प्रकट करना चाहता है--शायद वह यह संकेत करना चाहता है कि ग़लती करनेवाला व्यक्ति बहुत थका हुआ है, या उसका ध्यान बंटा हुआ है, या उसे सिर-दर्द शुरू होने की सम्भावना है। पर यदि कवि लोग अपना अर्थ प्रकट करने के लिए ग़लतियों का उपयोग करते ही हैं तो भी हमें इसके महत्व को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर पेश न करना चाहिए। हो सकता है कि असल में ग़लतियां अर्थहीन हों, वे मानसिक जगत् की आकस्मिक घटनाएं हों, या उनका कभी-कभी ही अर्थ होता हो, और कवियों को तब भी यह अधिकार होगा कि वे अपने प्रयोजन के लिए उनमें कोई अभिप्राय भरकर उन्हें परिष्कृत कर लें। तो भी, यदि बोलने की गलतियों के बारे में हम भाषातत्ववेत्ताओं और मनश्चिकित्सकों की अपेक्षा कवियों से कुछ अधिक सीख सकें तो आश्चर्य न करना चाहिए।

इस तरह की एक गलती का उदाहरण शिलर (Schiller) के **वालेनस्टाइन** (पिक्कोलोमिनी, अंक १, दृश्य ५) में आता है। पहले के दृश्य में युवा मैक्स पिक्कोलोमिनी ने ड्यूक वालेनस्टाइन के पक्ष का जोर-शोर से समर्थन किया था, और वह बड़े भावावेश से शांति के लाभों का वर्णन कर रहा था, जिनका उसे वालेनस्टाइन की सुन्दरी कन्या के साथ कैम्प की ओर यात्रा करने के दिनों में ज्ञान हुआ था। उसके रंगमंच से जाने के बाद, उसका पिता (अक्टेवियो) और दरबारी क्वेस्टनबर्ग भय-विह्वल अवस्था में दिखाए गए हैं। पांचवां दृश्य आगे इस तरह जारी रहता है :

क्वेस्टनबर्ग : हा, यह क्या होता है ?
मित्र, क्या हम उसको चलने दें
इस भ्रम में ? जाने दें अपने हाथों से ?
न बुलाएं उसको फ़ौरन वापस, और
न खोलें उसकी आंखें तुरत अभी ?

आक्टेवियो : (गहरी विचार-निद्रा से जागता हुआ)
उसीने खोलीं अब **मेरी,**
दिखता मुझको अनभाता भी

क्वेस्टनबर्ग : वह क्या, मित्र ?

आक्टेवियो : वज्र गिरे इस यात्रा पर !

क्वेस्टनबर्ग : पर क्यों ऐसा कहते हो ? क्या बात हुई ?

ग्राक्टेवियो : ग्राओ, ग्राओ, मित्र, चलूंगा ही मैं,
तुरत, जहाँ ग्रपशकुन मुझे ले जाता,
ग्रौर निज नयनों से ही देखूंगा––ग्राओ मेरे साथ ग्रभी !

क्वेस्टनबर्ग : ग्रभी कहाँ ग्राओ तुम ?

ग्राक्टेवियो (जल्दी में) : **उसी तरुणी के पास !**

क्वेस्टनबर्ग : कहाँ···

ग्राक्टेवियो (ग्रपनी ग़लती सुधारता हुग्रा) ग्ररे ड्यूक के पास ! ग्राग्रो फ़ौरन!

ग्राक्टेवियो कहना चाहता था:"उसी ड्यूक के पास। पर उसकी ज़बान फिसल जाती है ग्रौर वह "उसी तरुणी के पास" शब्दों से (कम से कम हमें तो) यह जतला देता है कि उसने उस प्रसिद्ध तरुण योद्धा की शांतिपक्षीय प्रेरणाग्रों के पीछे कार्य कर रहे प्रभाव को साफ़ तौर से पहचान लिया है।

इससे भी ग्रधिक प्रभावोत्पादक उदाहरण ग्रो० रैंक ने शेक्सपियर में से निकाला था। यह **मर्चेन्ट ग्राफ़ वेनिस** में उस प्रसिद्ध दृश्य में ग्राता है जिसमें वह सौभाग्य-शाली विवाहार्थी तीन डिब्बियों में से एक को उठाता है; ग्रौर सबसे ग्रच्छा शायद यही रहेगा कि मैं ग्रापके सामने इसका रैंक द्वारा लिखा हुग्रा छोटा-सा विवरण ही पढ़ दूं।

"बोलने की एक ग़लती, जो शेक्सपियर के **मर्चेन्ट ग्राफ़ वेनिस** (ग्रंक तीन, दृश्य २) में ग्राती है, उससे प्रकट काव्यमय भावना की, ग्रौर इस कौशल का प्रयोग करने के शानदार तरीके की दृष्टि से ग्रत्यंत सुन्दर बन पड़ी है। वालेनस्टाइन में ग्राई ग़लती की तरह, जो फ्रायड ने ग्रपनी **साइको पैथोलोजी ग्राफ एवरी डे लाइफ़** में उद्धृत की है, इससे भी प्रकट होता है कि कवि लोग ऐसी ग़लतियों के तंत्र ग्रौर ग्रर्थ को ग्रच्छी तरह, समझते हैं, ग्रौर यह मानकर चलते ह कि दर्शक भी उनकी बात समझेंगे। पोर्शिया, जिसे ग्रपने पिता की इच्छा के कारण लाटरी से ग्रपने पति का चुनाव करना है, ग्रबतक नापसंद विवाहार्थियों से, उनकी बदकिस्मती के कारण बचती गई है। ग्रंत में बेसानियो के रूप में ग्रपना मनपसंद विवाहार्थी पाकर वह इस ग्राशंका से डरती है कि वह भी ग़लत डिबिया उठाएगा। वह उसे यह बताना चाहती है कि उस ग्रवस्था में भी तुम मेरे प्रेम के विषय में निश्चित हो सकते हो, पर ग्रपनी शपथ के कारण वह उससे ऐसा नहीं कह पाती। इस ग्रांतरिक संघर्ष में कवि उससे ग्रपने मनपसन्द विवाहार्थी को कहलवाता है :

विनती करती हूँ कुछ ठहरो; सोचो कुछ दिन
ग्रौर फिर पासा फेंको; क्योंकि यदि ग़लत पड़ा
तो छूटेगा संग तुम्हारा; ग्रतः धरो कुछ धीरजः
कोई कहता मेरे उर में (किंतु वह प्रेम नहीं है)
होगे दूर नहीं तुम मुझसे....

. . . .बतला सकती थी मैं तुमको
कैसे सही चुनो वह डिबिया, किंतु शपथ है मेरे ऊपर
अतः नहीं कह सकती कुछ; इसका बुरा न मानो;
बुरा मान कर पाप कराओगे तुम मुझसे
क्योंकि शपथ है मेरे ऊपर; ज़ालिम नयन तुम्हारे !
मुझे देखकर बांट चुके हैं दो टुकड़ों में;
मेरा आधा हुआ तुम्हारा, आधा शेष तुम्हारा–
मेरा-मेरा, कहना था; पर यदि मेरा, तो भी रहा तुम्हारा,
यों सारा हुआ तुम्हारा।

सिर्फ़ वह बात, जो वह उसे गूढ़ इशारे से बताना चाहती थी, क्योंकि असल में उसे यह बात सर्वथा उससे छिपानी चाहिए थी, यानी कि 'लाटरी से पहले भी मैं तुम्हारी थी और तुमसे प्यार करती थी',—यह कवि ने मनोवैज्ञानिक अनुभूति की अत्यधिक सुन्दरता के साथ, उसकी गलती में, उसके मुह से कहलवा दी है; और इस कलापूर्ण युक्ति द्वारा उसने प्रेमी की असह्य अनिश्चितता को भी दूर कर दिया है, और चुनाव के प्रश्न के बारे में दर्शकों के अनिश्चय को भी शांत कर दिया है।"

और देखिए अन्त में, पोर्शिया गलती से कही गई दोनों बातों का किस तरह मेल बिठाती है, कैसे वह उनके विरोध का परिहार करती है, और अंत में उस ग़लती को उचित भी सिद्ध करती है :

. . . .पर यदि मेरा, तो भी रहा तुम्हारा
यों सारा हुआ तुम्हारा।

ऐसा हुआ है कि डाक्टरी के क्षेत्र से बाहर के दूसरे विचारकों ने अपने कथन द्वारा किसी ग़लती का अर्थ प्रकट किया है, और इस दिशा में हमने जो कार्य किया, उसको उन्होंने हमसे पहले किया है। परिहास-व्यंग्य-लेखक लिख्टनबर्ग (१७४२-१७९९) को आप सब जानते हैं, जिसके बारे में गेटे ने कहा था : "जहां वह मज़ाक करता है, वहां कोई समस्या छिपी पड़ी होती है।" और कभी-कभी उस समस्या का हल उस मज़ाक में ही दिखाया होता है। लिख्टनबर्ग ने अपने परिहास तथा व्यंग्य से पूर्ण **नोट्स** में लिखा है, "वह 'एंगेनोम्मेन' (क्रिया, जिसका अर्थ है [गलती से] सिद्ध या स्वीकृत मान लेना) के स्थान पर सदा 'एगामेम्नोन' पढ़ा करता था, होमर का वह इतना महान् पंडित था।" इसमें पढ़ने में होनेवाली गलतियों का वस्तुतः सारा सिद्धांत आ जाता है।

अगले व्याख्यान में हम देखेंगे कि कवियों का मनोवैज्ञानिक ग़लतियों के अर्थ के बारे में जो विचार है, उससे हम सहमत हो सकते हैं या नहीं।

व्याख्यान | ३

ग़लतियों का मनोविज्ञान

पिछले व्याख्यान में हमने ग़लती पर विचार किया था, और यह सवाल छोड़ दिया था कि इसने जिस अभिप्रेत, अर्थात् मन के भीतर मौजूद, कार्य में बाधा पहुंचाई है, उससे इसका क्या सम्बन्ध है, और हमने देखा था कि कुछ उदाहरणों में इसका अपना अलग अर्थ झांकता नज़र आता था। हमने अपने आप से कहा था कि यदि बड़े पैमाने पर यह सिद्ध किया जा सके कि ग़लती का अपना अर्थ होता है तो वह अर्थ हमारे लिये उन अवस्थाओं की जांच से भी बहुत अधिक मनोरंजक सिद्ध होगा, जिनमें गलतियां होती हैं।

आइए, एक बार यह और तय कर लें कि किसी मानसिक प्रक्रम के 'अर्थ' से हम क्या समझते ह। इसका मतलब है वह आशय या अभिप्राय जिससे वह प्रक्रम किया जाता है और किसी मानसिक अनुक्रम या सिलसिले में इसका स्थान। जिन उदाहरणों पर हमने विचार किया है, उनमें से अधिकतर में हम 'अर्थ' शब्द के स्थान पर 'आशय' और 'प्रवृत्ति' शब्द रख सकते हैं। तो, हम जो यह मानने लगे थे कि ग़लती में हमें कोई आशय दिखाई पड़ सकता है, वह क्या ऊपरी धोखा, या ग़लती की व्यर्थ प्रशंसा-मात्र थी।

हम बोलने की ग़लतियों के उन्ही उदाहरणों को लेते हैं और इस तरह की बहुत सारी अभिव्यक्तियों पर विचार करते हैं। इस तरह, हम देखते हैं कि ऐसे उदाहरणों के पूरे के पूरे समुदाय बन जाते हैं जिनमें ग़लती का आशय, यानी अर्थ, आसानी से समझ में आ जाता है; खास तौर से उन उदाहरणों में जिनमें मन की बात से उलटी बात कह दी गई है। अध्यक्ष अपने उद्घाटन भाषण में कहता है :"मैं अधिवेशन को **बन्द** घोषित करता हूँ।" निश्चित रूप में इसका अर्थ अस्पष्ट नहीं। इस ग़लती का अर्थ यह है कि वह अधिवेशन को बन्द करना चाहता है। आप आसानी से कह सकते हैं, "उसने स्वयं ऐसा कहा था;" हम तो उसके अपने शब्दों को ही ले रहे हैं। कृपा करके यह एतराज़ उठाकर मुझे मत टोकिये कि यह तो असम्भव है, कि हमें बिलकुल अच्छी तरह पता है कि वह अधिवेशन को खोलना चाहता था,

न कि बन्द करना; और कि वह स्वयं,जिसे हमने अभी अपने आशय का सबसे अच्छा जज स्वीकार किया है, इस बात पर बल देगा कि वह इसे खोलना चाहता था। ऐसा एतराज़ करते हुए आप यह भूल जाते हैं कि हमने सिर्फ़ ग़लती पर विचार करना तय किया था; जो आशय इसे पैदा कराता है, उसके और ग़लती के सम्बन्ध पर आगे विचार किया जाएगा। आप पर तर्क-दोष का आक्षेप आता है क्योंकि आप साध्य को पहले ही सिद्ध मानकर सारे विचारणीय प्रश्न को आराम से खतम कर देना चाहते हैं।

दूसरे उदाहरणों में, जिनमें गलती का रूप आशय से ठीक उलटा नहीं है, विरोधी अर्थ आम तौर से प्रकट हो जाता है। "मैं अपने पूर्ववर्ती के गुणों की सराहना करने को **उत्सुक** (Geneigt) नहीं हूँ।" 'उत्सुक' 'की स्थिति में' (Geeignet) का उलटा नही है, बल्कि यह उस विचार की खुली स्वीकृति है जो वक्ता के उस स्थिति की शोभा कायम रखने के कर्तव्य से बिल्कुल उलटा है।

कुछ और उदाहरणों में गलती से आशय के साथ सिर्फ़ एक दूसरा अर्थ और जुड़ जाता है। तब वाक्य संक्षिप्त रूप, या कई वाक्यों का एक वाक्य में ठूँसा हुआ वाक्य मालूम होता है। इस प्रकार उस पक्के इरादे वाली महिला का वाक्य ऐसा ही था, जिसने कहा था, "वह जो मैं चाहूं वह खा-पी सकता है।" असल में मानो उसने कहा था, "वह जो कुछ चाहे खा-पी सकता है, पर उसके चाहने का क्या महत्व है; मेरा चाहना ही उसका चाहना है।" बोलने की ग़लती से प्रायः यह असर पड़ता है कि संक्षेप हो गया है; उदाहरण के लिए जब शारीरशास्त्र का एक अध्यापक नासिका-विवरों[1] पर व्याख्यान देने के बाद अपनी कक्षा से यह पूछता है कि क्या आपने विषय को अच्छी तरह समझ लिया, तब सबके सामान्य रूप से 'हां' कहने पर वह कहता है, "मुझे इस बात पर विश्वास नही होता क्योंकि नासिका-विवरों को पूरी तरह समझ सकने वाले लोग करोड़ों के शहर में भी **एक उंगली** पर गिने जा सकते हैं·····मेरा मतलब है, एक हाथ की उँगलियों पर···।" संक्षिप्त वाक्य का अपना ही अर्थ है, इसका अर्थ यह है कि इस विषय को समझने वाला सिर्फ़ एक व्यक्ति है।

इस तरह की ग़लतियों के मुकाबिले में, जिनमें ग़लतियों का अर्थ बिल्कुल साफ़ हो जाता है, दूसरी ओर कुछ ऐसी ग़लतियाँ हैं, जिनमें ग़लती से कुछ भी समझ में नही आता, और इसलिए वे हमारी आशाओं के बिलकुल विपरीत मालूम होती हैं। व्यक्तिवाचक नामों का भूल से ग़लत उच्चारण, या अर्थहीन ध्वनियों का बोल जाना इस तरह की एक ऐसी आम घटना है, जो अकेली ही इस प्रश्न का उत्तर प्रतीत होती है कि सब ग़लतियों का कोई अर्थ होता है या नहीं। पर ऐसे उदाहरणों की

---

१. Nasal cavities.

बारीकी से जांच करने से यह बात सामने आ जाती है कि इन विकृतियों को आसानी से समझा जा सकता है; सच तो यह है कि इन समझ में न आनेवाले उदाहरणों और पहलेवाले अधिक आसानी से समझ आनेवाले उदाहरणों में बहुत बड़ा अन्तर नहीं है।

एक घोड़े के मालिक ने घोड़े की अवस्था के बारे में पूछे जाने पर उत्तर दिया, "ओ, इट मे **स्टैंड**—इट मे **टेक** अनदर मंथ।" यह पूछने पर कि उसका असली आशय क्या है, उसने उत्तर दिया कि मैं यह सोच रहा था कि यह एक **सैड** (बुरा) कारबार है और **स्टैंड** तथा **टेक** शब्दों के मिलने से **स्टैंड** शब्द बन गया (मैरिंगर और मायर)।

एक और आदमी कुछ आपत्तिजनक घटनाएं सुना रहा था और कह रहा था, "एंड देन सर्टेन फैक्ट्स वेयर रिफिल्ड।" उसने बताया कि वह यह कहना चाहता था कि यह तथ्य **फिल्दी** (भद्दे) हैं। **रिवील्ड** तथा फिल्दी के मिल जाने से रिफिल्ड बन गया (मैरिंगर और मायर)।

तुम्हें उस नौजवान का ध्यान होगा जिसने एक अपरिचित महिला को **'इन्सौर्ट'** करने का प्रस्ताव किया था। हमने इन शब्दों को **इन्सल्ट** (insult) और **एस्कौर्ट** (escort) में खण्डित कर लिया था, और हमें अपनी इस व्युत्पत्ति की सचाई का इतना निश्चय था कि इसके किसी प्रमाण की आवश्यकता नही थी। इन उदाहरणों से आप समझ सकते है कि कुछ धुधले दिखाई देने वाले इन उदाहरणों की भी यह कहकर व्याख्या की जा सकती है कि उनमें भाषण के दो भिन्न आशयों की एक साथ उपस्थिति है, या दो भिन्न आशय एक-दूसरे को रोकते है। मतभेद सिर्फ़ पहले प्रकार की गलतियों में पैदा होता है, जबकि एक आशय बिलकुल लोप हो गया है, जैसा कि उल्टी बात कहने पर होता है; दूसरे प्रकार की गलती में एक आशय दूसरे को विकृत करने या उसमें रूपभेद करने में ही सफल होता है, जिससे निरर्थक-से दिखाई देनेवाले मिले-जुले शब्द बन जाते है।

मेरा ख्याल है कि अब हमने बोलने की बहुत सारी भूलों का रहस्य खोज लिया है। यदि हम अपने मन में यह बात स्पष्ट रूप से रखें तो और तरह की गलतियों को भी, जो अब तक बिलकुल रहस्यमय मालूम होती है,समझ सकेंगे। उदाहरण के लिए जब कोई नाम विकृत किया जाता है, तब हम यह कल्पना नही कर सकते कि इसमें सदा दो, एक जैसे परन्तु भिन्न, नामों का संघर्ष ही हो रहा है; तो भी दूसरा आशय आसानी से पता चल जाता है। बोलने की ग़लतियों के अलावा भी नामों को आमतौर से बिगाड़ा जाता है। यह बिगाड़ नाम को किसी हीन बनानेवाली चीज़ के समान करने की कोशिश होती है जो गाली देने का एक आम तरीका है— शिक्षित लोग जल्दी ही इस कार्य से बचना सीख जाते है, पर फिर भी वे इच्छा से इसे नहीं छोड़ते। कभी यह किसी बहुत घटिया क़िस्म के मज़ाक के रूप में हो सकता

है। इस तरह नाम बिगाड़ने का एक बहुत भद्दा और गंवारू उदाहरण लीजिए। फ्रैंच गणराज्य के राष्ट्रपति का नाम **पोइंकारे** से बिगाड़कर **श्विसकारे** कर दिया गया है। यदि यह कल्पना की जाए कि बोलने की गलती से नाम बिगड़ने के पीछे भी कोई ऐसा ही बुरा आशय होता है तो यह कोई दूर की कल्पना नही होगी। अपने विचार को आगे बढ़ाने पर हम यह देखते हैं कि जिन ग़लतियों का प्रभाव हंसी पैदा करनेवाला या बेहूदा होता है, उनकी भी ऐसी ही व्याख्या प्रतीत होती है। पार्लियामेन्ट के सदस्य ने जब 'सैन्ट्रल हैल' के माननीय सदस्य का ज़िक्र किया, तब सदन के गम्भीर वातावरण में एक ऐसे शब्द के आ पड़ने से, जो उपहासास्पद और भद्दा प्रतिबिम्ब पैदा करता है, अचानक ही गड़बड़ हो जाती है। कुछ बुरे लगनेवाले और भद्दे शब्दों के सादृश्य से हमें यह नतीजा निकालना पड़ता है कि यहां बीच में कोई इस आशय का मानसिक आवेग मौजूद है, "आपको धोखे में आने की जरूरत नही। जो कुछ मैं कह रहा हूँ, उसका एक शब्द भी मैं कहना नही चाहता। यह आदमी नरक (हैल) में पड़े।" यही बात बोलने की उन ग़लतियों पर लागू होती है जो बिलकुल सीधे-सादे हानिरहित शब्दों को अश्लील और भद्दे शब्दों में बदल देती हैं।

हम जानते हैं कि कुछ लोगों में यह प्रवृत्ति होती है कि वे हानिरहित शब्दों को भद्दे शब्दों में बदल देते ह और इसमें उन्हें मज़ा आता है। इसे बुद्धि की चतुराई समझा जाता है, और सच तो यह है कि जब कोई आदमी इस तरह की बात सुनता है तब वह तुरन्त यह पूछता है कि मजाक के लिए ऐसा किया गया है, या यों ही, बिना चाहे, बोलने की गलती से यह शब्द मुह से निकल गया है।

इस तरह हमें ऐसा मालूम होता है कि हमने गलतियों की समस्या खास तकलीफ़ उठाए बिना हल कर ली है। वे आकस्मिक घटनाएँ नहीं हैं, बल्कि गम्भीर मानसिक कार्य ह। उनका अपना अर्थ है। वे दो भिन्न आशयों के एक साथ उपस्थित होने से, या शायद यह कहना अधिक ठीक होगा कि एक-दूसरे को रोकने के कारण पैदा होती है। पर अब मैं खूब समझ सकता हूं कि आप मुझपर सवालों और सन्देहों की झड़ी लगा देना चाहते है; हमें अपनी कोशिशों के इस पहले परिणाम पर खुश होने से पहले उनका उत्तर देना होगा, और उन्हें हल करना होगा। निश्चित ही मैं यह नही चाहता कि आपको जल्दबाजी में कोई फैसले मानने को मजबूर करूं। हम हर बात पर बारी-बारी शान्ति से विचार करेंगे।

आप क्या कहना चाहते है? यही तो कि क्या इस व्याख्या से बोलने की सब ग़लतियों की समस्या हल हो जाती है, या इससे कुछ थोड़ी-सी ग़लतियां ही स्पष्ट होती है? क्या यही विचार दूसरी बहुत तरह की ग़लतियों, जैसे गलत पढ़ जाना, ग़लत लिख जाना, भूल जाना, ग़लत ढंग से काम करना, चीज़ रखकर भूल जाना, आदि, पर भी लागू किया जा सकता है? ग़लतियों के मानसिक स्वरूप में, थकावट,

उत्तेजना, ध्यान न होना, और ध्यान-बंटाई का कितना प्रभाव होता है? इसके अलावा, यह भी स्पष्ट दिखाई देता है कि ग़लती में जो दो मुकाबले के अर्थ होते हैं, उनमें से एक तो सदा स्पष्ट दिखाई देता है, परन्तु दूसरा सदा स्पष्ट नहीं दिखाई देता; तब दूसरा अर्थ कैसे निकाला जाए? और यदि आप यह समझते हैं कि उसका आपने अन्दाज़ा लगाया है तो इसका क्या प्रमाण है कि यही सच्चा अर्थ है, और यह एक सम्भावना-मात्र नहीं है? क्या आप कोई और बात भी पूछना चाहते हैं? यदि नहीं, तो मैं ही आगे बोलना जारी रखता हूं। मैं आपको यह याद दिलाऊँगा कि असल में हमें ग़लतियों से अधिक वास्ता नहीं है; हम तो उनका अध्ययन करके मनोविश्लेषण की दृष्टि से कोई काम की चीज़ सीखना चाहते थे। इसलिए मैं यह प्रश्न पेश करूँगा; इस तरह हमारे आशयों को रोकने या बाधा देने वाले प्रयोजन या प्रवृत्तियाँ कौन-कौन-सी हैं, और बाधाकारक प्रवृत्ति तथा दूसरी प्रवृत्ति में क्या सम्बन्ध है? इस प्रकार ज्यों ही हमने इस पहेली को हल किया, त्यों ही हमारी कोशिशें फिर प्रारम्भ हो गई।

अच्छा, तो यह प्रश्न था कि क्या इससे बोलने की सब तरह की ग़लतियों की व्याख्या हो जाती है। मेरा बहुत कुछ झुकाव ऐसी ही बात मानने की ओर है, और इसका कारण यह है कि जब कभी हम इस तरह के किसी उदाहरण पर विचार करते हैं, तब इसी तरह का समाधान प्राप्त होता है। तब भी यह सिद्ध नही किया जा सकता कि इस तन्त्र के कारण के बिना बोलने की ग़लती नही हो सकती है। बात ठीक हो सकती है: सिद्धान्ततः अपने प्रयोजन के लिए हमें इस बात से कुछ विशेष दिलचस्पी नही है, क्योंकि यदि बोलने की कुल ग़लतियों में से कुछ थोड़ी-सी ग़लतियों की भी व्याख्या इस तरह हो जाती है तो, मनोविश्लेषण से आरम्भिक परिचय की दृष्टि से, हम जो निष्कर्ष निकालना चाहते हैं, उनकी मान्यता बनी रहती है; परन्तु यहाँ थोड़ी-सी ग़लतियों वाली बात नही है। अगला प्रश्न यह है कि क्या इस व्याख्या से दूसरी तरह की ग़लतियों का भी समाधान हो सकता है? उसका उत्तर हम पहले ही 'हाँ' में दे सकते हैं। जब आप लिखने की या काम ग़लत रीति से करने के उदाहरणों पर विचार करेंगे, तब आपको स्वयं इसका निश्चय हो जाएगा, परन्तु मैं टैकनिकल कारणों से इस प्रश्न को तब तक के लिए छोड़ देना चाहता हूँ, जब तक हम बोलने की ग़लती पर और अधिक विस्तार से विचार न कर लें।

इस प्रश्न का, जिसे कुछ लेखकों ने बहुत तूल दिया है, अधिक विस्तार से उत्तर देने की आवश्यकता है कि रक्त-संचार की गड़बड़ियों, थकावट, उत्तेजना, ध्यान-बँटाई, असावधानता आदि का हमारे लिए क्या अर्थ हो सकता है, जब कि हम ग़लतियों के बारे में ऊपर बताया गया मानसिक तन्त्र या कार्य-प्रणाली मानते हैं। आप देखेंगे कि हम इन कारणों के होने का निषेध नहीं करते, बल्कि साधारणतया यह कहा जा सकता है कि मनोविश्लेषण प्रायः अन्य विज्ञानों में स्वीकृत किसी भा

बात का खण्डन नहीं करता। सामान्यतया जो कुछ उन्होंने कहा है, उसमें मनोविश्लेषण कुछ नई बात जोड़ता है, और कभी-कभी सचमुच ऐसा होता है कि जिस बात की ओर अब तक किसी ने ध्यान नहीं दिया था, और जिसे अब मनोविश्लेषण सामने रखता है, वही उस मामले का सबसे अधिक सारभूत हिस्सा है। मामूली बीमारी में, रक्त-संचार की गड़बड़ में और थकावट की अवस्था में पैदा होनेवाली कार्यिकीय प्रवृत्तियों का प्रभाव बोलने की ग़लतियों का एक कारण होता है, यह तो बिना किसी विरोध के हम स्वीकार करते हैं; अपने रोज़ के अनुभव से हमें इसकी सच्चाई का निश्चय हो सकता है; पर इस स्वीकार से व्याख्या कितनी-सी होती है? सबसे बड़ी बात तो यह है कि यह कारण ग़लतियों की आवश्यक शर्त नही है; बोलने की ग़लती बढ़िया स्वास्थ्य और बिल्कुल सामान्य अवस्थाओं में भी इसी तरह हो सकती है; इसलिए ये शारीरिक कारण तो सहायक मात्र हैं। उनसे बोलने की ग़लती पैदा करने वाले इस खास मानसिक तन्त्र को अनुकूलता और सुविधा-मात्र हो जाती है। इस तरह की अवस्था के लिए मैंने एक बार एक दृष्टान्त दिया था, जो मैं यहाँ भी दोहराऊंगा, क्योंकि मुझे उससे अच्छा दृष्टान्त मालूम नही है। ज़रा कल्पना कीजिये कि किसी अन्धेरी रात में मै सड़क पर अकेला जा रहा हूँ और कोई लुटेरा मुझपर हमला करके मेरी घड़ी और रुपया-पैसा छीन ले जाता है। मै लुटेरे का चेहरा साफ़ नहीं देख सका, इसलिए मै इन शब्दों में थाने में रपट लिखाता हूँ: "सुनसान और अन्धेरे ने मुझसे घड़ी और अन्य कीमती वस्तुएँ अभी लूट ली है।" पुलिस अफ़सर मुझसे कहेगा: "प्रतीत होता है कि आप तथ्यों को बहुत अधिक यन्त्रवादी दर्शन (मैकेनिस्टिक) के दृष्टिकोण से पेश कर रहे है। मान लीजिये कि हम आपकी रपट इस रूप में दर्ज करें कि "अन्धेरा और सुनसान देखकर कोई अज्ञात लुटेरा मेरी चीज़ें छीनकर भाग गया है। मुझे ऐसा लगता है कि असली काम यह है कि लुटेरे को तलाश किया जाए शायद तब हम इससे लूटा हुआ माल वापस ले सकते है।"

ज़ाहिर है कि उत्तेजना, असावधानता, ध्यान-बँटाई आदि मनोकार्यिकीय कारणों से कोई व्याख्या नहीं होती। वे शब्द-मात्र है, वे तो पर्दे है, और हमें उनके पीछे झाँकनेमें संकोच नही करना चाहिए। असल में प्रश्न यह है कि यहाँ उत्तेजना या ध्यान-बँटाई क्यों पैदा हुई। ध्वनि-सादृश्यों का प्रभाव, मिलते-जुलते शब्दों का होना और कुछ शब्दो का सामान्य साहचर्यों द्वारा जुड़े होना भी महत्वपूर्ण बातें है। उनमें यह सुविधा हो जाती है कि ग़लती अपने अर्थ की ओर संकेत करने लगती है। परन्तु यदि मेरे सामने एक रास्ता है, तो क्या इसका आवश्यक रूप से यह अर्थ है कि मुझे इस पर ज़रूर जाना होगा? मुझे इस पर जाने के लिए कोई प्रवर्त्तक या प्रेरक कारण भी, मुझे आगे ठेलनेवाला कोई बल भी, तय करना होगा। इसलिए यह ध्वनि-सादृश्य और शब्द-साहचर्य बिलकुल शारीरिक अवस्थाओं की तरह

हैं। व बोलने की ग़लतियों के कारणों के लिए सुविधा पैदा कर सकते हैं, परन्तु उनकी असली व्याख्या नहीं कर सकते। एक क्षण के लिए आप यह सोचिये कि अधिकतर अवस्थाओं में मेरे भाषण में प्रयुक्त शब्द दूसरे शब्दों के साथ ध्वनि-साम्य, उलटे अर्थों के साथ निकट साहचर्य या बहुत प्रचलित पदावलियों के साथ निकट साहचर्य के कारण विकृत नहीं होते। तो भी दार्शनिक वून्ट के अनुसार, यह कल्पना करनी पड़ती है कि बोलने की ग़लती तब होती है, जब शरीर की थकावट के कारण साहचर्यों की ओर प्रवृत्ति असली आशय के ऊपर हावी हो जाती है। यह बात बिलकुल तर्कसंगत होती, यदि अनुभव इस तथ्य द्वारा इसका खण्डन न करता कि कुछ उदाहरणों में शारीरिक पूर्वकारण[1] और एक और बहुत बड़े वर्ग में साहचर्यात्मक पूर्वकारण अनुपस्थित होते हैं।

परन्तु आपका अगला प्रश्न मेरे लिए अधिक दिलचस्प है, अर्थात् किन साधनों से परस्पर-विरोधी प्रवृत्तियों का निश्चय किया जा सकता है। सम्भवतः आपको यह गुमान भी नही होगा कि यह प्रश्न कितना अशुभ है। इस बात से तो आप सहमत होंगे कि इन प्रवृत्तियों में से एक प्रवृत्ति, अर्थात् वह प्रवृत्ति, जिसे रोका जाता है या बाधा पहुँचाई जाती है, निश्चित रूप से सदा मौजूद होती है। जो आदमी ग़लती करता है, वह इसे जानता है और स्वीकार करता है। सन्देह और दुविधा सिर्फ़ उस दूसरी प्रवृत्ति के विषय में पैदा होती है, जिसे हमने बाधाकारक प्रवृत्ति कहा है। अब आप सुन चुके हैं, और निश्चित ही भूले नही होंगे कि कुछ उदाहरणों में यह दूसरी प्रवृत्ति भी इतनी ही स्पष्ट होती है। यदि हममें इतना साहस हो कि हम उस गलती को उसकी अपनी कहानी ख़ुद कहने दें, तो उस गलती के परिणाम से यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है। जिस उदाहरण में अध्यक्ष ने अपने आशय का ठीक उलटा कहा था, उसमें यह स्पष्ट है कि वह अधिवेशन का उद्घाटन करना चाहता है, पर यह भी उतना ही स्पष्ट है कि वह इसे बन्द कर देना भी पसन्द करेगा। यह बात इतनी स्पष्ट है कि इसका अर्थ समझाने की आवश्यकता नहीं। परन्तु जिन उदाहरणों में बाधाकारक प्रवृत्ति मूल आशय को सिर्फ़ विकृत कर देती है, और स्वयं पूरी तरह सामने नही आती, उनमें बाधाकारक प्रवृत्ति को कैसे पहचाना जा सकता है?

एक तरह के उदाहरणों में तो इसका बड़ा निरापद और सरल तरीका है। यह वही तरीका है जिससे हमने बाधित होने वाली या रोकी जानेवाली प्रवृत्ति को सिद्ध किया था। हम वक्ता से पूछते हैं, और वह तुरन्त हमें बता देता है। ग़लती करने के बाद वह स्वयं अपने मूल आशय के शब्द बोल देता है: **"ओ, इट मे स्टैंड—नो, इट मे टेक अनदर मंथ"** तो, इसी तरह वह बाधाकारक प्रवृत्ति का

---

१. Pre-disposition.

भी पता दे सकता है। हम कहते हैं : "पर तुमने पहले **स्टैड** क्यों कहा ?" वह उत्तर देता है : "मैं यह कहना चाहता था कि यह **सैड** (बुरा) कारबार है" और उस दूसरे उदाहरण में, जिसमें **रिफिल्ड** कहा गया था, वक्ता आपको बताता है कि पहले मैं यह कहना चाहता था कि यह **फिल्दी** (रद्दी) काम है, पर मैंने अपने-आपको रोका, और उसकी जगह दूसरे शब्द का प्रयोग किया। यहाँ बाधक प्रवृत्ति की जानकारी भी उतने ही निश्चित रूप से सिद्ध है, जितने निश्चित रूप से बाधित प्रवृत्ति की। मैंने जान-बूझ कर ही ऐसी घटनाओं के उदाहरण चुने हैं, जिनके पैदा होने का या जिनकी व्याख्या का मुझसे या मेरे किसी समर्थक से कोई सम्बन्ध नहीं है। परन्तु इन दोनों उदाहरणों में व्याख्या पेश कराने के लिए बीच में कुछ हस्तक्षेप आवश्यक था। वक्ता से यह पूछना था कि उसने गलती क्यों की, और वह इसकी क्या व्याख्या कर सकता है। यदि उससे न पूछते तो वह इसकी व्याख्या की कोशिश न करके इसे यों ही निकल जाने देता, पर पूछने पर उसने उत्तर में वह बात कही जो उसके मन में सबसे पहले आई, और देखिए, कि वह थोड़ा-सा हस्तक्षेप और इसका परिणाम मनोविश्लेषण ही है। आगे हम जो भी मनोविश्लेषण-सम्बन्धी जाँच करेंगे, वह इसी तरह की होगी।

अच्छा, यदि मैं यह अन्दाज़ा लगाऊँ कि मनोविश्लेषण का सवाल आते ही आपके मन में तुरन्त इसका एक विरोध सिर उठाने लगता है, तो क्या यह मेरी अत्यधिक स्नेहशीलता है ? क्या आपके मन में यह आपत्ति नहीं उठी कि जिस आदमी ने गलती की थी, उसने पूछने पर जो उत्तर दिया है, वह पूरी तरह भरोसे-योग्य गवाही नहीं है ? आप समझते हैं कि वह स्वभावतः आपकी इस प्रार्थना को पूरा करना चाहता है कि वह अपना गलती का अर्थ बताये, और इसलिये वह अपने मन में सबसे पहले आनेवाली बात कह देता है, कि शायद इससे काम चल जाए। इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि ग़लती पैदा होने का सचमुच यही कारण था। सम्भव है, यही कारण हो, पर उतना ही सम्भव यह भी है कि यह कारण न हो। उसके मन में कोई और बात भी हो सकती थी, जो इस प्रश्न का इतना ही अच्छा या इससे भी अच्छा समाधान कर देती।

इससे बड़े साफ़ तौर से यह पता चलता है कि आपके मनमें एक मानसिक तथ्य के प्रति कितना थोड़ा सम्मान है। कल्पना करो कि किसी व्यक्ति ने किसी पदार्थ का रासायनिक विश्लेषण किया होता, और यह निश्चय किया होता कि इसके एक तत्व का भार इतने मिलीग्राम है। इस तरह आए हुए इस भार से कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। क्या आप समझते हैं कि कोई रसायन शास्त्री कभी यह बात सोचेगा कि ये निष्कर्ष इस आधार पर अविश्वसनीय हैं कि उस तत्व का कोई और भार भी हो सकता था ! हर कोई इस तथ्य को स्वीकार करता है कि इसका सचमुच यही भार था, और इस तथ्य के आधार पर

बे-फ़िक्री से आगे निष्कर्ष निकालता है। पर जब किसी मानसिक तथ्य का प्रश्न आता है, जब यह प्रश्न आता है कि पूछने पर उस मनुष्य के मन में यही विचार था, अन्य कोई नहीं था, तब आप इसे विश्वसनीय नहीं मानेंगे, और कहेंगे कि उसके मन में कोई और विचार भी तो हो सकता था। सचाई यह है कि आपके मन में मानसिक स्वतंत्रता की भ्रांति है, जिसे आप छोड़ना नहीं चाहते। मुझे खेद से कहना पड़ता है कि इस मामले में मेरा आपके विचारों से तीव्र विरोध है।

अब आप यहाँ से हटकर एक और बात पर अपने मन में प्रतिरोध करेंगे। आप कहेंगे : "हम समझते है कि मनोविश्लेषण का विशेष कौशल विश्लेषित व्यक्ति से अपनी समस्याओं का हल निकलवा सकता है। अब वह उदाहरण दीजिए जिसमें भोजन के बाद वक्ता अतिथियों से कहता है कि वे अपने अतिथि के स्वास्थ्य के लिए हिकफ=Hiccough (हिचकी लें)। आप कहते है कि इस उदाहरण में बाधक प्रवृत्ति है उपहास करना; यह सम्मान करने के आशय की विरोधी है, पर यह आप उस ग़लती को स्वतंत्र रूप से देखकर अपनी ओर से उसका अर्थ ही तो लगा रहे हैं। यदि इस उदाहरण में आप ग़लती करने वाले से प्रश्न करे तो वह आपके इस विचार की पुष्टि नहीं करेगा कि उसका आशय उपहास या अपमान करना था। इसके विपरीत, वह इसका प्रबल शब्दों में निषेध करेगा। तो उसके इस स्पष्ट निषेध को देखते हुए, आप अपना ऐसा अर्थ छोड़ क्यों नही देते, जिसे प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं किया जा सकता ?"

हाँ, इस बार आपने कुछ ज़ोरदार सवाल उठाया है। मै अपनी आंखों के सामने उस अज्ञात वक्ता का चित्र रख सकता हूँ। सम्भवतः वह असली अतिथि का सहायक, या शायद स्वयं एक छोटा अध्यापक है, और भविष्य के सुनहले स्वप्न साकार करने की आशा रखने वाला नौजवान है। मैं उससे आग्रहपूर्वक यह पूछूगा कि क्या उसे निश्चित रूप से अपने अन्दर ऐसी भावना नही दिखाई दी जो अपने उस अफ़सर का सम्मान करने की प्रवृत्ति के विरुद्ध हो। इस पर बड़ा तमाशा हो जाता है। वह धीरज खोकर मुझपर एकाएक बौखला पड़ता है : "देखो भई, इस जिरहबाज़ी को खत्म करो; नहीं तो मुझसे बुरा कोई नही होगा! तुम अपने सन्देहों से मेरा भविष्य बिगाड़ दोगे। मैंने तो एन्स्टोसेन (Anstossen) के स्थान पर आफ़टोसन (Aufstossen) ही कहा था, क्योंकि मै इससे पहले दो बार ऑफ़ (Auf) कह चुका। यह वही चीज़ है जिसे मैरिंगर निरर्थकावृत्ति कहता है, और इसमें कोई छिपी हुई बात नहीं है। समझ गये ?" हूं! यह विचित्र प्रतिक्रिया है! सचमुच प्रबल खण्डन है! मै समझता हूँ कि उस नौजवान के साथ और कुछ बात नहीं की जा सकती। पर अपने मन में मैं सोचता हूँ कि उसने यह जतलाने में बड़ी प्रबल व्यक्तिगत दिलचस्पी दिखाई है कि उसकी ग़लती का और कुछ अर्थ नहीं है। शायद आप भी इस बात से तो सहमत होंगे कि एक निरी सैद्धान्तिक

जांच-पड़ताल में उसे इतना गंवारपन दिखाने का कोई हक नहीं था। पर आप सोचेंगे कि आखिरकार उसे यह अवश्य पता होगा कि वह क्या कहना चाहता था, और क्या नहीं।

तो उसे यह अवश्य पता होगा ? यह शायद अब भी विवादास्पद है।

अब आप सोच रहे है कि आपने मुझे फांस लिया। आप कह रहे हैं: "आप-की यही तो रीति है। जब ग़लती करने वाला आदमी ऐसी व्याख्या करता है, जो आपके विचारों के अनुकूल बैठती है, तब आप उसे उस विषय पर असली फैसला करने में समर्थ बता देते है। वह स्वयं जो ऐसा कहता है ! पर यदि उसकी कही हुई बात आपके विषय के अनुकूल नही मालूम होती तो आप कह देते है कि उसके कथन का कोई महत्व नहीं, और उसपर भरोसा नहीं किया जा सकता।"

बिलकुल यही बात है। पर इसी तरह की अजीब प्रक्रिया का एक और उदा-हरण मैं आपको दे सकता हूं। जब कोई अभियुक्त अपना अपराध स्वीकार कर लेता है, तब जज उसका विश्वास कर लेता है, पर जब वह उसे अस्वीकार करता है, तब जज उसका विश्वास नही करता। यदि ऐसा न होता तो कानून चल ही नहीं सकता था, और आपको मानना होगा कि कभी-कभी ग़लत फैसले होने के बावजूद कुल मिलाकर कानून-प्रणाली अच्छी तरह कार्य कर रही है।

"पर आप क्या जज है, और गलती करने वाला क्या आपके सामने अभियुक्त है ? क्या बोलने में गलती कर जाना जुर्म है ?"

शायद हमें इस तुलना को भी अस्वीकार करने की आवश्यकता नहीं। पर अब यह देखिए कि इधर से हानिरहित दिखाई देने वाली गलतियों की समस्या की जांच-पड़ताल में भी हम कितने गहरे मतभेदों पर पहुंच गए है—इस समय हम यह ज़रा भी नहीं जानते कि इन मतभेदों को कैसे सुलझाया जाए। मेरा यह सुझाव है कि हमें जज और अभियुक्त के सादृश्य के आधार पर थोड़ी देर के लिए एक समझौता कर लेना चाहिए। मैं समझता हूं कि आप मेरी इतनी बात तो स्वीकार करेंगे कि यदि विश्लेषण के अधीन व्यक्ति किसी ग़लती का एक अर्थ स्वीकार करता है तो उसमें कोई शक नहीं किया जा सकता। इधर मैं यह स्वीकार किए लेता हूं कि यदि विश्लेषण के अधीन व्यक्ति स्वयं जानकारी देने से इंकार कर दे तो जिस अर्थ के होने की हम आशंका करते है, उसका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नही मिल सकता, और यह बात निःसंदेह तब भी लागू होती है जब वह व्यक्ति हमें जान-कारी देने के लिए स्वयं मौजूद नही है। तब कानूनी कार्यवाही की तरह यहां भी किसी फैसले पर पहुंचने के लिए हमें संकेतों का ही सहारा रह जाता है, और इनके आधार पर किए गए फैसले की सचाई कभी कम और कभी अधिक संभाव्य होती है। अदालत में, व्यावहारिक कारणों से परिस्थिति सम्बन्धी गवाही के आधार पर भी अपराध की घोषणा करनी पड़ती है। यहां ऐसी कोई आवश्यकता

नहीं है, पर यहां हमें ऐसी गवाही पर विचार न करने के लिए कोई मजबूरी भी नहीं है। यह मानना ग़लत है कि निश्चयात्मक रूप से सिद्ध की गई बातों को ही विज्ञान कहते हैं, और यह कहना भी अनुचित है कि ऐसी ही बातों को विज्ञान कहना चाहिए। यह मांग वे ही लोग करते हैं जो किसी न किसी रूप में सत्ता की लालसा रखते हैं, और धार्मिक सिद्धांतों के स्थान पर कोई और चीज़ रखने की आवश्यकता महसूस करते हैं, चाहे वे वैज्ञानिक सिद्धांत ही क्यों न हों। विज्ञान के सिद्धांतों में बहुत थोड़े अकाट्य कथन हैं। इनमें मुख्यतः ऐसे कथन ही हैं जिनके सत्य होने की सम्भावना कहीं कम और कहीं अधिक है। इन बातों से, जो निश्चितता के निकट होती है, सन्तुष्ट हो जाने का सामर्थ्य, और अन्तिम रूप से पुष्टि न होने पर भी रचनात्मक कार्य जारी रखने की योग्यता ही असल में मन की मनोवैज्ञानिक आदत के चिह्न हैं।

पर जहां विश्लेषण के अधीन व्यक्ति गलती का अर्थ स्पष्ट करने के लिए कुछ नहीं कहता, वहां हमें अपना अर्थ निकालने के लिए कहां से शुरू करना होगा, और हमें अपने प्रमाण के लिए संकेत कहां मिलेंगे ? वे अनेक स्थानों से मिल जाएंगे। प्रथम तो, ग़लती से न पैदा होने वाली ऐसी ही घटनाओं के साथ सादृश्य से, जैसे कि तब, जब हम यह कहते हैं कि ग़लती से नाम बिगाड़ने के पीछे मज़ाक उड़ाने का वही आशय होता है जो जान-बूझकर नाम बिगाड़ने में होता है; और फिर उस मानसिक स्थिति से, जिसमें वह ग़लती हुई; ग़लती करने वाले व्यक्ति के चरित्र के बारे में हमारे ज्ञान से; और ग़लती से पहले उसमें जो भावनाएं प्रबल थीं, उनकी जानकारी से, क्योंकि यह ग़लती उनकी अनुक्रिया[1] मात्र हो सकती है। साधारणतया यही होता है कि हम सामान्य सिद्धांतों के अनुसार गलती का अर्थ लगाते हैं, और शुरू में यह एक तुक्का या कल्पना मात्र होता है, यह एक प्रस्तावित समाधान होता है, जिसके लिए प्रमाण बाद में मानसिक स्थिति की जांच द्वारा खोजना है। कभी-कभी अपने अनुमान की पुष्टि प्राप्त होने से पहले हमें और घटनाओं की प्रतीक्षा करनी पड़ती है जो, यह कहा जा सकता है कि, इस ग़लती के कारण अच्छी तरह प्रकाश में न आ सकी।

मैं बोलने की ग़लतियों के क्षेत्र में बंधा रहकर आपको आसानी से इसका प्रमाण नहीं दे सकता, हालांकि यहां भी कुछ अच्छे उदाहरण मेरे पास हैं। जिस नौजवान ने उस महिला को इन्सौर्ट (insort) करने का प्रस्ताव किया था, वह असल में बहुत शर्मीला है। जिस महिला का पति वही खा-पी सकता है जो कुछ वह महिला चाहे, वह उन दृढ़ प्रबन्ध वाली स्त्रियों में है, जो घर की रानी के रूप में निरंकुश शासन करती हैं; या नीचे वाला उदाहरण लीजिए : एक क्लब की एक साधारण

---

१. Response.

बैठक में एक युवक सदस्य ने एक भाषण में ज़बरदस्त आलोचना की, जिसके बीच में उसने सोसायटी के सदस्यों को 'कमेटी के **लेंडर**' (अर्थात् कर्ज देनेवाले महाजन) कहा, जो शायद कमेटी के **मेम्बर** के बदले कहा गया प्रतीत होता है। हमें यह अन्दाज़ करना चाहिए कि उसकी आलोचना के पीछे कोई ऐसी बाधाकारक प्रवृत्ति प्रबल थी, जो स्वयं किसी रूप में **महाजनी** अर्थात् सूदखोरी के विचार से सम्बन्ध रखती थी। सचाई तो यह है कि हमें एक व्यक्ति ने सूचित किया है कि इस आलोचक वक्ता को सदा धन की कठिनाई रहती है, और वह उस समय भी वस्तुत: धन-संग्रह की कोशिश कर रहा था। इसलिए असल में तो बाधाकारक प्रवृत्ति इस विचार के रूप में वहां आ जाती है, "जोर-शोर से विरोध न करना; ये ही वे लोग हैं जिनसे तुम धन उधार लेना चाहते हो।"

यदि मैं थोडी देर के लिए दूसरी तरह की गलतियों के क्षेत्र में चल पड़ूं, तो ऐसी परिस्थितियों सम्बन्धी गवाही के बहुत-से उदाहरण मैं आपको दे सकता हूं।

यदि कोई आदमी सुपरिचित व्यक्तिवाचक नामों को भूल जाता है, और उसे कोशिश करके भी उन्हें याद रखने में कठिनाई होती है, तो यह अनुमान करना मुश्किल नही कि उसके मन में उस नाम वाले व्यक्ति के प्रति कोई बात है, और वह उसके बारे में सोचना पसन्द नही करता। इस बात को ध्यान में रखते हुए मानसिक स्थिति सम्बन्धी निम्नलिखित मामलों पर विचार कीजिए जिनमें इस तरह की ग़लती की गई थी।

किन्ही **क** महोदय का किसी महिला से प्रेम हो गया, पर उसने इनके प्रति कोई प्रेम नही दिखाया, और कुछ ही समय बाद किन्ही **ख** महोदय से विवाह कर लिया। यद्यपि **क** महोदय पहले ही से **ख** महोदय को जानते थे और उनके साथ इनका कारबार भी होता था, पर अब वे बार-बार **ख** महोदय का नाम भूल जाते हैं, और जब उन्हें वह नाम लिखने की ज़रूरत होती है, तब वे बहुधा किसी दूसरे से पूछते हैं[1]। साफ बात है कि **क** महोदय अपने भाग्यशाली प्रतिद्वन्द्वी के विषय में अपना सारा ज्ञान नष्ट करना चाहते हैं।

एक और उदाहरण : एक महिला एक डाक्टर से, अपनी और डाक्टर की परिचित एक महिला के विषय में, उसका अविवाहित अवस्था का नाम लेकर पूछती है। वह उसका विवाहित अवस्था का नाम भूल गई है। वह यह स्वीकार करती है कि मैंने उस विवाह पर बहुत ऐतराज किया था और उसका पति मुझे बेहद नापसन्द है।[2]

बाद में नामों के भूलने के विषय में दूसरे प्रसंगों में हमें बहुत कुछ कहना है। इस समय हमें मुख्यत: उस 'मानसिक स्थिति' से मतलब है जिसमें स्मृति की यह

---

१. C. G. Jung से। २. A. A. Brill से।

ग़लती होती है।

साधारणतया यह कहा जा सकता है कि संकल्पों या पक्के इरादों को मनुष्य इसलिए भूल जाता है कि उसके मन में उन संकल्पों को पूरा करने की विरोधी भावना की धारा बह रही होती है। किन्तु यह हमारा, मनोविश्लेषकों का, ही विचार नही है। यह हर आदमी का अपने रोजाना के कारबार में होने वाला सामान्य रवैया है, जिसे वह सिद्धान्त के रूप में ही स्वीकार करता है। जब किसी आश्रित का आश्रयदाता उसकी प्रार्थना भूल जाने के कारण क्षमा मांगता है, तब आश्रित व्यक्ति ऐसी क्षमा-प्रार्थना से शान्त नही होता। वह तुरन्त यह सोचता है, "ज़ाहिर है कि इस क्षमा-प्रार्थना का कोई मतलब नही। उसने वायदा किया था, पर अब वह उसे पूरा नहीं करना चाहता।"

इसलिए जीवन में भी कुछ प्रसंगों में भूलने की जो आलोचना की जाती है, और इन ग़लतियों के बारे में आम प्रचलित विचार और मनोविश्लेषण वाले विचार का अन्तर मिट जाता है। कल्पना करो कि कोई गृहलक्ष्मी किसी अतिथि का इन शब्दों में स्वागत करती है, "ओहो, क्या आपको आज आना था? मैं तो बिल्कुल भूल गई थी कि मैंने आपसे आने के लिए कहा था!" या कल्पना करें कि कोई नवयुवक अपनी प्रेयसी के सामने यह स्वीकार करता है कि हमने पिछली बार आगे मिलने के बारे में जो बात तय की थी, उसे मैं बिल्कुल भूल गया था। वह कभी यह बात स्वीकार नहीं करेगा, बल्कि वह फौरन इधर-उधर की अजीबोगरीब सम्भव-असम्भव रुकावटें घड़कर बता देगा, जिनके कारण वह नहीं आ सका, और उसके लिए उस दिन से आजतक अपनी प्रेयसी को सूचना देना असम्भव हो गया। हम सब जानते हैं कि फौज में भूल जाने का बहाना बिल्कुल बेकार समझा जाता है, और यह किसीको सजा से नही बचा सकता। यह पद्धति उचित मानी जाती है। यहा हर कोई अनायास सहमत है कि किसी विशेष ग़लती का कुछ अर्थ है, और वह अर्थ क्या है। वे लोग अपनी बात पर दृढ़ रहकर दूसरी ग़लतियों तक भी अपनी सूक्ष्म दृष्टि क्यों नही पहुंचा लेते, और फिर इन्हें क्यों खुलेआम स्वीकार नहीं कर लेते? स्वभावतः इसका भी एक उत्तर है।

यदि सामान्य लोगों के मन में पक्के इरादों को भूल जाने का अर्थ इतना असंदिग्ध रूप से जमा हुआ है, तो आपको यह देखकर कुछ भी आश्चर्य न होगा कि साहित्य-लेखक ऐसी भूलों का इसी तरह के अर्थ में उपयोग करते हैं। आपमें से जिन लोगों ने शॉ का **सीजर एन्ड क्लियोपाट्रा** देखा या पढ़ा है, उन्हें याद होगा कि अन्तिम दृश्य में जाते समय सीजर के मन में यह भावना घूम रही है कि वह कुछ और करना चाहता था जिसे इस समय वह भूल गया है। अन्त में उसे याद आ जाता है कि वह क्या बात थी: वह क्लियोपाट्रा से अलविदा कहना चाहता था।

इस छोटे-से कौशल से लेखक ने सीजर में एक बड़प्पन की भावना, जो उसमें नही थी और जिसकी उसने कभी आकांक्षा भी नहीं की थी,दिखाने का प्रयत्न किया है। इतिहास से आप जान सकते हैं कि सीजर ने यह व्यवस्था की थी कि क्लियोपाट्रा उसके पीछे-पीछे रोम आ जाए, और कि वह सीजर की हत्या होने के समय अपने बच्चे के साथ वहीं रह रही थी। हत्या के बाद वह शहर से भाग गई।

पक्के इरादों को भूल जाने के उदाहरण आम तौर से इतने स्पष्ट होते हैं कि हमारे प्रयोजन के लिए वे खास उपयोगी नहीं हैं। हमारा प्रयोजन तो गलती के अर्थ के मानसिक स्थिति सम्बन्धी संकेत ढूढ़ना है। इसलिए अब हम ग़लती के एक विशेष रूप से एक संदिग्ध और अस्पष्ट रूप पर, अर्थात् वस्तुएं खो देने या गलत जगह पर रख देने पर, विचार करेंगे। यह बात तो निश्चय ही आपको अविश्वसनीय मालूम होगी कि वस्तुएं खोने में, जिससे प्रायः इतनी परेशानी और कष्ट उठाना पड़ता है, खोने वाले व्यक्ति का अपना कोई प्रयोजन हो सकता है, पर इस तरह के असंख्य उदाहरण हैं : एक नौजवान ने एक पेन्सिल खो दी, जो उसे बहुत पसन्द थी। कुछ ही दिन पहले उसे अपने बहनोई का एक पत्र मिला था, जिसके अन्त में ये शब्द थे, "मेरे पास न तो समय है और न यह इच्छा ही है कि इस समय तुम्हारे निकम्मेपन और आवारागर्दी को बढ़ावा दूं।"[1] वह पेन्सिल उसे उसके बहनोई ने भेंट में दी थी। यदि यह संयोग न होता तो निश्चय ही हम यह नहीं कह सकते थे कि इस खोने का अर्थ यह है कि उसके मन में इस उपहार से छुटकारा पाने की बात थी। इसी तरह के और बहुत-से उदाहरण है। मनुष्य तब अपनी वस्तुएं खो देता है, जब उसका वस्तु देने वाले से झगड़ा हो गया हो, या वह उसका नाम अपने मन में न आने देना चाहता हो, या फिर जब वह उन वस्तुओं से ऊब गया हो, और कोई दूसरी, और इससे अच्छी, चीज लेने के लिए बहाना चाहता हो। वस्तुओं को गिराने, तोड़ने और बर्बाद करने से वस्तु के विषय में निश्चित रूप से ऐसा ही प्रयोजन सिद्ध होता है। क्या इस बात को आकस्मिक माना जा सकता है कि एक बालक अपने जन्मदिन से ठीक पहले अपनी वस्तुएं, उदाहरण के लिए अपनी घड़ी और बस्ता, खो देता है या बर्बाद कर लेता है ?

जिस आदमी को कभी यह परेशानी अनुभव हुई है कि उसकी अपने हाथ से रखी हुई वस्तु उसके हाथ नही आई, वह निश्चित रूप से कभी यह मानने को तैयार नही होगा कि ऐसा करने में उसका कोई आशय हो सकता था; परन्तु फिर भी ऐसे उदाहरण दुर्लभ नहीं जिनमें कोई चीज़ कहीं रख देने के समय की परिस्थितियों से यह संकेत मिलता है कि वस्तु को कुछ समय, या सदा, के लिए हटा देने की प्रवृत्ति मन में मौजूद थी। शायद इसका सबसे अच्छा उदाहरण यह है :

---

१. B. Dattner से।

एक नौजवान ने मुझे यह किस्सा बताया, "कुछ वर्ष पहले मुझमें और मेरी पत्नी में मनमुटाव था; मैं उसे बिलकुल प्यारहीन समझता था, और यद्यपि म उसके श्रेष्ठ गुणों को खुशी से स्वीकार करता था, पर तो भी हम बिना प्रेम के साथ रहते थे। एक दिन घूमकर लौटते हुए वह मेरे लिए एक पुस्तक लाई जो उसने मेरे लिए यह सोचकर खरीदी थी, कि मुझे वह पसन्द आएगी। उसने मेरा थोड़ा-सा ध्यान रखा, इसके लिए मैंने उसे धन्यवाद दिया, वह पुस्तक पढ़ने का वचन दिया और उसे अपनी चीज़ों में रख दिया, और फिर वह कभी मेरे हाथ न आई। महीनों गुजर गए और कभी-कभी मैंने उस पुस्तक को पढ़ने की बात सोची, पर उसे ढूढ़ने की सब कोशिशें बेकार गईं। छः महीने बाद मेरी प्यारी मां, जो कुछ दूरी पर रहती थीं, बीमार पड़ीं। उसकी हालत खराब हो गई, और मेरी पत्नी अपनी सास की सेवा करने के लिए चली गई। बीमारी गम्भीर होने से मेरी पत्नी को अपने श्रेष्ठ गुण दिखाने का मौका मिला। एक दिन शाम को मैं अपनी पत्नी के प्रति उत्साह और कृतज्ञता से भरा हुआ घर आया। मैं अपनी मेज़ के पास पहुंचा, और मैंने बिना किसी निश्चित आशय के, बल्कि एक तरह की नीद भरी निश्चितता से उसकी एक दराज़ खोली और वहां मेरे सामने वही खोई हुई पुस्तक रखी थी जिसे मैं इतनी बार तलाश कर चुका था।"

प्रवर्त्तक अथवा प्रेरक कारण[1] के लुप्त हो जाने पर, रखकर भूली हुई पुस्तक खोजने की अयोग्यता भी लुप्त हो गई।

मैं इस तरह के सैकड़ों उदाहरण दे सकता हूं पर अब ये नहीं दूंगा। मेरी **साइकोपैथोलोजी ऑफ़ एवरी डे लाइफ** (Psycho-pathology of Everyday Life) (जो पहले १९०१ में प्रकाशित हुई थी) में ग़लतियों के अध्ययन के लिए बहुत सारे उदाहरण मिलेंगे। इन सब उदाहरणों से वही बात बार-बार सामने आती है। उससे आपको यह सम्भाव्य मालूम होने लगता है कि भूलों का कुछ अर्थ होता है, और वे आपको यह बताती हैं कि साथ की परिस्थितियों में किस तरह अर्थ का अनुमान या पुष्टि की जा सकती है। आज मैं अधिक विस्तृत बातों में नहीं जा रहा क्योंकि यहां हमारा आशय सिर्फ़ इतना था कि हम मनोविश्लेषण का परिचय प्राप्त करने की दृष्टि से इन घटनाओं पर विचार करें। सिर्फ़ दो घटना-समूह और हैं जिनपर मुझे अभी कुछ कहना है—संचित और मिली-जुली ग़लतियां, और बाद की घटनाओं से हमारी व्याख्याओं की पुष्टि।

संचित और मिली-जुली ग़लतियां निश्चित ही सबसे बढ़िया किस्म की ग़लतियां हैं। यदि हमें सिर्फ़ इतना ही सिद्ध करना होता कि ग़लतियों का कुछ अर्थ होता है, तो हम शुरू में उतने तक ही रहते, क्योंकि उनका कुछ अर्थ होने की बात बुद्धू से

---

१. Motive.

बुद्धू भी समझ सकता है, और बड़े तीव्र बुद्धि आलोचक को भी उसे मानना पड़ता है। घटनाओं के दोहराये जाने से एक ऐसे आग्रह का पता चलता है जो कभी अकस्मात् या अचानक नहीं हो सकता, बल्कि जिसके पीछे कोई विचार होने की बात ही जंचती है। फिर, एक तरह की भूल के स्थान पर दूसरी तरह की भूल होने से हमें यह पता चलता है कि गलती में सबसे महत्वपूर्ण और आवश्यक तत्व क्या है; और वह न तो ग़लती का बाह्य रूप है, और न वह साधन है जिसके द्वारा यह प्रकट होता है, बल्कि वह **प्रवृत्ति** है जो इसका उपयोग करती है, और बड़े भिन्न-भिन्न तरीकों से अपना लक्ष्य सिद्ध कर सकती है। इस प्रकार मैं आपको बार-बार भूलने का एक उदाहरण दूंगा। अर्नेस्ट जोन्स लिखता है, "मैंने एक बार एक पत्र किसी अज्ञात कारण से कई दिन तक अपनी मेज पर पड़ा रहने दिया। अन्त में मैंने इसे डाक में डालने का निश्चय किया, पर यह मृत पत्र कार्यालय से लौटकर आ गया, क्योंकि मैं इसपर पता लिखना भूल गया था। इसपर पता लिखने के बाद मैं इसे डाक में डालने गया, पर इस बार टिकट लगाना भूल गया। अब मुझे अपने मन में यह मानना पड़ा कि असल में मैं उस पत्र को बिल्कुल भेजना ही नहीं चाहता था।"

दूसरे उदाहरण में, भूल से कोई चीज़ उठा लेना और उसे कहीं रखकर भूल जाना, ये दो बातें जुड़ी हुई हैं। एक महिला अपने बहनोई के साथ, जो एक प्रसिद्ध कलाकार था, रोम गई। उसका रोम में रहने वाले जर्मनों ने बड़ा स्वागत किया, और उसे भेंट में, और वस्तुओं के साथ, एक पुराना सोने का तमगा भी दिया। उस महिला को इस बात से बड़ी परेशानी हुई कि उसके बहनोई ने उस बढ़िया चीज़ को बहुत ज्यादा पसन्द नही किया। अपनी बहिन के आ जाने के बाद वह स्वदेश लौट गई, और वहां अपना सामान खोलने पर उसने देखा कि वह उस तमगे को अपने साथ ले आई थी—कैसे ले आई थी, यह उसे पता नही था। उसने तुरन्त अपने बहनोई को पत्र लिखा कि अगले दिन मैं वह चुराई हुई वस्तु वापस भेज दूगी। पर अगले दिन वह तमगा ऐसी चतुराई से कहीं रखकर भुला दिया गया कि वह हाथ ही नही आ सका, और वापस नहीं किया जा सका, और तब उस महिला के मन में यह बात आनी शुरू हुई कि उसकी अन्यमनस्कता, अर्थात् ध्यान कही और होने, का कुछ अर्थ था, और वह यह था कि वह उस कलाकृति को अपने ही पास रखना चाहती थी।[१]

भुलक्कड़पन और ग़लती के मिल जाने का एक उदाहरण मैं आपको पहले दे चुका हूं, जिसमें एक आदमी किसी सभा का नियत समय भूल जाता है, और दूसरी बार, जब वह इसे न भूलने का पक्का इरादा कर लेता है, तब वह नियत समय के बाद पहुंचता है। बिलकुल इसी तरह का एक उदाहरण मुझे एक मित्र ने, जो

---

१. R. Reitler से।

साहित्य और विज्ञान का विद्वान् है, अपने निजी अनुभव से बताया था। उसने कहा, "कुछ वर्ष पहले मैंने एक साहित्यिक समाज की परिषद के लिए चुना जाना स्वीकार कर लिया, क्योंकि मुझे यह आशा थी कि किसी समय मेरे लिए वह समाज इस तरह उपयोगी हो सकता है कि वह मेरा नाटक खेलने का प्रबन्ध कर दे, और बहुत ही दिलचस्पी न होते हुए भी मैं नियमित रूप से हर शुक्रवार उसकी बैठक में जाया करता था। कुछ महीने पहले मुझे यह आश्वासन मिल गया कि मेरा नाटक **फ** में एक थियेटर में खेला जाएगा और तब से सदा ऐसा हुआ है कि मैं उस समाज की बैठकों में जाना **भूल जाता हूं**। जब मैंने इस विषय में आपके लेख पढ़े, तब मुझे अपनी इस क्षुद्रता पर ग्लानि हुई कि अब इन लोगों को अपने लिए उपयोगी न जानकर मैंने बैठकों में जाना छोड़ दिया है, और मैंने पक्का निश्चय कर लिया कि अगले शुक्रवार को मैं किसी भी सूरत में नहीं भूलूंगा। मैं अपने इरादे को याद करता रहा, और अन्त में मैंने उसे पूरा किया, और मैं सभा भवन के दरवाजे पर जा पहुंचा। मैंने आश्चर्य से देखा कि दरवाजा बन्द था, और बैठक पहले ही खत्म हो चुकी थी। मैंने सप्ताह के दिन के बारे में भूलकर डाली थी, और उस दिन शनिवार था।"

इस तरह के उदाहरण बहुत-से इकट्ठे किए जा सकते हैं, पर अब मैं आगे चलूंगा और इनके बदले आपको उन उदाहरणों पर विचार करने का मौका दूंगा जिनमें अर्थ की पुष्टि भविष्य में होने की प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

इन उदाहरणों में मुख्य शर्त, जैसी हमें आशा भी करनी चाहिए, यह है कि उस समय मानसिक स्थिति पता नहीं है, या पता नही लगाई जा सकती। इसलिए उस समय हमारा अर्थ एक कल्पना मात्र है, जिसे हम स्वयं भी बहुत अधिक महत्व नहीं देंगे; परन्तु बाद में कोई ऐसी बात हो जाती है जिससे हमें पता चलता है कि हमने जो अर्थ पहले समझा था, वह कितना उचित था। एक बार मैं एक तरुण विवाहित दम्पति का अतिथि बना। तरुण पत्नी ने हंसते हुए अपना हाल का यह अनुभव सुनाया कि सुहागरात या हनीमून से लौटने के अगले दिन मैंने अपनी बहिन को बुलाया था, और पहले की तरह उसके साथ सामान खरीदने बाजार गई थी, और मेरा पति अपने कारबार के लिए चला गया था। एकाएक मैंने सड़क के दूसरी ओर एक आदमी देखा और अपनी बहिन को दिखाते हुए कहा, "देखो, वे **क** महाशय जा रहे हैं।" वह यह भूल गई थी कि यह आदमी कुछ सप्ताह पहले उसका पति बन चुका था। यह किस्सा सुनकर मैं कांप गया, पर मुझे भीतरी बात का अनुमान करने का साहस न हुआ। कई वर्ष बाद यह छोटी-सी घटना फिर मेरे मन में उस समय आई जब उस विवाह का बहुत दुःखद अन्त हो चुका था।

मेडर ने एक ऐसी महिला की कहानी बताई जो विवाह से पहले दिन अपनी विवाह की पोशाक की ट्राई देना भूल गई थी, जिससे दर्जी बड़ा निराश हुआ था,

और महिला को शाम को बहुत देर से इसकी याद आई। उसने इस बात का सम्बन्ध इस तथ्य से जोड़ा है कि विवाह के कुछ ही समय बाद उसके पति ने उसे तलाक दे दिया। मैं एक ऐसी स्त्री को जानता हूं जिसका अब तो अपने पति से तलाक हो चुका है, पर जो अपने रुपये-पैसों के मामलों में बहुत बार अपने अविवाहित अवस्था वाले नाम से ही कागज़ात पर हस्ताक्षर किया करती थी, यद्यपि उसने इसके बहुत वर्ष बाद अपना कुमारावस्था का नाम असल में अपनाया। मैं कुछ और ऐसी स्त्रियों को भी जानता हूं जिनके विवाह की अंगूठियां सुहागरात के दिनों में खो गईं और यह भी जानता हूं कि विवाह होने तक की बातें इस घटना के पीछे थीं। अब एक और विशेष उदाहरण लीजिए, जिसका अंत सुखद हुआ। एक प्रसिद्ध जर्मन रसायन-शास्त्री के विषय में कहा जाता है कि उसका विवाह इस कारण कभी न हो सका क्योंकि वह संस्कार का समय भूल जाता था, और चर्च पहुंचने के बजाय प्रयोगशाला पहुंच जाता था। वह समझदार था, इसलिए एक बार प्रयत्न करके ही उसने हाथ खींच लिया और बहुत बड़ी उम्र में अविवाहित ही मरा।

शायद आपके मन में भी यह बात आई है कि इन उदाहरणों मे पुराने ज़माने के शकुनों या अपशकुनों के स्थान पर भूलें आ गई मालूम होती है, और सचमुच अपशकुनों के कुछ प्रकार गलतियों के सिवाय कुछ नहीं थे; जैसे उदाहरण के लिए जब कोई आदमी ठोकर खा जाता था, या गिर पड़ता था। यह ठीक है कि कुछ शकुन मनुष्य के आत्मनिष्ठ कार्य होने के बजाय, वस्तुनिष्ठ घटनाओं के रूप वाले होते थे, पर आप विश्वास नही करेंगे कि कभी-कभी यह फैसला करना कितना कठिन होता है कि कोई विशेष उदाहरण पहले वर्ग में आता है या दूसरे में। प्रायः कार्य यह जानता है कि अपने आपको स्वयं-भावी, या निष्क्रिय अनुभव के रूप में कैसे पेश किया जाए।

हममें से जो लोग अपने जीवन के पिछले काफ़ी लम्बे अनुभव का विचार कर सकते है, उनमें से हरेक सम्भवतः यही कहेगा कि यदि हमें दूसरों के साथ व्यवहार में दिखाई देने वाली छोटी-छोटी भूलों को अपशकुन समझने का, और उन्हें अंदर छिपी हुई प्रवृत्तियों के चिन्ह समझने का साहस और संकल्प होता, तो हम बहुत-सी निराशाओं और कष्टदायक आश्चर्यों से बच गए होते। अधिकतर अवसरों पर मनुष्य को ऐसा करने का साहस नही होता। वह सोचता है कि मैं इस टेढ़े-मेढ़े वैज्ञानिक रास्ते से फिर अन्धविश्वासी हो जाऊंगा; और फिर, सब शकुन सच्चे भी नहीं होते, और हमारे सिद्धान्तों से आपको पता चलेगा कि उन सबका सच्चा होना किस तरह जरूरी भी नहीं है।

व्याख्यान | ४

ग़लतियों का मनोविज्ञान

यहां तक हमने जो प्रयत्न किए हैं, उनसे यह बात तो निश्चित रूप से सिद्ध हो गई मानी जा सकती है कि ग़लतियों का अर्थ होता है, और अपनी आगे की जांच के लिए इस निष्कर्ष को हम अपना आधार बना सकते हैं। मैं एक बार इस तथ्य पर फिर बल देना चाहता हूं कि हमारी यह मान्यता नहीं है--और अपने प्रयोजनों के लिए हमें इस मान्यता की आवश्यकता भी नहीं--कि जो भी भूल होती है उसका अर्थ होता है, हालांकि मैं इसे सम्भाव्य समझता हूं। हमारे लिए इतना सिद्ध करना ही काफ़ी है कि विभिन्न प्रकार की ग़लतियों में बहुत बार इस तरह का अर्थ होता है। इस सिलसिले में मैं यह बात भी बता दूं कि विभिन्न प्रकार की गलतियों में कुछ अन्तर दिखाई देते हैं। बोलने की, लिखने की, और इसी तरह की अन्य कुछ गलतियां शुद्ध रूप से कायिकीय कारण का परिणाम हो सकती हैं, हालांकि मैं उन ग़लतियों के बारे में इस बात को सम्भव नही मान सकता जो भुलक्कड़पन (नामों या आशयों का भूल जाना, चीज़ रखकर भूल जाना आदि) पर निर्भर है; यही अधिक सम्भाव्य है कि कुछ अवस्थाओं में सामान खो जाने को बिना आशय की घटना माना जाए; कुल मिलाकर हमारे विचार दैनिक जीवन में होने वाली भूलों पर एक निश्चित सीमा तक ही लागू हो सकते हैं। जब हम यह मानकर आगे चलते हैं कि ग़लतियां दो आशयों के आपसी संघर्ष से पैदा होने वाले मानसिक कार्य हैं, तब आपको इन सीमाओं का मन में ध्यान रखना चाहिए।

यह हमारे मनोविश्लेषण का पहला परिणाम है। अब तक मनोविज्ञान को ऐसे संघर्षों का, या इस संभावना का कि वे संघर्ष इस तरह के रूपों में दिखाई दे सकते हैं, कुछ पता नहीं था। हमने मानसिक घटनाओं के क्षेत्र को बहुत अधिक विस्तृत कर दिया है, और ऐसी घटनाओं का भी मनोवैज्ञानिक आधार सिद्ध कर दिया है जिनको पहले कभी मनोवैज्ञानिक नही माना गया।

अब ज़रा देर इस कथन पर विचार कीजिए कि ग़लतियां 'मानसिक कार्य' हैं। क्या इस बात का हमारे पहले वाले कथन से--कि उनका कुछ अर्थ होता है--अधिक

मतलब है ? मैं ऐसा नहीं समझता; इसके विपरीत, यह अधिक अनिश्चित कथन है, और इसमें ग़लतफ़हमी की अधिक गुंजायश है। मानसिक जीवन में दिखाई देने-वाली प्रत्येक चीज़ को किसी न किसी समय एक मानसिक घटना कहा जाएगा, परन्तु यह इस बात पर निर्भर है कि कोई विशेष मानसिक घटना सीधे रूप से शारीरिक या ऐन्द्रियक या भौतिक कारणों से पैदा होती है--इस अवस्था में इसकी जांच का काम मनोविज्ञान का नहीं है, अथवा यह सीधे अन्य मानसिक प्रक्रमों से पैदा हुई है, जिनके पीछे किसी जगह ऐन्द्रियक कारणों का सिलसिला शुरू होता है। जब हम किसी घटना को मानसिक प्रक्रम कहते हैं, तब हमारा आशय इस दूसरी अवस्था से ही होता है और इसलिए अपने कथन को इस रूप में पेश करना अधिक अच्छा होगा : घटना का अर्थ होता है, और अर्थ से हमारा मतलब है सार्थकता, आशय, प्रवृत्ति, और मानसिक कड़ियों की शृंखला में एक स्थान।

घटनाओं का एक और समूह है जिसका ग़लतियों से बड़ा नजदीकी संबंध है, और जिसके लिए यह नाम उपयुक्त नहीं। हम उन्हें 'आकस्मिक' और लक्षण सूचक कार्य कहते हैं। वे भी बिना किसी प्रवर्त्तक या प्रेरक कारण के होने वाले, अर्थहीन, और महत्वहीन कार्य प्रतीत होते हैं, पर इसके साथ-साथ उनमें स्पष्ट रूप से 'अनावश्यक' होने की विशेषता होती है। एक ओर तो वे ग़लतियों से अलग पहचाने जाते हैं, क्योंकि उनमें ऐसा कोई दूसरा आशय नहीं होता जिसका वे विरोध करते हों, या जिसे वे बाधित करते हों; दूसरी ओर, वे उन हाव-भावों और चेष्टाओं में बिना किसी निश्चित भेदक सीमा के आ जाते हैं, जिन्हें हम भावों की अभिव्यक्तियां मानते हैं। आकस्मिक घटनाओं के इस वर्ग में ऊपर से निष्प्रयोजन दीखनेवाले सब कार्य आ जाते हैं, जो हम कपड़ों से, शरीर के अंगों से और अपनी पकड़ में आने वाली वस्तुओं से मानो खेल-खेल में किया करते हैं। ऐसे कार्यों का लोप भी, और वे स्वर-लहरियां भी, जो हम आप से आप गुनगुनाया करते हैं, इसीके अन्तर्गत आते हैं। मेरा यह कहना है कि ऐसे सब कार्यों का अर्थ होता है, और उनकी उसी तरह व्याख्या की जा सकती है जैसे गलतियों की, अर्थात् यह कि वे अधिक महत्वपूर्ण मानसिक कार्यों के हलके संकेत हैं, और सही रूप में मानसिक कार्य हैं। पर अब मैं मानसिक घटनाओं के क्षेत्र के और अधिक विस्तार पर अधिक समय न लगाकर फिर ग़लतियों पर आता हूं, क्योंकि उनपर विचार करने से मनोविश्लेषण विषयक जांच-पड़ताल की महत्वपूर्ण समस्याओं को अधिक स्पष्ट रीति से हल किया जा सकता है।

ग़लतियों पर विचार करते हुए हमने जो सबसे अधिक मनोरंजक प्रश्न बनाए थे और जिनका अब तक उत्तर नहीं दिया गया वे, निःसंदेह, ये हैं : हमने कहा था कि ग़लतियां दो भिन्न आशयों के आपसी संघर्ष या बाधन[1] से पैदा होती हैं, जिनमें

१. Interference.

से एक को बाधित आशय और दूसरे को बाधक प्रवृत्ति कहा जा सकता है। बाधित आशयों से कोई और प्रश्न नहीं पैदा होता, पर बाधक प्रवृत्तियों के विषय में हम प्रथम तो यह जानना चाहते हैं कि दूसरों के बाधक के रूप में पैदा होनेवाले ये आशय किस प्रकार के हैं, और दूसरे, बाधक प्रवृत्तियों और बाधित प्रवृत्तियों में क्या सम्बन्ध है।

मैं सब तरह की ग़लतियों के प्रतिनिधि के रूप में, फिर, बोलने की ही ग़लतियों को लूंगा, और दूसरे प्रश्न का पहले उत्तर दूंगा।

बोलने की ग़लती में बाधक प्रवृत्ति, अर्थ में, बाधित आशय से सम्बन्धित हो सकती है—इस अवस्था में या तो पहली प्रवृत्ति दूसरी प्रवृत्ति का खण्डन करती है, या उसे शुद्ध करती है, या उसकी पूरक है। अथवा, दूसरे अधिक अस्पष्ट और अधिक मनोरंजक उदाहरणों में यह हो सकता है कि बाधक प्रवृत्ति का, अर्थ में, बाधित आशय से कुछ भी सम्बन्ध न हो।

इन सम्बन्धों में से पहले का प्रमाण अब तक बताए गए उदाहरणों, और उन जैसे दूसरे उदाहरणों, में आसानी से मिल सकता है। बोलने की ग़लती के प्रायः सब उदाहरणों में, जिनमें असली आशय से उलटी बात कही जाती है, बाधक प्रवृत्ति बाधित आशय से उलटा अर्थ प्रकट करती है, और वह गलती दो असंगत आवेगों के बीच संघर्ष की सूचना है। "मैं बैठक के उद्घाटन की घोषणा करता हूं, पर इसे बन्द कर देना ज्यादा अच्छा समझता हूं"—अध्यक्ष की गलती का यह अर्थ है। एक राजनैतिक अखबार जिसपर भ्रष्टाचार का दोष लगाया गया था, एक लेख में अपनी सफ़ाई देता है, जिसको इन शब्दों से समाप्त किया जाना था : "हमारे पाठक इस बात का सबूत हैं कि हमने सदा जन-हित के लिए अधिक से अधिक **निःस्वार्थ** रीति से मेहनत की है।" पर जिस सम्पादक को सफ़ाई लिखने का काम सौंपा गया था, उसने लिखा : "अधिक से अधिक **स्वार्थी** रीति से।" यह कहा जा सकता है कि वह सोचता है : 'मुझे यह बात लिखनी है पर मैं असलियत को अच्छी तरह जानता हूं।' जनता के एक प्रतिनिधि को यह कहते हुए कि हमें कैसर से 'Riick haltslos' (निःसंकोच रूप से) सच्ची बात कह देनी चाहिए, अपने दुःसाहस पर भय पैदा होता है और एक आंतरिक पुकार सुनाई देती है, और वह बोलने की ग़लतियों से Riick haltslos को बदल कर 'Riick gratslos' (निष्फल रूप से) बोल जाता है।

ऊपर दिए गए उदाहरणों में, जिनमें शब्द या वाक्य के सिकुड़ जाने और संक्षिप्त हो जाने का प्रभाव पैदा होता है, शोधन या सही करने, कुछ जोड़ देने या जारी रहने का क्रम होता है, जिसमें दूसरी प्रवृत्ति पहली के साथ-साथ दिखाई देती है। "तब बातें **रिवील** (अर्थात् प्रकट) हुईं, परंतु सीधे कहा जाए तो **फिल्दी** (अर्थात् भद्दी या गंदी) थीं, इसलिए बातें **रिफिल्ड** (रि[वील] + फिल[दी] +

ड) हुईं ।" "जो लोग इस विषय को समझते हैं, वे एक हाथ की उंगलियों पर गिने जा सकते हैं, पर नहीं, असल में इस विषय को समझने वाला सिर्फ़ एक व्यक्ति है, इसलिए ठीक ही है कि वह **एक उंगली** पर गिना जा सकता है"; या "मेरा पति जो कुछ चाहे, खा-पी सकता है, पर आप जानते हैं कि मैं उसे उसकी मनचाही चीज़ नहीं चाहने देती; इसलिए वह वही चीज़ें खा-पी सकता है जो **मैं** चाहूं ।" इन सब अवस्थाओं में ग़लती बाधित आशय की वस्तु से पैदा होती है, या उससे सीधा संबंध रखती है ।

दो बाधाकारक प्रवृत्तियों में दूसरे प्रकार का संबंध विचित्र मालूम होता है । यदि बाधक प्रवृत्ति का बाधित प्रवृत्ति की वस्तु से कोई संबंध नहीं है, तो वह कहां से आती है, और यह ठीक उसी स्थान पर क्यों प्रकट होती है ? प्रेक्षण[1] से ही इसका उत्तर मिल सकता है, और उससे पता चलता है कि बाधक प्रवृत्ति उस विचार-शृंखला से पैदा होती है जो उस व्यक्ति के मन में कुछ देर पहले चल रही थी, और वह बाद में इस प्रकार प्रकट हो जाती है, चाहे वह पहले भाषण में प्रकट हुई हो या न हुई हो । इसलिए असल में इसे निरर्थकावृत्ति ही कहा जा सकता है, हालांकि यह आवश्यक नहीं कि यह बोले गए शब्दों की ही निरर्थकावृत्ति हो । यहां भी बाधक प्रवृत्ति और बाधित प्रवृत्ति में साहचर्य जनित संबंध का अभाव नहीं है, हालांकि यह वस्तु में नहीं है, बल्कि कृत्रिम रूप से स्थापित किया जाता है, और कई बार इसके लिए संबंध बहुत 'खींच-तान' करके जोड़ा जाता है ।

इसका एक सरल उदाहरण देता हूं जो मैंने स्वयं देखा था । एक बार सुन्दर डोलोमाइट्स में वियेना की दो महिलाओं से मेरी भेंट हुई जो एक पैदल यात्रा पर रवाना हो रही थीं । मैं कुछ दूर उनके साथ गया, और हमने इस तरह के जीवन के सुखों पर तथा कठिनाइयों पर भी बातचीत की । एक महिला ने स्वीकार किया कि इस तरह दिन बिताने में बड़ी असुविधा मालूम होती है । "सारे दिन धूप में चलते रहना निश्चित ही बड़ा कष्टकारक है जिसमें ब्लाउज·····तथा वस्तुएं बिल्कुल भीग जाती हैं ।" इस वाक्य में उसे एक स्थान पर थोड़ी दुविधा हुई थी । इसके बाद वह कहती गई । "पर जब आदमी **नैक होस** (nach Hose) पहुंच जाता है, और कपड़े बदल सकता है···" । (**होस** का अर्थ है **पेटीकोट** : वह महिला **नैक होस** कहना चाहती थी जिसका अर्थ है **घर**) । हमने इस गलती का विश्लेषण नहीं किया पर मुझे विश्वास है कि आप इसे आसानी से समझ जाएंगे । महिला अपने कपड़ों की पूरी सूची गिनाना चाहती थी, 'ब्लाउज, शमीज, और पेटीकोट ।' औचित्य की रक्षा के लिए उसने पेटीकोट (होस) का ज़िक्र छोड़ दिया; पर अगले वाक्य में, जिसकी अर्थवस्तु सर्वथा स्वतंत्र है, वह छोड़ा गया शब्द ध्वनि में मिलते-

१. Observation.

जुलते दूसरे शब्द **घर** (हौस) की विकृति के रूप में जबान से निकल पड़ा।

अब हम मुख्य प्रश्न पर आ सकते हैं, जिसे हम अब तक टालते आए हैं, और वह यह है कि ये प्रवृत्तियां, जो इस तरह दूसरे आशयों को बाधित करके अजीब रीति से सामने आती हैं, किस तरह की होती हैं। स्पष्टतः वे अनेक प्रकार की होती हैं, पर हमें ऐसा तत्व खोजना है जो उन सबमें रहता हो। यदि इस काम के लिए हम कुछ उदाहरणों पर विचार करें तो हमें शीघ्र ही मालूम हो जाएगा कि वे तीन समूहों में आते हैं। **पहले** समूह में वे उदाहरण आते हैं जिनमें **बाधाकारक** प्रवृत्ति का वक्ता को ज्ञान है, और इसके अलावा ग़लती करने से पहले उसने उसे अनुभव किया था। इस प्रकार 'रिफिल्ड' की ग़लती में, वक्ता ने न केवल यह स्वीकार किया कि उसने प्रस्तुत घटनाओं को **'फिल्दी'** कहकर उनकी आलोचना की थी, बल्कि यह भी स्वीकार किया कि उसका आशय इस राय को शब्दों में प्रकट करने का था, पर उसने बाद में इस आशय को बदल लिया। **दूसरे** समूह में वे उदाहरण आते हैं जिनमें बाधाकारक प्रवृत्ति को वक्ता अपनी प्रवृत्ति मानता है, पर उसे यह पता नहीं है कि ग़लती करने से पहले उसके भीतर वह प्रवृत्ति प्रबल थी। इसलिए वह हमारे बताए गए अर्थ को मान लेता है, पर कुछ देर तक इसपर आश्चर्य करता रहता है। इस तरह के प्रवृत्ति के उदाहरण बोलने की ग़लतियों की अपेक्षा शायद अन्य ग़लतियों में अधिक आसानी से मिल जाएंगे। **तीसरे** समूह में, बाधक प्रवृत्ति का वक्ता द्वारा ज़ोर-शोर से खंडन किया जाता है; वह इसका ही खंडन नहीं करता कि ग़लती से पहले यह प्रवृत्ति उसमें प्रबल थी, बल्कि वह यह भी कहता है कि यह प्रवृत्ति कभी मेरे पास तक नही फटकी। **हिकफ** वाला मामला, तथा वह निश्चित रूप से अभद्र तिरस्कार याद कीजिए जो मैंने बाधक प्रवृत्ति का पता लगाकर अपने सिर लिया था। आप जानते हैं कि इन उदाहरणों के विषय में आपका और मेरा कोई समझौता नहीं हो सका। मैं भोजन के बाद वाले वक्ता के खण्डन के बारे में अपने अर्थ पर अटल हूं, जबकि आप, मेरा ख्याल है, उसकी प्रबलता से अब भी प्रभावित हैं, और शायद यह सोच रहे हैं कि क्या ऐसी ग़लतियों का अर्थ न लगाना और उन्हें शुद्ध रूप से कायिकीय कार्य समझकर छोड़ देना उचित नहीं होगा, जैसा कि विश्लेषण से पहले के दिनों में किया जाता था। आप किस बात से भयभीत हैं, यह मैं कल्पना कर सकता हूं। मैंने जो अर्थ लगाया है, उसमें यह कल्पना भी आ जाती है कि जिन प्रवृत्तियों के बारे में वक्ता कुछ नहीं जानता, वे भी उसमें प्रकट हो सकती हैं, और कि मैं अनेक संकेतों से उन्हें सिद्ध कर सकता हूं। आपको ऐसे नए निष्कर्ष पर पहुंचने में संकोच होता है, जिसके बाद में बहुत-से परिणाम हो सकते हैं। मैं इस बात को समझता हूं और मानता हूंकि कुछ दूर तक आपका संकोच उचित है परन्तु एक बात स्पष्ट हो जानी चाहिए, यदि आप ग़लतियों के सम्बन्ध में उस विचार को, जिसकी इतने सारे उदाहरणों से पुष्टि हो गई है, उसके

अन्तिम तार्किक निष्कर्ष तक पहुंचाना चाहते हैं, तो आपको यह चौंकाने वाली कल्पना स्वीकार करनी होगी। यदि आप ऐसा नहीं कर सकते तो आपको ग़लतियों को समझने का काम, जो अभी आपने शुरू ही किया है, छोड़ देना होगा।

ज़रा उस बात पर विचार कीजिए जो तीनों समूहों को जोड़ती है, और बोलने की ग़लती के तीनों तन्त्रों में एक-सी है। सौभाग्य से यह सामान्य अंश बिल्कुल स्पष्ट है। पहले दो समूहों में वक्ता बाधाकारक प्रवृत्ति का अस्तित्व मानता है; पहले समूह में इतनी बात और भी है कि वह प्रवृत्ति ग़लती से ठीक पहले दिखाई दी थी, पर पिछली दोनों अवस्थाओं में **इसे पीछे धकेल दिया गया है। वक्ता ने उस विचार को न बोलने का पक्का इरादा किया हुआ था, और फिर ऐसा होता है कि वह बोलने की ग़लती कर जाता है; मतलब यह हुआ कि जिस प्रवृत्ति को बाहर आने से रोका गया है, वह उसकी इच्छा के विरुद्ध बल लगा है, और मुंह से निकलती है–या तो वह वक्ता द्वारा प्रकट किए जा रहे आशय की अभिव्यक्ति को बदलकर या उसमें मिलकर या स्वयं उसके स्थान पर आकर प्रकट होती है। यही बोलने की ग़लती का तन्त्र या प्रक्रिया है।**

जहां तक मेरा सवाल है, मैं तीसरे समूह में भी उपर्युक्त प्रतिक्रिया को बिल्कुल ठीक बिठा सकता हूं। मुझे सिर्फ़ इतना मान लेना होगा कि इन तीनों समूहों में इतना ही अन्तर है कि किसीमें आशय को पीछे धकेलने में कम सफलता हुई है और किसीमें अधिक। पहले समूह में आशय मौजूद है, और शब्द बोले जाने से पहले सामने आ जाता है। तब तक इसे पीछे नहीं धकेला गया है, और धकेले जाने की भरपाई यह ग़लती में कर लेता है। दूसरे समूह में आशय और भी पीछे धकेल दिया जाता है; उसका भाषण से पहले भी कहीं पता नहीं चलता। यह उल्लेखनीय बात है कि पीछे धकेले जाने से उसके ग़लती का सक्रिय कारण होने में ज़रा भी रुकावट नहीं होती। पर यह अवस्था तीसरे समूह में इस प्रक्रम की व्याख्या को सरल बना देती है। यह कल्पना करना साहस का काम है कि कोई प्रवृत्ति तब भी ग़लती के रूप में प्रकट हो सकती है जब उसे बहुत दिनों तक, बहुत ही दिनों तक, प्रकट होने से रोके रखा गया हो, वह ज़रा भी दिखाई न दी हो, और इसलिए वक्ता सीधे तौर से उसका खण्डन कर सकता है। पर तीसरे समूह के सवाल को एक ओर छोड़कर अन्य उदाहरणों से **आप इस नतीजे पर पहुंचते हैं, कि बोलने की ग़लती होने की यह अपरिहार्य शर्त है कि कोई बात कहने के आशय को पहले निगृहीत या अवरुद्ध[1] किया गया हो। (अर्थात् दबाया गया हो।)**

अब हम यह कह सकते हैं कि ग़लतियों को समझने में हम कुछ आगे बढ़े हैं। हम यह जानते हैं कि वे मानसिक घटनाएं हैं; जिसमें अर्थ और प्रयोजन पहचाने जा

---

१. Suppression.

सकते हैं,हम यह भी जानते हैं कि वे दो भिन्न आशयों के परस्पर बाधन या संघर्ष से पैदा होती हैं, और इसके अतिरिक्त हम यह भी जानते हैं कि इनमें से कोई आशय दूसरे को बाधित करके तभी प्रकट हो सकता है, जब इसे स्वयं अपनी गति में कोई बाधा या रुकावट सहनी पड़ी हो। दूसरों को बाधित करने से पहले यह स्वयं किसी तरह बाधित किया गया होना चाहिए।स्वभावतःइससे हमें उन घटनाओं की पूरी व्याख्या नहीं प्राप्त होती, जिन्हें हम ग़लतियां कहते हैं। हम देखते हैं कि तुरन्त और सवाल पैदा हो जाते हैं, और साधारणतया हमें यह शंका होती है कि ज्यों-ज्यों हम इसे समझने की दिशा में आगे बढ़ेंगे, त्यों-त्यों नए प्रश्न पैदा होने के और अधिक मौके आएंगे; उदाहरण के लिए, हम पूछ सकते हैं कि यह मामला अधिक सरल रूप में क्यों नहीं चलता ? यदि मन में यह आशय है कि किसी प्रवृत्ति को पूरा होने देने के बजाय रोका जाए तो यह रोक सफल होनी चाहिए और उस प्रवृत्ति का कुछ भी रूप प्रकट नही होना चाहिए, अथवा वह रोक असफल होनी चाहिए और वह रोकी गई प्रवृत्ति पूरी तरह प्रकट होनी चाहिए। परन्तु ग़लतियां **समझौते** के रूप में होती है; वे दोनों आशयों की आंशिक सफलता और आंशिक विफलता को प्रकट करती है। अवांछित आशय न तो पूरी तरह रुकता है, और न सारे का सारा बाहर आ पाता है, यद्यपि कुछ उदाहरणों में यह आ भी जाता है। हम यह कल्पना कर सकते हैं कि ऐसे बाधाजनित (या समझौते वाले) रूप पैदा होने के लिए विशेष अवस्थाएं मौजूद होनी चाहिएं, पर यह हम अनुमान भी नहीं कर सकते कि वे किस तरह की हो सकती है। मैं यह नहीं समझता हूं कि हम ग़लतियों का और गहरा अध्ययन करके इन अज्ञात परिस्थितियों का पता लगा सकते हैं। पहले मानसिक जीवन के कुछ और गुप्त क्षेत्रों की पूरी तरह जांच करना ज़रूरी होगा। उनमें मिलने वाले सादृश्य ही हमें यह हौसला दे सकते है कि हम वे कल्पनाएं कर सकें जिनकी ग़लतियों के बारे में और अधिक सूक्ष्म स्पष्टीकरण के लिए आवश्यकता है। और एक बात और। हल्के संकेतों को लेकर आगे बढ़ना, जैसा कि हम इस क्षेत्र में सदा करते हैं, खतरे से खाली नहीं। एक मानसिक रोग कम्बीनेटरी पैरानोइआ[1] कहलाता है, जिसमें ऐसे छोटे संकेतों का उपयोग करने की आदत सीमा से बाहर हो जाती है, और स्वभावतः मेरा यह दावा नहीं है कि इस इस तरह के आधार पर निकाले गए नतीजे सारे सही होते हैं। इस खतरे से बचने के लिए हमें अपने परीक्षणों का क्षेत्र विस्तृत रखना चाहिए और मानसिक जीवन के बड़े विविध रूपों से एक जैसे प्रभाव इकट्ठे करने चाहिएं।

तो अब हम ग़लतियों का विश्लेषण यहीं छोड़ देते है, पर एक बात और है जो मैं आपके ध्यान में जमाना चाहता हूं। आप उस विधि को एक नमूने के रूप में

---

१. Combinatory Paranoia

ध्यान में रखें जिससे हमने इन घटनाओं पर विचार किया है। इन उदाहरणों से आप यह समझ सकते हैं कि हमारे मनोविज्ञान का लक्ष्य क्या है। हमारा प्रयोजन इतना ही नहीं है कि घटनाओं का सिर्फ़ वर्णन और वर्गीकरण कर दें, बल्कि हमें यह विचार भी करना है कि वे मन में दो बलों के संघर्ष से, किसी ध्येय की ओर जाने के लिए यत्नशील प्रवृत्तियों की अभिव्यक्तियों के रूप में, जो मिलकर या एक दूसरे के विरुद्ध कार्य कर रही हैं, पैदा हुई हैं। हम मानसिक घटनाओं की एक **गतिकीय अवधारणा**[1] प्राप्त करने की कोशिश कर रहे हैं। इस अवधारणा में जो प्रवृत्तियां हम सिर्फ़ अनुमान से जानते हैं, वे अधिक महत्वपूर्ण हैं और जो घटनाएं हम प्रत्यक्ष देखते हैं, वे कम महत्व की हैं।

तो अब हम ग़लतियों की और जांच-पड़ताल नही करेंगे, पर तब भी हम सारे क्षेत्र के विस्तार का विहगावलोकन कर सकते हैं, जिसमें वे चीजें भी आएंगी जिन्हें हम पहले जानते हैं, और उन बातों के चिह्न भी दिखाई देंगे जो नई हैं। ऐसा करते हुए हम पहले किया गया तीन समूहो वाला विभाजन क़ायम रखेंगे; बोलने की ग़लतिया और उन्ही जैसी दूसरी ग़लतियां, जैसे लिखने में, पढ़ने मे, या सुनने में होने वाली ग़लतिया, भूली हुई वस्तु (व्यक्तिवाचक नाम, विदेशी शब्द, संकल्प, संस्कार) के अनुसार उसके उपविभागों सहित भूल जाना और चीज़ कही रखकर भूल जाना, भूल से कोई और चीज़ उठा लेना और वस्तुएं खो देना। जहा तक भूलों से हमारा सम्बन्ध है, उनमें से कुछ को भूलने के शीर्षक के नीचे, और कुछ ग़लत किए गए कार्यों (ग़लत वस्तु उठा लेने आदि) के शीर्षक के नीचे रखा जाएगा।

हम बोलने की गलतियो पर पहले बड़े विस्तार से विचार कर चुके हैं। तो भी उसके विषय में कुछ और बात बाकी है। बोलने की गलतियों के साथ सम्बद्ध कुछ छोटी-छोटी भावनात्मक चेष्टाए होती हैं, जो बिलकुल निरर्थक नही होती। कोई भी यह नहीं समझना चाहता कि उसने बोलने में ग़लती की है। प्रायः स्वयं ग़लती करने पर मनुष्य उसे नही सुन पाता, पर दूसरा वह ग़लती करे तो वह हमारे कान से नहीं बच सकती। एक अर्थ में, बोलने की ग़लतियां छूत की बीमारी हैं, उनकी चर्चा करते हुए अपने को उनसे अछूता रखना आसान काम नही। छोटी से छोटी ग़लती का भी प्रेरक कारण पता लगा लेना कठिन नही है, यद्यपि इनसे छिपे हुए मानसिक प्रक्रमों पर कोई विशेष रोशनी नही पड़ती, उदाहरण के लिए, यदि कोई आदमी किसी शब्द पर गड़बड़ के कारण दीर्घ स्वर को ह्रस्व बोला जाता है, चाहे उसका प्रेरक कारण कैसा ही हो, तो इसके परिणामस्वरूप, वह शीघ्र ही किसी ह्रस्व स्वर को दीर्घ बोलेगा और पहली ग़लती से हुई कमी पूरी करने के लिए एक नई ग़लती करेगा। यही बात तब होती है जब कोई किसी संयुक्त स्वर

१. Dynamic Conception.

जैसे 'एइ' या 'ओइ' को अस्पष्ट रूप से और असावधानी से 'इ' की तरह बोल जाता है; वह बाद में 'इ' आने पर उसे 'एइ' या 'ओइ' बोलकर इसे शुद्ध करना चाहता है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि उसे श्रोता का ध्यान है, और मानो वह सुननेवाले को यह नहीं समझने देना चाहता कि मैं अपनी मातृभाषा बोलने के बारे में उदासीन हूं। दूसरी क्षतिपूरक विकृति से सुनने वाले का ध्यान पहली विकृति की ओर भी जाता है, और उसे यह निश्चय हो जाता है कि वक्ता का ध्यान भी उस ग़लती की ओर जा चुका है। सबसे अधिक होनेवाली, महत्वहीन और सरल ग़लतियां भाषण के दिलचस्पी रहित भागों में, शब्दों के सिकुड़ने या संक्षिप्त होने और पूर्वोच्चारणों के रूप में होती है। उदाहरण के लिए, किसी लम्बे वाक्य मे बोलने की ग़लतियां वैसी होंगी जिनमें अन्तिम आशयित शब्द किसी पहले वाले शब्द की ध्वनि पर असर डालता है। इससे हमपर यह असर पड़ता है कि वाक्य बोलने में कुछ अधैर्य था, और साधारणतया इससे यह संकेत मिलता है कि वह वाक्य या सारी बात बोलने का कुछ प्रतिरोध हो रहा है। इससे हम ऐसे सीमावर्ती उदाहरणो पर आ जाते है, जिनमें बोलने की ग़लती के विषय में मनोविश्लेषण वाली और सामान्य कार्यिकीय अवधारण के अन्तर मिलकर एक हो जाते है। हम यह कल्पना करते है कि उदाहरणों में बाधक प्रवृत्ति आशयित भाषण का विरोध कर रही है, पर वह अपनी उपस्थिति ही जाहिर कर सकती है, अपना निजी प्रयोजन नही। यह जो बाधा पैदा करती है, वह किसी ध्वनि-प्रभाव या साहचर्य के सम्बन्ध के बाद होती है, और इसे आशयित भाषण से ध्यान बढ़ानेवाली प्रवृत्ति माना जा सकता है, किन्तु इस घटना का सारतत्व न तो ध्यान-बंटाई है और न साहचर्यात्मक प्रवृत्ति है, जो सक्रिय हो गई है। इसका सारतत्व इस घटना से मिलनेवाला यह संकेत है कि आशयित भाषण को बाधा पहुंचाने वाला कोई और आशय मौजूद है, जिसके स्वरूप का पता इस उदाहरण में उसके परिणामों से नही चल सकता, जैसा कि बोलने की ग़लती से अधिक प्रमुख सब उदाहरणों में सम्भव होता है।

लिखने की ग़लतियां, जिनकी अब मैं चर्चा कर रहा हूं, अपने तन्त्र या प्रक्रिया की दृष्टि से बोलने की ग़लतियों से इतनी मिलती-जुलती होती ह कि उनसे किसी नए दृष्टिकोण की आशा नहीं की जा सकती। शायद इस समूह से हमारी जानकारी में थोड़ी वृद्धि हो जाने से हमें सन्तोष हो जाए। लिखने की उन ही आम तौर से होनेवाली छोटी-छोटी ग़लतियों, शब्दो के सिकुड़ जाने, बाद के शब्दों के--विशेष रूप से अन्तिम शब्दों के--पहले लिखे जाने से यह सूचित होता है कि लिखनेवाले को लिखने में दिलचस्पी नही है, और उसमें अधैर्य है। लिखने की ग़लतियों में बहुत मुख्य रूप से दीखनेवाली बातों से बाधक प्रवृत्ति के स्वरूप और आशय का पता भी चल जाता है। साधारणतया, यदि हमें किसी पत्र में लिखने की कोई ग़लती दिखाई दे, तो हम समझ जाते है कि लेखक का मन उस समय बिना बाधा के

कार्य नहीं कर रहा था। बात क्या थी, यह हमेशा निश्चित नहीं हो सकता। बोलने की ग़लतियों की तरह, लिखने की ग़लतियों पर भी स्वयं लिखनेवालों का ध्यान नहीं जाता। इस प्रसंग में निम्नलिखित बात बड़ी महत्वपूर्ण है। निस्संदेह कुछ लोगों को सदा अपना लिखा हुआ प्रत्येक पत्र भेजने से पहले दुबारा पढ़ने की आदत होती है। कुछ लोग ऐसा नहीं करते; पर यदि ये लोग कभी किसी पत्र को दुबारा पढ़ें तो उन्हें कोई न कोई महत्वपूर्ण ग़लती देखने और उसे सही करने का मौका सदा मिलता है। इसकी कैसे व्याख्या की जाए। यह तो कुछ ऐसा मालूम होता है, जैसे उन्हें पता था कि उन्होंने पत्र लिखने में कोई ग़लती की है। क्या हम सचमुच यह मान सकते हैं कि ऐसी बात थी ?

लिखने की ग़लतियों के व्यावहारिक महत्व के साथ एक मनोरंजक समस्या जुड़ी हुई है। आपको उस हत्यारे ह. का मामला याद होगा जिसने अपने आप को जीवाणुशास्त्री[1] बताकर वैज्ञानिक संस्थाओं से बड़े भयंकर रोगाणु-बीज प्राप्त कर लिए थे, पर उनका उपयोग उसने अपने से सम्बन्धित व्यक्तियों से इस बिल्कुल नए तरीके द्वारा पिण्ड छुड़ाने में किया। इस व्यक्ति ने एक बार एक वैज्ञानिक संस्था के अधिकारियों से शिकायत की कि मुझे भेजे गए रोगाणु-बीज प्रभावहीन थे, पर उसने लिखने में एक ग़लती कर दी; पत्र में यह लिखने के बजाय कि 'Mausen und Meerchweinchen' (चूहों और गिनी-पिगो) पर किए गए मेरे परीक्षणों में, उसने लिखा कि 'Menschen' (लोगों) पर किए गए मेरे परीक्षणों में—ये शब्द साफ़ पढ़े जाते थे। इस ग़लती की ओर उस संस्था के डाक्टरों का ध्यान भी गया, पर जहां तक मैं जानता हूं, उन्होंने इससे कोई नतीजा नही निकाला। अब आपका क्या विचार है ? क्या यह अच्छा नही होता कि डाक्टर उस ग़लती को उसकी अपराध-स्वीकृति मानते, और जांच शुरू कर देते, जिससे हत्यारे की हलचलें समय पर रोकी जा सकती ? इस उदाहरण में क्या यह उपेक्षा, जो असल में बड़ी महत्व-पूर्ण हो सकती थी, इसलिए नही की गई कि हमें ग़लतियो की अपनी अवधारणा के बारे में जानकारी नहीं थी। मैं कहता हूं कि लिखने की इस तरह की ग़लती से मेरे मन में निश्चय ही बड़ा सन्देह पैदा हो गया होता, पर इसे अपराध-स्वीकृति मानने के विरुद्ध एक महत्वपूर्ण आपत्ति है। यह मामला इतना सीधा नही है। लिखने की ग़लती निश्चित रूप से एक संकेत है, पर सिर्फ़ इसके आधार पर जांच करना उचित न होता। इससे यह बात सचमुच सामने आती है कि वह आदमी मनुष्यों को रोगाणुओं से प्रभावित करने की बात सोच रहा है, पर इससे यह बात निश्चित रूप से नहीं प्रकट होती कि यह विचार हानि पहुंचाने की कोई सुनिश्चित योजना है, या एक कल्पनामात्र है, जिसका व्यवहार में कोई महत्व नही। यह भी सम्भव है

१. Bacteriologist.

कि ऐसी ग़लती करनेवाला आदमी इस बात से इन्कार करे, और उसकी दृष्टि से उसका इन्कार करना ठीक ही होगा, कि उसके मन में कोई ऐसी कल्पना थी, और वह इस विचार को अपने से बिलकुल अपरिचित बतायेगा। बाद में, जब हम मानसिक यथार्थता और भौतिक यथार्थता के अन्तर पर विचार करेंगे, तब आप इन सम्भावनाओं को अधिक अच्छी तरह समझ सकेंगे। पर यह भी वैसा ही उदाहरण है, जिसमें बाद में ग़लती का ऐसा अर्थ निकल आया, जिसकी आशंका नहीं थी।

अप-पठन या ग़लत पढ़ जाना हमें एक ऐसी मानसिक स्थिति में पहुंचाता है, जो बोलने या लिखने की ग़लतियों की मानसिक स्थिति से स्पष्टतः भिन्न है। दो संघर्षकारी प्रवृत्तियों में से एक के स्थान पर यहां एक ऐन्द्रिय उद्दीपन[1] आ जाता है, और शायद इसलिए कम स्थायी होता है। आदमी जो कुछ पढ़ रहा है, वह उस तरह उसके अपने मन की उपज नहीं है, जैसे उसकी लिखी हुई चीज़; इसलिए अधिकतर उदाहरणों में अप-पठन में पूर्ण स्थानापन्नता हो जाती है। पुस्तक के शब्द की जगह दूसरा भिन्न शब्द आ जाता है, और आवश्यक नहीं कि मूल शब्द और ग़लती के कारण आए हुए शब्द की वस्तु में कोई सम्बन्ध हो, और आमतौर से शब्दों में सादृश्य होने से ऐसा होता है। इसका लिखटनबर्ग का उदाहरण 'एगेनाम्मेन' (Agenommen) के स्थान पर 'एगामेन्नोन' (Agamennon) इस समूह का सबसे अच्छा उदाहरण है। इस ग़लती की कारणभूत बाधक प्रवृत्ति का पता लगाने के लिए मूल पाठ को सर्वथा अलग रख दीजिए; विश्लेषणात्मक जांच दो प्रश्नों से शुरू हो सकती है: अप-पठन के परिणाम से (स्थानापन्न अर्थात् जो शब्द पढ़ा है उससे) मुक्त साहचर्य[2] में रहने वाला पहला विचार कौन-सा है, और अप-पठन किन परिस्थितियों में हुआ? कभी-कभी अप-पठन की व्यवस्था करने के लिए इस पीछे-वाली बात को जानना ही काफ़ी होता है, जैसे उदाहरण के लिए, तब जब कोई आदमी सख्त लाचारियों से परेशान होकर किसी नए नगर में घूमता हुआ पहली मंज़िल पर बहुत बड़े बोर्ड पर 'क्लोसेथॉस' (Closethaus) शब्द पढ़ता है। अभी वह यह आश्चर्य ही कर रहा है कि इतनी ऊंचाई पर बोर्ड लगाया गया है कि उसे पता चलता है कि असल में वह शब्द 'कोर्सेथॉस' (Corsethaus) है। दूसरे उदाहरणों में, जहां मूल और ग़लती की वस्तु में सम्बन्ध नहीं होता, बारीकी से विश्लेषण की आवश्यकता होती है, जो मनोविश्लेषण की रीति के अभ्यास और इसमें विश्वास के बिना नहीं किया जा सकता। पर, आमतौर से, अप-पठन के उदाहरण की व्याख्या कर सकना इतना कठिन नहीं होता। 'एगामेन्नोन' के उदाहरण में स्थानापन्न शब्द से बिना कठिनाई के यह पता चल जाता है कि यह गड़बड़ किस विचार-पद्धति से

---

१. Sensory-excitation.

२. Free association.

पैदा हुई है। उदाहरण के लिए आजकल युद्धकाल होने से, सब जगह नगरों व सेनापतियों के नाम और सैनिक शब्द आमतौर से पढ़ने में आते है, जो सदा आदमी के कान में पड़ते रहते हैं। जो कुछ अच्छा लगता है और मन में होता है, वह अपरिचित और अच्छा न लगने वाले को हटाकर आ बैठता है। मन में मौजूद विचारों की छायाएं नई प्रतीतियों को धुधला कर देती है।

एक और तरह का अप-पठन भी हो सकता है, जिसमें स्वयं मूल पाठ ही बाधाकारक प्रवृत्ति पैदा करता है, और जिससे यह, आमतौर से, विपरीत शब्द में बदल जाता है। किसी आदमी को कोई ऐसी चीज़ पढ़नी पड़ती है जिसे वह नहीं पढ़ना चाहता, और विश्लेपण से उसे निश्चय हो जाता है कि जो कुछ उसने पढ़ा है, उसे न मानने की प्रबल इच्छा के कारण ही शब्द-परिवर्तन हो गया है।

अप-पठन के जिन अधिक दिखाई देने वाले उदाहरणों का पहले उल्लेख हुआ है, उनमें वे दो बातें प्रमुखता से दिखाई नही देती, जिन्हें ग़लतियों का तंत्र बताते हुए हमने बहुत महत्वपूर्ण बताया था; ये है दो प्रवृत्तियों में संघर्ष, और उनमें से एक का पीछे धकेला जाना, जो ग़लती करके अपनी कमी पूरी कर लेती है। यह बात नहीं है कि अप-पठन में कोई इसके विरुद्ध बात होती हो, पर तो भी, इस भूल की ओर झुकने वाली विचार-शृंखला की अतिशयता कही अधिक मुख्य होती है और इसे जो निरोध या रुकावट पहले सहनी पड़ी हो, वह उतनी प्रमुख नही होती। जिन विभिन्न स्थितियों में भुलक्कड़पन के कारण ग़लतियां होती हैं, उनमें यही दो बातें सबसे अधिक स्पष्ट रूप में दिखाई देती है।

संकल्पों को भूल जाने का निश्चित रूप से एक ही अर्थ होता है; उसके अर्थ को, जैसा कि हम सुन चुके है, सामान्य आदमी भी अस्वीकार नही करता; संकल्प में बाधा डालने वाली प्रवृत्ति सदा विरोधी प्रवृत्ति होती है; एक अनिच्छा होती है, जिसके विषय में यही पता लगाना बाकी है कि वह किसी और, तथा कम छिपे हुए रूप में प्रकट क्यों नही होती; क्योंकि इस विरोधी प्रवृत्ति के अस्तित्व में कोई संदेह नही हो सकता। कभी-कभी उन प्रवर्त्तक कारणों का अनुमान भी किया जा सकता है जिनके कारण इस विरोधी भावना को छिपाना आवश्यक हो जाता है; आदमी देखता है कि यदि वह खुले आम इसका विरोध करता तो निश्चितरूप से इसकी निंदा की जाती, परन्तु चतुराई से ग़लती के रूप में यह सदा अपना उद्देश्य सिद्ध कर लेती है। जब संकल्प करने और उसे अमल में लाने के बीच में, मानसिक स्थिति में कोई परिवर्तन होता है, जिसके परिणामस्वरूप अब इसपर अमल करने की ज़रूरत नही रहेगी, तब यदि उसे भुला दिया जाए तो वह घटना ग़लतियों के अन्तर्गत नहीं रहेगी। इस ग़लती में कोई आश्चर्य करने की चीज़ नहीं रहेगी क्योंकि वह जानता है कि उस संकल्प को याद रखने की कोई आवश्यकता नही रही थी; वह स्थायी रूप से रद्द कर दिया गया था। किसी संकल्प पर अमल करने को भूल

जाना तब ही ग़लती कहला सकता है, जब मन मानने के लिए कोई कारण न हो कि इस तरह संकल्प को रद्द किया गया है।

संकल्पों को अमल में लाने की बात भूल जाने के उदाहरण आमतौर से ऐसे एक समान और स्पष्ट होते हैं कि वे हमारी गवेषणाओं के लिए कोई दिलचस्पी की चीज़ नहीं हैं। तो भी दो प्रश्न ऐसे हैं जिनपर विचार करके इस तरह की ग़लतियों के अध्ययन से कोई नई बात सीखी जा सकती है। हम कह चुके हैं कि किसी संकल्प को भूल जाना और उसपर अमल न करना, इस बात का संकेत है कि कोई उसकी विरोधी प्रवृत्ति के मुकाबले में मौजूद है। यह निश्चय ही सच है, पर हमारी अपनी जांच-पड़ताल से यह पता चलता है कि यह 'विरोधी इच्छा' या 'विपरीत इच्छा'[1] दो प्रकार की हो सकती है--प्रत्यक्ष[2] या परोक्ष[3] (अथवा संसक्त और असंसक्त)। इस दूसरी इच्छा का अर्थ स्पष्ट करने के लिए हम एक-दो उदाहरण लेंगे। जब कोई कृपालु अपने कृपाकांक्षी आश्रित के लिए किसी तीसरे व्यक्ति से सिफारिश करना भूल जाता है, तब इसका यह कारण हो सकता है कि उसे उस आश्रित में, असल में, विशेष दिलचस्पी नहीं है, और इसलिए उसकी सिफारिश करने की कोई विशेष इच्छा नहीं थी। कम से कम आश्रित तो अपने आश्रयदाता की इस उपेक्षा को इसी दृष्टि से देखेगा। पर हो सकता है कि मामला इससे अधिक उलझा हुआ हो। अपने संकल्प पर अमल करने का विरोध किसी आश्रयदाता में किसी और कारण से, और किसी और लक्ष्य से भी हो सकता है। यह भी हो सकता है कि इसका आश्रित से कोई भी सम्बन्ध न हो, और शायद यह उस व्यक्ति से विरोध के कारण हो, जिससे सिफारिश करनी थी। यहां भी आप देखते हैं कि हमारे निकाले हुए अर्थ को व्यवहार में लागू करने पर क्या आपत्तियां हैं। ग़लती का ठीक-ठीक अर्थ लगा लेने के बावजूद, यह खतरा है कि आश्रित व्यक्ति बहुत अधिक संदेही बन जाएगा, और अपने आश्रयदाता के प्रति घोर अन्याय करेगा। फिर, यदि कोई आदमी कोई ऐसा नियत कार्य भूल जाता है, जिसका उसने वचन दिया था, और जिसे पूरा करने का पूरा संकल्प किया था, तो इसका सबसे अधिक सम्भावित कारण निश्चित रूप से यही है कि उसे दूसरे व्यक्ति से मिलने की स्पष्ट अनिच्छा है; पर विश्लेषण से यह बात सिद्ध हो सकती है कि बाधाकारक प्रवृत्ति का सम्बन्ध उस व्यक्ति से नहीं था, बल्कि मिलने के स्थान से था, जिससे सम्बन्धित कुछ कष्ट-दायक स्मृतियों के कारण वहां जाने से बचा गया; या यदि कोई आदमी पत्र डाक में डालना भूल जाता है, तो हो सकता है कि विरोधी प्रवृत्ति पत्र में लिखी हुई बातों से सम्बन्धित हो; परन्तु इससे यह सम्भावना ख़त्म नहीं हो जाती कि पत्र अपने आप में भी हानि रहित नहीं है, और वह विरोधी प्रवृत्ति का शिकार सिर्फ़

---

१. Counter-will. २. Immediate. ३. Mediate.

इस कारण हुआ है क्योंकि इसमें लिखी हुई किसी चीज़ से लेखक को पहले लिखे गए एक और पत्र का ध्यान आ गया है, जो सचमुच विरोध का सीधा कारण था। तो, यह कहा जा सकता है कि विरोध पहले पत्र से, जहां कि यह उचित था, मौजूदा पत्र को, जहां इसका असल में कोई उद्देश्य नही है, **स्थानांतरित** हो गया है। इस प्रकार, आप देखते है कि हमारे बिलकुल मज़बूत बुनियाद पर निकाले गए अर्थों को लागू करने में संयम और सावधानी बरतनी आवश्यक है। जो बात मनोवैज्ञानिक दृष्टि से तुल्य अर्थ वाली है, असल में उसके बहुत-से अर्थ हो सकते हैं।

यह बात आपको बड़ी अजीब लग सकती है कि ऐसी चीजे होती है। शायद आपका झुकाव यह मानने की ओर होगा कि 'परोक्ष' विपरीतेच्छा ही किसी घटना को रोगात्मक बताने के लिए काफ़ी है; परन्तु मै आपको यह निश्चित रूप से कह सकता हूं कि यह स्वस्थ और सामान्य व्यक्तियों में भी पाई जाती है, और फिर, मेरी बात को ग़लत रूप में न समझिए। मेरी बात का यह अर्थ नहीं है कि मैं यह मान रहा हूं कि हमारे विश्लेषणात्मक अर्थो पर भरोसा नही करना चाहिए। मैं कह चुका हूं कि किसी योजना पर अमल करने को भूल जाने के बहुत-से अर्थ हो सकते है, पर ऐसा उन्ही उदाहरणों में होता है जिनका हमने विश्लेषण नहीं किया है, और जिनका अर्थ हमें अपने व्यापक सिद्धान्तों के अनुसार लगाना पड़ता है। यदि उस उदाहरण में व्यक्ति का विश्लेपण किया जाए तो हमेशा काफ़ी निश्चित रूप से यह सिद्ध किया जा सकता है कि विरोध प्रत्यक्ष है, अथवा इसका और कौन-सा कारण है।

अब यह दूसरी बात लीजिए : जब हम बहुत सारे उदाहरणों में यह प्रमाण पाते है कि किसी आशय को भूल जाने का मूल विपरीत इच्छा है तो हम यह हल दूसरे समूह के उदाहरणों पर लागू करने का साहस कर सकते है, जिनमें विश्लेषित व्यक्ति हमारी अनुमान की हुई विपरीत इच्छा की मौजूदगी को पुष्ट नही करता, बल्कि उसका निषेध करता है। इसके उदाहरण के रूप में ये आम घटनाएं लीजिए, जैसे मांगी हुई किताब लौटाना, या कर्ज़ चुकाना भूल जाना। हम सम्बद्ध व्यक्ति से यह कहने का साहस कर सकते है कि आपके मन में पुस्तकें अपने ही पास रख लेने और ऋण न चुकाने का आशय था, जिसपर वह इस आशय का निषेध करेगा, पर अपने आचरण का कोई और स्पष्टीकरण नही दे सकेगा। तब हम यह आग्रह करते है कि उसका यह आशय अवश्य था, पर वह इसे जानता नही है। हमारे लिए इतना काफ़ी है कि यह भूलने के प्रभाव के द्वारा अपना रूप प्रकट कर जाता है। हो सकता है कि तब वह यह बात दोहराए कि मै इस बारे में सिर्फ़ भूल गया था। आपको याद होगा कि हम वैसी ही स्थिति में आ गए है, जिसमें एक बार पहले आए थे। यदि हम ग़लतियों के उन अर्थों को, जो इतने सारे उदाहरणों में उचित सिद्ध हुए है, उनके तर्कसंगत निष्कर्ष तक ले जाना चाहते है, तो हमें मजबूरन यह धारणा

अपनानी होगी कि मनुष्यों में ऐसी प्रवृत्तियों का वास है जिनसे परिणाम तो पैदा होते हैं, पर मनुष्य उन्हें जानता नहीं; परन्तु ऐसा कहकर हम अपने आपको जीवन में, और मनोविज्ञान में प्रचलित सब विचारों के विरोध में खड़ा कर लेते हैं।

व्यक्तिवाचक नामों और विदेशी नामों तथा शब्दों को भूलने का कारण भी इस तरह एक ऐसी विरोधी प्रवृत्ति में पाया जा सकता है जो प्रत्यक्ष रूप से हो या परोक्ष रूप से, पर प्रस्तुत नाम की विरोधी है। इस तरह के प्रत्यक्ष विरोध के अनेक उदाहरण मैं पहले आपको दे चुका हूं। यहां परोक्ष कारण विशेष रूप से अधिक दिखाई देता है, और आम तौर से इसपर रोशनी डालने के लिए सावधानी से जांच करना आवश्यक होता है। इस प्रकार, उदाहरण के लिए, इस युद्धकाल में, जिसने हमें अपने बहुत सारे पहले के सुख छोड़ने को मजबूर कर दिया है, व्यक्तिवाचक नामों को याद रखने की हमारी योग्यता को बड़े-बड़े दूर के सम्बन्धों के कारण बड़ी हानि पहुंची है। कुछ समय पहले ऐसा हुआ कि मुझे मोराविया के सीधे-सादे नगर बिसेन्ज का नाम याद न आया, और विश्लेषण से पता चला कि इस मामले में मैं प्रत्यक्ष विरोध का दोषी नहीं था, बल्कि इसका कारण यह था कि यह नाम ओरविएटो के प्लाजो बिसेन्जी के नाम से मिलता हुआ था, जहां मैंने पहले बहुत समय सुख से बिताया था। इस नाम के याद आने का विरोध करने वाली प्रवृत्ति के प्रवर्त्तक कारण के रूप में, यहां पहली बार, हमारे सामने एक सिद्धान्त आ रहा है जो बाद में स्नायु-लक्षणों के पैदा करने में बहुत महत्वपूर्ण बनकर सामने आएगा : वह यह है कि स्मृति-शक्ति कष्टकारक भावनाओं से सम्बन्धित किसी बात को, जिसके याद आने से कष्ट फिर जाग उठेगा, याद नहीं करना चाहती। स्मरण द्वारा या अन्य मानसिक प्रक्रमों द्वारा **कष्ट से बचने** की ओर होनेवाली इस प्रवृत्ति में, कष्टकर बातों से मन के इस पलायन में, शायद हम वह अन्तिम प्रयोजन देख सकें जो न केवल नामों को भूलने के पीछे, बल्कि और बहुत-सी ग़लतियों, भूलों और चूकों के पीछे भी क्रियाशील है।

पर नामों को भूलने की व्याख्या मनोकायिकीय दृष्टि से विशेष आसानी से हो जाती प्रतीत होती है, और इसलिए नाम भूलने की घटना वहां भी प्रायः होती है जहां अप्रियताप्रेरक का होना नही सिद्ध किया जा सकता। जब किसी आदमी में नाम भूल जाने की प्रवृत्ति होती है, तब विश्लेषण द्वारा जांच करके इस बात की पुष्टि की जा सकती है कि उसके मन से नाम सिर्फ़ इसीलिए नहीं ग़ायब हो जाते कि वह उन्हें पसंद नहीं करता, या वे उसे किसी अरुचिकर बात की याद दिला देते है, बल्कि इसलिए भी ग़ायब हो जाते हैं क्योंकि वह विशेष नाम अधिक घनिष्ठ या गहरे प्रकार के साहचर्यों की किसी और शृंखला से जुड़ा होता है। वह नाम वहां मानो दृढ़ता से बंध जाता है, और उस समय प्रवर्तित अन्य साहचर्यों में प्रवेश करन से रोक दिया जाता है। यदि आप स्मृति-प्रणालियों की युक्तियों का स्मरण

करें तो आप कुछ आश्चर्य के साथ यह महसूस करेंगे कि जो साहचर्य नामों को भूले जाने से रोकने के लिए वहां कृत्रिम रूप से प्रविष्ट कराये जाते है, उन्हीके कारण वे नाम भूल जाते है। इसके प्रमुख उदाहरण व्यक्तियों के नाम हैं, जिनके मान स्वभावत: व्यक्ति-व्यक्ति के अनुसार बहुत भिन्न-भिन्न होते है। उदाहरण के लिए, एक पहला नाम लें, जैसे थियोडोर। आपमें से कुछ के लिए इसका कोई खास अर्थ नहीं होगा, कुछ के लिए यह पिता, भाई, या मित्र का, या अपना ही नाम होगा। विश्लेषण के अनुभव से पता चलेगा कि आप में से पहले वर्ग के लोगों को यह भूलने का कोई खतरा नही होगा कि यह किसी अजनबी का नाम है; पर शेष लोगों को यह बात लगातार चुभती-सी रहेगी कि एक ऐसा नाम, जो आपको अपने किसी निकट संबंधी के लिए ही सुरक्षित रखा हुआ मालूम होता है, किसी अजनबी का भी हो। अब यह कल्पना करें कि साहचर्यो के कारण उत्पन्न यह निरोध[1] 'कष्ट'-सिद्धान्त के क्रियाशील होने के समय ही होता है, और इसके अतिरिक्त परोक्ष प्रक्रिया से होता है, तब आपको कार्य-कारण संबंध की दृष्टि से इस तरह नाम अस्थायी रूप से भूलने की प्रक्रिया की जटिलता ठीक-ठीक समझ में आ सकेगी। परंतु पर्याप्त विश्लेषण, जिसमें तथ्यों का पूरा ध्यान रखा जाए, इन सब जटिलताओं को खोलकर स्पष्ट कर देगा।

प्रभावों और अनुभवों को भूलने से पता चलता है कि स्मृति से उन बातों को दूर करने की प्रवृत्ति क्रियाशील है जो नामों को भूलने की अपेक्षा अधिक स्पष्ट रूप और सदा अप्रिय है। यह सारी की सारी बातें निस्संदेह ग़लतियों की श्रेणी में नही आतीं; ग़लतियों की श्रेणी में यह वहीं तक आती है, जहां तक सामान्य अनुभव के पैमाने से नापने पर, यह हमें विशिष्ट और अनुचित प्रतीत होती है; जैसे, उदाहरण के लिए वहां, जहां हाल के या महत्वपूर्ण प्रभाव भूल जाते है, या जहां सारे अच्छी तरह याद सिलसिले में से एक घटना भूल जाती है। यह एक बिलकुल जुदा समस्या है कि हममें भूलने की सामान्य क्षमता कैसे और क्यों होती है और विशेषरूप से हम उन अनुभवों को कैसे भूल जाते है जिनकी निश्चित रूप से हमपर बहुत गहरी छाप पड़ी थी जैसे कि हमारे बचपन की घटनाएं; इसमें कष्टकारक साहचर्यो के विरुद्ध कही जाने वाली बातों का कुछ महत्व है, पर उससे सारी समस्या की कुछ भी व्याख्या नही होती। यह तो असंदिग्ध तथ्य है कि नापसंद प्रभाव आसानी से भूल जाते है। अनेक मनोविज्ञान-विशारदों ने इसपर विचार किया है; और महान डारविन तो इस बात से इतनी अच्छी तरह परिचित था कि उसने अपने लिए यह सुनहरा नियम बना लिया था कि जो प्रेक्षण उसे अपने सिद्धांत के लिए प्रतिकूल प्रतीत होते थे, उन्हें वह बड़ी सावधानी से लिख लेता था, क्योंकि उसे यह

---

१. Inhibition.

निश्चय हो गया था कि ये ही स्मृति से निकलकर भाग जाएंगे।

जो लोग पहली बार यह सुनते हैं कि अप्रिय स्मृति पैदा करने वाली बातें भूल जाती हैं वे यह ऐतराज ज़रूर उठाते हैं कि असल में बात इससे उलटी है और कष्ट-कारक बातों को भूलना ही सबसे कठिन होता है, क्योंकि वे बातें आदमी को दिक करने के लिए उसकी इच्छा के विरुद्ध बार-बार उसके मन में आती हैं; जैसे उदाहरण के लिए, शिकायतों या अपमानों की याद। यह तथ्य बिलकुल सही है पर ऐतराज़ कुछ वज़नदार नहीं। यह समझने के लिए कि मन परस्पर विरोधी आवेगों के संघर्षों के लिए एक अखाड़ा है, एक रणक्षेत्र है, कुछ और पहले से विचार शुरू करना आवश्यक है; इस बात को निर्जीव क्रियाओं के रूपों में यों कह सकते हैं कि मन विरोधों, और विरोधी वस्तुओं की जोड़ियों का बना हुआ है। किसी एक प्रवृत्ति के दिखाई देने का यह अर्थ नहीं कि इसकी विरोधी प्रवृत्ति नहीं हो सकती; वहां उन दोनों के रहने के लिए काफ़ी गुजाइश है। महत्वपूर्ण प्रश्न ये हैं : ये विरोधी प्रवृत्ति एक दूसरे के साथ किस तरह मौजूद हैं, और उनमें से एक से क्या परिणाम पैदा होते हैं, और दूसरी से क्या परिणाम पैदा होते हैं ?

वस्तुएं खो देना या कहीं रखकर भूल जाना विशेष दिलचस्पी की बातें हैं, क्यों कि इसके अनेक अर्थ हो सकते हैं, और ऐसी अनेक प्रवृत्तियां हो सकती हैं जो ग़लतियों द्वारा प्रकट होती हों। इन सब उदाहरणों में सांझी बात 'कोई चीज़ खोने की इच्छा' है, सबमें भिन्नता पैदा करने वाली बात इच्छा का कारण और इसका ध्येय है। आदमी चीज़ खो देता है यदि वह ख़राब हो गई हो, या उसमें इसके स्थान पर इससे अच्छी चीज़ लेने का आवेग हो, या आदमी ने उसकी परवाह करनी छोड़ दी हो, या यदि यह किसी ऐसे व्यक्ति से मिली हो जिसके साथ अप्रियता पैदा हो गई है, या यदि वह ऐसी परिस्थितियों में प्राप्त की गई है जिन्हें आदमी अब नहीं याद करना चाहता। चीजें गिरने देने, बिगाड़ने, या तोड़ने में भी वही प्रवृत्ति दिखाई देती है। सामाजिक जीवन में यह कहा जाता है कि अनचाहे और नाजायज बच्चे उन बच्चों से बहुत कमज़ोर पाए गए हैं जो अधिक सुखद परिस्थितियों में पैदा हुए हैं। इस परिणाम का यह अर्थ नहीं है कि पेशेवर शिशु-पालकों के भद्दे तरीके काम लाए गए हैं, बच्चे की देखभाल में थोड़ी लापरवाही ही काफ़ी कारण है। वस्तुओं का हिफ़ाजत से रखना और बिगाड़ना या खोना भी बच्चों के ढंग से ही हो सकता है।

तब फिर यह भी हो सकता है कि कोई वस्तु पहले की तरह मूल्यवान रहती हुई भी अवश्य खो जानी हो, अर्थात् जब किसी आशंकित बड़ी हानि से बचने के लिए कोई चीज़ भाग्य पर बलिदान करने का आवेग मन में हो। विश्लेषणों से पता चलता है कि इस तरह भाग्य को प्रसन्न करने की प्रवृत्ति भी अभी हमारे अन्दर बहुत व्यापक है, जिसका अर्थ यह है कि हमारी हानियां प्रायः स्वेच्छा से चढ़ाया हुआ बलिदान होती हैं। इसी तरह खोने से विद्वेष के, या आत्मपीड़न

अर्थात् स्वयं अपने को दंड देने के आवेगों का पता चलता है। संक्षेप में, कोई चीज़ खोकर उससे पिंड छुड़ाने के आवेग के पीछे जो दूरवर्ती प्रेरणाएं हो सकती हैं उनका आसानी से कहीं अंत नहीं ढूंढ़ा जा सकता।

दूसरी ग़लतियों की तरह, ग़लत वस्तु उठा लेने या ग़लत रीति से कार्य करने के द्वारा भी रोकी जाने वाली इच्छा को प्रायः पूरा किया जाता है; असली आशय आकस्मिक मौके के रूप में प्रकट होता है। इस प्रकार, जैसा कि एक बार एक मित्र के साथ हुआ भी था, आपको किसी उपनगर में किसी जगह जाना है, और बड़ी अनिच्छा से आप गाड़ी पकड़ते हैं, और फिर किसी जंकशन पर गाड़ी बदलते समय आप, भूल से, शहर लौटने वाली गाड़ी में बैठ जाते हैं, या किसी यात्रा में आप किसी जगह उतरने की बड़ी तीव्र इच्छा रखते हैं, पर और जगह पहुंचने के समय दूसरों के साथ पहले ही नियत कर चुकने के कारण आप यहां नही उतर सकते, और इस-पर आप जंकशन पर ग़लती से असली गाड़ी छोड़ देते हैं, या किसी ग़लत गाड़ी में बैठ जाते हैं, जिससे आप जो देर लगाना चाहते थे, वह मजबूरन लग जाती है। या, जैसा कि मेरे एक मरीज़ के साथ हुआ, जिसे मैंने अपनी प्रेमिका को टेलीफोन करने से मना कर दिया था; उसने मुझे टेलीफोन करते समय 'भूल से' और 'बिना विचारे' ग़लत नंबर बोल दिया जिससे उसका टेलीफोन एकाएक उसकी प्रेमिका के टेलीफोन से मिल गया। एक इंजीनियर द्वारा बताया गया निम्नलिखित वृत्तांत इस बात का अच्छा उदाहरण है कि किन अवस्थाओं में भौतिक पदार्थों को बिगाड़ा जाता है; इससे प्रत्यक्षतः दोषपूर्ण कार्यों का व्यावहारिक महत्व भी स्पष्ट होता है।

"कुछ समय पहले मैंने एक हाई स्कूल की प्रयोगशाला में अनेक सहयोगियों के साथ प्रत्यास्थता[1] के संबंध में कुछ उलझनदार परीक्षणों में हिस्सा लिया, और यह काम हमने अपनी इच्छा से अपने ऊपर लिया था; पर इसमें हमें आशा से अधिक समय लग रहा था। एक दिन जब मैं अपने मित्र फ. के साथ प्रयोगशाला में गया, तब उसने कहा कि 'आज इतना समय बर्बाद करना कितनी परेशानी का काम है जब कि मुझे घर पर बहुत-सा काम करना है'; मुझे उससे सहमत होना ही था, और मैंने उससे कुछ मज़ाक में, पिछले सप्ताह की घटना की चर्चा करते हुए कहा, 'भगवान् से मनाओ कि मशीन फिर बिगड़ जाए, और हम काम बंद करके जल्दी घर लौट सकें' काम बांटते समय ऐसा हुआ कि फ. को प्रेस या दाबक का वाल्व खोलने-बंद करने का काम सौंपा गया; मतलब यह कि उसको सावधानी से वाल्व खोलकर, डब के दाब को संचायक या एकुमुलेटर में से, धीरे-धीरे, जल-दाबक या हाइड्रॉलिक प्रेस के सिलिंडर में आने देना था। परीक्षण अध्यक्ष दाब-प्रमापी (प्रेशर गेज) पर खड़ा था और जब ठीक दाब आ गया, तब उसने ज़ोर से पुकारा,

१. Elasticity.

'ठहरो !' इस आदेश पर फ. ने पूरी ताकत से वाल्व पकड़कर उसे घुमा दिया--बाई ओर! (सभी वाल्व दाई ओर को बंद होते हैं, और इसमें कोई अपवाद नहीं होता।) इससे संचायक का सारा दाब एकाएक दाबक में आगया, पर संयोजक नलियां इतना दाब सहने के लिए नहीं बनी होती और उनमें से एक फट गई--यह बिलकुल निरापद दुर्घटना थी, पर तब भी उसने हमें काम बंद करके घर चले जाने के लिए मजबूर कर दिया। यह विलक्षण बात है कि इस घटना के कुछ ही समय बाद जब हम बातें कर रहे थे तो मेरे मित्र को मेरी बात से घटना की याद बिलकुल नहीं आई, पर मुझे वह अच्छी तरह याद थी।"

इस प्रकार ये बातें ध्यान में रखने पर आप यह संदेह करने लगेंगे कि घर के कामों में नौकर-चाकर जो कभी-कभी ऐसे ख़तरनाक दुश्मनों के-से काम कर बैठते हैं, उनका कारण 'अकस्मात्' ही सदा नहीं होता। और आप यह प्रश्न भी उठा सकते हैं कि जब कोई आदमी अपने-आपको घायल कर बैठता है या ख़तरे में डालता है, तब क्या यह सदा आकस्मिक घटना ही होती है--आप अवसर मिलने पर इन विचारों की विश्लेषण द्वारा जांच कर सकते हैं।

ग़लतियों के बारे में जो कुछ कहा गया है, उसके अलावा और बहुत कुछ बाकी है। अभी बहुत-सी बातें जांच और विचार के लिए शेष हैं। पर मैं इतने से ही संतुष्ट हो जाऊंगा, यदि आपके पुराने विश्वास, हमारी अब तक की जांच-पड़ताल से, हिल गए हों और यदि आपमें नए विश्वास अपनाने के लिए कुछ तत्परता पैदा हुई है। कुछ समस्याएं मैं अभी आपके लिए उलझन में ही छोड़ देना चाहता हूं। हम ग़लतियों पर विचार करके अपने सब सिद्धांत सिद्ध नही कर सकते, और न यही बात है कि हम एकमात्र इसी सामग्री पर अवलंबित हैं। हमारे प्रयोजन के लिए ग़लतियों का बड़ा महत्व इस बात में है कि वे इतनी आमतौर से होनेवाली घटनाएं हैं, अपने में आसानी से देखी जा सकती हैं, और बीमारी पर ज़रा भी निर्भर नही हैं। अपना व्याख्यान खतम करने से पहले आपके एक और प्रश्न की चर्चा करना चाहता हूं, जिसका उत्तर नहीं दिया गया है : "यदि यही बात है, जैसा हमें इतने उदाहरणों से पता चलता है, कि लोग ग़लतियों को इतनी दूर तक समझते हैं, और बहुत बार इस तरह चेष्टाएं करते हैं जैसे कि उन्होंने उनका अर्थ समझ लिया है, तो यह कैसे संभव है कि वे इतने व्यापक रूप से उन्हें आकस्मिक, भावहीन और अर्थहीन समझें और उनकी मनोविश्लेषणात्मक व्याख्या का इतने ज़ोर-शोर से खंडन करें ?"

आप ठीक कहते हैं : यह सचमुच विचित्र बात है, और इसकी व्याख्या की आवश्यकता है। पर मैं आपके सामने वह व्याख्या नहीं करूंगा; मैं तो आपको धीरे-धीरे उन संबंधों की ओर ले जाने वाला रास्ता दिखाऊंगा, जिनसे व्याख्या, मेरी बाहरी सहायता के बिना ही, बलपूर्वक आपके मन में आ पहुंचेगी।

दूसरा भाग

स्वप्न

व्याख्यान | ५

कठिनाइयां और विषय पर आरंभिक विचार

एक दिन यह खोज हुई कि कुछ स्नायु-रोगियो में दिखाई देने वाले रोग के लक्षणों का अर्थ होता है[१]। इसी खोज पर इलाज का मनोविश्लेषण वाला तरीका आधारित किया गया। इस इलाज में यह देखा गया कि रोगी अपने लक्षण बताते हुए अपने स्वप्नों की भी चर्चा करते है। इसपर यह संदेह पैदा हुआ कि इन स्वप्नों का भी अर्थ होता है।

पर हम इस ऐतिहासिक रास्ते पर न जाएंगे, और इससे ठीक उलटी दिशा में चलेंगे। हमारा ध्येय यह है कि स्नायु-रोगों के अध्ययन की तैयारी के सिलसिले में स्वप्नों का अर्थ समझाया जाए। उलटी प्रक्रिया अपनाने का कारण यह है कि स्वप्नों पर विचार करने से न केवल स्नायु-रोगों पर विचार करने की सबसे अच्छी तैयारी हो सकती है, बल्कि स्वप्न अपने आप मे स्नायु-रोग का एक लक्षण है, और इसके अलावा, इसमें एक यह बड़ी भारी सुविधा है कि यह सब स्वस्थ मनुष्यों में होता है। सच तो यह है कि यदि सब मनुष्य स्वस्थ होते और सिर्फ स्वप्न देखते तो हम उनके स्वप्नों से प्रायः वह सारा ज्ञान इकट्ठा कर सकते थे जो हमे स्नायु-रोगों के अध्ययन से प्राप्त हुआ है।

इस प्रकार स्वप्न मनोविश्लेषण संबंधी गवेषणा का विषय बन जाते हैं—ये भी 'ग़लतियों' की तरह सामान्य और बहुत कम महत्व की घटना समझे जाते हैं, जिनका कोई व्यावहारिक महत्व नहीं दिखाई देता। और ग़लतियों की तरह, इनमे भी यह विशेषता है कि ये भी स्वस्थ मनुष्यों में होते है; पर दूसरी दृष्टियों से अध्ययन की अवस्थाएं कुछ कम अनुकूल है; विज्ञान ने ग़लतियों की सिर्फ़ उपेक्षा की थी; लोगों ने उनपर बहुत सिर खपाई नही की थी, पर कम से कम इतना तो था कि उनपर विचार करना कोई बुराई की बात नही थी। लोग कहते थे कि

१. यह खोज जोसेफ ब्रायर ने १८८०–१८८२ में की थी। देखिए १९०९ में संयुक्तराज्य अमेरिका में दिए हुए मेरे मनोविश्लेषण संबंधी भाषण।

और महत्वपूर्ण बातें तो हैं, पर संभव है, इसका भी कुछ नतीजा निकल सके। परंतु स्वप्नों पर विचार करना न केवल अव्यावहारिक तथा अनावश्यक है, बल्कि निश्चित रूप से कलंककारक है। इसके साथ अवैज्ञानिक होने का कलंक लगा हुआ है, और संदेह होने लगता है कि खोज करने वाला रहस्यवाद की ओर झुकाव रखता है। कोई डाक्टरी का विद्यार्थी स्वप्नों में सिर क्यों खपाए, जबकि स्नायु-रोग-शास्त्र और मनश्चिकित्सा में इतनी सारी गंभीर बातें मौजूद हैं—सेब जितनी बड़ी-बड़ी गांठें मन के यंत्र को दबा रही हैं, रक्त-स्राव हैं, जीर्ण प्रदाहात्मक अवस्थाएं हैं, जिनमें ऊतकों[1] में होने वाले परिवर्तन सूक्ष्मदर्शी यंत्र से दिखाए जा सकते हैं ! नहीं; स्वप्न वैज्ञानिक गवेषणा के विषय होने की दृष्टि से बिल्कुल बेकार और तुच्छ हैं।

एक और भी बात है जिसके कारण ठीक-ठीक जांच के लिए आवश्यक परिस्थितियां नहीं मिल सकतीं। स्वप्नों की जांच-पड़ताल में गवेषणा का विषय, अर्थात् स्वयं स्वप्न भी अनिश्चित है। उदाहरण के लिए, भ्रम में स्पष्ट और निश्चित रूपरेखा होती है। आपका रोगी साफ़ शब्दों में कहता है; "मैं चीन का सम्राट हूं", पर स्वप्न ? इसका अधिकतर हिस्सा तो कहकर बताया ही नहीं जा सकता। जब कोई आदमी किसीको स्वप्न सुनाता है तब इस बात की क्या गारंटी है कि उसने सही रूप में सुनाया है. और उसे सुनाते हुए कुछ बदल नहीं दिया है, या अपनी याददाश्त धुधली होने के कारण उसका कुछ हिस्सा अपनी कल्पना से जोड़ने के लिए वह मजबूर नहीं हुआ है ? अधिकतर स्वप्न जरा भी याद नहीं रहते, और उनके छोटे-मोटे हिस्से को छोड़कर, बाकी सब कुछ भूल जाता है। और क्या कोई वैज्ञानिक मनोविज्ञान या रोगियों के इलाज का तरीका ऐसी सामग्री की बुनियाद पर खड़ा किया जा सकता है ?

किसी आलोचना में कुछ अतिशयोक्ति देखकर हमें संदेह पैदा हो जाता है। स्वप्न को वैज्ञानिक गवेषणा का विषय बनाने के विरोध में पेश की गई दलीलें साफ़ तौर से अति की सीमा तक पहुंचती हैं। तुच्छ होने के ऐतराज़ पर हम पहले 'ग़लतियों' के सिलसिले में विचार कर चुके हैं, और यह देख चुके हैं कि छोटे-छोटे संकेतों से बड़ी-बड़ी बातें प्रत्यक्ष हो सकती हैं। जहां तक स्वप्नों की अस्पष्टता का संबंध है, यह तो उसकी अन्य विशेषताओं की तरह एक विशेषता है—हमारे आदेश से वस्तुएं अपनी विशेषताएं नहीं बदल लेंगी। इसके अलावा, ऐसे स्वप्न भी होते हैं जो साफ और सुनिश्चित होते हैं। फिर, मनश्चिकित्सा संबंधी जांच-पड़ताल के बहुत-से दूसरे विषयों में भी यह अनिश्चितता वाली बात होती है; उदाहरण के लिए, बहुत-से रोगियों के मनोग्रस्तता[2] वाले विचार; पर फिर भी

१. Tissues. २. Obsessive ideas.

बहुत-से प्रसिद्ध और अनुभवी मनश्चिकित्सकों ने उनके अध्ययन में समय लगाया। मैं आपके सामने इस तरह का वह 'केस' रखूंगा जो डाक्टरी की दूकान करते हुए मेरे पास सबसे अंत में आया था। रोगिणी ने अपनी अवस्था इन शब्दों में पेश की : "मुझे कुछ ऐसा महसूस होता है जैसे मैंने किसी जीवित प्राणी को, शायद किसी बच्चे को नहीं, नहीं;—शायद कुत्ते को, घायल कर दिया है, या घायल करने की इच्छा की है, जैसे शायद मैंने इसे पुल से नीचे धकेल दिया—या कुछ और किया है।" स्वप्न की अनिश्चित याद से जो असुविधा होती है, उसे यह तय करके दूर किया जा सकता है कि जो कुछ स्वप्न देखने वाला सुनाता है, ठीक वही स्वप्न माना जाए, और जो कुछ वह भूल गया है, या याद करने के बीच में बदल गया है, उसे छोड़ दिया जाए। अंत में आप इतनी आसानी से यह बात नहीं कह सकते कि स्वप्न महत्वहीन चीज़ हैं। हम अपने निजी अनुभव से जानते हैं कि स्वप्न से हम जिस मानसिक अवस्था में जागते हैं, वह सारे दिन बनी रहती है, और डाक्टरों ने ऐसे रोगी देखे हैं, जिनमें मानसिक रोग स्वप्न से शुरू हुआ—स्वप्न से उत्पन्न भ्रम जम गया। इसके अलावा, ऐतिहासिक व्यक्तियों के बारे में कहा जाता है कि उनमें महत्वपूर्ण कार्य करने के आवेग उनके स्वप्नों से ही पैदा हुए। इसलिए हम यह पूछना चाहते हैं: वैज्ञानिक क्षेत्रों में स्वप्नों को हलकी नज़र से देखने का असली कारण क्या है? मेरी राय में, पहले उनका जो बहुत अधिक मूल्य आंका जाता था, उसकी यह प्रतिक्रिया है। यह बात सब जानते हैं कि गुजरे हुए समय की घटनाओं को फिर से जोड़कर तैयार करना आसान काम नहीं है, पर हम यह निश्चित होकर मान सकते हैं (मज़ाक के लिए माफ करें,) कि तीन हजार वर्ष और उससे भी अधिक समय पहले हमारे पूर्वज उसी तरह स्वप्न देखते थे, जैसे हम आज देखते हैं। जहां तक हम जानते हैं, सब प्राचीन जातियां स्वप्नों को बहुत महत्व देती थीं, और उनका व्यावहारिक मूल्य समझती थीं। उन्हें उनसे भविष्य के लिए सूचनाएं मिलती थीं, और शकुन दिखाई देते थे। यूनानियों और पूर्वी देशों के अन्य निवासियों में उस जमाने में स्वप्न का अर्थ पढ़ने वाले के बिना कोई युद्ध करना उसी तरह असंभव था, जैसे जासूसी के लिए शत्रु पक्ष में उतरने वाले सैनिकों के बिना आज यह असंभव है। जब सिकंदर महान् ने अपनी दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया था, तब सबसे प्रसिद्ध स्वप्न-शास्त्री उसके साथ थे। टायर नगर ने, जो उस समय द्वीप पर ही था, उसका इतना प्रबल मुकाबला किया कि वह घेरा उठा लेने का विचार करने लगा। पर उसे एक रात एक सेटायर (एक यूनानी देवता, जिसके पूंछ और लंबे कान होते हैं।) विजय-हर्ष से नाचता दिखाई दिया और जब उसने स्वप्न-शास्त्रियों को अपना स्वप्न सुनाया, तब उन्होंने बताया कि यह नगर पर आपकी विजय का सूचक है। उसने हमले का हुक्म दे दिया और वह तूफ़ान की तरह टायर पर टूट पड़ा। ऐट्रस्कनों और रोमनों में भविष्य की

सूचक दूसरी विधियां काम में लाई जाती थीं, पर सारे यूनानी-रोमन काल में स्वप्नों के निर्वचन (अर्थ लगाने) का चलन रहा और इसे बड़ी ऊंची नज़र से देखा जाता था। इस विषय के साहित्य की कम से कम मुख्य पुस्तक—डैल्डिस के आर्टेमीडोरस जो सम्राट हैड्रीअन के जमाने का बताया जाता है, द्वारा लिखित—तो आज तक मिलती है। मैं यह नहीं बता सकता कि स्वप्न का अर्थ लगाने की कला का बाद में कैसे ह्रास हो गया और कैसे स्वप्नों को निंदनीय समझा जाने लगा। शिक्षा की तरक्की से इसका विशेष संबंध नहीं हो सकता, क्योंकि मध्य काल के अंधकारमय हालात उस समय से बहुत बुरे थे, जब स्वप्नों का अर्थ लगाने की पुरानी परिपाटी लोगों ने श्रद्धा के साथ अपनाई हुई थी। यह बात सच है कि धीरे-धीरे स्वप्न की दिलचस्पी अंधविश्वास के स्तर पर आ गई, और वह अशिक्षितों में ही कायम रही। हमारे जमाने में भी स्वप्न का अर्थ लगाने की कला अपने सबसे घटिया रूप में मौजूद है, जिसमें भाग्य के खेलों मे इनाम दिलाने वाली संख्याएं स्वप्नों से जानने की कोशिश की जाती हैं। दूसरी ओर, आज के यथार्थ विज्ञान ने स्वप्न पर बार-बार विचार किया है, पर उसका एकमात्र उद्देश्य सदा शरीर विज्ञान संबंधी[1] सिद्धांत पेश करना ही रहा है। डाक्टरों ने स्वभावतः स्वप्न को कभी भी मानसिक प्रक्रम नही माना। उन्होंने इसे शारीरिक उद्दीपनों की मानसिक अभिव्यक्ति ही माना है। बिन्ज ने १८७६ में कहा था : "स्वप्न शारीरिक प्रक्रम है जो सदा बेकार और बहुत बार वस्तुतः विकृत तथा अस्वस्थ होता है। यह एक ऐसा प्रक्रम है जिसमें और विश्व-आत्मा व अमरता की धारणा में वही संबंध है जो नीले आकाश और गहरी झाड़ियों से भरी रेतीली धरती मे।" मॉरी ने स्वप्नों की तुलना संट वाइटस के नाच के आवेशात्मक झटकों से की है, और स्वस्थ मनुष्य की सूत्रबद्ध चेष्टाओं से इसका भेद दिखाया है। पुराने ज़माने में यह कहा जाता था कि स्वप्न की वस्तु उन ध्वनियों की तरह होगी जो "किसी संगीत न जानने वाले के अपनी दसों उंगलियां बाजे पर एक साथ चलाने से पैदा होगी।"

'निर्वचन'[2] का अर्थ है छिपे हुए अर्थ का पता लगाना, पर जब तक स्वप्न के कार्य के बारे में ऐसा विचार बना हुआ है तब तक निर्वचन की कोशिश करने का कोई सवाल नहीं पैदा हो सकता। वुंट जॉड्ल और हाल के अन्य दार्शनिकों ने स्वप्नों का जो वर्णन किया है, उसे देखिए। स्वप्नों की महत्वहीनता बताने की दृष्टि से, वे सिर्फ यह बताकर संतुष्ट हो गए है कि स्वप्न-जीवन के जागृत विचार से कौन-कौन भेद दिखाई देते हैं। उन्होंने साहचर्यों में सम्बन्ध सूत्र के अभाव, आलोचना शक्ति के प्रयोग में रुकावट, सब तरह के ज्ञान के विलोप और भीतरी

१. Physiological Theories २. Interpretation.

कार्यों में कमी के अन्य संकेतों पर बल दिया है। स्वप्नों के बारे में हमारे यथार्थ विज्ञान ने हमारे ज्ञान को बढ़ाने में एक ही कीमती मदद दी है (जिसके लिए हम उसके ऋणी है।), और वह नींद के समय स्वप्न-वस्तु पर शारीरिक उद्दीपकों के असर से सम्बन्ध रखती है। नार्वे के एक लेखक जे० मोर्ली वोल्ड ने, जिसका हाल ही में स्वर्गवास हुआ है, स्वप्नों की परीक्षणात्मक जांच पर दो बड़ी पुस्तकें लिखी हैं (जर्मन भाषा में १९१० और १९१२ में जिनके अनुवाद हुए थे) जो प्रायः सारी की सारी, अंगों की स्थिति में परिवर्तन होने से उत्पन्न परिणामों से भरी पड़ी हैं। इन जांचों को स्वप्न के विषय में यथार्थ गवेषणा का आदर्श बताकर हमारे आगे पेश किया जाता है। अब क्या आप यह कल्पना कर सकते हैं कि यदि यथार्थ विज्ञान को यह पता चले कि हम स्वप्नों का अर्थ जानने की कोशिश करना चाहते हैं तो उसकी क्या प्रतिक्रिया होगी ? वही प्रतिक्रिया होगी जो शायद पहले प्रकट की जा चुकी है। परन्तु हम इस विचार से डरने वाले नहीं हैं। यदि यह सम्भव था कि ग़लतियों के पीछे कोई अर्थ हो, तो यह भी सम्भव है कि स्वप्नों के पीछे भी कोई अर्थ हो; और बहुत-से उदाहरणों मे ग़लतियों का ऐसा अर्थ होता है जो यथार्थ विज्ञान की गवेषणाओं से प्रकट नही हो सका। इसलिए हम प्राचीन लोगों और जनसाधारण की धारणा को अपना कर पुराने जमाने के स्वप्न-शास्त्रियों के पदचिन्हों पर चलेंगे।

सबसे पहले इस कोशिश को शुरू करते हुए हमें अपने आधार बना लेने चाहिएं, और स्वप्नों के क्षेत्र का सर्वेक्षण करना चाहिए। यथार्थतः स्वप्न क्या चीज हैं ? एक वाक्य में इसकी परिभाषा करना कठिन है, पर हमें एक सबकी परिचित चीज़ की बात करनी है, इसलिए परिभाषा के चक्कर में पड़ने की जरूरत नहीं। तो भी, हमें स्वप्नों की सारभूत विशेषताएं छांटनी ही चाहिएं। इन विशेषताओं का हम कैसे पता लगाएं ? जिस क्षेत्र में हम घुस रहे है, उसकी सीमाओं में जिधर भी चलो, उधर भेद ही भेद हैं—हर चीज़ दूसरी से भिन्न है। जो चीज़ सब स्वप्नों में सांझी हो, संभवतः वह ही सारभूत चीज़ है।

तो सब स्वप्नों की एक सामान्य विशेषता यह होगी कि हम स्वप्न देखते समय सोए रहते हैं। सीधी बात है कि स्वप्न नींद के समय का मस्तिष्क का जीवन है, ऐसा जीवन है जिसमें हमारे जागृत जीवन से कुछ सादृश्य होते हैं, और साथ ही, उससे बहुत अधिक भिन्नता होती है। यह अरस्तू की परिभाषा है। शायद स्वप्न और नींद का एक दूसरे से इससे भी नजदीकी संबंध है। स्वप्न हमें जगा सकता है; जब हम स्वतः जाग जाते हैं, या नींद से बलात् जागते है, तब प्रायः हम स्वप्न देख रहे होते है। इस प्रकार स्वप्न सोने और जागने के बीच की अवस्था प्रतीत होती है। इसलिए हमें नींद पर ही ध्यान देना होगा। तो नींद क्या है ?

यह एक कार्यिकीय या जैविकीय समस्या है, जिसके बारे में अभी बड़ा विवाद

है। हम किसी निश्चित उत्तर पर नहीं पहुंच सकते। पर मैं समझता हूं कि हम नींद की एक मनोवैज्ञानिक विशेषता बताने की कोशिश कर सकते हैं। नींद एक ऐसी अवस्था है जिसमें मैं बाहर की दुनिया से कोई वास्ता नहीं रखता, और मैंने उससे अपनी सारी दिलचस्पी हटा ली है। मैं बाहरी दुनिया से हटकर और उससे पैदा होने वाले सब उद्दीपकों से विमुख होकर सोता हूं। इसी तरह, जब मैं इस दुनिया से थक जाता हूं, तब सो जाता हूं। जब मैं सोने लगता हूं, तब इससे कहता हूं : "मुझे शांति से रहने दो, क्योंकि मैं सोना चाहता हूं।" बच्चा इससे ठीक उलटी बात कहता है : "मैं अभी नहीं सोऊंगा, मैं थका नहीं हूं। मैं और खेलना चाहता हूं।" इस तरह नींद का जैविकीय उद्देश्य स्वास्थ्य-लाभ या ताजगी प्रतीत होता है। और इसकी मनोवैज्ञानिक विशेषता बाहरी दुनिया में दिलचस्पी न रखना प्रतीत होती है। मालूम होता है कि जिस दुनिया में हम इतनी अनिच्छा से आए थे, उससे हमारा संबंध तभी सहने योग्य होता है, जब बीच-बीच में हम उससे अलग होते रहे; इसलिए हम कुछ-कुछ समय बाद उस अवस्था में चले जाते है, जिसमें हम दुनिया में आने से पहले थे, अर्थात् हम गर्भावस्था के जीवन में आ जाते है। चाहे जैसे कहिए, पर हम बिल्कुल वैसी ही अवस्थाएं—गर्मी, अंधेरा और उद्दीपन का अभाव जो उस अवस्था की विशेषताएं हैं,—लाना चाहते हैं। हममें से कुछ लोग सिकुड़कर वैसे ही गेंद की तरह लुढ़कते है, जैसे गर्भावस्था में। ऐसा मालूम होता है कि जैसे हम लोग पूरी तरह इस दुनिया के नहीं है, बल्कि सिर्फ़ दो-तिहाई अंश में इसके हैं। हमारा एक-तिहाई भाग अभी बिलकुल पैदा ही नहीं हुआ। सवेरे हर बार जागने के समय मानो हम नया जन्म लेते है। सच बात तो यह है कि हम नींद से जागने की अवस्था की चर्चा इन्हीं शब्दों में करते हैं। हम अनुभव करते है, "मानो हमारा नया जन्म हुआ है!" और ऐसा कहते हुए नव-जात शिशु के सामान्य संवेदनों के बारे में हमारा विचार शायद बिलकुल ग़लत होता है। इसके विपरीत यह माना जा सकता है कि वह बहुत बेचैनी अनुभव करता है। फिर जन्म का उल्लेख करते हुए हम कहा करते हैं कि "दिन का प्रकाश देखना।"

यदि नींद का यही स्वरूप है, तब तो स्वप्न इसके अन्तर्गत ज़रा भी नहीं आते, बल्कि वे इसमें अप्रिय मेहमान-से प्रतीत होते है, और सचमुच ही हम यह मानते हैं कि बिना स्वप्नों की नीद सबसे अच्छी और एकमात्र ठीक नींद है। नींद में कोई मानसिक कार्य नहीं होना चाहिए। यदि ऐसा कोई कार्य होता रहता है तो उतनी मात्रा तक हम प्रसव से पहली वाली सच्ची शांति की अवस्था में नहीं पहुंच सके हैं। हम मानसिक व्यापार के कुछ अंशों से पूरी तरह नहीं बच सके है, और स्वप्न की क्रिया इन अंशों को ही सूचित करती है। इस अवस्था में सचमुच यही मालूम होता है कि स्वप्नों का कोई अर्थ होना आवश्यक नहीं है। ग़लतियों

के बारे में स्थिति कुछ और थी, क्योंकि वे कम से कम जागने के जीवन में दिखाई देने वाली क्रियाएं तो थीं; पर यदि मैं सो जाता हूं और मैंने मानसिक व्यापार को पूरी तरह बंद कर दिया है (सिवाय उन अंशों के जिन्हें मैं नहीं दबा सका) तो कुछ आवश्यक बात नहीं कि उनका कोई अर्थ हो। सच तो यह है कि ऐसे किसी अर्थ का मैं कोई उपयोग भी नहीं कर सकता, क्योंकि मेरा बाकी मन सोया पड़ा है। तब यह वस्तुतः सिर्फ बीच-बीच में प्रबल हो जाने वाली प्रतिक्रियाओं का, ऐसी मानसिक घटनाओं का ही मामला रह जाता है जो शारीरिक उद्दीपन से पैदा होती हैं। इसलिए स्वप्न जागते हुए जीवन के मानसिक व्यापार के अवशेष हैं जो नींद को भंग करते हैं, और हमें इस तरह के विषय को, जो मनोविश्लेषण के काम के लिए बिल्कुल बेकार है, तुरंत छोड़ देने का पक्का इरादा कर लेना चाहिए।

परंतु अनावश्यक या बेकार होते हुए भी स्वप्न होते तो हैं ही, और हम उनके अस्तित्व के कारण ढूंढ़ने की कोशिश कर सकते हैं। मानसिक जीवन नींद में क्यों नहीं चला जाता? शायद इस कारण कि कोई ऐसी चीज़ और मौजूद है जो मन को शांति से नहीं रहने देती। उद्दीपन इसपर क्रिया कर रहे हैं और इनसे वह अवश्य प्रतिक्रिया करेगा। इसलिए स्वप्न नींद में मन पर क्रिया करने वाले उद्दीपकों पर मन की प्रतिक्रिया का प्रकार है। यहां हमें स्वप्नों को समझने के मार्ग की एक संभावना दिखाई देती है। अब हम विभिन्न स्वप्नों में यह ढूंढ़ने की कोशिश कर सकते हैं कि नींद भंग करने का यत्न करने वाले उद्दीपक कौन-से हैं, जिनपर होने वाली प्रतिक्रिया स्वप्नों का रूप लेती है। ऐसा करने पर सब स्वप्नों की पहली सामान्य विशेषता हमारे हाथ में आ जाएगी।

क्या उनकी कोई और सामान्य विशेषता है? हां, एक और असंदिग्ध विशेषता है, पर फिर भी उसे पकड़ना और उसका वर्णन करना कठिन है। नींद में मानसिक प्रक्रमों का स्वरूप जागते समय के प्रक्रमों से बिल्कुल भिन्न होता है। स्वप्नों में हम बहुत-से अनुभवों में से गुजरते हैं, जिनपर हम पूरा विश्वास करते हैं जबकि वास्तव में हम शायद एक ही नींद का बाधक उद्दीपक अनुभव करते हैं। हमारे अनुभव अधिकतर नेत्रगोचर या आंख से दीखने वाले प्रतिबिंबों के रूप में होते हैं। उनके साथ भावना और विचार भी मिले हो सकते हैं, और अन्य ज्ञानेन्द्रियां भी अपना कार्य करती हो सकती हैं, किंतु स्वप्नों का अधिकांश नेत्रगोचर प्रतिबिंबों का ही बना होता है। कोई स्वप्न सुनाने में कठिनाई का एक कारण यही होता है कि हमें इन प्रतिबिंबों को शब्दों के रूप में बदलना होता है। स्वप्न देखने वाला हमसे बहुत बार कहता है, "मैं उसकी तस्वीर बना सकता हूं, पर उसे शब्दों में कहना नहीं जानता!" यह यथार्थतः मानसिक क्षमता में कमी नहीं है, जैसी कि किसी दुर्बल मन वाले व्यक्ति और प्रतिभाशाली आदमी के अंतर में दिखाई देती

है—यह अंतर कुछ गुणात्मक[1] अंतर है, परंतु ठीक-ठीक यह कहना कठिन है कि क्या अंतर है। जी० टी० फेकनर ने एक बार यह सुझाव रखा था कि जिस रंगमंच पर (मस्तिष्क के भीतर) स्वप्न का नाटक खेला जाता है वह जागते समय के विचारों के जीवन के रंगमंच से भिन्न होता है। यह ऐसा कथन है जो सचमुच हमारी समझ में नहीं आता; न हमें यह पता चलता है कि यह हमें क्या जतलाना चाहता है। पर इससे विचित्रता का वह प्रभाव सचमुच सूचित हो जाता है जो अधिकतर स्वप्नों से हमारे ऊपर पड़ता है। दूसरे, स्वप्न की क्रिया और संगीत से अनभिज्ञ व्यक्ति द्वारा वादन की तुलना यहां व्यर्थ हो जाती है क्योंकि पियानो पर अकस्मात उंगली लगने पर भी निश्चित रूप से वही स्वर बजेंगे, चाहे लयें वे नहीं होंगी। स्वप्नों की इस दूसरी सामान्य विशेषता को हम सावधानी से अपने ध्यान में रखेंगे, चाहे हम इसे समझ न सकें।

क्या कोई और भी गुण सभी स्वप्नों में सामान्य रूप से होते हैं? मेरी समझ में, कोई नहीं होता। जिधर देखता हूं उधर ही मुझे उनमें अन्तर दिखाई देते हैं; और अन्तर भी हर बात में प्रतीत होने वाली अवधि में, सुनिश्चितता में, भावों के कार्य में, मन में उनके स्थायित्व में इत्यादि। पर किसी उद्दीपक को दूर रखने के लिए किये जाने वाले बाध्यताकारक प्रयत्न में, जो मामूली भी है और बीच-बीच में प्रबल भी हो उठता है, हमें स्वभावतः जिस चीज़ की आशा करनी चाहिए, यह वास्तव में वह चीज़ नहीं है। लम्बाई की दृष्टि से कुछ स्वप्न बहुत ही छोटे होते हैं, जिनमें सिर्फ़ एक प्रतिबिंब या बहुत थोड़े या एक ही विचार, और कभी-कभी तो एक ही शब्द, होता है। कुछ स्वप्नों में वस्तु विशेष रूप से अधिक होती है। एक पूरी की पूरी कथा उनमें प्रदर्शित होती है, और बहुत अधिक देर तक चलते रहे मालूम होती है। कुछ स्वप्न इतने स्पष्ट होते हैं जिनके वास्तविक अनुभव, यहां तक कि जागने के कुछ समय बाद तक हमें यह स्पष्ट नहीं होता कि वे स्वप्न ही थे; और कुछ स्वप्न बहुत ही हलके, धुंधले और अस्पष्ट होते हैं। एक ही स्वप्न में कुछ हिस्से बहुत अधिक सजीव होते है, और उनके बीच-बीच में ऐसे अस्पष्ट अंश आते जाते हैं कि वह सारा ही प्रायः धोखा मालूम होता है। फिर, कुछ स्वप्न सर्वथा सुसंगत या कम से कम सुसम्बद्ध या समझदारी से भरे हुए या बहुत ही अधिक सुन्दर होते हैं। कुछ स्वप्न मिले-जुले, असम्बद्ध, कमज़ोर दिखाई देने वाले, बेहूदे या प्रायः बिल्कुल पागलपन के होते हैं। कुछ स्वप्नों का हमपर कोई प्रभाव नहीं मालूम होता, और कुछ स्वप्नों में प्रत्येक भाव अनुभव होता है; इतना कष्ट होता है कि आंसू आ जाते हैं, इतना भय लगता है कि हम जाग जाते हैं, आश्चर्य होता है, आनन्द होता है इत्यादि। बहुत-से स्वप्न जागने के कुछ ही

---

१. Qualitative.

समय के बाद भूल जाते हैं, और कुछ सारे दिन याद रहते हैं, और धीरे-धीरे उनकी याद हलकी और अस्पष्ट होती जाती है। कुछ स्वप्न ऐसे सजीव रहते हैं (जैसे बचपन के स्वप्न) कि तीस साल बाद भी वे हमें इतने साफ रूप में याद रहते हैं जैसे वे हाल के ही अनुभव हैं। हो सकता है कि स्वप्न आदमियों की ही तरह, एक बार दिखाई दें और फिर कभी नहीं लौटें; या कोई आदमी एक ही बात स्वप्न में उसी रूप या थोड़े-बहुत भिन्न रूप में बार-बार देखता रहे। संक्षेप में, मानसिक व्यापार के ये अवशेष रात के समय अनन्त घटनाओं के अधीश्वर होते हैं, और ऐसी हर चीज़ पैदा कर सकते हैं जो दिन में मन पैदा कर सकता है—बस इतना ही है कि यह कभी भी उनके समान यथार्थ नहीं होतीं।

स्वप्नों की इन विविधिताओं का कारण तलाश करने के लिए हम यह कल्पना कर सकते हैं कि वे सोने और जागने के बीच की विभिन्न अवस्थाओं, अधूरी नींद के विविध स्तरों, के सूचक हैं। ठीक है; पर तब, मन जागने की अवस्था के जितना-जितना पास पहुंचता जाए, उतना-उतना ही, न केवल स्वप्न-कृति के मूल्य, वस्तु और स्पष्टता में वृद्धि होनी चाहिए, बल्कि यह बोध भी बढ़ते जाना चाहिए कि यह एक स्वप्न है, और ऐसा न होना चाहिए कि स्वप्न में एक स्पष्ट और समझ में आने वाले अंश के साथ-साथ एक समझ में न आने वाला या अस्पष्ट अंश हो, और उसके बाद फिर कोई अच्छा अंश आ जाए। यह निश्चित है कि मन अपनी नींद की गहराई इतनी तेजी से नहीं बदल सकता। इसलिए यह व्याख्या कुछ सहायक नहीं होती। सच बात तो यह है कि जवाब पाने का कोई छोटा रास्ता नहीं है।

फ़िलहाल हम स्वप्न के 'अर्थ' को छोड़ देंगे, और इसके बदले स्वप्नों के साधारण अंश पर विचार करके उनके स्वरूप को अधिक अच्छी तरह समझने का मार्ग प्रशस्त करने की कोशिश करेंगे। स्वप्नों का नींद से जो संबंध है, उससे हमने यह निष्कर्ष निकाला है कि स्वप्न नींद खराब करने वाले उद्दीपनों की प्रतिक्रिया है। जैसा कि मैं बता चुका हूं एकमात्र इसी प्रश्न पर यथार्थ प्रायोगिक मनोविज्ञान हमारी मदद कर सकता है। यह इस तथ्य का प्रमाण प्रस्तुत करता है कि नींद के समय जो उद्दीपक प्रभाव डालते हैं, वे स्वप्नों में दिखाई देते हैं। इस विषय में बहुत-सी जांच-पड़ताल की गई है, और उसकी पराकाष्ठा मोर्ली वोल्ड की जांच-पड़ताल में हुई, जिसका मैंने पहले जिक्र किया है। हम लोग अपने कभी-कभी के परीक्षणों से उनके परिणामों की पुष्टि कर सकते हैं। मैं आपको उनमें से शुरू के कुछ परीक्षण बताऊंगा। मॉरी ने ये परीक्षाएं स्वयं अपने ऊपर की थीं। स्वप्न देखते हुए उसे कुछ यू डी कोलोन सुंघा दिया गया, जिसपर उसने स्वप्न में देखा कि वह काहिरा में जोहन मैरिया फैरिना की दूकान में है, और इसके बाद उसने कुछ पागलपन के साहसी कार्य किए; फिर किसीने उसकी गरदन पर ज़रा-

सा कुछ चुभो दिया, और उसे पलस्तर लगाए जाने का और एक डाक्टर का स्वप्न आया, जिसने बचपन में उसका इलाज किया था। इसके बाद, उन्होंने उसके माथे पर एक बूंद पानी डाला और वह तुरंत इटली पहुंच गया जहां वह पसीने-पसीने हो रहा था, और ओरविएतो की सफ़ेद शराब पी रहा था।

परीक्षण की अवस्थाओं में पैदा किए गए इन स्वप्नों के बारे में जो खास बात है वह 'उद्दीपक'-स्वप्नों की एक और श्रेणी में शायद और भी अधिक स्पष्ट हो जाएगी। ये तीन स्वप्न हैं जिनका एक कुशल प्रेक्षक हिल्डब्रांट ने वर्णन किया है, और ये तीनों अलार्म घड़ी की ध्वनि के प्रतिक्रिया रूप हैं :

"वसंत ऋतु के एक प्रातःकाल मैं घूमने जा रहा हूं और खेतों में से गुजरता हूं, जिनमें अभी हरियाली शुरू ही हुई है, और पास के एक गांव में पहुंचता हूं, और देखता हूं कि उसके बहुत सारे निवासी छुट्टी की पोशाकें पहने हुए चर्च जा रहे हैं, और उनके हाथों में धार्मिक गीतों की पुस्तकें हैं। बेशक यह रविवार है, और सुबह की प्रार्थना शुरू होने ही वाली है। मैं इसमें शामिल होने का निश्चय करता हूं पर क्योंकि मैं बहुत गर्म हो गया हूं, इसलिए यह सोचता हूं कि मैं पहले चर्च के चारों ओर वाले आंगन में ठंडा हो लूं। वहां कुछ कब्र-लेखों को पढ़ते हुए मैं घंटा बजाने वाले आदमी को मीनार पर चढ़ता सुनता हूं जहां अब बहुत ऊंचाई पर मुझे गांव का छोटा-सा घंटा दिखलाई पड़ता है, जो प्रार्थना शुरू होने का संकेत करेगा। कुछ समय तक और वह मौन रहता है, फिर झूलने लगता है, और एका-एक साफ़ और कान बेधने वाले स्वर में घंटा बजने लगता है। उसकी ध्वनि इतनी साफ और बेधने वाली है कि मेरी नींद टूट जाती है पर घंटे की ध्वनि अलार्म घड़ी से आ रही है।"

प्रतिबिंबों का एक और मेल है: "यह शिशिर ऋतु का चमकीला दिन है और सड़कों पर गहरी बर्फ़ पड़ी हुई है। मैंने बर्फ़गाड़ी की यात्रा में शामिल होने का वचन दिया है। बहुत देर तक प्रतीक्षा करने के बाद मुझे बताया जाता है कि बर्फ़-गाड़ी दरवाजे पर है। इसके बाद उसके अंदर बैठने की तैयारियां होती हैं; समूर का गलीचा बिछा दिया जाता है और मोजे लाए जाते हैं और अंत में मैं अपनी जगह बैठ जाता हूं; पर अब भी कुछ देर है और घोड़े रवाना होने के लिए संकेत की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इसके बाद लगामों को झटका दिया जाता है, और छोटी-छोटी घंटियां, जो बुरी तरह हिल उठी हैं, अपना परिचित संगीत इतने ऊंचे स्वर से शुरू कर देती हैं कि क्षण भर में स्वप्न का जाल टूट जाता है। यहां भी यह अलार्म घड़ी की तीखी आवाज़ के सिवा कुछ नहीं है।"

अब तीसरा उदाहरण लीजिए: "मैं रसोई बनाने वाली नौकरानी को देखता हूं, जिसके पास एक दूसरी के ऊपर रखी हुई दर्जनों प्लेटें हैं वह भोजन-कक्ष के रास्ते पर जा रही है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि उसके हाथों में चीनी के

बर्तनों का जो पिरामिड है, वह धम से नीचे आने वाला है। मैं उसे चेतावनी देता हूं : 'सावधान, तुम्हारी सारी प्लेटें जमीन पर गिर पड़ेंगी।' मुझे वही सदा वाला उत्तर मिलता है : 'हमें चीनी के बर्तनों को इस तरह ले जाने की आदत पड़ी हुई है,' इत्यादि; उसके चेहरे पर उत्सुकता है। मैं उसके पीछे-पीछे जाता हूं। मैंने पहले ही सोचा था—कि अगली बात यह होगी—वह देहली पर ठोकर खाती है, चीनी के बर्तन गिर जाते हैं, और टुकड़े-टुकड़े होकर जमीन पर फैल जाते हैं, लेकिन मैं शीघ्र ही जान जाता हूं कि वह खत्म न होने वाली लंबी ध्वनि वास्तव में बर्तन टूटने की ध्वनि नहीं है, बल्कि अलार्म घड़ी के नियमित बजने की आवाज़ है, जैसा कि अंत में जागने पर मैं देखता हूं।"

ये स्वप्न बड़े सुन्दर तथा बिल्कुल अर्थयुक्त हैं और ऐसे असम्बद्ध नहीं है, जैसे कि स्वप्न प्रायः होते हैं। इस आधार पर हमें उनसे कोई विवाद नहीं है। उन सबमें सामान्य चीज़ यह है कि प्रत्येक अवस्था में स्थिति शोर से पैदा होती है, और जागने पर स्वप्न देखने वाला पहचान लेता है कि यह अलार्म घड़ी की आवाज़ है। इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वप्न कैसे पैदा होता है, पर यहां इससे कुछ अधिक बात दिखाई देती है। स्वप्न में घड़ी नहीं पहचानी जाती, वह उसमें दिखाई भी नहीं देती,पर घड़ी के शोर के स्थान पर दूसरा शोर आ जाता है; जो उद्दीपक नींद में गड़बड़ डालता है, उसका कुछ रूप बन जाता है पर प्रत्येक उदाहरण में भिन्न रूप बनता है। ऐसा क्यों होता है ? इसका कोई उत्तर नहीं; यह बिल्कुल मनमानी बात मालूम होती है। पर स्वप्न को समझने के लिए आवश्यक है कि हम इस बात का कारण बता सकें कि अलार्म घड़ी द्वारा पेश किए गए उद्दीपन से वही शोर क्यों बना, कोई और क्यों नहीं बना। इसी तरह, हमें मॉरी के परीक्षणों पर यह ऐतराज उठाना है कि यद्यपि यह स्पष्ट है कि सोने वाले पर प्रयुक्त उद्दीपक स्वप्न में अवश्य दिखाई देता है, पर उसके परीक्षणों से इस प्रश्न की व्याख्या नहीं होती कि वह ठीक उसी रूप में क्यों प्रकट होता है, क्योंकि नींद बिगाड़ने वाले उद्दीपक की प्रकृति से उस रूप की व्याख्या नहीं होती। और फिर, मॉरी के परीक्षणों में उद्दीपक के सीधे परिणाम के साथ और बहुतसारी स्वप्न-सामग्री थी, जैसे यू डी कोलोन वाले स्वप्न में पागलों के-से साहसिक काम, जिनका कोई कारण समझ में नहीं आता।

अब आप यह समझ सकते हैं कि जो स्वप्न मनुष्य को जगा देते हैं; उनमें ही बाहरी नींद बिगाड़ने वाले उद्दीपकों के प्रभाव को जानने का सबसे अच्छा मौका है। दूसरे अधिकतर उदाहरणों में यह काम अधिक कठिन होगा। सब स्वप्नों में हमारी नींद नहीं खुलती, और यदि सवेरे हमें पिछली रात का स्वप्न याद है, तो हम यह कैसे कह सकते हैं कि शायद इसका कारण रात में क्रिया करनेवाला नींद का विघातक उद्दीपक था ? एक बार मुझे इस तरह के ध्वनि-उद्दीपक की घटना बाद में

स्थापित करने में सफलता हुई थी, पर उसका कारण उसकी विशेष परिस्थितियां थीं। एक बार मैं टाइरोलीज पर्वत के किसी स्थान पर सवेरे जागा तो मुझे यह ध्यान था कि मैंने स्वप्न में पोप के मर जाने की घटना देखी है। मैं अपने स्वप्न की कुछ भी व्याख्या न कर सका पर बाद में मेरी पत्नी ने मुझसे पूछा, "क्या आपने आज बहुत सवेरे सब चर्चों और उपासना-घरों में बजते हुए घंटों का भयंकर शोर सुना था ?" नहीं, मैंने कुछ नहीं सुना था। मेरी नीद बहुत गहरी होती है, पर उसके यह बताने से मैं अपना स्वप्न समझ गया। क्या यह हो सकता है कि इस तरह के उद्दीपक सोने वाले में स्वप्न पैदा कर दें और बाद में सोने वाले को सुनाई भी न दें ? हाँ, बहुत बार कर सकते है और बहुत बार नहीं भी कर सकते। यदि हमें उद्दीपक की कोई जानकारी न मिल सके तो हम इस विषय में निश्चित नहीं हो सकते। और इसके अलावा भी, हमने नीद बिगाड़ने वाले बाहरी उद्दीपकों का कोई मूल्याकंन करना छोड़ दिया है, क्यों कि हम जानते हैं कि उनसे स्वप्न के एक बहुत छोटे-से हिस्से की ही व्याख्या होती है, सारी स्वप्न-प्रतिक्रिया की नहीं।

इस कारण हमें इस सिद्धांत को पूरी तरह छोड़ देने की आवश्यकता नहीं। इसकी जांच करने का एक और भी तरीका हो सकता है। स्पष्ट है कि यह बात महत्वहीन है कि किस चीज से नींद बिगड़ती है और मन में स्वप्न पैदा होता है। यदि हमेशा यह ज़रूरी नहीं कि यह कोई बाहरी चीज़ ही हो जो किसी ज्ञानेन्द्रिय पर उद्दीपन के रूप में क्रिया करती है, तो यह संभव है कि इसके बदले भीतरी अंगों में से कोई उद्दीपक क्रिया करता हो, जिसे कायिक[1] उद्दीपक कहते हैं। यह कल्पना सत्य के बहुत नजदीक मालूम होती है, और साथ ही स्वप्नों के पैदा होने के बारे में प्रचलित आम विचार से भी मेल खाती है, क्योंकि आम तौर से कहा जाता है कि स्वप्न पेट से पैदा होते हैं। बदकिस्मती से, यहां फिर हमें मानना होगा कि बहुत सारे उदाहरणों में रात के समय क्रियाशील कायिक उद्दीपन के विषय में जागने के बाद जानकारी नहीं मिल सकती, और इस कारण इसे प्रमाणित नहीं किया जा सकता। पर हम इस तथ्य को आंख से ओझल नहीं करेंगे कि बहुत-से विश्वसनीय अनुभवों से इस विचार की पुष्टि होती है कि स्वप्न कायिक उद्दीपनों से उत्पन्न हो सकते हैं। कुल मिलाकर, इसमें कोई शक नहीं कि भीतरी अंगों की अवस्था का स्वप्नों पर प्रभाव पड़ता है। बहुत-से स्वप्नों की वस्तु का मूत्राशय के भर जाने, या जननेन्द्रियों के उत्तेजन की अवस्था, से संबंध इतना स्पष्ट है कि इसमें ग़लती की गुंजायश नहीं हो सकती। इन स्पष्ट उदाहरणों के बाद हम दूसरे उदाहरणों पर आते हैं, जिनमें, यदि स्वप्नों की वस्तु के आधार पर फैसला किया जाए तो कम से कम हमारा यह संदेह करना उचित है कि ऐसे कुछ कायिक उद्दी-

---

१. Somatic.

पन कार्य करते रहे हैं, क्योंकि इस वस्तु में कुछ ऐसी चीज है जिसे इन उद्दीपनों का स्पष्ट रूप या निरूपण या निर्वचन माना जा सकता है। शरनर ने, जिसने स्वप्नों के बारे में खोज की थी (१८६१), इस विचार का प्रबल समर्थन किया है। वह स्वप्नों का जन्म शारीरिक उद्दीपनों से मानता आया है, और उसने इसके कुछ उत्तम उदाहरण दिए हैं। उदाहरण के लिए वह एक स्वप्न में देखता है कि 'दो पंक्तियों में सुंदर लड़के खड़े हैं, जिनके बाल सुंदर है और चेहरे नाजुक हैं; वे एक दूसरे को ललकार रहे हैं, आपस में लड़ रहे हैं, एक दूसरे को पकड़ रहे हैं, और फिर छोड़कर अपने पहले वाले स्थानों में पहुंच जाते हैं, और फिर वही सारा क्रम शुरू हो जाता है।' लड़कों की दो कतारों का अर्थ उसने दांतों की पंक्तियां बताया था जो अपने आप में तर्कसंगत है, और तब इसकी पूरी तरह पुष्टि हुई मालूम होती है जब इस दृश्य के बाद स्वप्न देखने वाला 'अपने जबड़े में से एक लंबा दांत खींच लेता है।' इसी प्रकार 'लंबे, संकरे, घुमावदार मार्गों' का यह अर्थ, कि वे आंतों में उत्पन्न उद्दीपन से पैदा हुए हैं, ठीक मालूम होता है, और शरनर के इस कथन की पुष्टि करता है कि स्वप्न मुख्यतः उस अंग का रूप उस जैसे पदार्थों द्वारा प्रस्तुत करने की कोशिश करते हैं, जिससे उद्दीपन पैदा होता है।

इसलिए हमें यह मानने के लिए तैयार रहना चाहिए कि स्वप्नों में भीतरी उद्दीपक वही कार्य कर सकते हैं जो बाहरी उद्दीपक। बदकिस्मती से इस तथ्य के महत्व पर भी वे ही ऐतराज किए जा सकते हैं। बहुत सारे उदाहरणों में, कायिक उद्दीपनों के कारण, स्वप्न होने की बात अनिश्चित ही रहेगी या प्रमाणित नही की जा सकेगी। कुछ स्वप्नों से ही यह संदेह पैदा होता है, सबसे नहीं, कि भीतरी अंगों से आने वाले उद्दीपनों का उन स्वप्नों के पैदा होने से कुछ संबंध है; और अंतिम बात यह है कि जैसे बाहरी संवेदनात्मक उद्दीपन से स्वप्न पर होने वाली उसकी सीधी प्रतिक्रिया की ही व्याख्या होती है, उसके और किसी अंश की नहीं, वैसे ही भीतरी कायिक उद्दीपन से भी और किसी बात की व्याख्या नहीं होती। स्वप्न के शेष सारे हिस्से के उद्गम का कुछ भी पता नहीं चलता।

पर अब हमें स्वप्न-जीवन की एक ऐसी विशेषता की ओर ध्यान देना है जो इन उद्दीपनों की क्रिया पर विचार करते समय सामने आती है। स्वप्न उद्दीपन को फिर वैसे का वैसा ही पेश नहीं कर देता, बल्कि उसे स्पष्ट करता है, बदलता है, एक सिलसिले में जमा देता है, या उसके स्थान पर कोई और चीज़ ला रखता है। स्वप्न-तंत्र का यह पहलू हमें अवश्य दिलचस्प लगेगा, क्योंकि संभव है कि यह हमें स्वप्न के सच्चे स्वरूप के अधिक नजदीक पहुंचा दे। मनुष्य के उत्पादन का क्षेत्र जरूरी तौर से उस वातावरण तक सीमित नहीं होता, जिसमें वह किया जाता है। उदाहरण के लिए, शेक्सपियर का 'मैकबेथ' उस राजा के गद्दी पर बैठने पर एक सामयिक नाटक के रूप में लिखा गया था, जिसने तीन राज्यों के राजमुकुटों

को एक साथ धारण किया था, पर क्या यह ऐतिहासिक अवसर नाटक की सारी कथावस्तु में व्यापक है, या उसकी भव्यता और रहस्यमयता की व्याख्या करता है ? शायद इसी तरह, सोने वाले में क्रिया कर रहे बाहरी और भीतरी उद्दीपन स्वप्न के अवसर मात्र हैं और उनसे हमें इसके सच्चे स्वरूप का दर्शन नहीं होता।

सब स्वप्नों में मिलने वाली दूसरी बात, अर्थात् मानसिक जीवन में उनकी विशेषता या विलक्षणता को, एक ओर तो, पकड़ना बड़ा कठिन है और दूसरी ओर, इससे आगे जांच-पड़ताल के लिए कोई रास्ता मिलता नहीं मालूम होता। स्वप्नों में हमारे अधिकतर अनुभव नेत्रगोचर प्रतिबिंबों के रूप में होते हैं। क्या उद्दीपकों से इनकी व्याख्या की जा सकती है ? क्या वास्तव में हम उद्दीपकों को ही अनुभव करते हैं ? यदि ऐसा है तो अनुभव नेत्रगोचर अर्थात् आंख से ग्रहण किया जाने वाला, क्यों होता है ? जब कि ऐसा बहुत ही कम उदाहरणों में हो सकता है कि हमारी आंख पर किसी उद्दीपक ने क्रिया की हो ? अथवा, क्या यह सिद्ध किया जा सकता है कि जब हम बोलने का स्वप्न देखते हैं, तब कोई बातचीत या बातचीत से मिलती-जुलती ध्वनि हमारे कानों में पड़ी होती है ? मैं बिना किसी दुविधा के इसे असंभव कहता हूं।

अब, यदि हम स्वप्नों की सामान्य विशेषताओं से विचार शुरू करके और आगे नहीं बढ़ सकते, तो आइये, अब उनकी भिन्नताओं पर विचार करने की कोशिश करें। प्रायः स्वप्न अर्थहीन, मिले-जुले, खिचड़ी-से और बेतुके होते हैं, पर फिर भी कुछ स्वप्न समझदारी वाले, संयत और तर्क-संगत होते हैं। यह देखना चाहिए कि ये समझदारी वाले स्वप्न उन स्वप्नों को स्पष्ट करने में हमारी कुछ सहायता कर सकते हैं या नहीं जो अर्थहीन हैं। मैं आपको सबसे ताजा तर्क संगत स्वप्न सुनाऊंगा, जो मुझे एक नौजवान ने सुनाया है : "मैं कार्न्टनरस्ट्रासे में घूमने गया और वहां क्ष महाशय से मिला। कुछ देर उसका साथ देने के बाद मैं एक चाय-घर में गया। दो महिलाएं और एक सज्जन और मेरी मेज पर बैठे गये। पहले मैं परेशान हुआ, और मैंने उनकी ओर न देखा, पर बाद में मैंने उनकी ओर नज़र डाली और देखा वे बहुत अच्छे थे।" इसपर स्वप्न देखने वाले ने यह बताया कि पिछली शाम को वह सचमुच कार्न्टनरस्ट्रासे में, जो उसका आमतौर से जाने का रास्ता है, घूम रहा था, और वहां वह क्ष महाशय से मिला था। स्वप्न का दूसरा हिस्सा किसी बात का सीधा स्मरण नहीं था, पर कुछ समय पहले की एक घटना से थोड़ा मिलता-जुलता था। अब एक और सादा स्वप्न देखिए, जो एक महिला का है। उसका पति उससे कहता है : "क्या तुम्हारी राय में हमें पियानो की 'ट्यूनिंग' (समस्वरण) नहीं करा लेना चाहिए ?" और वह उत्तर देती है : "बिल्कुल बेकार है, क्योंकि चाभियों[1] पर नया चमड़ा लगना जरूरी है।" यह

१. Hammers.

स्वप्न उस बातचीत की आवृत्ति है, जो उसमें और उसके पात में स्वप्न से पहले दिन लगभग इन्हीं शब्दों में हुई थी। तो इन दो भावनाहीन स्वप्नों से हमें क्या पता चलता है? सिर्फ़ इतना ही, कि उनमें दैनिक जीवन की या उससे संबंधित बातों की स्मृतियां होती हैं। यदि यह बात निरपवाद रूप से सब स्वप्नों के बाद में कही जा सकती, तो वह भी कुछ महत्व की होती, पर उसका कोई सवाल ही नहीं है। यह विशेषता भी बहुत ही थोड़े स्वप्नों में होती है। अधिकतर स्वप्नों में पहले दिन की बातों से कोई संबंध नहीं होता, और अर्थहीन तथा बेतुके स्वप्नों पर भी इससे कोई रोशनी नही पड़ती। हम इतना ही जानते हैं कि हमारे सामने एक नई समस्या आ गई है। इतना ही नहीं कि हम स्वप्न का अर्थ जानना चाहते हैं, बल्कि यदि वह स्पष्ट हो, जैसा कि हमारे उदाहरणों में है, तो हम यह भी जानना चाहते हैं कि जो बात हमें मालूम है और हाल में ही हमारे साथ हुई है, उसे हम किस कारण और किस उद्देश्य से स्वप्न में दोहराते है।

मैं समझता हूं कि यहां तक हमने जिस तरह की कोशिशें की हैं, उन्हें आगे जारी रखने से जैसे मैं ऊब गया हूं वैसे ही आप भी ऊब गये होंगे। इससे यही प्रकट होता है कि अधिक से अधिक दिलचस्पी होने पर भी हम किसी समस्या को तब तक हल नहीं कर सकते, जब तक हमारे सामने समाधान पर पहुंचने के लिए अपनाये जाने वाले रास्ते की भी कुछ कल्पना न हो। अब तक हमें वह रास्ता नही मिला। प्रायोगिक मनोविज्ञान ने इस दिशा में सिर्फ़ इतना ही किया है कि स्वप्नों के पैदा होने में उद्दीपनों के महत्व के विषय में कुछ बहुत कीमती जानकारी दी। दर्शन से हम कुछ आशा नहीं कर सकते, वह तो बड़प्पन दिखाता हुआ यही बात दोहरा सकता है कि हमारा उद्देश्य बौद्धिक दृष्टि से तिरस्कार योग्य है, और रहस्यमय विज्ञानों से हम कोई बात लेना ही नही चाहते। इतिहास और जनता के फैसले से हमें पता चलता है कि स्वप्नों का अर्थ और महत्व होता है, और वे भविष्य के सूचक होते हैं। पर इस बात को स्वीकार करना कठिन है, और निश्चित ही, इसे प्रमाणित नहीं किया जा सकता। तो इस प्रकार, हमारे पहले प्रयत्न पूरी तरह विफल हो जाते है।

पर अचानक ही ऐसी दिशा से एक संकेत मिलता है जिसकी ओर हमने आज तक ध्यान नहीं दिया। बोलचाल की भाषा, जो निश्चित रूप से अचानक नहीं बन गई है, बल्कि मानो प्राचीन ज्ञान का खजाना है—पर इस बात को बहुत तूल न देना चाहिए—हमारी भाषा एक ऐसी चीज का अस्तित्व मानती है जिसे हमने 'दिवास्वप्नों' का नाम दे रखा है; यह नाम भी विचित्र ही है। दिवास्वप्न कल्पना होते हैं (कल्पना से उत्पन्न होते हैं)। वे आमतौर से होते रहते हैं और रोगियों की तरह स्वस्थ व्यक्तियों में भी दिखाई देते हैं, और उनका अध्ययन भी माध्यम (पात्र) द्वारा स्वयं आसानी से किया जा सकता है। इन कल्पना से उत्पन्न सृष्टियों के बारे में

सबसे विचित्र बात यह है कि उन्हें 'दिवास्वप्नों' का नाम दिया गया है, क्योंकि उनमें स्वप्नों की दो व्यापक विशेषताओं में से कोई भी बात नही है। उनके नाम से ही स्पष्ट है कि नींद से उनका कोई संबंध नहीं; और जहां तक दूसरी व्यापक विशेषता का संबंध है, उनमें कोई अनुभव या मतिभ्रम[1] भी नहीं होता; सिर्फ़ इतना होता है कि हम कुछ बातों की कल्पना कर लेते हैं। हम जानते हैं कि वे कल्पना से पैदा होते हैं, कि हम देख नहीं रहे, बल्कि सोच रहे है। ये दिवास्वप्न वय : सन्धि, अर्थात् जवानी के शुरू में या बचपन के अंत में दिखाई देते हैं, और पक्की उम्र होने तक बने रहते हैं। पक्की उम्र में या तो वे छूट जाते हैं या जीवन भर साथ रहते हैं। इन कल्पना सृष्टियों की वस्तु एक बहुत सूक्ष्म प्रेरक कारण से उत्पन्न होती है। ऐसे दृश्य या घटनाएं इनकी प्रेरक होती हैं जो या तो आकांक्षा की अहंकार-मूलक लालसाओं को, या सत्ता की लिप्सा को, अथवा पात्र की कामुक इच्छाओं को तृप्त करती हैं। नौजवानों में आकांक्षा से पूर्ण कल्पनाएं मुख्य होती है: स्त्रियों में, जिनकी आकांक्षा प्रेम संबंधी सफलता पर केंद्रित होती है, कामुक कल्पनाएं मुख्य होती हैं, पर पुरुषों में भी कामुक भावना प्रायः छिपी हुई देखी जा सकती है। वास्तव में, उनके सारे वीरता के कार्यों और सफलताओं का एकमात्र आशय स्त्रियों का हृदय जीतना होता है। अन्य दृष्टियों से इन दिवास्वप्नों में बड़ी भिन्नता होती है, और उनका अंत भी भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है। या तो वे सब कुछ समय बाद छूट जाते है, और उनके स्थान पर कोई नया स्वप्न आ जाता है; अथवा वे बने रहते हैं, और उनके चारों ओर लम्बी-लम्बी कहानियां लिपट जाती हैं; और उन्हें जीवन की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुकूल बना लिया जाता है। वे जमाने के साथ आगे बढ़ते हैं, और उनपर मानो डेट-स्टाम्प या तारीख की मोहरें लगती जाती है, जिनसे नई-नई स्थिति के असर का पता चलता है। वे काव्य-रचना का उपादान बन जाते हैं, क्योंकि लेखक अपने दिवास्वप्नों का रूप बदलकर या उन्हें छोटा-बड़ा करके उनमें से ही वे स्थितियां पैदा करता हैं, जो वह अपनी कहानियों, उपन्यासों और नाटकों के रूप में पेश करता है, पर दिवास्वप्न का नायक सदा माध्यम (पात्र) स्वयं होता है—वह या तो प्रत्यक्ष रूप में कल्पित होता है, और या किसी और के साथ प्रायः एकरूप हो जाता है।

शायद दिवास्वप्नों का यह नाम पड़ने का कारण उनका यथार्थता से स्वप्न जैसा संबंध होता है। इससे यह बात सूचित होती है कि उनकी वस्तु को उसी तरह यथार्थ नहीं माना जा सकता, जिस तरह स्वप्न की वस्तु को; पर यह भी संभव है कि उन्हें स्वप्न की किसी ऐसी मानसिक विशेषता के कारण 'स्वप्न' शब्द

---

१. Hallucination.

से पुकारा गया हो जिसे हम अभी नहीं जानते, पर जिसे खोजने की हम कोशिश कर रहे हैं। दूसरी ओर, यह भी हो सकता है कि नाम के सादृश्य को हमारा महत्वपूर्ण समझना बिलकुल ग़लत हो। इस प्रश्न का उत्तर बाद में ही दिया जा सकता है।

व्याख्यान | ६

आरम्भिक परिकल्पनाएं* और निर्वचन की विधि

इस प्रकार हमने समझ लिया कि यदि हमें स्वप्नों के बारे में अपनी गवेषणाओं को आगे बढ़ाना है तो हमें एक नए रास्ते, और एक सुनिश्चित विधि से चलना होगा। अब मैं एक सरल-सा सुझाव पेश करूंगा। हमें आगे की सारी जांच इस परिकल्पना के आधार पर करनी चाहिए कि स्वप्न कायिक घटना नहीं है, बल्कि मानसिक घटना है। आप इसका अर्थ जानते हैं, पर ऐसी कल्पना करने का औचित्य क्या है? हमारे पास कोई औचित्य नहीं, पर दूसरी ओर हमें इससे रोका भी तो नहीं जा सकता। स्थिति यह है, यदि स्वप्न कायिक घटना है तो इसका हमसे कुछ वास्ता नहीं। इस परिकल्पना के आधार पर ही हमें इसमें दिलचस्पी हो सकती है कि यह एक मानसिक घटना है। इसलिए यह देखने के लिए कि इस परिकल्पना को सत्य मान लिया जाए तो क्या होता है, हम इसे सत्य मान लेंगे। हमारे कार्य के परिणामों से यह तय होगा कि हम इस परिकल्पना पर कायम रह सकते है और इसे उचित रीति से निकाले गए अनुमान के रूप में सिद्ध कर सकते हैं या नहीं। पर हमारी इस जांच-पड़ताल का उद्देश्य ठीक-ठीक क्या है, या हमारे प्रयत्नों का लक्ष्य क्या है? हमारा उद्देश्य वही है जो सभी वैज्ञानिक प्रयासों का होता है अर्थात् घटनाओं को समझना, उनमें परस्पर सम्बन्ध स्थापित करना और अन्त में जहां कहीं सम्भव हो उनपर अपना अधिकार बढ़ाना।

इस प्रकार हम यह मानकर आगे बढ़ते हैं कि स्वप्न एक मानसिक घटना है। उस हालत में वे स्वप्न देखने वाले की कृति और वचन हैं, पर उस प्रकार की कृति और वचन हैं, जिससे हमें कुछ अर्थ पता नहीं चलता और जिसे हम समझते नहीं। अब मान लीजिए कि मैं कोई ऐसी बात कहता हूं जो आपकी समझ में नहीं आती, तो आप क्या करते है? आप मुझसे स्पष्टीकरण करने को कहते हैं, है न? तो फिर यही बात क्यों न की जाए—**स्वप्न देखने वाले से ही उसके स्वप्न का**

*Hypotheses

अर्थ क्यों न पूछा जाए ?

आपको याद होगा कि हम पहले भी ऐसी स्थिति में आ चुके हैं। इस समय हम कुछ ग़लतियों के बारे में जांच-पड़ताल कर रहे थे, और हमने बोलने की ग़लती का उदाहरण लिया था। किसीने कहा था : "तब कुछ वस्तुएं **रिफिल्ड** (Re-filled) थीं" और इसपर हमने पूछा था, नहीं, नहीं; खुशकिस्मती से, पूछने वाले **हम** नहीं थे, बल्कि दूसरे लोग थे जिनका मनोविश्लेषण से कोई वास्ता नहीं था, तो, **उन्होंने** पूछा था कि आपके इस अजीब शब्द-प्रयोग का क्या अर्थ है ? उसने तुरन्त उत्तर दिया कि मैं यह कहना चाहता था : "वह एक फिल्दी (filthy) कारबार है," पर उसने अपने आप को रोका, और उन शब्दों की जगह कुछ नए शब्द प्रयुक्त किए : "चीज वहां 'रिवील्ड' (Revealed) थी।" मैंने तब आपको बताया था कि यह पूछ-ताछ मनोविश्लेषण सम्बन्धी प्रत्येक जांच-पड़ताल का आदर्श या नमूना है, और अब आप जानते हैं कि मनोविश्लेषण की विधि यह यत्न करती है कि जहां तक हो सके, वहां तक उन व्यक्तियों को अपनी समस्याओं का स्वयं उत्तर देने का मौका दिया जाये, जिनका विश्लेषण किया जा रहा है। अतः स्वप्न देखने वाले को स्वयं अपने स्वप्न का निर्वचन हमारे सामने पेश करना चाहिए।

परंतु, जैसा कि हम जानते हैं, स्वप्नों के मामले में यह काम इतना सीधा नहीं है ! ग़लतियों के सिलसिले में यह विधि बहुत-से उदाहरणों में संभव सिद्ध हुई। जहां पूछने पर व्यक्ति ने कुछ भी बताने से इंकार कर दिया और अपने सामने पेश किए गए उत्तर का गुस्से से खंडन भी किया, वहां दूसरी विधियां थीं। स्वप्नों में पहले प्रकार के उदाहरणों का बिलकुल अभाव है। स्वप्न देखने वाला सदा यह कहता है कि मैं उसके बारे में कुछ नही जानता। वह हमारे निर्वचन का खंडन भी नहीं कर सकता, क्योंकि हमारे पास उसके सामने पेश करने के लिए कोई निर्वचन ही नहीं है। तो क्या हम अपनी कोशिश छोड़ देंगे, क्योंकि **वह** कुछ नहीं जानता और **हम** कुछ नही जानते और तीसरा व्यक्ति तो निश्चित ही कुछ नही जान सकता, इसलिए उत्तर मिलने की कोई संभावना हो ही नही सकती ? इसलिए यदि आप चाहें तो कोशिश छोड़ दीजिए, पर यदि आपका ऐसा विचार नहीं है तो आप मेरे साथ आगे चल सकते हैं, क्योंकि मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि न केवल यह बिलकुल संभव है, बल्कि बहुत अधिक संभाव्य भी है कि स्वप्न देखने वाला वास्तव में अपने स्वप्न का अर्थ ज़रूर जानता है; **हां, वह यह नहीं जानता कि वह जानता है, और इसलिए सोचता है कि वह नहीं जानता।**

यहां पहुंचने पर शायद आप मेरा ध्यान इस बात की ओर खींचेंगे कि मैं फिर एक कल्पना को बीच में ला रहा हूं, जो इस छोटे-से प्रकरण में दूसरी कल्पना है, और ऐसा करके मैं अपने इस दावे को बहुत कमजोर कर रहा हूं कि हमारे पास

आगे बढ़ने की एक विश्वसनीय विधि है। पहले यह परिकल्पना मान लें कि स्वप्न मानसिक घटनाएं हैं, और फिर यह परिकल्पना मान लें कि मनुष्यों के मन में कुछ ऐसी बातें होती हैं, जिन्हें वे जानते हैं, पर यह नहीं जानते कि वे इन्हें जानते हैं— और इसी तरह परिकल्पनाएं करते जाइए। आपको इन दोनों परिकल्पनाओं की अपनी भीतरी असंभाव्यता का ध्यान रहेगा और आप इनसे निकाले जाने वाले निष्कर्षों में सारी दिलचस्पी छोड़ बैठेंगे।

बात यह है कि मैं आपको किसी भ्रम में डालने के लिए या कोई बात आपसे छिपाने के लिए यहां नहीं लाया हूं। सच है कि मैंने यह कहा था कि मैं 'मनोविश्लेषण पर परिचयात्मक व्याख्यान' शीर्षक से कुछ व्याख्यान दूंगा, पर मेरा यह प्रयोजन नहीं था कि मैं आपके सामने चमत्कार भरी बातें पेश करूं, और यह जाहिर करूं कि तथ्य कितनी आसानी से एक दूसरे के पीछे जुड़े हुए है, और सभी तरह की कठिनाइयों को सावधानी के साथ आपसे छिपाता चलूं, बीच की खाली जगहों को भरता चलूं और संदिग्ध प्रश्नों पर बढ़ा-चढ़ाकर बातें करता चलूं, ताकि आप सहूलियत से इस विश्वास का आनंद ले सकें कि आपने कोई नई चीज सीख ली है। असल में इस तथ्य के कारण ही, कि आप लोग इस विषय में नए हैं, मुझे यह चिंता है कि मैं अपने विज्ञान का वही रूप आपके सामने रखूं जो असल में है, जिसमें इसकी सब अड़चनें और विषमताएं भी आपके सामने आएं और आपको यह भी पता चले कि यह कौन-कौन-से दावे करता है, और इसकी क्या-क्या आलोचना की जा सकती है। मैं निःसंदेह जानता हूं कि प्रत्येक विज्ञान मे यही बात होती है, और विशेष रूप से शुरू में, इसके अलावा और कुछ बात हो भी नहीं सकती। मैं यह भी जानता हूं कि दूसरे विज्ञान पढ़ाते हुए नये सीखने वाले से शुरू में इन कठिनाइयों और कमजोरियों को छिपाने की कोशिश की जाती है, पर मनोविश्लेषण में ऐसा नहीं किया जा सकता। इसलिए मैंने वास्तव मे दो परिकल्पनाएं रखी है जिनमें से एक दूसरी के भीतर है, और जिन्हें यह सब काम बहुत मेहनत का या बहुत अनिश्चित मालूम होता है, या जिन्हें अधिक निश्चितता की या अधिक साफ़ निष्कर्षों की आदत पड़ी हुई है, उन्हें मेरे साथ आगे चलने की ज़रूरत नही है। उन्हें मैं यही सलाह दूंगा कि वे मनोवैज्ञानिक समस्याओं को बिलकुल हाथ न लगाएं, क्योंकि यह ऐसा क्षेत्र है जिसमें उन्हें उतने यथार्थ और निश्चित मार्गो पर चलने का मौका नहीं मिलेगा, जिन पर चलने को वे तैयार हैं। और फिर किसी भी ऐसे विज्ञान के लिए, जो ज्ञान में कोई वास्तविक अभिवृद्धि कर सकता है, अपने अनुयायी हासिल करने की कोशिश करना और अपना प्रचार करने की कोशिश करना बिलकुल गैर जरूरी है। इसका स्वागत इसके परिणामों के आधार पर होना चाहिए, और जब तक दुनिया इसके परिणामों की ओर ध्यान देने को मज़बूर नहीं होती, तब तक यह तसल्ली से प्रतीक्षा कर सकता है।

पर आप में से जो लोग इस तरह रुकने वाले नहीं हैं, उन्हें मैं यह चेतावनी पहले ही दे देना चाहता हूं कि मेरी दोनों परिकल्पनाओं का बराबर महत्व नहीं है। पहली परिकल्पना, कि स्वप्न मानसिक घटनाएं हैं, को हम अपनी गवेषणा के परिणामों से सिद्ध कर देने की आशा करते हैं। दूसरी परिकल्पना एक और क्षेत्र में पहले ही सिद्ध की जा चुकी है, और मैंने इतना ही किया है कि उसे अपनी समस्याओं पर लागू कर लिया है।

यह परिकल्पना कि मनुष्य में ऐसा ज्ञान हो सकता है, जिसके बारे में वह यह न जानता हो कि उसमें है कहां और किस प्रसंग में सिद्ध की गई है? निश्चित रूप से यह एक बड़ा विलक्षण और आश्चर्यजनक तथ्य होगा जो मानसिक जीवन की हमारी अवधारणा को बदल देगा, और जिसके कारण छिपाने की कोई आवश्यकता नही रहेगी। प्रसंगतः यह कहा जा सकता है कि यह ऐसा तथ्य होगा जो अपने निरूपण मे ही असत्य है पर फिर भी अक्षरशः सत्य होना चाहता है। यह एक विरोधाभास है, पर छिपाने की यहां कोई कोशिश नहीं है। लोग इसे नहीं जानते या इसमें दिलचस्पी नहीं रखते तो इसमें इस तथ्य का उतना ही दोष है जितना कि हमारा, क्योंकि इन मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर ऐसे लोगों ने फैसले दे रखे हैं जिन्होंने कभी एक भी प्रेक्षण या परीक्षण नहीं किया जबकि प्रेक्षण और परीक्षण ही वास्तव में किसी निश्चित परिणाम पर पहुंचा सकते हैं।

जिस प्रमाण की मैं चर्चा कर रहा हूं, वह सम्मोहन संबंधी या हिप्नोटिक घटनाओं के क्षेत्र में प्राप्त हुआ था। १८८९ मे नान्सी में लीबोल्ट और बर्न हीम द्वारा किये गए विशेष रूप से प्रभावोत्पादक प्रदर्शनों में मैं उपस्थित था, और वहां मैने निम्नलिखित परीक्षण देखा। एक आदमी को निद्रावस्था[1] में लाया गया और इसके बाद उसे सब तरह के मतिभ्रमों के अनुभवों में से ले जाया गया। जगाये जाने पर पहले तो ऐसा मालूम हुआ कि संमोहन की नींद में जो कुछ हुआ था, उसका उसे कुछ पता ही नही था। तब बर्नहीम ने उससे सीधे शब्दों में कहा कि तुम्हारे संमोहित अवस्था में होने पर जो कुछ हुआ था, वह बताओ। उस आदमी ने कहा कि मुझे कुछ याद नही आता। परंतु बर्नहीम ने इस बात पर जोर दिया, उससे आग्रह किया और उसे विश्वास दिलाया कि वह अवश्य जानता है, और उसे अवश्य याद होगा; और तमाशा देखिए कि वह आदमी सकुचाया, सोचने लगा, और फिर जो घटनाएं उसके मन में आदेशित[2] की गई थीं, उनमे से पहली धुंधले रूप में उसे याद आ गई। उसके बाद कई और बात याद आई, और धीरे-धीरे उसकी स्मृति अधिकाधिक स्पष्ट और पूर्ण होती गई और अंत में उसने सारी बातें बता दीं—एक भी बात नहीं छोड़ी। बीच में उसे कही से कुछ पता नही चला था, लेकिन आखिरकार

---

१. Somnambulism. २. Suggested

उसे सब कुछ अपने आप ही याद आ गया था; इसीलिए हमारा यह निष्कर्ष निकालना उचित ही है कि ये याद की हुई बातें शुरू से उसके मन में थीं, सिर्फ इतना था कि वह उनके पास पहुंच नहीं सकता था; वह नहीं जानता था कि वह उन्हें जानता है और मानता था कि वह नहीं जानता। सच तो यह है कि उसकी अवस्था ठीक वैसी ही थी जैसी कि हम स्वप्न देखने वाले व्यक्ति की मानते हैं।

मैं समझता हूं कि आपको इस बात पर आश्चर्य होगा कि यह तथ्य पहले ही सिद्ध हो चुका है, और आप मुझसे पूछेंगे : "आपने इस प्रमाण की चर्चा पहले ही क्यों नहीं की जब हम ग़लतियों पर विचार कर रहे थे, और बोलने की ग़लती करने वाले एक आदमी के बोलने के पीछे ऐसे आशय बता रहे थे जिनके बारे में वह कुछ नहीं जानता था। और उनका वह निषेध करता था ? यदि कोई आदमी यह मान सकता है कि उसे ऐसे अनुभवों का कोई ज्ञान नहीं है जिनका स्मरण उसमें अवश्य है तो यह बात अब असंभाव्य नहीं लगती कि उसके अंदर ऐसे और भी मानसिक प्रक्रम चल रहे हों जिनके बारे में वह कुछ नहीं जानता। इस दलील से निश्चित ही हमपर प्रभाव पड़ता, और हम ग़लतियों को अधिक अच्छी तरह समझ पाते।" सच है कि मैं इस प्रमाण को तब पेश कर सकता था, पर मैंने इसे बाद के ऐसे मौके के लिए रख छोड़ा था जब इसकी ज़्यादा जरूरत होगी। कुछ ग़लतियों ने स्वयं, अपनी व्याख्या कर दी और कुछ ने हमें यह सुझाया कि इन घटनाओं के संबंध को समझने के लिए यह अच्छा होगा कि ऐसे मानसिक प्रक्रमों का अस्तित्व स्वीकार कर लिया जाए, जिनसे वह व्यक्ति बिलकुल अपरिचित है। स्वप्नों की व्याख्या हमें दूसरी जगह ढूंढनी पड़ती है। इसके अलावा, मुझे भरोसा है कि इस प्रसंग में आप संमोहन के क्षेत्र के प्रमाण को अधिक आसानी से स्वीकार कर लेंगे। हम जिन अवस्थाओं में ये ग़लतियां करते हैं, वे आपको सामान्य प्रतीत होंगी, और इसलिए उनका संमोहन की अवस्था से कोई सादृश्य नहीं प्रतीत होगा। दूसरी ओर, संमोहन की अवस्था और नींद में स्पष्ट संबंध है, और नींद स्वप्न देखने के लिए बिलकुल ज़रूरी अवस्था है। संमोहन को तो 'कृत्रिम नींद' ही कहा जाता है। जिन लोगों को हम संमोहित करते है उनसे कहते है : "सो जाओ", और उन्हें जो आदेश दिए जाते हैं, उनकी तुलना स्वाभाविक नींद के स्वप्नों से की जा सकती है। दोनों अवस्थाओं में मानसिक स्थिति वास्तव में एक जैसी होती है—स्वाभाविक नींद में हम सारी बाहरी दुनिया से अपनी दिलचस्पी हटा लेते हैं; यही बात संमोहन निद्रा में होती है पर इसमें हमारा उस व्यक्ति से मेल या आनुरूप्य[1] बना रहता है, जिसने हमें संमोहित किया है। फिर, तथाकथित 'नर्स की नींद', जिसमें नर्स का बालक से मेल या आनुरूप्य बना रहता है, और वह ही उसे जगा

१. Rapport.

सकता है, संमोहन निद्रा का एक सामान्य समरूप है। इसलिए संमोहन की एक अवस्था को स्वाभाविक नींद पर लागू कर लेना कोई बड़ी अनोखी बात नहीं लगती। यह परिकल्पना कि स्वप्न देखने वाले को अपने स्वप्न के बारे में ज्ञान होता है, परंतु वह उस ज्ञान तक पहुंच नही पाता, और इसलिए वह स्वयं यह विश्वास नहीं करता कि उसे वह ज्ञान है, कोई निराधार कपोल-कल्पना नहीं है। इस सिलसिले में हम यह भी देखते हैं कि इस तरह हमारे लिए स्वप्नों पर विचार करने का तीसरा रास्ता खुल जाता है। हम उसपर नींद के विघातक उद्दीपकों के रास्ते से, दिवास्वप्नों के रास्ते से, और अब संमोहन में आदेशित स्वप्नों के रास्ते से विचार कर सकते हैं।

शायद अब हम अधिक विश्वास के साथ अपने विषय पर आगे विचार कर सकते हैं। हम देखते हैं कि यह बहुत संभाव्य है कि स्वप्न देखने वाला अपने स्वप्न के बारे में कुछ जानता है। समस्या यह है कि उसे वह ज्ञान कैसे याद कराया जाए, और उसे कैसे वह ज्ञान हमें देने के लिए समर्थ किया जाए। हम यह आशा नहीं करते कि वह तुरंत अपने स्वप्न का आशय बता देगा, पर हम यह अवश्य समझते हैं कि वह खोज सकेगा कि उसका स्रोत क्या है, विचारों और दिलचस्पियों के किस दायरे से वह आया है? ग़लतियों के प्रसंग में, आपको याद होगा कि उस आदमी से पूछा गया कि उससे बोलने में 'रिफिल्डि' ग़लती कैसे हुई, और उसकी पहली ही बात से इसकी व्याख्या हो गई। स्वप्नों में हम जो विधि अपनाते हैं, वह बहुत सरल है, और इसी उदाहरण के नमूने पर है। यहां भी हम स्वप्न देखने वाले से पूछेंगे कि उसे यह स्वप्न कैसे आया, और उसके अगले शब्दों को, इस अवस्था में भी, असली कारण बताने वाला मानना चाहिए। इसलिए इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि वह यह समझता है कि इस बारे मे वह कुछ जानता है या नहीं जानता, और हम दोनों अवस्थाओं पर एक ही तरह विचार करते हैं।

यह विधि निश्चित रूप से बड़ी सीधी है। तो भी मुझे डर है कि यह आपके अंदर बड़ा जबरदस्त विरोध पैदा करेगी। आप कहेंगे: "एक और-तीसरी-परिकल्पना! उसपर सबसे अधिक असंभाव्य! जब मैं स्वप्न देखने वाले से यह पूछता हूं कि स्वप्न के बारे में आपके मन में क्या विचार आते है, तब क्या आप यह कहना चाहते हैं कि उसके सबसे पहले साहचर्य, अर्थात् मन की बात,से ही अभीष्ट व्याख्या हो जाएगी? पर यह भी तो हो सकता है कि उसके मन में कोई साहचर्य ही न हो। यह ईश्वर ही जानता है कि वह साहचर्य क्या हो सकता है। हम यह नहीं समझ सकते कि ऐसी आशा किस आधार पर की जाती है। असल में, इससे भाग्य में बहुत अधिक विश्वास ध्वनित होता है और वह भी ऐसी जगह, जहां आलोचना की क्षमता का अधिक प्रयोग करने से मामला अधिक अच्छी तरह सुलझाया जा सकता है। इसके अलावा, स्वप्न किसी अकेली जीभ की ग़लती जैसी

चीज़ नहीं है; वह बहुत-से अवयवों का बना हुआ होता है। ऐसी अवस्था में हम किस साहचर्य पर भरोसा करें ?"

सारे अनावश्यक अंशों में आपकी बात सही है। यह सच है कि बोलने की ग़लती और स्वप्न में कई भेद हैं, जिनमें से एक यह है कि स्वप्न बहुत-से अवयवों से बना हुआ होता है। हमें अपनी विधि में उसका ध्यान रखना होगा। इसलिए मैं यह सुझाव रखता हूं कि हम स्वप्न को उसके अनेक अवयवों में बांट दें, और प्रत्येक अवयव पर अलग-अलग विचार करें। तब इसका और बोलने की ग़लती का फिर सादृश्य स्थापित हो जाएगा। आपका यह कहना भी सही है कि स्वप्न के एक-एक अवयव के बारे में पूछने पर स्वप्न देखने वाला यह जबाब दे सकता है कि उसे उनके बारे में कुछ ध्यान नहीं है। कुछ उदाहरणों में हम यह उत्तर स्वीकार कर लेते हैं, और मैं आगे चलकर आपको यह बताऊंगा कि वे कौन-से उदाहरण हैं। विचित्र बात यह है कि ये उदाहरण वे हैं जिनके बारे में हमारे अपने शायद कुछ सुनिश्चित विचार हैं, परंतु साधारणतया जब स्वप्न देखने वाला यह कहता है कि उसका कोई विचार नहीं है, तब हम उसकी बात का विरोध करेंगे, जवाब देने के लिए उसपर जोर डालेंगे, उसे यह विश्वास दिलाएंगे कि उसके मन में अवश्य कुछ विचार हैं और हम देखेंगे कि हम सही कहते थे—वह कोई न कोई साहचर्य पेश करेगा। वह क्या है, इससे हमें विशेष मतलब नहीं है। विशेष रूप से वह हमें ऐसी जानकारी देगा जिसे हम ऐतिहासिक कह सकते हैं। वह कहेगा : "यह कुछ वैसी बात है जैसी कल हुई थी।" (जैसा कि ऊपर बताये गए दो 'भाव-हीन' स्वप्नों के उदाहरण में था), या : "इससे मुझे किसी ऐसी चीज़ का ध्यान आता है जो हाल में ही हुई थी", और इस तरह हम यह देखेंगे कि अधिकतर स्वप्नों का संबंध उन प्रभावों से है जो एक दिन पहले के हैं। अंत में स्वप्न से शुरू करके वह उन घटनाओं को दोहराएगा जो कुछ और पहले हुई थीं, और अंत में ऐसी घटनाएं भी बताएगा जो बहुत पहले की हैं।

परंतु मुख्य प्रश्न के बारे में आपका विचार ग़लत है। जब आप यह समझते हैं कि यह मनमानी कल्पना है कि स्वप्न देखने वाले का पहला साहचर्य हमें वही बात प्रकट कर देगा जिसकी हम तलाश में हैं, या कम से कम, हमें उसकी ओर ले जाएगा; साथ ही यह कल्पना भी, कि अधिक संभवतः साहचर्य बिलकुल मनमाना होगा, और उसका उस चीज़ से कोई संबंध नहीं होगा जिसकी हम तलाश कर रहे हैं, और यदि मैं किसी और बात की आशा करता हूं तो इससे भाग्य में मेरा अंध-विश्वास ही अधिक होता है—तो आप बहुत भारी ग़लती करते हैं। मैं पहले ही यह संकेत कर चुका हूं कि मन की स्वतंत्रता और चुनाव-क्षमता का गहरा जमा हुआ विश्वास आपके मन में मौजूद है; मैं यह भी कह चुका हूं कि यह विश्वास

बिलकुल अवैज्ञानिक है, और इसे नियतिवाद[1] के, जो मानसिक जीवन को भी शासित करता है, दावों के सामने मैदान छोड़ना ही पड़ेगा। मैं आपसे कहता हूं कि इस **तथ्य** की कुछ तो इज्जत कीजिए कि जब स्वप्न देखने वाले से पूछा जाता है, तब उसके मन में एक वही साहचर्य आता है, और कोई नहीं आता। मैं एक विश्वास के विरोध में दूसरे विश्वास की स्थापना भी नहीं कर रहा हूं। यह प्रमाणित किया जा सकता है कि इस प्रकार बताया गया साहचर्य उसकी मर्जी का मामला नहीं हैं, वह अनियत नहीं है और वह उससे अपंबंधित भी नहीं है जिसे हम खोज रहे हैं। असल में, मुझे हाल में ही पता चला है—पर इसका यह अर्थ नहीं कि मैं इसे कोई खास महत्व देता हूं—कि स्वयं प्रायोगिक मनोविज्ञान ने भी ऐसे ही प्रमाण पेश किए हैं।

यह मामला महत्वपूर्ण होने के कारण मैं आपसे इसपर विशेष ध्यान देने के लिए कहता हूं। जब मैं किसी आदमी से यह पूछता हूं कि स्वप्न के अमुक अवयव के बारे में उसके मन में क्या बात आती है तब मैं यह आशा करता हूं कि वह **मुक्त साहचर्य** के प्रक्रम में अपने आपको शिथिल छोड़ दे, और **यह तब होता है जब वह मूल आरंभिक विचार अपने मन में रखता है**। इसके लिए एक विशेष प्रकार से ध्यान देने की ज़रूरत होती है। यह चीज़ अनुचिंतन या निदिध्यासन[2] से बिलकुल भिन्न है, बल्कि वह तो इसमें हो ही नहीं सकता। कुछ लोग बिना किसी मुश्किल के ऐसी अवस्था बना लेते है, पर कुछ लोग जब ऐसा करने की कोशिश करते हैं, तब उनमें एक अविश्वसनीय अरुचि दिखाई देती है। जो साहचर्य उस समय दिखाई देता है जब मैं किसी खास उद्दीपन-बिंब[3] या उद्दीपन-विचार के बिना काम चलाता हूं, और अपने अभीष्ट साहचर्य के आकार-प्रकार का शायद वर्णन मात्र कर देता हूं, तब साहचर्य में और भी अधिक स्वतंत्रता होती है; उदाहरण के लिए, किसी आदमी से कहो कि वह कोई व्यक्ति वाचक नाम या कोई संख्या सोचे। आप कहेंगे कि इस तरह का साहचर्य, हमारी विधि में प्रयुक्त साहचर्य की अपेक्षा, अपनी पसंदगी के और भी अधिक अनुकूल होगा और इसका कोई कारण नहीं बताया जा सकेगा। तो भी यह सिद्ध किया जा सकता है कि यह मन की महत्वपूर्ण भीतरी अभिवृत्तियों[4] के ही ठीक-ठीक अनुसार होगा—ये अभिवृत्तियां क्रियाशील होने के समय हमारे लिए उतनी ही अज्ञात है, जितनी अज्ञात गलतियां पैदा करने वाली विघातक प्रवृत्तियां और वे प्रवृत्तियां वही हैं जो 'संयोगवश उत्पन्न' कहलाने वाली क्रियाएं पैदा करती हैं।

मैंने, और मेरे बाद अनेक व्यक्तियों ने बिना किसी विचार के पुकारे गए

---

१. Determinism. २. Reflection. ३. Stimulus-idea.
४. Attitudes.

नामों और संख्याओं की परीक्षा की है। इनमें से कुछ परीक्षण प्रकाशित हुए हैं। इसकी विधि यह है : जो नाम आधा है, उससे साहचर्यों या संबंधों की एक शृंखला उद्बुद्ध हो जाती है, और अब ये साहचर्य, जैसा कि आप देखते हैं, सर्वथा मुक्त या स्वतंत्र नहीं होते, बल्कि ठीक उतनी दूर तक जुड़े रहते हैं जितनी दूर तक साहचर्य स्वप्न के विभिन्न अवयवों से जुड़े रहते हैं; अब यह साहचर्य-शृंखला तब तक कायम रखी जाती है जब तक आवेग से उत्पन्न विचार समाप्त न हो जाएं। पर तब तक आप किसी नाम के साथ होने वाले मुक्त साहचर्य के प्रेरक कारण और सार्थकता को स्पष्ट कर चुके होंगे। इन परीक्षणों से बार-बार वही परिणाम आता है; वे जो सूचना देते हैं, उसमें प्रायः बहुत सारी सामग्री होती है, और इनमें इसके विभिन्न रूपों पर विचार के लिए दूर-दूर तक जाना पड़ता है। संख्याओं के स्वतः पैदा होने वाले साहचर्य शायद सबसे अधिक स्पष्ट प्रदर्शित होते हैं, वे एक दूसरे के बाद इतनी तेजी से आते हैं, और एक छिपे हुए ध्येय की ओर इतनी आश्चर्यजनक निश्चितता से चलते हैं कि आदमी सचमुच हक्का-बक्का रह जाता है। मैं आपको इस तरह के नाम-विश्लेषण का सिर्फ एक उदाहरण दूंगा, क्योंकि यह ऐसा उदाहरण है जिसमें बहुत सारी सामग्री के झगड़े में नहीं पड़ना पड़ता।

एक बार मैं एक नौजवान का इलाज कर रहा था। तब मैंने इस विषय पर बलपूर्वक यह कहा कि यद्यपि ऐसे मामलों में हमें पसंदगी या चुनाव की स्वतंत्रता दिखाई देती है, तो भी तथ्यतः हम कोई ऐसा नाम नहीं सोच सकते जिसके बारे में यह सिद्ध न किया जा सकता हो कि वह परीक्षण के पात्र व्यक्ति की तात्कालिक परिस्थितियों, उसकी विलक्षणताओं, और उसकी उस क्षण की स्थिति से प्रायः निर्धारित है—उन मानसिक और बाहरी परिस्थितियों में यही नाम आना निश्चित है। उसे इस बात में संदेह था, इसलिए मैंने कहा कि तुम अभी स्वयं यह परीक्षण करो। मैं जानता था कि स्त्रियों और लड़कियों के साथ वह अनेक प्रकार से संबंध रखता था; इसलिए मैंने उससे कहा कि मेरे ख्याल में, यदि आप अपने मन में किसी स्त्री का नाम सोचेंगे तो आपको चुनाव करने के लिए बहुत सारे नाम मिल सकेंगे। उसने स्वीकार किया। मुझे और शायद स्वयं उसे भी आश्चर्य हुआ कि उसने स्त्रियों के नामों की झड़ी नहीं लगाई, बल्कि कुछ देर चुप रहा, और इसके बाद उसने स्वीकार किया कि उसके मन में एक ही नाम आया है—'अलबाइन'। "कैसी अजीब बात है! इस नाम से आप किस तरह संबद्ध हैं? आप कितनी 'अलबाइनों' को जानते हैं?" विचित्र बात थी कि वह अलबाइन नाम वाले किसी व्यक्ति को भी नहीं जानता था, और उस नाम से उसे कोई साहचर्य या सम्बन्ध नहीं ज्ञात होता था। आप यह परिणाम निकालेंगे कि विश्लेषण विफल रहा; पर नहीं, यह पहले ही पूरा हो चुका है, और किसी अन्य साहचर्य की आवश्यकता नहीं रह गई है। वह आदमी असाधारण रूप से गोरा

और सुन्दर था, और विश्लेषण में उससे बातचीत करते हुए मैंने हंसी में उसे **अलबिनो** (महाश्वेत) कहा था; इसके अलावा हम उसके स्वभाव में **स्त्रैण** तत्व खोजने में लगे हुए थे। इस प्रकार, यह स्त्री अलबिनो वह स्वयं ही था—उस समय यही 'स्त्री' उसकी सबसे अधिक दिलचस्पी का विषय थी।

इसी प्रकार किसी आदमी के मन में एकाएक जो गाने की तर्जें आजाती हैं उनके विषय में यह सिद्ध किया जा सकता है कि किसी विचार-शृंखला के कारण, जो किसी अज्ञात कारण से उस समय उसके मन में बिना उसके जानते हुए चल रही होती है, वही तर्जें आनी अनिवार्य थीं। यह प्रदर्शित करना आसान है कि तर्ज़ के साथ सम्बन्ध या तो गीत के शब्दों के कारण होता है, और या उसे पैदा करने वाले स्रोत के कारण : पर इतनी बात और कहना चाहता हूं कि यह बात उन वस्तुतः संगीत प्रेमी लोगों के बारे में मैं ठीक नहीं मानता जिनके बारे में मुझे कोई विशेष अनुभव नहीं है; उनकी चेतना में धुनों के एकाएक आने का कारण उनका संगीतात्मक महत्व हो सकता है। निश्चित रूप से पहली अवस्था अधिक आम होती है। मैं एक ऐसे नौजवान को जानता हूं जिसके मन में कुछ समय से **हेलेन आफ ट्राय** के पेरिस के गीत की धुन (मानता हूं कि वह मोहक थी) ही घूम रही थी; अंत में विश्लेषण में उसका ध्यान इस तथ्य की ओर खींचा गया कि उस समय उसकी दिलचस्पी में कोई 'ईडा' और कोई 'हैलन' प्रतिद्वन्द्विता कर रही थीं।

तो, यदि बिलकुल मुक्त या स्वतंत्र रूप से पैदा होने वाले साहचर्य भी इस प्रकार नियत या निर्धारित होते हैं और किसी सुनिश्चित सिलसिले में बंधे होते हैं, तो हमारा यह नतीजा निकालना निश्चित रूप से उचित है कि एक ही उद्दीपन-बिंब से जुड़े हुए साहचर्य भी इतने ही निश्चित रूप से नियत होंगे। जांच से यह तथ्य पता चलता है कि वे केवल उस उद्दीपन-बिंब से ही जुड़े हुए नहीं हैं जो हमने उनके सामने रखा है, बल्कि वे प्रबल भावना युक्त विचारों और अभिरुचियों के दायरों पर निर्भर भी हैं (इन दायरों को हम ग्रंथियां[1] कहते है) और इस समय इन दायरों, अर्थात् अचेतन व्यापारों, के बारे में कुछ भी ज्ञात नही है।

इस प्रकार जुड़े हुए साहचर्यों पर बड़े शिक्षाप्रद परीक्षण किये गए हैं जिन्होंने मनोविश्लेषण के इतिहास पर बड़ा उल्लेखनीय प्रभाव डाला है। वुन्ट के विचार-सम्प्रदाय वालों ने तथा कथित 'साहचर्य-परीक्षण' को जन्म दिया, जिसमें परीक्षण के आश्रयभूत व्यक्ति से यह कहा जाता है कि वह दिये हुऐ 'उद्दीपन-शब्द' का, जल्दी से जल्दी जो भी 'प्रतिक्रिया-शब्द' उसके मन में आए उससे, उत्तर दे। तब निम्नलिखित बातें नोट करनी चाहिएं : उद्दीपन-शब्द के कथन और प्रतिक्रिया-शब्द के कथन के बीच कितना समय बीता; प्रतिक्रिया-शब्द की प्रकृति; और यही

---

१. Complexes.

परीक्षण बाद में दोहराने पर उसमें दिखलाई पड़ी कोई भूल इत्यादि। ब्लूलर और युंग के नेतृत्व में ज़ूरिच-सम्प्रदाय साहचर्य-परीक्षण की प्रतिक्रियाओं की व्याख्या पर पहुंचने के लिए परीक्षण के अधीन व्यक्ति से यह कहता था कि जो साहचर्य उसे जरा भी विशेषतायुक्त मालूम हों उनपर वह रोशनी डाले, अर्थात् यह बाद के साहचर्यों से प्रतिक्रियाओं की व्याख्या पर पहुंचता था। इस प्रकार, यह स्पष्ट हो गया कि ये असामान्य प्रतिक्रियाएं पूरी तरह उस व्यक्ति की ग्रंथियों अर्थात् भावना-ग्रन्थियों के अनुसार ही होती थीं। इस खोज द्वारा ब्लूलर और युंग ने प्रायोगिक मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण के बीच पहला सम्बन्ध स्थापित किया।

यह सुन लेने के बाद आप कह सकते हैं: "हम मानते हैं कि मुक्त या स्वतंत्र साहचर्य नियत होते हैं, और वे पसंदगी या चुनाव का विषय नहीं हैं, जैसा कि हमने पहले समझा था, और हम यह बात स्वप्न-अवयवों के साहचर्यों के बारे में भी स्वीकार करते हैं, पर हम इस चीज के बारे में परेशान नहीं हैं। आप कहते हैं कि स्वप्न के प्रत्येक अवयव का साहचर्य इस विशेष अवयव की किसी मानसिक पृष्ठभूमि द्वारा नियत किया हुआ है, और उस पृष्ठभूमि के बारे में हम कुछ नहीं जानते। हमें इसका कोई प्रमाण नहीं मिल सकता। स्वभावतः हम यह आशा करते हैं कि यह सिद्ध किया जा सकेगा कि स्वप्न-अवयव का साहचर्य स्वप्न देखने वाले की किसी भाव-ग्रन्थि के अनुसार नियत है, पर उससे हमें क्या लाभ ? उससे हमें स्वप्न को समझने में कोई मदद नहीं मिलती— इससे हमें इन तथाकथित भाव-ग्रन्थियों की अवश्य कुछ जानकारी हो जाती है, जैसे साहचर्य परीक्षण से हुई, पर इनका स्वप्न से क्या वास्ता है ?"

आपका कहना सही है, पर आप एक महत्वपूर्ण बात पर नजर नहीं डाल रहे हैं। यह वही बात है जिसके कारण मैंने इस बातचीत को साहचर्य परीक्षण से शुरू नहीं किया। इस परीक्षण में उद्दीपन-शब्द जो प्रतिक्रिया को नियत करने वाली एक मात्र बात है, हम अपनी मर्जी से चुनते हैं, और प्रतिक्रिया इस उद्दीपन-शब्द तथा परीक्षित व्यक्ति में उद्बोधित भाव-ग्रन्थि के बीच में रहती है। स्वप्न में, उद्दीपन-शब्द के स्थान पर, स्वप्न देखने वाले के मानसिक जीवन से, अज्ञात स्रोतों से उत्पन्न हुई वस्तु आ जाती है, और इसलिए बहुत सम्भव है कि वह अपने आप में किसी भाव-ग्रन्थि से उत्पन्न वस्तु हो। इसलिए यह कल्पना करना बिलकुल निराधार नहीं है कि स्वप्न के अवयवों से सम्बन्धित अन्य साहचर्य उस भाव-ग्रन्थि के अलावा और किसी द्वारा नियत नहीं किये जाते जिससे वह विशेष अवयव स्वयं पैदा हुआ है, और उन अवयवों से उस भाव-ग्रन्थि की खोज की जा सकती है।

एक और उदाहरण लीजिए, जिससे यह सिद्ध हो सकता है कि स्वनों के उदा-

हरणों में तथ्यों से हमारी आशाओं की पुष्टि होती है। स्वप्न-विश्लेषण में जो कुछ होता है, उसका सचमुच बड़ा उत्तम प्रतिरूप है व्यक्तिवाचक नामों को भूलना—अन्तर इतना है कि व्यक्तिवाचक नामों को भूलने में सिर्फ एक ही व्यक्ति से सम्बन्ध होता है, जबकि स्वप्नों का अर्थ लगाने में दो व्यक्ति होते हैं। जब मैं कुछ समय के लिए कोई नाम भूल जाता हूं, तब भी मुझे यह निश्चय होता है कि मैं इसे जानता हूं। बर्नहीम के परीक्षण के बाद, अब हम स्वप्न देखने वाले के मामले में भी इतने ही निश्चित हो सकते हैं। जो नाम मैं भूल गया हूं, पर असल में जानता हूं, वह मेरी पकड़ में नहीं आता। अनुभव से मुझे जल्दी ही पता चल जाता है कि मैं इसके बारे में कितना ही और कितने ही प्रयत्न से सोचूं, पर कोई लाभ नहीं। परन्तु मैं भूले हुए नाम के स्थान पर कोई और या अनेक अन्य नाम सदा सोच सकता हूं। जब कोई ऐसा स्थानापन्न नाम आपसे आप मेरे मन में आता है, तभी इस स्थिति और स्वप्न-विश्लेषण की स्थिति के बीच समानता स्पष्ट होती है। जो चीज़ मैं वास्तव में तलाश कर रहा हूं, वह स्वप्न-अवयव भी नहीं है; वह किसी और चीज़ की, उस यथार्थ चीज़ की, जिसे मैं नहीं जानता और जिसे मैं स्वप्न-विश्लेषण द्वारा खोजने की कोशिश कर रहा हूं, स्थानापन्न मात्र है। फिर, यह अन्तर है कि जब मैं कोई नाम भूल जाता हूं, तब बिलकुल अच्छी तरह यह जानता हूं कि स्थानापन्न नाम सही नाम नहीं है, जबकि स्वप्न-अवयव के इस रूप पर पहुंचने में हमें लम्बी जांच-पड़ताल करनी पड़ी। तो, ऐसा भी एक तरीका है जिससे कोई नाम भूल जाने पर हम उसके स्थानापन्न से शुरू करके उस पदार्थ वस्तु पर पहुंच सकते हैं जो उस समय हमारी चेतना की पकड़ में नहीं आ रही थी, अर्थात् हम भूले हुए नाम का पता लगा सकते हैं। यदि मैं इन स्थानापन्न नामों की ओर ध्यान दूं और साहचर्य अपने मन में आने दूं तो थोड़ी या अधिक देर में मैं भूले हुए नाम पर पहुंच जाता हूं, और ऐसा करते हुए मैं देखता हूं कि मैंने जो स्थानापन्न आपसे आप पेश किए है, उनका भूले हुए नाम से सुनिश्चित सम्बन्ध था, और उस भूले हुए नाम ने ही ये स्थानापन्न नियत या निश्चित किये थे।

मैं आपको इस तरह के विश्लेषण का एक उदाहरण दूंगा : एक दिन मैंने यह देखा कि मुझे रिविएरा पर बसे हुए उस छोटे-से देश का नाम याद नही आ रहा था जिसकी राजधानी मोन्ट कार्लो है। मैं बड़ा परेशान हुआ, पर उपाय क्या था ? मैंने उस देश के विषय में अपनी सारी जानकारी में गोता लगाया। मैंने लुसिगनान घराने के प्रिंस एल्बर्ट की, उसके विवाहों की, और गहरे समुद्र की खोज में उसकी विशेष दिलचस्पी की, यहां तक कि जो कुछ मेरे दिमाग में आ सका उस सबकी, बात सोची, पर सब बेकार रहा। अब मैंने सोचने की कोशिश करना छोड़ दिया और जो नाम मैं सोच रहा था, उसके बजाय मैंने स्थानापन्न

नाम अपने मन में आने दिए। वे जल्दी-जल्दी आते गए। स्वयं मोन्ट कार्लो, फिर पीडमौन्ट, अलबानिया, मोन्टीवीडियो, कोलिको। सबसे पहले अलबानिया की ओर मेरा ध्यान गया; फिर तुरन्त इसके स्थान पर मोन्टीनीग्रो आ गया। सम्भवतः इसका कारण काले और सफेद का वैषम्य था। तब मैंने देखा कि स्थानापन्न नामों में से चार में एक ही अक्षर 'मौन' है और मुझे तुरन्त भूला हुआ नाम याद आ गया और मैं चिल्ला पड़ा, "मोनाको!" आप देख रहे है कि स्थानापन्नों का जन्म वास्तव में उस भूले नाम से ही हुआ था—पहले चार शब्द उसके पहले अक्षर से बने थे, और अन्तिम शब्द में अक्षरों का क्रम था और पूरा का पूरा अन्तिम अक्षर। प्रसंगतः, यह भी बता दूं कि मुझे बड़ी आसानी से यह समझ में आ गया कि मैं वह नाम क्यों भूला था। मोनाको म्युनिख का इटालियन नाम है, और इस नगर के साथ सम्बन्धित कुछ विचारों ने ही निरोधक का कार्य किया था।

यह बड़ा सुन्दर उदाहरण है, और बहुत सादा व सरल है। और उदाहरणों में आपको स्थानापन्न नाम के साहचर्यों की अधिक लम्बी श्रेणी लेनी पड़ सकती है, और तब स्वप्न-विश्लेषण से इसका सादृश्य स्पष्ट हो जाएगा। मुझे इस तरह के भी कुछ अनुभव हो चुके हैं। एक बार एक अपरिचित व्यक्ति ने मुझे अपने साथ इटालियन शराब पीने के लिए कहा और शराब-घर में पहुंचने पर उसने देखा कि वह जिस शराब की बड़ी सुखद स्मृतियों के कारण उसका आर्डर देना चाहता था, उसका नाम वह भूल गया है। उसके मन में कुछ असदृश स्थानापन्न नाम आए, और इनसे मैं यह अनुमान लगा सका कि हेडविग नामक किसी व्यक्ति के विचार ने उसे शराब का नाम भुला दिया है। अब उसने मुझे न केवल यह ही बताया कि जब उसने पहली बार वह शराब चखी थी, तब हेडविग नाम का व्यक्ति उसके साथ था, बल्कि इस ज्ञान ने उसे अपना अभीष्ट नाम भी फिर याद दिला दिया। अब वह विवाह करके सुख से रह रहा था। हेडविग उसके पुराने दिनों से सम्बन्ध रखता था, जिन्हें अब वह याद नहीं करना चाहता।

जो बात भूले हुए नामों के बारे में सम्भव है, वह स्वप्नों के अर्थ लगाने में भी सम्भव होनी चाहिए। स्थानापन्न से शुरू करके हमें साहचर्यों की शृंखला द्वारा अपनी खोज के पदार्थ उद्देश्य पर भी पहुंच सकना चाहिए। और भूले हुए नामों में जो कुछ हुआ उसीको युक्ति बनाकर आगे बढ़ें तो हम यह मान सकते हैं कि स्वप्न-अवयवों के साहचर्य सिर्फ उस अवयव द्वारा ही नियत नहीं होते, बल्कि उस यथार्थ विचार द्वारा भी नियत होते हैं जो चेतना में नहीं है। यदि हम यह कर सकते तो अपनी विधि का औचित्य सिद्ध करने की दिशा में कुछ आगे बढ़ गए होते।

व्यक्त वस्तु और गुप्त विचार

आप देखते हैं कि हमारा गलतियों का अध्ययन निष्फल नहीं हुआ है। उस अध्ययन से हमें, उन परिकल्पनाओं के आधार पर जो आप जानते हैं, दो परिणाम प्राप्त हुए है : स्वप्न-अवयव की प्रकृति की एक अवधारणा और स्वप्न-निर्वचन की एक विधि। स्वप्न-अवयव की अवधारणा यह है : यह अपने आप में कोई मूल और सारभूत चीज़ नहीं है, यह 'स्वयं विचार' नहीं है बल्कि किसी और चीज़ की, जो सम्बन्धित व्यक्ति को, ग़लती के पीछे छिपे हुए आशय की तरह, अज्ञात है, स्थानापन्न है—यह एक ऐसी चीज़ का स्थानापन्न है जिसका ज्ञान स्वप्न देखने वाले के अन्दर निश्चित रूप से मौजूद है पर वह उस ज्ञान तक पहुंच नहीं पाता। हम यही अवधारणा सारे के सारे स्वप्न पर, जिसमें ऐसे कई अवयव होते हैं, ले आने की आशा रखते हैं। हमारी विधि यह है कि दूसरे स्थानापन्न मनोबिंबों[1] को, जिनसे हम छिपी हुई बात को जान सकते हैं, उपर्युक्त अवयवों के साथ मुक्त साहचर्य के द्वारा चेतना में आने दें।

अब मैं यह कहना चाहता हूं कि हम अपनी शब्दावली को अधिक लचकदार बनाने के लिए अपने शब्द-प्रयोग में कुछ हेर-फेर कर लें। 'छिपा हुआ' 'पहुंच से बाहर' या 'स्वयं विचार' शब्दों के स्थान पर हमें अधिक यथातथ्य[2] वर्णन करना चाहिए और कहना चाहिए कि 'स्वप्न देखने वाले की चेतना की पहुंच के बाहर', या 'अचेतन'[3]। इससे हमारा आशय उससे कुछ अधिक नहीं है जो भूले हुए शब्द या ग़लतियों के पीछे मौजूद आशय के मामले में था, अर्थात् **उस समय अचेतन में**। इससे यह बात निकलती है कि इसके मुकाबले में खास स्वप्न-अवयवों

१. Substitute-Idea २. Precise ३. Unconscious। **यहां अचेतन शब्द का अर्थ है अज्ञात, अर्थात् जो स्वयं को, या अपने बारे में नहीं जानता और जिसका अस्तित्व आश्रयभूत व्यक्ति को भी अज्ञात है।**

की और साहचर्य के प्रक्रम से प्राप्त स्थानापन्न-मनोबिंबों को **चेतन** कह सकते हैं। इन शब्दों में अभी तक कोई और सिद्धान्त सम्बन्धी विशेष ध्वनि नहीं है। 'अचेतन' शब्द का प्रयोग करने पर जो वर्णन की दृष्टि से उपयुक्त भी है और समझने में भी आसान है, कोई आपत्ति नहीं की जा सकती।

अब अपने अवधारण को एक अवयव से पूरे स्वप्न पर लाने पर यह बात निकलती है कि पूरा स्वप्न किसी और चीज़ का, किसी अज्ञात या अचेतन वस्तु का, विपर्यस्त अर्थात् बिगड़ा हुआ स्थानापन्न है, और कि स्वप्न का अर्थ लगाने में हमें इन अचेतन या अज्ञात विचारों को खोजना है। इससे तीन महत्वपूर्ण नियम निकलते है; जिनका स्वप्न का अर्थ लगाते हुए पालन करना चाहिए :

१. हमें स्वप्न के ऊपरी अर्थ से नहीं उलझना है, चाहे वह तर्कसंगत हो या बेतुका, स्पष्ट हो या मिला-जुला अस्पष्ट। किसी भी सूरत में उन्हें वे अचेतन विचार नही समझा जा सकता जिन्हें हम खोज रहे हैं। इस नियम की एक स्पष्ट समझ में आने वाली सीमा आगे स्वयं हमारी समझ में आ जाएगी।

२. हमें सिर्फ इतना ही करना है कि प्रत्येक अवयव के लिए स्थानापन्न मनोबिंब लाएं, या आने दें; हमें उनपर विचार नहीं करना है और न यह देखने की कोशिश करनी है कि उनमें कोई जंचने वाली चीज़ है या नहीं, और न इस झगड़े में पड़ना है कि वे हमें स्वप्न-अवयव से कितनी दूर ले जा रहे हैं।

३. हमें तब तक प्रतीक्षा करनी चाहिए जब तक छिपे हुए अचेतन विचार, जिन्हें हम खोज रहे हैं, आप से आप न प्रकट हो जाएं, जैसा कि ऊपर बताए गए परीक्षण में भूले हुए शब्द 'मोनाको' के बारे में हुआ था।

अब हम यह भी समझते हैं कि यह बात कितनी महत्वहीन है कि हमें स्वप्न के बारे में कम याद है या अधिक, और उससे भी बढ़कर यह कि हमें वह ठीक-ठीक याद है या नहीं। स्वप्न जिस रूप में याद है, उस रूप में वह बिलकुल ही यथार्थ चीज नहीं है, बल्कि एक विपर्यस्त **स्थानापन्न** है, अर्थात् उसके स्थान पर बिगड़े हुए रूप में मौजूद कोई और चीज़ है जो दूसरे स्थानापन्न मनोबिंबों को वहां लाकर हमें असली विचार के पास पहुंचाने का एक साधन बनती है, स्वप्न के पीछे मौजूद अचेतन विचारों को चेतना में लाने का एक उपाय बनती है। अगर हमारा स्मरण दोषपूर्ण था तो इतना ही हुआ है कि स्थानापन्न और विपर्यस्त हो गया है और यह विपर्यास भी बिना किसी प्रेरक कारण के नहीं हो सकता।

हम दूसरों के स्वप्नों की तरह अपने स्वप्नों का भी अर्थ लगा सकते हैं। असल में तो, हम अपने स्वप्नों से अधिक सीख सकते हैं, और उससे हमें अधिक पक्का निश्चय होता है। अब, यदि हम इस दिशा में परीक्षण करें तो हम देखते हैं कि कोई चीज हमारे विरुद्ध कार्य कर रही है। यह सच है कि साहचर्य आते हैं, पर

हम उन सबको ग्रहण नहीं करते। हम उनकी आलोचना करके छंटाई कर देते हैं। हम एक साहचर्य के बारे में अपने आप से कहते हैं : "नहीं, यह यहां नहीं जंचता, यह अप्रासंगिक हैं", और दूसरे के बारे में कहते हैं, "यह बिल्कुल बेतुका है", और तीसरे के बारे में कहते है : "यह असली बात से बिलकुल मेल नहीं खाता।" और तब हम यह भी देख सकते हैं कि ऐसे ऐतराज करने में हम साहचर्यों के पूरी तरह स्पष्ट होने से पहले ही उनका गला घोंट देते हैं और अन्त में उन्हें बिलकुल आने से ही रोक देते है। इस प्रकार एक ओर तो हम आरम्भिक मनोबिंब को अर्थात् स्वयं स्वप्न-अवयव को, कसकर पकड़े रहने की ओर झुकते हैं, और दूसरी ओर छंटाई करके हम मुक्त या स्वतंत्र साहचर्य के प्रक्रम के परिणामों को दूषित कर देते हैं। यदि हम स्वयं अर्थ लगाने की कोशिश नहीं कर रहे हैं, बल्कि किसी और को अर्थ लगाने का मौका दे रहे है, तो हमें स्पष्ट रूप से पता चलेगा कि इस छंटाई के लिए हमें प्रेरित करने वाला एक और प्रेरक कारण है क्योंकि हम जानते हैं कि इसमें छंटाई पर रोक है। कभी-कभी हम अपने को यह सोचता हुआ पाते है, "नही, यह साहचर्य बहुत अप्रिय है, यह मैं उसे नहीं बता सकता, या नहीं बताऊंगा।"

स्पष्ट है कि इन आक्षेपों से हमारे काम की सफलता संदिग्ध जाने का खतरा है। हमें अपने स्वप्नों का अर्थ लगाते हुए इनसे बचे रहना चाहिए और इनके सामने न झुकने का पक्का इरादा कर लेना चाहिए, और किसी दूसरे के स्वप्नों का अर्थ लगाते हुए यह निश्चित नियम लागू करके उनसे बचना चाहिए कि वह किसी साहचर्य को न रोकें, चाहे उसके विरुद्ध ऊपर बताई गई चार आपत्तियों में से कोई भी पैदा होती हो, अर्थात् कि यह बिलकुल महत्वहीन है, बहुत बेतुका है, बिलकुल अप्रासंगिक है, या बड़ा अप्रिय है। वह इस नियम का पालन करने का वचन देता है। पर, फिर भी, हमें यह देखकर परेशानी हो सकती है कि वह अपने वचन को बाद में कितने अधूरे ढंग से पूरा करता है। पहले तो हम इसका कारण यह समझते हैं कि हमारे पक्के आश्वासन के बाद भी उसे यह भरोसा नहीं है कि मुक्त या स्वतंत्र साहचर्य के प्रक्रम से होने वाले परिणाम मुक्त साहचर्य को उचित सिद्ध कर सकेंगे; और शायद हमारा अगला विचार यह होगा कि पहले उसे अपने सिद्धान्त का पक्षपाती बनाएं, उसे पढ़ने के लिए पुस्तकें दे, या व्याख्यानों में भेजें जिससे वह इस विषय पर हमारे विचारों का हो जाए। पर हम देखेंगे कि कुछ साहचर्यों के विरुद्ध वही आलोचना भरे आक्षेप हमारे अपने अन्दर भी आएंगे जिनपर हम निश्चय ही, अश्रद्धालु होने का सन्देह नही कर सकते, और वे आक्षेप बाद में ही, मानो पुनर्विचार करने पर, हट सकते है और इस तरह हम कोई ग़लत क़दम उठाने से बच जाएंगे।

बजाय इसके कि हम अपनी आज्ञा न मानने के कारण स्वप्न-द्रष्टा से परेशान हों, हम इस अनुभव को कोई नई चीज़ सीखने का साधन बना सकते हैं और उस चीज़ की हमें जितनी कम सम्भावना थी, वह उतनी ही अधिक महत्व-पूर्ण है। हम जानते हैं कि स्वप्न का अर्थ लगाने का काम असल में ऐसे प्रतिरोध को पराजित करना ही है जो इस तरह के आलोचना भरे आक्षेपों के रूप में प्रकट होता है। यह **प्रतिरोध** स्वप्न-द्रष्टा के सैद्धान्तिक विश्वास से बिलकुल स्वतंत्र होता है। हमें इससे भी कुछ अधिक बात समझ में आती है। अनुभव से प्रकट होता है कि इस तरह का आलोचनापूर्ण आक्षेप कभी भी उचित नहीं होता। इसके विपरीत, लोग इस तरह जिन साहचर्यों को दबाना चाहते हैं, वे **बिना अप-वाद** के, सबसे अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध होते हैं। वे अचेतन विचार की खोज में निर्णायक होते हैं। जब किसी साहचर्य पर इस तरह का आक्षेप किया जाए, तब निश्चित रूप से इसपर विशेष ध्यान देना चाहिए।

यह प्रतिरोध एक बिलकुल नई चीज़ है। यह एक ऐसी घटना है, जिसका हमें अपनी परिकल्पनाओं पर चलने से पता चला है, यद्यपि यह उनमें शामिल नहीं है। हम इस नए कारक से ज़रा भी प्रसन्न नहीं हैं क्योंकि हमें पहले ही सन्देह है कि इससे हमारे काम में कोई आसानी नही होगी। यह हमें स्वप्नों के विषय में सारी कोशिश छोड़ने के लिए भी आकृष्ट कर सकता है। ऐसे तुच्छ विषय को उठाना और उसपर इतनी उलझन में पड़ना उससे तो यही अच्छा है कि हमारी विधि से आराम से आगे बढ़ते जाइये। पर इसके विपरीत, हमें ये कठिनाइयां आकर्षक लगेंगी, और यह सन्देह होने लगेगा कि इस कार्य के लिए इतनी परेशानी उठाना उचित है। जब कभी हम स्वप्न-अवयव द्वारा लाए गए स्थानापन्न से छिपे हुए अचेतन विचार में घुसने की कोशिश करते हैं, तब ये प्रतिरोध सदा सामने आकर खड़े हो जाते हैं। इसलिए हम कल्पना कर सकते हैं कि स्थानापन्न के पीछे अवश्य कोई बड़ी अर्थपूर्ण बात छिपी होगी, क्योंकि यदि ऐसा नही है तो हमें ऐसी कठिनाइयों का क्यों सामना करना पड़े जिनका प्रयोजन बातों को छिपाए रखना है। जब कोई बच्चा अपनी मुट्ठी खोलकर यह दिखाने को तैयार नहीं होता कि उसमें क्या है, तब हम निश्चित रूप से यह समझ सकते हैं कि उसके हाथ में कोई ऐसी चीज़ है जो नही होनी चाहिए थी।

ज्यों ही हम प्रतिरोध की गतिकीय[1] अवधारणा को अपने विषय के अन्तर्गत लाते हैं त्यों ही हमें यह ध्यान कर लेना चाहिए कि यह कारक मात्रा की दृष्टि से परिवर्ती होता है। प्रतिरोध बड़ा भी होता है और छोटा भी, और अपने काम के बीच में हमें यह अन्तर दिखाई देने की सम्भावना है। शायद हम इसके साथ

---

१. Dynamic.

एक और भी अनुभव जोड़ सकते हैं, जो स्वप्न-निर्वचन के सिलसिले में आया है। मेरा आशय यह है कि कभी-कभी बहुत थोड़े-से साहचर्य—शायद सिर्फ़ एक ही—हमें स्वप्न-अवयव से उसके पीछे मौजूद अचेतन विचार पर पहुंचाने के लिए काफ़ी होता है, और कभी-कभी साहचर्यों की लम्बी शृंखला की ज़रूरत होती है और बहुत-से गम्भीर आक्षेपों को शांत करना पड़ता है। हम सम्भवतः सोचेंगे कि प्रतिरोधों की शक्ति में हेर-फेर के साथ अपेक्षित साहचर्यों की संख्या में भी हेर-फेर हो जाता है और बहुत सम्भव है हमारा विचार सही होता है। यदि सिर्फ हलका-सा प्रतिरोध है तो स्थानापन्न बिंब अचेतन विचार से बहुत परे नहीं है। दूसरी ओर प्रबल प्रतिरोध अचेतन विचार का रूप बहुत बिगाड़ देता है और इस तरह स्थानापन्न से अचेतन विचार तक बहुत लम्बी यात्रा करनी पड़ती है।

शायद अब यह उचित होगा कि हम एक स्वप्न लेकर इसपर अपनी विधि की परीक्षा करें और देखें कि हमने जो आशाएं की हैं वे पूरी उतरती हैं या नहीं। बहुत ठीक है। पर हम कौन-सा स्वप्न चुनेंगे ? आप नहीं जानते कि मेरे लिए यह निश्चय करना कितना कठिन है, और न मैं आपको अभी यह स्पष्ट कर सकता हूं कि इसमें क्या कठिनाइयां हैं। स्पष्टतः कुछ स्वप्न अवश्य ऐसे होंगे जिनमें कुल मिलाकर बहुत ही थोड़ा विपर्यास होगा और आप सोचेंगे कि इन्हींसे शुरू करना सबसे अच्छा रहेगा ? परन्तु सबसे कम विपर्यस्त स्वप्न कौन-से हैं ? क्या वे हैं जिनसे ठीक अर्थ निकलता है, और जो बहुत-सी बातों की अस्पष्ट खिचड़ी नहीं हैं, और जिनके दो उदाहरण मैं पहले आपको दे चुका हूं ? यह मानकर हम बड़ी भूल करेंगे, क्योंकि परीक्षण से पता चलता है कि इन स्वप्नों में इतना अधिक विपर्यास हुआ है जितना और स्वप्नों में नहीं होता। अब यदि मैं कोई विशेष शर्त न रखकर कोई भी स्वप्न ले लूं तो शायद आपको बड़ी निराशा होगी। हमें शायद एक ही स्वप्न-अवयव के इतने अधिक साहचर्य देखने और दर्ज करने पड़े कि सारे काम की एक स्पष्ट रूपरेखा प्राप्त करना बिलकुल असम्भव हो जाए। यदि हम स्वप्न को लिख डालें और इससे पैदा होने वाले सब साहचर्यों की इससे तुलना करें तो हम यह देखेंगे कि स्वप्न का कथानक कई गुना लम्बा हो गया है। इसलिए सबसे अधिक व्यावहारिक तरीका यही हो सकता है कि विश्लेषण के लिए कई छोटे-छोटे स्वप्न छांट लिए जाएं जिनमें से प्रत्येक से हमें कोई न कोई विचार मिले, या किसी कल्पना की पुष्टि हो। यदि अनुभव से हमें यह संकेत न मिले कि हमें कम विपर्यस्त स्वप्नों की खोज असल में कहां करनी चाहिए तो हम इसी मार्ग पर चलने का फैसला करेंगे।

पर मैं मामले को आसान बनाने का एक और तरीका सुझा सकता हूं, जो बिलकुल हमारे सामने मौजूद है। बजाय इसके कि पूरे स्वप्न का अर्थ लगाने की

कोशिश की जाए,हम सिर्फ़ एक स्वप्न-अवयव पर विचार करें और कई उदाहरण लेकर यह पता लगाएं कि हमारी विधि के प्रयोग से उनकी व्याख्या कैसे होती है।

(क) एक महिला ने बताया कि बचपन में उसे यह स्वप्न बहुत बार आता था कि **ईश्वर अपने सिर पर कागज की नोकदार टोपी पहने हुए है।** आप इसे स्वप्न देखने वाले की मदद के बिना कैसे समझ सकेंगे? यह बिलकुल अर्थहीन बात मालूम होती है। पर वह महिला यह बताती है कि बचपन में भोजन के समय मैं अपने सिर पर वैसी ही टोपी रखा करती थी क्योंकि मेरी यह आदत नहीं छूटती थी कि मैं अपने भाइयों और बहनों की थालियों में यह देखने के लिए ताकती रहूं कि उनमें से किसीको मुझसे अधिक तो नही मिला। स्पष्ट है कि उस टोपी का प्रयोजन आंखें बन्द करना था। यह ऐतिहासिक जानकारी बिना किसी कठिनाई के हासिल हो गई है। इस अवयव का और इसके साथ सारे छोटे-से स्वप्न का अर्थ स्वप्न-द्रष्टा के एक और साहचर्य की मदद से बिलकुल आसान हो जाता है: "मुझे बताया गया था कि ईश्वर सब कुछ जानता है और सब कुछ देखता है; इसलिए स्वप्न का यही अर्थ हो सकता था कि उनके रोकने की कोशिश के बावजूद मैं भी ईश्वर की तरह सब कुछ जानती और देखती हूं।" शायद यह उदाहरण बहुत सरल है।

(ख) एक सन्देही रोगिणी को एक लम्बा स्वप्न आया जिसमें कुछ लोग उसे मेरी **बुद्धि या सूझ** (Wit) सम्बन्धी पुस्तक के बारे में बता रहे थे और उसकी बड़ी प्रशंसा कर रहे थे। इसके बाद कोई और चीज़ **नहर** के बारे में आई। **शायद यह कोई और पुस्तक हो जिसमें नहर शब्द आया हो, या कोई और चीज़ हो जिसका नहर से सम्बन्ध हो—उसे मालूम नहीं था—यह बिलकुल अस्पष्ट था।**

अब आप निश्चित रूप से यह कल्पना करने लगेंगे कि स्वप्न में दिखाई देने वाली **नहर** का अस्पष्टता के कारण अर्थ लगाना बड़ा कठिन है। इसके कठिन होने के बारे में तो आपका विचार ठीक है, पर कठिनाई अस्पष्टता के कारण नहीं पैदा हुई है; इसके विपरीत, अर्थ लगाने की कठिनाई किसी और कारण से है—यह उसी चीज़ के कारण है जो उस अवयव को अस्पष्ट बना रही है। स्वप्न देखने वाले के पास नहर शब्द का कोई साहचर्य नहीं था। स्वभावतः मैं भी नहीं जानता था कि क्या कहूं। कुछ समय बाद, ठीक-ठीक कहा जाए तो अगले दिन उसने मुझे बताया कि मेरे मन में एक साहचर्य आया है जो **शायद** इससे कुछ संबंध रखता हो। असल में यह एक चमत्कारिक उक्ति थी जो किसीने उससे कही थी। डोवर और कैले के बीच में एक प्रसिद्ध लेखक किसी अंग्रेज से बात कर रहा था जिसने किसी प्रसंग में ये शब्द उद्धृत किए: "दु सब्लाइम आँ रिदिकुले इल न' ई अ क्वु' अन पा।" (Du Sublime au ridicule il n'y a qu'un pas) लेखक ने उत्तर दिया: "क्वि, ल पा-द-कैले" (Qui, le Pas-de-Calais) जिसका

अर्थ यह है कि मैं फ्रांस को भव्य और इंगलैंड को हास्यास्पद समझता हूं। निःसंदेह 'पा द कैले' एक नहर है, अर्थात् कनाल ला मांच (Canal la Manache) अर्थात् इंगलिश चैनल। अब आप पूछेंगे कि क्या मेरे ख्याल में इस साहचर्य का स्वप्न से कोई सम्बन्ध है? निश्चित रूप से मेरा यही ख्याल है। इससे उस स्वप्न-अवयव की पहेली का सच्चा अर्थ पता चल जाता है। या आप इस बात पर सन्देह करते हैं कि वह मजाक स्वप्न से पहले मौजूद था और यही नहर-अवयव के पीछे मौजूद अचेतन विचार था, और यह मानते है कि यह बाद में गढ़ा गया? यह साहचर्य अतिरंजित प्रशंसा के पीछे छिपी हुई संदेहवृत्ति को प्रकट करता है, और निःसन्देह प्रतिरोध के कारण ही से यह साहचर्य इतनी देर बाद ध्यान आया, तथा सम्बन्धित स्वप्न-अवयव अस्पष्ट दिखाई दिया। यहां स्वप्न-अवयव और उसके पीछे मौजूद अचेतन विचार के सम्बन्ध को देखिए—यह मानो उस विचार एक टुकड़ा ही है, उसका ही निर्देश है। उस तरह बिलकुल अलग हो जाने पर यह बिलकुल समझ में आने लायक नही रहा था।

(ग) एक मरीज को काफ़ी लम्बा स्वप्न आया जिसका कुछ हिस्सा इस तरह था : **उसके परिवार के कई लोग एक खास शक्ल की मेज पर बैठे थे** .. इत्यादि। इस मेज ने स्वप्न देखने वाले को उसी तरह की एक मेज की याद दिलाई जो उसने किसी दूसरे परिवार में देखी थी। उससे उसके विचार इस तरह दौड़ने लगे : उसके परिवार में पिता और पुत्र का सम्बन्ध एक विशेष प्रकार का था और रोगी ने तभी यह भी कहा कि अपने पिता के साथ मेरे सम्बन्ध भी उसी तरह के थे। इस प्रकार स्वप्न में मेज यह सादृश्य दिखाने के लिए आई थी।

बात यह थी कि इस स्वप्न-द्रष्टा को स्वप्न-निर्वचन की अपेक्षाओं का बहुत समय से परिचय था; अन्यथा वह मेज की शक्ल जैसी तुच्छ बात पूछे जाने पर ऐतराज करने लगता। हम इस बात से पूरी तरह इन्कार करते हैं कि स्वप्न में कोई चीज अचानक या बेमतलब होती है, और ऐसी तुच्छ और (ऊपर से देखने में) कारणहीन बारीकियों की पूछताछ करके ही हम अपने नतीजे पर पहुंचने की आशा करते हैं। आप शायद अब भी आश्चर्य करेंगे कि स्वप्न ने यह विचार प्रकट करने के लिए कि "हमारा सम्बन्ध ठीक उनके सम्बन्ध जैसा है" मेज़ को चुना। इसकी भी तब व्याख्या हो सकती है जब आपको यह पता चले कि इस परिवार का नाम 'टिशलर' था (टिश=मेज; शाब्दिक रूपान्तर 'मेज़िए' अर्थात् मेज़ वाले हो सकता है।) अपने रिश्तेदारों को मेज पर बिठाने में स्वप्न-द्रष्टा का आशय यह था कि वे भी टिशलर या मेज़िए थे। एक बात और देखिए कि इस तरह के स्वप्न-निर्वचन सुनाने में आदमी को विवेक छोड़ना पड़ता है। यह उसी तरह की कठिनाई है जिसका मैंने उदाहरण छांटने के मामले में जिक्र किया था। मैं आपको इसकी जगह कोई और उदाहरण आसानी से दे

सकता था। पर शायद इस अविवेक से बचकर इसके स्थान पर मैं दूसरा अविवेक कर रहा होता।

यहां मैं दो नये शब्द आपको बताना चाहता हूं जिनका प्रयोग हमने सम्भवतः पहले भी किया है। स्वप्न जिस रूप में सुनाया गया है, उसे हम **व्यक्त स्वप्न-वस्तु** कहेंगे, और उसके छिपे हुए अर्थ को, जो हमें साहचर्यों का अनुसरण करने से पता चलेगा, **हम गुप्त स्वप्न-विचार** कहेंगे। तब हमें व्यक्त वस्तु और गुप्त विचारों के सम्बन्ध पर, जैसे कि वह ऊपर के उदाहरणों में दिखाया गया है, विचार करना होगा। इन सम्बन्धों की बहुत-सी किस्में है। उदाहरण (क) और (ख) में व्यक्त स्वप्न-अवयव भी गुप्त विचारों का एक अखण्ड भाग है, परन्तु वह उनका सिर्फ़ एक छोटा-सा अंश है। अचेतन स्वप्न-विचारों के एक बड़े, मिश्रित, मानसिक ढांचे का एक छोटा-सा टुकड़ा—एक अंश के रूप में या दूसरे उदाहरणों में, एक अवांतर निर्देश के रूप में—जैसे कि तार-संकेतों में कोई बंधे-बंधाए शब्द या संक्षेप होते है वैसे, व्यक्त स्वप्न में भी घुस आया है। निर्वचन को उस समष्टि को पूरा करना है। जिसका एक भाग यह अंश या भ्रम[1] है; जैसे कि उदाहरण (ख) में इसने बहुत सफलता से किया था। इसलिए स्वप्न-तंत्र का विपर्यस्त करने का एक तरीका तो यह है कि वह किसी चीज के स्थान पर उसका कोई अंश या भ्रम ला देता है। उदाहरण (ग) में हम व्यक्त वस्तु और गुप्त विचार में एक और सम्भव सम्बन्ध देखते है। यह सम्बन्ध निम्नलिखित उदाहरणों में और भी स्पष्ट रूप से प्रकट होता है :

(घ) **स्वप्न देखने वाला व्यक्ति अपनी परिचित एक महिला को खाई में से उपर खींच रहा था**। उसने अपने पहले साहचर्य के द्वारा अपने स्वप्न-अवयव का अर्थ स्वयं मालूम किया। इसका अर्थ था : उसने 'उसे खींच लिया' अर्थात् उसे पसन्द किया।

(ङ) एक और आदमी ने स्वप्न देखा कि **उसका भाई अपने सारे बाग में निलाई कर रहा है**। पहला साहचर्य यह था कि पौधों की अनावश्यक घास हटा रहा था। दूसरे ने अर्थ सूचित किया : भाई अपने खर्चों को कम कर रहा है।

(च) **स्वप्न देखने वाला एक पर्वत पर चढ़ रहा था जिससे उसे बड़ा विस्तृत दृश्य दिखाई देता था**। यह बिलकुल तर्कसंगत मालूम होता है। शायद इसका कोई अर्थ लगाने की आवश्यकता ही नहीं है, और हमें सिर्फ यह देखना है कि स्वप्न में उसे कौन-सी बात स्मरण आ रही है। नहीं; आप भूल कर रहे हैं। इसका यह अर्थ है कि इस स्वप्न का उसी तरह अर्थ लगाने की आवश्यकता है जैसे किसी दूसरे अधिक उलझे हुए स्वप्न का, क्योंकि स्वप्न देखने वाले को स्वयं पहाड़

---

१. Illusion.

पर चढ़ने के बारे में कुछ याद नहीं है। इसके बजाय, उसके मन में यह आता है कि उसका कोई परिचित व्यक्ति धरती के सबसे अधिक दूर वाले हिस्सों से हमारे सम्बन्धों के विषय में एक समीक्षा (Rundschau) प्रकाशित कर रहा है। इसलिए गुप्त विचार वह है जिसमें स्वप्न देखने वाला स्वयं **'समीक्षक'** (शब्दार्थ : अच्छी तरह देखने वाला) बन जाता है।

यहां आपको स्वप्न के व्यक्त और गुप्त अवयव के बीच एक नये प्रकार के सम्बन्ध का पता चलता है। व्यक्त अवयव गुप्त अवयव का विपर्यास नहीं है, बल्कि उसका निरूपण है—यह कल्पना का एक वैसा ही ठोस चित्र है जैसा किसी शब्द की ध्वनि से पैदा होता है। यह सच है कि यह फलतः विपर्यास ही है, क्योंकि हम बहुत पहले यह भूल चुके हैं कि वह शब्द किस मूर्त प्रतिबिम्ब से पैदा हुआ, और इसलिए जब इसके स्थान पर वह प्रतिबिम्ब आ जाता है, तब हम इसे पहचान नहीं पाते। जब आप यह विचार करते हैं कि अधिकतर उदाहरण में व्यक्त स्वप्न में दृष्टिगम्य प्रतिबिम्ब ही होते हैं, और विचार तथा शब्द बहुत कम होते हैं, तब आप आसानी से यह समझ जाएंगे कि स्वप्न के ढांचे में व्यक्त और गुप्त के इस तरह के सम्बन्ध का कुछ विशेष अर्थ है। आप यह भी देखते हैं कि इस तरह बहुत-से अमूर्त विचारों की लम्बी श्रेणी के लिए व्यक्त स्वप्न में स्थानापन्न बिम्ब पैदा करना सम्भव हो जाता है जो सचमुच छिपाने का प्रयोजन पूरा करते हैं। हमारी चित्र-पहेलियां इसी तरह की होती हैं। इस तरह के निरूपण में जो सूझ या बुद्धि जैसी चीज़ दिखाई देती है, वह कहां से पैदा होती है, यह एक विशेष प्रश्न है, जिसपर हमें यहां विचार करने की ज़रूरत नहीं।

व्यक्त और गुप्त अवयवों के बीच एक चौथा सम्बन्ध भी है, जिसके बारे में मैं हमारी विधि के वर्णन में उसके उपयुक्त समय आने तक कुछ नहीं कहूंगा। फिर भी इन सम्भव सम्बन्धों की पूरी सूची आपके सामने नहीं आई है, पर हमारे प्रयोजन के लिए काफ़ी चीज़ आ चुकी है।

क्या अब आप एक पूरे स्वप्न का अर्थ लगाने की हिम्मत कर सकते है? पहले यह देखना चाहिए कि हमारे पास इसके लिए पर्याप्त तैयारी या साधन हो गए या नहीं। यद्यपि मैं सबसे अधिक स्पष्ट स्वप्न नहीं चुनूंगा, तो भी ऐसा स्वप्न चुनूंगा जो साफ़ तौर से स्वप्न की मुख्य विशेषताओं को प्रकट करे।

एक नौजवान स्त्री को, जिसका कई वर्ष पूर्व विवाह हो चुका था, यह स्वप्न आया : **वह अपने पति के साथ थियेटर गई। वहां एक तरफ़ की कुर्सियां बिलकुल खाली थीं। उसके पति ने उसे बताया कि एलिस एल० और उसका भावी पति (जिससे उसकी सगाई हुई है।) भी आना चाहते थे, पर उन्हें डेढ़ फ्लोरिन में तीन वाली रद्दी कुर्सियां ही मिल सकीं, और निश्चित ही वे कुर्सियां नहीं ले सकते थे। उसने उत्तर दिया कि मेरी राय में इससे उन्हें विशेष नुकसान नहीं हुआ।**

स्वप्न देखने वाले ने जो पहली बात बताई, वह यह है कि स्वप्न पैदा होने के अवसर का व्यक्त वस्तु में निर्देश है : उसके पति ने उसे सचमुच बताया था कि उसकी एक परिचित लड़की एलिस एल० की, जो लगभग उसकी ही आयु की थी, सगाई हो गई थी और यह स्वप्न उसी समाचार की प्रतिक्रिया है। हम पहले ही जानते हैं कि बहुत-से स्वप्नों में पिछले दिन हुए किसी ऐसे अवसर का संकेत करना आसान होता है, और स्वप्न देखने वाला बिना कठिनाई के उसपर पहुंच जाता है। यह स्वप्न देखने वाला हमें व्यक्त स्वप्न के अन्य अवयवों के बारे में उसी तरह की और जानकारी देता है। एक तरफ की कुर्सियां खाली थीं। इससे वह किस बात पर पहुंची ? यह पिछले सप्ताह की एक वास्तविक घटना का निर्देश था, जब उसने एक नाटक देखने का विचार किया था और इसलिए इतनी **जल्दी** सीटें बुक करा ली थीं कि उसे टिकटों के लिए अतिरिक्त पैसे देने पड़े थे। थियेटर में घुसने पर यह स्पष्ट था कि उसकी चिन्ता बिलकुल अनावश्यक थी, क्योंकि एक तरफ़ की कुर्सियां प्रायः खाली थीं। यदि वह नाटक के दिन ही टिकट खरीदती तो भी काफ़ी समय होता और उसका पति उसे यह कोंचने से न चूका कि तुमने बहुत जल्दीबाजी की। इसके बाद डेढ़ फ्लोरिन का क्या अर्थ हुआ ? इसका सम्बन्ध एक बिलकुल दूसरे प्रसंग से था, जिसका पहले प्रसंग से कुछ मेल नहीं था। पर यह भी पिछले दिन मिले किसी समाचार के बारे में था। उसकी ननद के पास अपने पति से डेढ़ सौ फ्लोरिन आए थे और वह मूर्ख की तरह **जल्दी से** एक गहने वाले की दुकान पर पहुंची और एक गहने पर उसने वह सब खर्च कर दिया। तीन संख्या का क्या अर्थ था ? उसे इसके बारे में कुछ मालूम नहीं था पर शायद आप इस विचार को साहचर्य मान सकें कि सगाई वाली लड़की एलिस एल० इससे सिर्फ़ तीन महीने छोटी थी जबकि इसकी शादी हुए दस वर्ष हो चुके थे। और दो आदमियों के लिए तीन टिकट लेने की बेतुकी बात का क्या मतलब था ? उसने इस बारे में कुछ नहीं कहा और कोई अन्य साहचर्य या जानकारी बताने से इन्कार कर दिया।

तो भी उसके थोड़े-से साहचर्यों ने हमें इतनी सामग्री दे दी है कि उससे गुप्त स्वप्न-विचार का पता लगाया जा सकता है। यह तथ्य विशेष रूप से हमारे सामने आता है कि उसके बयानों में समय का उल्लेख कई जगह दिखाई देता है और यह इस सामग्री के भिन्न-भिन्न भागों का सामान्य आधार बना हुआ है। उसने थियेटर के टिकट **बहुत जल्दी** खरीद लिए थे उन्हें **बहुत जल्दी-जल्दी** में लिया था, जिसके कारण उसे अतिरिक्त पैसे देने पड़े थे; इसी तरह, उसकी ननद **बहुत जल्दी में** सर्राफ़ की दुकान पर जेवर खरीदने चली गई थी, मानो उसकी **कोई चीज खो जाएगी**। यदि उन बातों को, जिनपर खास बल दिया गया—**'बहुत जल्दी' 'बहुत जल्दी में'**—स्वप्न के मौके (अर्थात् यह खबर कि उसकी उससे

सिर्फ तीन महीने **छोटी** सहेली को अब आखीर में एक अच्छा पति मिल गया है।) से, और उस आलोचना से, जो उसने अपनी ननद के बारे में रूखेपन से की थी, कि 'इतनी जल्दबाजी करना **बेवकूफी** है', जोड़ दिया जाए तो प्रायः अपने आप ही गुप्त स्वप्न-विचारों की निम्नलिखित अन्विति या तात्पर्य आता है जिसका बहुत अधिक विपर्यस्त स्थानापन्न वह स्वप्न है :

"मेरा विवाह के लिए इतनी जल्दी करना सचमुच बेवकूफी थी। एलिस के उदाहरण से मुझे पता चलता है कि मुझे भी बाद में पति मिल सकता था" (यहां बहुत जल्दबाजी उसके अपने टिकट खरीदने के काम में, और उसकी ननद के जेवर खरीदने के रूप में प्रकट हुई; विवाहित होने के स्थान पर थियेटर जाना आ गया।)। प्रधान विचार यह होगा; शायद हम आगेभी बढ़ सकते हैं परंतु उतने निश्चिय से नहीं, क्योंकि इन वाक्यों में प्रस्तुत विश्लेषण स्वप्न-द्रष्टा के बयानों से अवश्य समर्थित ही होना चाहिए : "और मैं उतने ही रुपयों में सौ गुना अच्छा पा सकती थी।" (डेढ़सौ फ्लोरिन डेढ़ फ्लोरिन का सौ गुना है।) यदि हम धन के स्थान पर दहेज रख दें तो इसका अर्थ यह होगा कि पति दहेज से खरीदा जाता है : जेवर और खराब सीटें, ये दोनों चीजें पति की निरूपक होंगी। यदि हम 'तीन टिकट' और एक पतिवाले अवयव में भी कोई सम्बन्ध-सूत्र देख सकें तो और भी अच्छा होगा; पर अब तक का हमारा ज्ञान इतनी दूर तक नहीं पहुंचता। हम इतना ही पता लगा सकते हैं कि यह स्वप्न यह प्रकट करता है कि वह अपने पति को **हीन** समझती है और **इतनी जल्दी विवाह कर लेने पर** उसे खेद है।

मेरी राय में स्वप्न का अर्थ लगाने की हमारी इस पहली कोशिश का जो परिणाम हुआ है, उससे हम सन्तुष्ट कम और चकित तथा विभ्रान्त अधिक होंगे। हमारे मन में चारों ओर से एक साथ इतने सारे विचार आ रहे हैं कि हम उन्हें नियन्त्रित ही नहीं कर पा रहे हैं। हम पहले ही देख रहे हैं कि इस स्वप्न के निर्वचन से हम जो कुछ जान पाएंगे, उससे किसी उद्देश्य पर नहीं पहुंचेंगे। उन बातों को फौरन अलग-अलग कर लिया जाए जिनमें हमें निश्चित रूप से कोई नया ज्ञान दिखाई देता है।

पहली बात : हम देखते हैं कि गुप्त विचारों में मुख्य बल जल्दी के अवयव पर है; व्यक्त स्वप्न में यह एक ऐसी चीज़ है जिसके बारे में हमें कुछ नहीं मिलता। विश्लेषण के बिना हमें यह सन्देह भी न होता कि यह विचार मन में कभी आया था। इसलिए यह सम्भव मालूम होता है कि वह मुख्य बात, जो अचेतन विचारों का केन्द्र है, व्यक्त स्वप्न में बिलकुल दिखाई ही नहीं दी। इस तथ्य से वह सारा प्रभाव ऊपर से नीचे तक बदल जाता है, जो इस सारे स्वप्न से हमारे ऊपर पड़ा था। दूसरी बात : स्वप्न में विचारों का अर्थहीन संयोग है (डेढ़ फ्लोरिन में तीन); स्वप्न-विचारों में हमें यह राय दिखाई देती है : '(इतनी जल्दी विवाह) यह बेव-

कूफी थी।' क्या हम इस निष्कर्ष को अस्वीकार कर सकते हैं कि यह विचार 'यह **बेबकूफी** थी' व्यक्त स्वप्न में एक बेतुका अवयव लाकर प्रकट हुआ है ? तीसरी बात : तुलना से पता चलता है कि व्यक्त और गुप्त अवयवों का सम्बन्ध सरल और सीधा नहीं होता। निश्चित ही वह इस तरह का नहीं होता कि एक गुप्त अवयव के स्थान पर सदा एक व्यक्त अवयव आ जाता हो। इन दोनों का सम्बन्ध दो विभिन्न समूहों में होने वाले सम्बन्ध जैसा है, अर्थात् एक व्यक्त अवयव कई गुप्त विचारों को निरूपित कर सकता है, या एक गुप्त विचार के स्थान पर कई अवयव आ सकते हैं।

अब स्वप्न के अर्थ का, और इसके प्रति स्वप्न देखने वाले के रवैये का प्रश्न रह जाता है : इसमें भी हमें बहुत-सी आश्चर्यजनक बातें दिखाई दे सकती हैं। उस महिला ने इस अर्थ को स्वीकार तो अवश्य किया, पर उसे इसपर आश्चर्य था। उसे इस बात का ध्यान नहीं था कि वह अपने पति के बारे में ऐसे हीन विचार रखती है। उसे यह भी मालूम नहीं था कि वह उसे इस तरह हीन क्यों समझे। इस प्रकार, इसके बारे में अब भी बहुत-सी बातें समझ में नहीं आतीं। असल में, मैं यह सोच रहा हूं कि अभी स्वप्न का अर्थ लगाने के लिए हमारी उचित तैयारी नहीं हुई, और हमें पहले और अधिक शिक्षा तथा तैयारी की आवश्यकता है।

व्याख्यान | ८

बच्चों के स्वप्न

हमें यह महसूस हुआ था कि हम बहुत तेज़ चल आए हैं; इसलिए आइए थोड़ा-सा पीछे लौटा जाए। अपना पिछला परीक्षण करने से पहले, जिसमें हम अपनी विधि द्वारा स्वप्न-विपर्यास की कठिनाई से बचने की कोशिश की थी, हमने यह कहा था कि यदि कोई ऐसे स्वप्न हों जिनमें विपर्यास बिलकुल नहीं होता या बहुत थोड़ा होता है तो उन्हीं तक अपना ध्यान सीमित रखकर विपर्यास के प्रश्न को छोड़ जाना सबसे अच्छा रहेगा। ऐसा करते हुए भी हम अपने ज्ञान के परिवर्धन का असली मार्ग छोड़ रहे हैं, क्योंकि वास्तव में जिन स्वप्नों में विपर्यास होता है, उनमें अर्थ लगाने की अपनी विधि का लगातार प्रयोग करने के बाद और उनका पूरा विश्लेषण करने के बाद हमें उन स्वप्नों के अस्तित्व का पता चला था, जिनमें विपर्यास नहीं होता।

जिन स्वप्नों को हम खोज रहे हैं वे बच्चों में मिलते हैं। वे छोटे, स्पष्ट, सुसम्बद्ध और समझने में आसान तथा असंदिग्ध होते हैं, फिर भी निश्चित रूप से होते स्वप्न ही हैं। पर आप यह न समझिए कि बच्चों के सब स्वप्न इस तरह के होते हैं। बचपन में बहुत जल्दी स्वप्नों में विपर्यास दीखने लगता है। और हमारे रिकार्ड में पांच और चार वर्ष के बीच के बच्चों के ऐसे स्वप्न हैं, जिनमें बाद के जीवन के सब स्वप्नों की विशेषताएं दिखाई देती हैं। पर यदि आप उन स्वप्नों पर ही विचार करें जो पहचान योग्य मानसिक क्रिया आरम्भ होने के और चौथे या पांचवें वर्ष के बीच में होते हैं तो आपको एक ऐसी श्रेणी दिखाई देगी जिसे हम शैशवीय, अर्थात् शैशव में होने वाली स्वप्न-श्रेणी कह सकते हैं, और बचपन के बाद के वर्षों में आपको उसी तरह के अकेले स्वप्न मिल सकते हैं। सच तो यह है कि बड़े आदमियों में भी कुछ अवस्थाओं में ऐसे स्वप्न दिखाई देते हैं जो शैशवीय स्वप्नों से भिन्न नहीं होते।

बच्चों के इन स्वप्नों से स्वप्नों की असली प्रकृति के बारे में, बिना कठिनाई के, भरोसे की जानकारी मिल सकती है, और हमें आशा है कि यह जानकारी

निर्णायक और सर्वमान्य सिद्ध होगी।

१. इन स्वप्नों को समझाने के लिए न किसी विश्लेषण की आवश्यकता है और न कोई विधि प्रयोग में लाने की। जो बच्चा स्वप्न बतलाता है, उससे सवाल पूछने की भी आवश्यकता नहीं, पर हमें उसके जीवन के बारे में कुछ पता होना चाहिए; प्रत्येक उदाहरण में पिछले दिन का कोई ऐसा अनुभव होता है जो स्वप्न की व्याख्या करता है। स्वप्न पिछले दिन के अनुभव पर, नींद में, मन की प्रतिक्रिया है। अब हम कुछ उदाहरण लेंगे जिनके आधार पर हम आगे निष्कर्ष निकाल सकेंगे :

(क) एक वर्ष दस महीने आयु के किसी लड़के को, किसीको जन्म-दिवस के उपहार के रूप में एक टोकरी जामुन देने थे। उसने स्पष्टतः बड़ी अनिच्छा से यह उपहार दिया, यद्यपि उसे भी उनमें से कुछ देने का वायदा किया गया था। सवेरे उसने अपना स्वप्न बताया : "हरमैन ने सारे के सारे जामुन खा लिए।"

(ख) सवा तीन साल की एक लड़की पहली बार एक झील पर सैर करने गई। जब वे जमीन के पास पहुंचे तब वह नाव से उतरना ही नहीं चाहती थी, और जोर से रोने लगी। स्पष्ट है कि झील पर उसका समय बहुत तेज़ी से गुजरा था। सवेरे उसने कहा : "रात मैं झील पर सैर कर रही थी।" हम सम्भवतः यह अनुमान कर सकते हैं कि यह सैर ज्यादा देर रही होगी।

(ग) सवा पांच साल के एक लड़के को हालस्टाट के पास ऐसकर्न्टल घुमाने ले जाया गया। उसने सुना था कि हालस्टाट डाकस्टीन की तलहटी में है और उस पर्वत में उसने बड़ी दिलचस्पी दिखाई थी। औसी में बने हुए मकान से डाकस्टीन का दृश्य बड़ा सुन्दर दिखाई देता था, और दूरबीन से उसकी चोटी पर बनी हुई साइमनी हट या कुटिया देखी जा सकती थी। बच्चे ने बार-बार दूरबीन से कुटिया देखने की कोशिश की थी, पर किसीको मालूम नहीं कि उसे सफलता मिली या नहीं। यह यात्रा हर्षपूर्ण आशाएं लेकर शुरू हुई थी। जब कोई नया पहाड़ दिखाई देता था, तभी वह बच्चा पूछता था : "क्या वह डाकस्टीन है?" हर बार उसके प्रश्न का उत्तर नकारात्मक होता था। हौसला छोड़कर वह बिलकुल चुप हो गया और उसने औरों के साथ चलकर जलप्रपात तक पहुंचने से भी इन्कार कर दिया। लोगों ने समझा कि वह बहुत थक गया है, पर अगले दिन सवेरे उसने बड़ी खुशी से कहा : " रात हमने यह स्वप्न देखा कि हम साइमनी हट में हैं—"तो उसने इस आशय से यात्रा में हिस्सा लिया था। वह एक ही ब्योरा पता लगा सका जो उसने पहले सुना था : "छः घन्टे तक सीढ़ियां चढ़नी पड़ती हैं।"

इस प्रश्न पर हमें जितनी जानकारी चाहिए उसके लिए ये तीन स्वप्न काफी हैं।

२. हम देखते हैं कि बचपन के ये स्वप्न अर्थहीन नहीं होते। वे पूर्ण और समझ में आने योग्य मानसिक कार्य होते हैं। स्वप्नों के बारे में डाक्टरी विज्ञान की जो राय मैंने आपको बताई थी, वह याद करिए, और पियानो की कुंजियों पर चलने वाली अकुशल उंगलियों की तुलना भी याद रखिए। आपको अवश्य दिखाई देगा कि बच्चों के जो स्वप्न मैंने आपको बताए हैं उनसे इस धारणा का कितना प्रबल खण्डन हो जाता है, पर यह बात बड़ी असामान्य होगी कि कोई बच्चा नींद में पूर्णमानसिक कार्य कर सके और बड़ा आदमी उस स्थिति में सिर्फ बीच-बीच में प्रबल होने वाली प्रतिक्रियाएं ही कर सके। इसके अतिरिक्त, हमें यह बात युक्तियुक्त मालूम होती है कि बच्चे की नींद अधिक अच्छी और अधिक गहरी होती है।

३. इन स्वप्नों में कोई विपर्यास नहीं है, और इसलिए इनका अर्थ लगाने की कोई आवश्यकता नहीं है। यहां व्यक्त और गुप्त वस्तु में भिन्नता नहीं है। इससे हम यह नतीजा निकालते हैं **कि विपर्यास स्वप्न की प्रकृति का सर्वथा आवश्यक हिस्सा नहीं है।** मुझे आशा है कि यह बात सुनकर आपके दिमाग से एक बोझ हट जाएगा। तो भी बारीकी से विचार करने पर हमें यह मानना पड़ता है कि इन स्वप्नों में भी विपर्यास यद्यपि बहुत ही कम मात्रा में होता है, और व्यक्त वस्तु और गुप्त स्वप्न-विचार में थोड़ा अन्तर होता है।

४. बच्चे का स्वप्न पिछले दिन के अनुभव की एक प्रतिक्रिया है। वह अनुभव कोई अफसोस, कोई चाह, या कोई अधूरी इच्छा पीछे छोड़ गया है। **स्वप्न में हम इस इच्छा की सीधी और प्रत्यक्ष रूप से पूर्ति करते हैं।** अब उन बातों पर विचार कीजिए जो हमने पहले पेश की थीं, और जिनमें यह बताया था कि बाहरी या भीतरी कायिक उद्दीपन नींद के विघातक और स्वप्न के जनक के रूप में क्या कार्य करते हैं। इस प्रश्न पर हमने कुछ निश्चित तथ्य प्राप्त किए थे, पर यह व्याख्या सिर्फ थोड़े-से स्वप्नों के बारे में सही उतरती थी। बच्चों के इन स्वप्नों में ऐसे कायिक उद्दीपनों के प्रभाव का कोई संकेत नहीं मिलता; इस विषय में हमारी कोई भूल नहीं हो सकती, क्योंकि ये स्वप्न पूरी तरह समझ में आ जाने वाले हैं और प्रत्येक स्वप्न, पूरे का पूरा आसानी से समझा जा सकता है। पर इस कारण हमें यह विचार नहीं छोड़ देना चाहिए कि वह उद्दीपन स्वप्न पैदा करता है। हम सिर्फ यह पूछ सकते हैं कि शुरू से ही हम यह क्यों भूल जाते हैं कि शरीरिक नींद-विघातक उद्दीपनों के अलावा **मानसिक** नींद-विघातक उद्दीपन भी होते हैं। निश्चय ही हम जानते हैं कि वयस्कों की नींद में मुख्यतः इन्हींके कारण बाधा होती है। ये नींद के लिए आवश्यक मानसिक अवस्था अर्थात् बाहरी दुनिया से दिलचस्पी के खिंचाव को रोकते हैं। आदमी चाहता है कि मेरे जीवन में कोई व्याघात न आए; वह जो कुछ कर रहा है, वही

करते रहना चाहता है, और उसके न सोने का यही कारण है। इसलिए, बच्चे के लिए नींद खराब करने वाला मानसिक उद्दीपन उसकी अधूरी इच्छा है, और इसपर बच्चे की प्रतिक्रिया ही स्वप्न है।

५. इससे जरा-सा आगे बढ़ते ही हम स्वप्नों के कार्य के बारे में एक नतीजे पर आ जाते हैं। यदि स्वप्न एक मानसिक उद्दीपन की प्रतिक्रिया हैं, तो उनका महत्व इस बात में होना चाहिए कि वे उत्तेजन का आवेश (चार्ज) खत्म कर दें, जिससे उद्दीपन हट जाए, और नींद जारी रह सके। हम अभी यह नहीं जानते कि स्वप्न के द्वारा यह निरावेश या विसर्जन (डिसचार्ज) गतिकीय दृष्टि से कैसे होता है, पर यह हम पहले ही देख चुके हैं कि स्वप्न नींद के विघातक नहीं हैं (जैसा कि उन्हें आमतौर से कहा जाता है), बल्कि विघातक प्रभावों से इसकी रक्षा करने वाले हैं। यह सच है कि हम यह सोचते हैं कि स्वप्न न आए होते तो हम अच्छी नींद सोए होते, पर हमारा ख्याल ग़लत है। सचाई यह है कि स्वप्न की सहायता के बिना हम ज़रा भी न सो पाते, और हम स्वप्न के कारण ही ज्यादा से ज्यादा अच्छी तरह सो सके। यह, थोड़ी-बहुत हमारी नींद बिगाड़ते जरूर हैं, पर यह तो ठीक वैसे ही है जैसे पुलिस वाला शान्ति भंग करने वालों को भागते हुए प्रायः शोर करके हमें जगा दिया करता है।

६. स्वप्न किसी इच्छा के कारण पैदा होते हैं और स्वप्न की वस्तु उस इच्छा को प्रकट करती है—यह स्वप्नों की मुख्य विशेषता है। दूसरी इतनी ही स्थिर विशेषता यह है कि स्वप्न विचार को केवल व्यक्त ही नहीं करता, बल्कि इस इच्छा को एक मतिभ्रात्मक अनुभव के रूप में पूर्ण हुआ दिखाता है। 'मैं झील पर सैर करना चाहता हूं', इस इच्छा से एक स्वप्न पैदा होता है : जिसकी वस्तु यह है 'मैं झील पर सैर कर रहा हूं।' इस प्रकार बचपन के इन सरल स्वप्नों में भी गुप्त और व्यक्त स्वप्नों का अन्तर है और गुप्त स्वप्न-विचार में यह विपर्यास भी है कि **विचार अनुभव के रूप में आ गया है,** किसी स्वप्न का अर्थ लगाने में सबसे पहले हमें इस परिवर्तन के प्रक्रम को हटाना होगा। यदि इसे सब स्वप्नों की सबसे व्यापक विशेषताओं में से एक मान लिया जाए तो हमें पता चलता है कि ऊपर बताए गए स्वप्न-अवयव को कैसे अनुवादित या रूपान्तरित किया जा सकता है : 'मैं अपने भाई को निलाई करते देखता हूं' का यह अर्थ नहीं कि 'मेरा भाई घास हटा रहा है' बल्कि मैं चाहता हूं कि मेरे भाई खर्च कम करे, बल्कि उसे खर्च कम करना ही पड़ेगा। हमने जो दो व्यापक विशेषताएं बताई हैं, उनमें से पहली की अपेक्षा दूसरी को स्पष्टतः बिना विरोध स्वीकार कर लिए जाने की अधिक सम्भावना है।

विस्तृत जांच-पड़ताल से ही हम यह निश्चय कर सकते हैं कि स्वप्न पैदा करने वाला कारण सदा कोई इच्छा ही होती है, और वह कभी भी कोई आवश्यक

कार्य या प्रयोजन या कोई डांट-फटकार नहीं हो सकती; परन्तु दूसरी विशेषता जैसी की तैसी रहती है, अर्थात् यह कि स्वप्न इस उद्दीपन को सिर्फ़ पुनः प्रस्तुत ही नहीं करता, बल्कि एक तरह से 'इसको जीकर' इसे हटा देता है, दूर कर देता है, शांत कर देता है।

७. स्वप्नों की इन विशेषताओं के प्रसंग में हम अपनी स्वप्नों और ग़लतियों की तुलना पर फिर विचार कर सकते हैं। ग़लतियों पर विचार करते हुए हमने बाधक प्रवृत्ति और बाधित प्रवृत्ति में भेद दिखाया था, जिन दोनों के समझौते के रूप में ग़लती पैदा हुई। स्वप्न भी उसी श्रेणी में आते है; बाधित प्रवृत्ति सोने की ही प्रवृत्ति हो सकती है और बाधक प्रवृत्ति मानसिक उद्दीपन के रूप में आ जाती है, जिसे हम 'इच्छा' कह सकते हैं (जो पूर्ति या तृप्ति के लिए शोर मचा रही है), क्योंकि इस समय हम नींद के बाधक और किसी मानसिक उद्दीपन को नहीं जानते। यहां भी स्वप्न एक समझौते का परिणाम है; हम सोते है, पर फिर भी एक इच्छा की तृप्ति अनुभव करते है; एक इच्छा की तृप्ति करते हैं और साथ ही सोते भी रहते है। प्रत्येक को आंशिक सफलता और आंशिक विफलता मिलती है।

८. आपको याद होगा कि एक स्थान पर हमने यह आशा की थी कि स्वप्नों की समस्या को समझने का रास्ता इस तथ्य से निकल आएगा कि कुछ बड़े स्पष्ट कल्पना-जाल 'दिवा-स्वप्न' कहलाते हैं। ये दिवा-स्वप्न तो सचमुच इच्छाओं की पूर्ति ही है। ये आकांक्षा पूर्ति या कामुक इच्छाओं की पूर्ति है, जिन्हें हम इस रूप में पहचानते हैं, पर वे विचार में पहुंच जाती है और उनकी चाहे कितनी ही सजीव कल्पना की जाए, पर वे कभी भी मतिभ्रमात्मक अनुभवों का रूप नहीं लेतीं। इसलिए यहां स्वप्न की दो मुख्य विशेषताओं में से कम निश्चित विशेषता कायम रहती है, और दूसरी विशेषता जिसके लिए नींद की अवस्था आवश्यक है, और जो जागृत जीवन में नहीं अनुभव की जा सकती, सर्वथा अनुपस्थित है। इसलिए भाषा में हमें यह संकेत मिलता है कि इच्छा-पूर्ति स्वप्नों की मुख्य विशेषता है, और फिर यदि स्वप्नों में होने वाला अनुभव कल्पनात्मक निरूपण का ही दूसरा रूप है (यह रूप नींद की विशेष अवस्थाओं में सम्भव हो जाता है और इसे हम 'रात का दिवा-स्वप्न' कह सकते हैं।) तो हम तुरन्त समझ जाते है कि स्वप्न-निर्माण का प्रक्रम किस तरह रात में क्रियाशील उद्दीपन को प्रभावहीन कर सकता है; और तृप्ति करा सकता है : कारण यह है कि दिवा-स्वप्न भी तृप्ति से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई क्रिया-व्यापार की एक रीति ही है, और असल में, तृप्ति के लिए ही हम लोग इसे प्रयोग में लाते हैं।

भाषा में इसके अलावा कई और भी रूढ़ प्रयोग हैं जिनसे यही ध्वनि निकलती है। हम इस कहावत से परिचित हैं : 'सुअर को स्वप्न में भी आम की गुठली

दीखती है और मुर्गी को अनाज के दाने'। आप देखते हैं कि यह कहावत और भी नीचे, बच्चों से भी परे, पशु-पक्षियों पर पहुंचती है, और यही कहती है कि स्वप्नों की वस्तु किसी अभाव की पूर्ति है। हम कहा करते हैं : 'मैंने सपने में भी नहीं सोचा', 'स्वप्न के समान सुन्दर', 'वह धन के स्वप्न देखता रहता है', 'सारे स्वप्न धूल में मिल गए,' 'स्वप्न साकार हो गए'। यहां बोल-चाल की भाषा में स्पष्टतः प्रभाव की पूर्ति के लिए स्वप्न का प्रयोग किया जाता है। यह ठीक है कि चिन्ताओं और कष्टों के भी स्वप्न आते हैं, पर 'स्वप्न' शब्द का सामान्य प्रयोग हमेशा किसी बढ़िया इच्छा-पूर्ति के लिए होता है, और ऐसी कोई कहावत नहीं है जो यह कहती हो कि सुअर और मुर्गियां जिबह किए जाने का स्वप्न देखती हैं।

निस्सन्देह यह बात समझ में आने वाली नहीं है कि स्वप्नों का इच्छा-पूर्ति का यह गुण इस विषय पर पहले के लेखकों की नज़र से बच गया हो। सच तो यह है कि उन्होंने इसका बहुत बार उल्लेख किया है, पर उनमें से किसीके मन में यह बात नहीं आई कि इस विशेषता को व्यापक विशेषता के रूप में पहचान लें और इसे स्वप्नों की व्याख्या की कुञ्जी समझें। इसमें उन्हें जो रुकावट पड़ी होगी, उसकी हम आसानी से कल्पना कर सकते है। हम बाद में इस प्रश्न पर विचार करेंगे।

अब ज़रा यह सोचिए कि हमें बच्चों के स्वप्नों पर विचार करने से कितनी सारी जानकारी प्राप्त हो गई, और वह भी बिना किसी विशेष परेशानी के! हमने जाना कि स्वप्नों का कार्य नींद की रक्षा करना है; कि वे दो विरोधी प्रवृत्तियों के परिणामस्वरूप पैदा होते हैं; जिनमें से एक, अर्थात् नींद की अभिलाषा अपरिवर्तित रहती है, और दूसरी किसी मानसिक उद्दीपन को तृप्त करने की कोशिश करती है; कि स्वप्न मानसिक व्यापार सिद्ध हुए हैं जो अर्थपूर्ण होते हैं; कि उनकी दो मुख्य विशेषताएं हैं, अर्थात् वे इच्छा-पूर्ति हैं और मतिभ्रमात्मक अनुभव है; और इस बीच हम यह प्रायः भूल ही गए हैं कि हम मनोविश्लेषण का अध्ययन कर रहे थे। स्वप्नों और ग़लतियों में सम्बन्ध-सूत्र बांधने के अलावा हमारे काम का और कोई विशेष नतीजा नहीं हुआ। मनोविश्लेषण की मान्यताओं से बिलकुल अपरिचित भी कोई मनोवैज्ञानिक यह व्याख्या कर सकता था। फिर किसीने ऐसा क्यों नहीं किया?

यदि सब स्वप्न शैशवीय प्ररूप के भी होते तो समस्या सुलझ गई होती और हमारा उद्देश्य पूरा हो गया होता और वह भी स्वप्न देखने वाले से बिना कुछ पूछे, अचेतन से बिना कुछ कहे, या मुक्त साहचर्य के क्रम का बिना उपयोग किए ही हो गया होता। स्पष्ट है कि हमें इसी दिशा में अपना काम जारी रखना होगा। हम पहले बार-बार देख चुके हैं कि सर्वत्र मान्य बताई जाने वाली विशेषताएं बाद में

सिर्फ एक तरह के और थोड़े-से स्वप्नों के लिए ही ठीक सिद्ध हुई। इस प्रकार, हमें अब जो प्रश्न तय करना है वह यह है कि क्या बच्चों के स्वप्नों से प्रकट हुई सामान्य विशेषताएं इनसे अधिक स्थायी होती हैं, और क्या वे उन स्वप्नों के लिए भी ठीक उतरती हैं जिनका अर्थ सीधा नहीं है और जिनकी व्यक्त वस्तु में हमें पिछले दिन की बची हुई इच्छा का कोई निर्देश नहीं मिलता। हमारा ख्याल यह है कि इन दूसरे स्वप्नों में बहुत अधिक विपर्यास हो गया और इसलिए हमें फौरन कोई फैसला नहीं करना चाहिए। हमें यह भी सन्देह है कि इस विपर्यास को हटाने के लिए हमें मनोविश्लेषण की विधि की आवश्यकता होगी; जिसे हम अभी, इस विषय को सीखते समय, अलग रख देना चाहते हैं; और जैसे हमने अभी बच्चों के स्वप्नों का अर्थ लगाते हुए किया है वैसे ही, उसके बिना काम चलाना चाहते हैं।

कम से कम एक और तरह के स्वप्न भी ऐसे होते हैं जिनमें कोई विपर्यास नहीं होता, और जिन्हें बच्चों के स्वप्नों की तरह हम आसानी से पहचान सकते हैं कि वे इच्छा-पूर्ति है। ये स्वप्न वे हैं जो भूख, प्यास और कामुक इच्छा—इन अनिवार्य शारीरिक आवश्यकताओं के कारण जीवन भर आते रहते हैं और इस अर्थ में वे इच्छा-पूर्ति हैं कि वे भीतरी कायिक उद्दीपनों की प्रतिक्रिया हैं। इस प्रकार मेरे रिकार्ड में एक साल सात महीने की एक छोटी लड़की का स्वप्न है जिसमें भोजन की वस्तुएं तथा उसका नाम दिखा था (अन्ना एफ०·· स्ट्राबेरी बिलबेरी, अंडा, फल) यह स्वप्न एक दिन के उपवास की प्रतिक्रिया स्वरूप आया था, और स्वप्न में दो बार वही फल दिखलाई पड़े जिन्हें खाने से उसे अपच की शिकायत हो गई थी और जिसके कारण उसे उपवास करना पड़ा था। साथ ही उसकी दादी को—उन दोनों की आयुओं का जोड़ ७० वर्ष था—गुर्दे में तकलीफ के कारण एक दिन उपवास करना पड़ा और उसे रात को यह स्वप्न आया कि वह कहीं दावत में गई हुई है और उसके आगे बड़ी स्वादिष्ट रसीली वस्तुएं रखी गई है। जिन कैदियों को भूखा छोड़ दिया जाता है और जिन लोगों को सफर में या साहसिक यात्राओं में भूखे रहना पड़ता है, उनपर की गई जांच से पता चलता है कि इन परिस्थितियों में उन्हें नियमित रूप से अपने अभावों की पूर्ति का स्वप्न आता है। ओटो नोर्डेन्सकोल्ड ने दक्षिणी ध्रुव सम्बन्धी अपनी पुस्तक (१९०४)में उस टोली की चर्चा इस प्रकार की है, जिसके साथ उसने जाड़ा गुजारा था (जिल्द १, पृष्ठ ३३६) : "हमारे स्वप्नों से हमारे विचारों के चलने की दिशा का बहुत स्पष्ट रूप से पता चलता था। जितने अधिक और जितने सजीव स्वप्न हमें उस समय आए उतने कभी नहीं आए थे। हमारे जिन साथियों को आमतौर से बहुत ही कम स्वप्न आते थे, वे भी सवेरे इस कल्पना-लोक के ताजे अनुभवों पर होने वाली गोष्ठी में अब लम्बे-लम्बे किस्से सुनाते थे। सब स्वप्न उस बाहरी दुनिया के बारे में होते थे जो हमसे दूर छूट गई थी, पर प्रायः उनमें हमारी उस

समय की अवस्था का निर्देश भी होता था'''''खाने और पीने को केन्द्र बनाकर ही हमारे स्वप्न अधिकतर चलते थे। हममें से एक आदमी, जो नींद में बड़ी-बडी दावतों में जाया करता था, सवेरे हमें यह बताकर बड़ा प्रसन्न होता था कि स्वप्न में उसने तीन 'कोर्स' वाला शानदार भोजन किया। एक और को तम्बाकू का स्वप्न आया करता था; तम्बाकू के पहाड़ के पहाड़ दिखाई पड़ते थे उसे; तीसरे को एक जहाज दीखता जो पानी पर पूरी तरह तैरता हुआ आ रहा था, और पानी से बर्फ साफ़ हो गया था। एक और स्वप्न उल्लेख योग्य है : डाकिया चिट्ठियां लेकर आया और उसने उनके देर से आने की बड़ी लम्बी सफाई पेश की। उसने कहा कि मैंने वे एक ग़लत जगह पहुंचा दी थीं जिन्हें वापस लेने में मुझे बड़ी परेशानी हुई। इससे भी असम्भव बातें नींद में हमारे मनों में घूमती रही। पर जो स्वप्न मैने देखे या दूसरों से सुने, उनमें एक बात विशेष रूप से महसूस हुई, कि प्रायः सब स्वप्नों में कल्पना का अभाव था। यदि हम इन सब स्वप्नों का लेखा रख पाते तो निश्चय ही वह बड़ी मनोवैज्ञानिक दिलचस्पी की चीज़ होती। आप कल्पना कर सकते है कि हम नींद के लिए कितने उत्सुक रहते होगे जो हममें से हरएक को वह चीज़ देती थी जिसके लिए वह सबसे अधिक उत्सुक था।" एक और उदाहरण लीजिए जो डू प्रेल का है : "मंगोपार्क को अफ्रीका में यात्रा करते हुए प्यास के मारे मरा हुआ-सा हो जाने पर लगातार अपने देश के जलमय पहाड़ों और घाटियों के स्वप्न आते रहे। इसी तरह ट्रेंक जब मैगडेबुर्ग के गढ़ में भूख की यन्त्रणा से परेशान था, तब उसने स्वप्न में अपने को बढ़िया भोजनों से घिरा हुआ देखा; और जार्ज बैक, जिसने फ्रैंकलिन की पहली यात्रा में हिस्सा लिया था, जब अपने भयंकर अभावों के कारण भूख के मारे मरणासन्न था, तब उसे नियमित रूप से प्रचुर भोजन का स्वप्न आता था।"

यदि कोई आदमी शाम को बहुत अधिक तली हुई चीजें खाकर प्यास अनुभव करने लगे तो उसे पीने का स्वप्न आने की सम्भावना है, पर तीव्र भूख या प्यास को दूर नहीं किया जा सकता। उस अवस्था में हम प्यासे जाग उठते है, और हमें असली पानी पीना पड़ता है। यहां स्वप्न का कार्य व्यावहारिक महत्व का नहीं है, पर तो भी इतना स्पष्ट है कि यह हमारी नींद को उस उद्दीपन से बचाने के लिए आया था जो हमें जागने और कार्य करने के लिए प्रेरणा दे रहा था। जहां इच्छा की तीव्रता कम होती है वहां 'सन्तुष्टि'-स्वप्न से प्रायः प्रयोजन सिद्ध हो जाता है।

इसी प्रकार जब उद्दीपन कामुक इच्छा का होता है, तब स्वप्न उसकी संतुष्टि करता है, पर इस सन्तुष्टि में कुछ उल्लेखनीय विशेषताएं दिखाई देती हैं। क्योंकि काम आवेग की यह विशेषता होती है कि वह अपने आलंबन पर भूख और प्यास की अपेक्षा कुछ कम निर्भर होता है, इसलिए स्वप्न-दोष में सन्तुष्टि वास्तविक हो सकती है, और आलंबन की दृष्टि से कुछ कठिनाइयां होने के कारण (जिनपर

बाद में विचार किया जाएगा) प्रायः ऐसा होता है कि वास्तविक सन्तुष्टि तब भी एक धुंधली या विपर्यस्त स्वप्न-वस्तु से जुड़ी रहती है। स्वप्न दोषों की इस विशेषता के कारण वे, जैसा कि ओ० रैन्क ने कहा है, स्वप्न-विपर्यास के अध्ययन के लिए उपयुक्त वस्तु है। इसके अलावा वयस्कों में इच्छा के स्वप्नों में सन्तुष्टि के अलावा प्रायः कुछ और चीजें भी होती हैं जो शुद्ध रूप से मानसिक स्रोत से पैदा होती है, और इन्हें समझने के लिए इनके निर्वचन की आवश्यकता होगी।

प्रशंगवश मैं यह कह दूं कि हमारी यह मान्यता नही है कि शैशवीय प्रकार के इच्छा-पूर्ति-स्वप्न वयस्कों में ऊपर बताई गई अनिवार्य इच्छाओ की प्रतिक्रियाओ के रूप में ही होते है। हम इस तरह के छोटे स्पष्ट स्वप्नो से भी उतने ही परिचित हैं—ये स्वप्न कुछ अभिभूत करने वाली स्थितियों के कारण आते है, और निश्चित रूप से मानसिक उद्दीपनों से पैदा होते है। उदाहरण के लिए, कुछ 'अधैर्य-स्वप्न' होते है, जिनमे कोई आदमी किसी यात्रा की तैयारी कर रहा है, या किसी नाटक में जाने की तैयारी कर रहा है, जिसमे उसकी बड़ी दिलचस्पी है, या किसी व्याख्यान में या किसीसे मिलने जाने की तैयारी कर रहा है। उसकी आशाएं स्वप्न में समय से पहले ही पूरी हो जाती है और वह असली यात्रा से पहली रात को ही अपनी यात्रा खतम कर लेता है, या थियेटर पहुंच जाता है या उस मित्र से बात कर लेता है जिससे मिलने वह जाने वाला है। फिर 'आराम स्वप्न' है जिनका यह नाम ठीक ही है, जिनमे कोई आदमी, जो सोता रहना चाहता है, यह स्वप्न देखता है कि मैं उठ गया हूं, नहाकर स्कूल पहुंच गया हूं, जब कि असल मे वह सारे समय सो रहा है; जिसका अर्थ यह है कि वह सचमुच उठने के बजाय उठने का स्वप्न ही देखना पसन्द करेगा। इन स्वप्नो मे नीद की इच्छा, जिसे हमने स्वप्न-निर्माण में नियमित रूप से हिस्सा लेने वाली मान लिया है, साफ रूप में अपने आपको प्रकट करती है, और उनके असली उत्पादक के रूप में सामने आती है। नीद की आवश्यकता दूसरी बड़ी शारीरिक आवश्यकताओ के बराबर महत्व की है, और यह उचित ही है।

यहां मैं आपसे म्युनिख की शैक गैलरी में श्विड द्वारा बनाए गए एक चित्र की प्रतिलिपि की चर्चा करना चाहता हूं। आप ध्यान से देखिए कि दिमाग पर छाई हुई परिस्थितियों के कारण जन्म लेते स्वप्नो का अनुभव कलाकार ने कितने सही रूप में किया है! चित्र का शीर्षक है **कैदी का स्वप्न** और स्वप्न का विषय निश्चित रूप से उसका कैद से भाग निकलना होगा। यह बड़ा सुखदायी विचार है कि कैदी को खिड़की के रास्ते भागना है क्योंकि खिड़की मे होकर ही प्रकाश की किरण अन्दर आई है और उसने उसे नीद से जगाया है। एक दूसरे के ऊपर जो बौने खड़े हैं, वे उन उत्तरोत्तर स्थितियों को सूचित करते है जिनपर उसे खिड़की पर चढ़ने के लिए पहुंचना होगा, और यदि मैं ग़लती नही करता और कलाकार

के आशय को समझने में अति नहीं कर रहा तो सबसे ऊपर वाले बौने का रूप, जो जालियों को बीच से पकड़ रहा है (कैदी भी स्वयं यही कार्य करना चाहेगा), मनुष्य के रूप के समान ही है।

मैं कह चुका हूं कि बच्चों के स्वप्नों तथा शैशवीय स्वप्नों के अनुरूप स्वप्नों को छोड़कर और सब स्वप्नों में विपर्यास की बाधा पार करनी पड़ती है। हम तुरन्त यह नहीं कह सकते कि वे भी इच्छा-पूर्तियां ही हैं, जैसा कि हम उन्हें मानना चाहते हैं, या कुछ और, तथा उनकी व्यक्त वस्तु से हम यह अन्दाजा भी नहीं कर सकते कि वे किस मानसिक उद्दीपन से पैदा होते हैं, अथवा यह भी सिद्ध नही कर सकते कि वे दूसरे स्वप्नों की तरह उद्दीपन को दूर करने या शान्त करने का प्रयत्न करते हैं। सचाई यह है कि उनका निर्वचन करना होगा, अर्थात् उन्हें अनुवादित या रूपान्तरित करना होगा, विपर्यास के प्रक्रम को उलटना होगा, और व्यक्त वस्तु के स्थान पर गुप्त को लाना होगा। इसके बाद ही हम इसके बारे में कोई सुनिश्चित घोषणा कर सकते हैं कि बच्चों के स्वप्नों के बारे में हमने जो बात पता लगाई है, वह सब स्वप्नों पर एक जैसी सही बैठ सकती है या नहीं।

व्याख्यान | ९

स्वप्न-सेन्सर

बच्चों के स्वप्नों पर विचार करने से हमें यह पता चल गया कि वे कैसे पैदा होते है, उनका सारभूत रूप क्या है और वे क्या काम करते हैं। स्वप्न नींद में बाधा डालने वाले मानसिक उद्दीपनों को मतिभ्रमात्मक सन्तुष्टि द्वारा हटाने के साधन हैं। यह ठीक है कि वयस्कों के स्वप्नों के बारे में हम सिर्फ़ एक समूह की व्याख्या कर सके है, जिन्हें हमने शैशवीय प्रकार से स्वप्न कहा था। अभी हमें यह मालूम नही है कि दूसरे स्वप्नों में यह बात ठीक होगी या नहीं, और उन्हें हम समझते भी नहीं। परन्तु जिस परिणाम पर हम पहुंच चुके हैं, उसके महत्व को कम न समझना चाहिए। जब कभी हम किसी स्वप्न को पूरी तरह समझते है, तब वह एक इच्छा-पूर्ति सिद्ध होता है, और सदा ऐसा होना आकस्मिक या महत्वहीन नही हो सकता।

दूसरे प्रकार के स्वप्नों को हमने एक अज्ञात वस्तु के विपर्यस्त स्थानापन्न माना है, इनकी अज्ञात वस्तु का ही सबसे पहले पता लगाना है। इस मान्यता के लिए हमारे पास बहुत-से आधार है जिनमें से एक हमारी गलतियों की अवधारणा से इसका सादृश्य है। हमारा अगला काम इस स्वप्न-विपर्यास की जांच-परख करना और उसे समझना है।

स्वप्न-विपर्यास के कारण ही स्वप्न विचित्र लगते है, और समझ में नहीं आते। इनके बारे में हम कई बातें जानना चाहते है : पहली बात, यह कहां से आता है (इसकी गतिकी); दूसरी, यह क्या करता है, और अन्त में, यह वह काम कैसे करता है ? आगे हम कह सकते है कि विपर्यास स्वप्न-तन्त्र[1] से पैदा होता है। अब हम स्वप्न-तंत्र का वर्णन करेंगे और इसके अन्दर मौजूद बलों की खोज करेंगे।

अब मै आपको एक ऐसा स्वप्न बताता हूं जो मनोविश्लेषण के क्षेत्र में प्रसिद्ध एक महिला ने दर्ज किया था। उसने यह भी बताया था कि यह स्वप्न देखनेवाली

---

१. Dream-work

एक बुजुर्ग, बहुत सुसंस्कृत और बड़ी सम्मानित स्त्री थी। इस स्वप्न का विश्लेषण नहीं किया गया था, और दर्ज करने वाली महिला ने यह कहा था कि मनोविश्लेषकों को इसका अर्थ लगाने की कोई आवश्यकता नहीं। स्वप्न देखने वाली ने स्वयं भी इसका अर्थ नहीं लगाया, पर उसने इसकी आलोचना की, और इसकी इस तरह निन्दा की, मानो उसे मालूम हो कि इसका क्या अर्थ है। उसने कहा: "अजीब बात है कि एक पचास वर्ष की औरत, जिसके मन में दिन-रात अपने बच्चे की ही चिन्ता रहती है, ऐसी घृणित बेहूदी बात का स्वप्न देखती है।"

अब मैं आपको वह स्वप्न बताऊंगा जो युद्ध-काल में 'प्रेम-सेवा' (अर्थात् सैनिकों की काम-संतुष्टि का कार्य) के बारे में है। वह पहले सैनिक अस्पताल गई और दरवाजे के सन्तरी से उसने कहा कि वह मुख्य डाक्टर (उसने एक नाम बोला जो उसे याद नहीं था) से बातचीत करना चाहती है क्योंकि वह अस्पताल में काम करने के लिए अपनी सेवाएं पेश करना चाहती है। ऐसा कहते हुए उसने सेवा शब्द पर इस तरह जोर दिया कि सारजेण्ट ने तुरन्त समझ लिया कि वह 'प्रेम-सेवा' के बारे में कह रही है। क्योंकि वह वृद्ध महिला थी, इसलिए कुछ दुविधा के बाद उसने उसे जाने दिया, पर मुख्य डाक्टर को ढूंढ़ने के बजाय वह एक बड़े अन्धेरे कमरे में पहुंची जहां कई अफसर, और सेना के डाक्टर एक लम्बी मेज के चारों ओर खड़े या बैठे थे। वह एक डाक्टर की ओर मुड़ी और उसे उसने अपना प्रस्ताव बताया। वह जल्दी ही उसका मतलब समझ गया। उसने स्वप्न में ये शब्द कहे थे: "मैं और वियेना की असंख्य दूसरी स्त्रियां और लड़कियां योद्धाओं के लिए, चाहे वे अफसर हों या साधारण सैनिक,·· को तैयार है" यह कथन अन्त में अस्पष्ट बुदबुदाहट में समाप्त हो गया। पर उसने अफसरों के कुछ परेशान और कुछ दुर्भावनापूर्ण भावों से यह समझ लिया कि उन्होंने उसका मतलब समझ लिया है। महिला आगे कहा: "मैं जानती हूं कि हमारा फैसला अजीब मालूम होता है, पर हमारा विचार पक्का है। रणक्षेत्र में सैनिक से यह नहीं पूछा जाता कि वह मरना चाहता है या नही।" इसके बाद एक मिनट तक कष्टकारी चुप्पी रही। तब स्टाफ डाक्टर ने अपनी बांह उसकी कमर में डाल दी और कहा: "श्रीमती जी, मान लो कि सचमुच यहां तक नौबत आ जाए कि···(अस्पष्ट ध्वनि)।" उसने अपने को उसकी बांह से छुड़ा लिया और सोचा: "वे सब एक-से होते है", और उत्तर दिया: "हे भगवान, मैं तो बुढ़िया औरत हूं और शायद मेरे साथ यह नही होगा, और एक शर्त अवश्य माननी होगी: उमर का अवश्य ध्यान रखना होगा। जिससे कोई बुढ़िया स्त्री और जवान लड़का नहीं···(अस्पष्ट ध्वनि), यह बड़ी भयंकर बात होगी।" स्टाफ डाक्टर ने कहा: "मैं बिलकुल समझता हूं।" पर कुछ अफसर, जिनमें एक वह भी था जिसने अपनी जवानी में उससे प्रेम किया था, जोर से हंसे और महिला ने कहा कि मुझे मुख्य डाक्टर के पास ले चलो जिसे वह जानती

थी ताकि सारी बात सीधी पेश की जा सके। तब उसे यह ध्यान आया और इससे उसे बड़ी चिन्ता हुई, कि उसे उसका नाम मालूम नहीं था, पर स्टाफ डाक्टर ने बहुत आदर और विनय के साथ एक संकरी, घुमावदार लोहे की सीढ़ी से, जो उस कमरे से, जिसमें वे थे, सीधी ऊपर की मंजिलों को जाती थी, उसे तीसरी मंजिल का रास्ता दिखाया। जब वह ऊपर पहुंची तब उसने एक अफसर को यह कहते सुना : "वह जवान हो या बूढ़ी, पर यह एक महान निश्चय है; वह सम्मान का पात्र है!" इस भावना के साथ कि वह तो सिर्फ अपना कर्तव्य कर रही है, वह अन्तहीन सीढ़ी पर चढ़ती गई।

यह स्वप्न कुछ ही सप्ताहों के भीतर दो बार आया, इसमें कहीं-कहीं मामूली हेर-फेर थे; पर वे, जैसा कि महिला ने कहा, बिलकुल महत्वहीन और निरर्थक थे।

यह स्वप्न दिवा-स्वप्न की तरह ही आगे बढ़ता है; सिर्फ कुछ स्थानों पर रुकावट आ जाती है और इसकी वस्तु में मौजूद बहुत-से व्यक्तिगत प्रश्न पूछताछ से हल हो जाते। परन्तु, जैसा कि आप जानते हैं, यह पूछताछ नहीं की गई। पर इसमें सबसे अधिक ध्यान खीचने वाली और हमारे लिए सबसे दिलचस्प चीज़ यह है कि वस्तु में न कि स्मरण में, बहुत-से खाली स्थान आते हैं। तीन स्थानों पर वस्तु मानो काट दी गई है। जहां ये खाली स्थान आते हैं, वहां भाषणों के बीच में अस्पष्ट **बुद-बुदाहट** आ जाती है।

हमने इस स्वप्न का विश्लेषण नहीं किया, इसलिए यदि ठीक-ठीक देखा जाए तो हमें इसके अर्थ के बारे में कुछ कहने का अधिकार नही है, परन्तु कुछ ऐसे संकेत हैं जिनसे हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं; उदाहरण के लिए, 'प्रेम-सेवा' शब्द; और सबसे बढ़कर बात यह है कि अस्पष्ट ध्वनि से पहले टूटे हुए भाषणों को पूरा करने के लिए जिस तरह की चीज चाहिए, उसका एक ही तात्पर्य हो सकता है। यदि हम उन्हें वैसे पूरा कर दें तो एक ऐसी कल्पना बन जाती है जिसमें वस्तु यह है कि स्वप्न देखने वाला अपना कर्तव्य समझकर छोटे-बड़े सब तरह के सैनिकों की यौन आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए तैयार है। यह निश्चित रूप से बड़ी आश्चर्यजनक बात है, बेशर्मीभरी कामुकतापूर्ण कल्पना है; पर स्वप्न इसके बारे में कुछ नही कहता। जहां प्रसंग से यह स्वीकृत होनी चाहिए थी ठीक वही व्यक्त स्वप्न में अस्पष्ट ध्वनि है; कोई चीज़ छोड़ दी गई है या दबा दी गई है।

मुझे आशा है कि आप यह अनुभव करेंगे कि यह अनुमान कितना स्वाभाविक है कि ये वाक्य चोट पहुंचाने वाले होने के कारण ही दबाए गए हैं। अब बताइए कि इस तरह की चीज़ और कहां होती है। आजकल के जमाने में इसे खोजने आपको दूर नहीं जाना होगा। कोई भी राजनीतिक अखबार को ले लीजिए और आप देखेंगे कि जगह-जगह कोई चीज गायब है, और इसके स्थान पर सफ़ेद खाली कागज दिखाई दे रहा है। आप जानते हैं कि यह प्रेस-सेन्सर का काम है। जहां-जहां जगह

खाली है वहां-वहां शुरू में जो चीज़ लिखी हुई थी, उसे सेन्सरशिप अधिकारियों ने नापसंद किया और इस कारण उसे हटा दिया गया। आप शायद इसे बड़े अफ-सोस की बात समझेंगे, क्योंकि वही समाचार का सबसे महत्वपूर्ण या सारभूत भाग होता है।

कुछ जगह सेंसरशिप ने पूरे वाक्य को नहीं छुआ है क्योंकि लेखक ने पहले ही यह अनुमान करके कि सेंसर को किन वाक्यों पर आपत्ति हो सकती है, उन्हें हलका करके थोड़ा-सा बदलकर या जो कुछ वह वास्तव में लिखना चाहता है, उसके संकेतों से ही सन्तुष्ट होकर सेंसर की पेशबन्दी कर दी है। इस अवस्था में कोई जगह खाली नही है, पर बात कहने के घुमावदार और स्पष्ट तरीके से आपको इस तथ्य का पता चल सकता है कि लिखने के समय लेखक को सेंसरशिप का ध्यान था।

अब इस सादृश्य के अनुसार चलते हुए हम कहते हैं कि स्वप्न में जो बातें छोड़ दी गई हैं या बुदबुदाहट के रूप में आई हैं वे भी किसी सेंसरशिप की काट-छांट का नतीजा है। हम सचमुच 'स्वप्न-सेंसरशिप' या 'स्वप्नगत काट-छांट' शब्दों का प्रयोग करते हैं और स्वप्न के विपर्यास का आंशिक कारण इसीको समझते हैं। व्यक्त स्वप्न में जहां कहीं खाली स्थान है, वहां हम जानते है कि यह सेंसरशिप के कारण है, और इससे भी आगे बढ़कर हमें यह समझ लेना चाहिए कि दूसरे अधिक प्रमुख रूप से निर्दिष्ट अवयव में जहां कही कोई ऐसा अवयव है जिसकी याद धुंधली, अनिश्चित या संदिग्ध है, वहां वह सेंसरशिप के काम का ही सबूत है; पर सेंसरशिप इतना छिपा हुआ या चतुराईभरा रूप बहुत कम ग्रहण करती है जितना इसने 'प्रेम-सेवा' वाले स्वप्न में ग्रहण किया। प्राय: सेंसरशिप ऊपर बताये गए दूसरे तरीके से अपने होने का आभास देती है अर्थात् सच्चे अर्थ के स्थान पर उसके रूप-भेद, संकेत और अस्पष्ट निर्देश पेश करती है।

स्वप्न-सेन्सरशिप के कार्य करने का एक तीसरा तरीका भी है, जो प्रेस-सेंसर-शिप के नियमों से नहीं मिलता; पर बात यह है कि मैं आपको स्वप्न-सेंसरशिप के कार्य करने की यह विशेष रीति उस स्वप्न मे ही दिखा सकता हूं जिसका अब तक हमने विश्लेषण किया है। आपको 'डेढ़ फ्लोरिन के तीन खराब थियेटर-टिकटों' वाला स्वप्न याद होगा। इस स्वप्न के पीछे मौजूद गुप्त विचारों में, 'बहुत जल्द-बाजी' का तथ्य मुख्य था। उसका अर्थ यह था 'इतनी **जल्दी** विवाह करना बेव-कूफ़ी थी; इतनी **जल्दी** टिकट लेना भी बेवकूफ़ी थी, ननद का इतनी जल्दबाजी में एक ज़ेवर पर अपने रुपए खर्च कर डालना हास्यास्पद था'। स्वप्न-विचारों के इस केन्द्रीय तत्व की कोई भी चीज़ व्यक्त वस्तु में नहीं दिखाई दी। उसमें हर चीज़ का केन्द्र थियेटर जाना और टिकट लेना ही था, बल्कि स्थान-परिवर्तन और स्वप्न-अवयवों की नई जोड़-तोड़ से व्यक्त वस्तु गुप्त विचारों से इतनी भिन्न हो गई कि कोई भी उसके पीछे इसके होने का सन्देह नहीं करेगा। यह बलाघात का विस्था-

पन या परिवर्तन विपर्यास में काम आने वाला एक प्रधान साधन है और इसीके कारण स्वप्न में ऐसी विचित्रता आ जाती है जो स्वप्न देखने वाले को यह मानने से रोकती है कि यह स्वप्न उसके अपने मन से पैदा हुआ है।

तो, विलोपन या किसी चीज़ का छूट जाना, रूप-भेद, और सामग्री की नई जोड़-तोड़—इन तीन प्रकार से स्वप्न-सेन्सरशिप का कार्य होता है और विपर्यास में प्रयुक्त साधन यही है। सेन्सरशिप स्वयं विपर्यास की, जो इस समय हमारी खोज का विषय है, जन्मदाता या जन्मदाताओं में से एक है। रूप-भेद और विन्यास की अदल-बदल को आमतौर से **'विस्थापन'**[1] शब्द के अन्तर्गत शामिल किया जाता है।

स्वप्न-सेन्सरशिप के कार्यों पर इतना विचार करने के बाद अब हमें इसकी गतिकी पर ध्यान देना चाहिए। मुझे आशा है कि आप सेन्सरशिप शब्द का अर्थ बिलकुल मनुष्य के रूप में नहीं ले रहे। आप यह मत समझिए कि सेन्सर कोई छोटा-सा मनुष्य या आत्मिक सत्ता है जो मस्तिष्क की छोटी-सी कोठरी में रहती है और वहां से अपने कर्तव्य पूरे करती है, और न आप इसे किसी छोटे-से स्थान में सीमित करके यह कल्पना कर सकते हैं कि यह कोई ऐसा 'मस्तिष्क-केन्द्र' है जहां से सेन्सर-कारी असर किया करता है और उस केन्द्र को चोट पहुंचाने, या उसके निकल जाने से सेन्सर का प्रभाव खतम हो जाएगा। फिलहाल हम इसे गतिकीय सम्बन्ध का प्रकट करने वाला एक उपयोगी शब्दमात्र मान सकते हैं। इसके कारण हमें यह पूछने में कोई बाधा नहीं होनी चाहिए कि किस प्रकार की प्रवृत्तियां यह प्रभाव पैदा करती हैं और किस प्रकार की प्रवृत्तियों पर इसका प्रभाव पड़ता है, और फिर हमें यह जानने पर आश्चर्य न होना चाहिए कि हम शायद सेन्सरशिप को बिना पहचाने उससे मिल चुके हैं।

असल में ऐसा सचमुच हुआ है। जब हमने अपनी मुक्त साहचर्य की विधि लागू करनी शुरू की थी, उस समय के आश्चर्यजनक अनुभव को याद कीजिए। हमने देखा था कि जब हमने स्वप्न-अवयव से अचेतन विचार में, जो उसका स्थानापन्न है, जाने की कोशिश की थी, तब हमें कुछ **प्रतिरोध** का सामना करना पड़ा था। हमने कहा था कि उस प्रतिरोध की शक्ति बदलती रहती है। कभी बहुत अधिक होती है, और कभी बहुत हल्की। जब वह हल्की होती है, तब हमें निर्वचन के काम के लिए बहुत थोड़ी संयोजक कड़ियों की ज़रूरत पड़ती है, पर जहां प्रतिरोध अधिक होता है, वहां हमें साहचर्यों की लम्बी शृंखलाओं में से गुजरना पड़ता है, जो हमें शुरू के विचार से बहुत दूर ले जाती है, और रास्ते में हमें, साहचर्यों पर होने वाले और ऊपर से गम्भीर दीखने वाले आक्षेपों की सब कठिनाइयों को पार करना पड़ता है। हमने **निर्वचन** के काम में, जिसे प्रतिरोध के रूप में देखा था,

---

१. Displacement.

उससे अब स्वप्न-तंत्र में सेंसरशिप के रूप में फिर भेंट होती है। प्रतिरोध वस्तुरूप में सेंसरशिप का ही नाम है। इससे यह बात प्रमाणित हो जाती है कि सेंसरशिप की शक्ति विपर्यास पैदा करके ही समाप्त नहीं हो जाती, बल्कि वह सेंसरशिप की स्थायी संस्था के रूप में रहती है, जिसका उद्देश्य उस विपर्यास को कायम रखना है जो इसने एक बार पैदा किया है। इसके अलावा, जैसे निर्वचन में प्रत्येक अवयव के साथ आने वाले प्रतिरोध की शक्ति भिन्न-भिन्न होती है, ठीक उसी तरह किसी पूरे स्वप्न के प्रत्येक अवयव के लिए सेंसरशिप द्वारा किए गए विपर्यास की मात्रा भी भिन्न-भिन्न होती है। व्यक्त और गुप्त स्वप्न की तुलना करने से पता चलता है कि कुछ गुप्त अवयव पूरी तरह लुप्त हो जाते है, कुछ अवयव थोड़ा-बहुत रूप बदल लेते हैं, और कुछ अवयव व्यक्त स्वप्न-वस्तु में परिवर्तित हो जाते है या शायद तीव्रतर रूप में दिखाई देते है।

परन्तु हमारा प्रयोजन तो यह जानना था कि सेंसरशिप कौन-सी प्रवृत्तियां करती है और कौन-सी प्रवृत्तियों पर यह की जाती है। स्वप्नों और शायद सारे मानव जीवन को समझने के लिए आधारभूत इस प्रश्न का उत्तर उन स्वप्नों पर फिर से नजर डालकर, जिनका अर्थ लगाने में हमें सफलता मिली है, आसानी से दिया जा सकता है। सेंसरशिप करने वाली प्रवृत्तियां वे है जिन्हें स्वप्न देखने वाले या जाग्रत अवस्था का विवेक स्वीकार करता है और जिनके साथ वह अपनी एकात्मता अनुभव करता है। निश्चित समझिए कि जब आप अपने किसी स्वप्न के सही निकाले हुए अर्थ को अस्वीकार करते है, तब आप भी उन्हीं प्रेरक कारणों से ऐसा करते है जिनसे सेंसरशिप की जाती है, और विपर्यास पैदा किया जाता है। और निर्वचन या अर्थ लगाना ज़रूरी हो जाता है। हमारी पचास वर्षीय महिला के स्वप्न पर विचार करिए। उसका स्वप्न उसे चोट पहुंचाने वाला लगा, यद्यपि उसका निर्वचन नही किया गया था और यदि डाक्टर वॉन हग-हैलमथ ने उसे इसका कुछ असन्दिग्ध अर्थ बता दिया होता तो वह और भी पीड़ित हुई होती। बुरा समझने या निन्दा करने के उस रवैए के कारण ही स्वप्न में बुरे लगने वाले वाक्यों के स्थान पर अस्पष्ट ध्वनि आ गई।

जिन प्रवृत्तियों के विरुद्ध स्वप्न-सेंसरशिप कार्य कर रही है, अब उनका इस भीतरी आलोचनात्मक मानदंड की दृष्टि से वर्णन करना होगा। जब हम ऐसा करते हैं, तब इतना ही कह सकते है कि वे सदा आचार, सौंदर्य या समाज के दृष्टिकोण से आपत्ति योग्य और भद्दे होते है। वे ऐसी वस्तुएं होती है, जिनके बारे में हम ज़रा सोचने का भी हौसला नही कर सकते या फिर उन्हें घृणा से ही सोचते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि ये सेंसर की हुई अर्थात् कटी-छंटी इच्छाएं, जो स्वप्नों में विपर्यस्त रूप से प्रकट होती है, सीमाहीन और निष्ठुर अहंकार की अभिव्यक्ति होती है, क्योंकि प्रत्येक स्वप्न में स्वप्न देखने वाले का अपना अहंकार ही

प्रकट होता, और मुख्य कार्य करता है, यद्यपि वह यह जानता है कि व्यक्त वस्तु में वह अपने आपको कैसे पूरी तरह छिपा सकता है। स्वप्नों का यह **पवित्र अहंकार**[1] निश्चित रूप से नींद के लिए आवश्यक मानसिक रवैए से असम्बद्ध नहीं होता—नींद के लिए आवश्यक बात है सारी बाहरी दुनिया से दिलचस्पी हटा लेना।

जिस अहम् (ईगो) ने सब नैतिक बन्धनों को दूर कर दिया, वह यौन आवेग की सब आवश्यकताओं से अपनी एकात्मता अनुभव करता है—यौन आवेग की ये आवश्यकताएं ऐसी हैं जिन्हें हमारा सौंदर्य विषयक अभ्यास बहुत समय से बुरा समझता रहा है, और जो नैतिकता द्वारा लगाए गए सब संयमों के विपरीत हैं। आनन्द प्राप्ति का प्रयत्न—जिसे हम लिबिडो या राग कहते हैं—किसी भी निरोध[2] के काबू में न रहता हुआ, बल्कि निषेधात्मक वस्तुओं को ही पसन्द करता हुआ, अपनी तृप्ति के आलंबन चुन लेता है। वह न केवल दूसरे आदमी की पत्नी को चुन लेता है, बल्कि सबसे बढ़कर बात यह है कि वह ऐसे निषिद्ध सम्भोग[3] के आलंबन चुन लेता है जिन्हें मानव जाति ने एकमत से पूज्य माना है—पुरुषों के लिए माता और बहन, स्त्रियों के लिए पिता और भाई। (हमारी पचास वर्षीय महिला का स्वप्न भी निषिद्ध संभोग वाला है; उसमें लिबिडो या राग निश्चित रूप से पुत्र के प्रति प्रवृत्त है) जिन इच्छाओं को हम मनुष्य स्वभाव के लिए अपरिचित मानते हैं, वे इतनी शक्तिशाली होती हैं कि स्वप्नों को जन्म देती हैं। घृणा भी बड़े प्रबल रूप में प्रवर्तित होती है; जो लोग जीवन में अपने बहुत निकट के और प्रिय हैं, जैसे माता, पिता, भाई, बहन, पति या पत्नी, और स्वप्न देखने वाले के अपने बच्चे, इनके विरुद्ध बदले की इच्छा और इनकी मौत की अभिलाषा भी बहुत असामान्य चीज नहीं है। ये सेंसर या काट-छांट की हुई इच्छाएं बिलकुल नरक से उठी मालूम होती हैं; जब हम उनका अर्थ जानते हैं तब अपने जागृत क्षणों में हमें यह मालूम होता है कि उनकी काट-छांट सख्ती से नहीं हुई, पर इस दूषित वस्तु का दोष स्वयं स्वप्नों पर नहीं है; निश्चय ही आप यह भूले नहीं होंगे कि उनका न केवल हानि-रहित बल्कि उपयोगी काम नींद को भंग होने से बचाना है। पतित या नीतिभ्रष्ट होना स्वप्नों का स्वभाव नहीं है। सच तो यह है, जैसा कि आप जानते हैं, कि ऐसे स्वप्न भी होते हैं जो उचित इच्छाओं को और तात्कालिक शारीरिक जरूरतों को पूरा करते हैं। यह सच है कि इन स्वप्नों में विपर्यास नहीं होता, पर इनमें उसकी आवश्यकता भी नहीं होती। वे ईगो या अहम् की नैतिक और सौंदर्य संबंधी प्रवृत्तियों को बिना चोट पहुंचाए अपना कार्य पूरा कर सकते हैं। यह भी याद रखिए कि विपर्यास की मात्रा दो बातों की समानुपाती होती है, एक तो जिस इच्छा को सेंसर करना है वह जितनी अधिक आघातकारक या चौंकाने वाली

---

१. Sacroegoismo. २. Inhibition, ३. Incestuous objects.

होगी, उतना ही अधिक विपर्यास होगा, पर यदि सेन्सरशिप अर्थात् काट-छांट कराने वाली प्रवृत्ति सख्त है तो भी विपर्यास अधिक होगा। इसलिए किसी बहुत संयम के वातावरण में पाली गई और अति लज्जाशील नौजवान लड़की में कठोर सेंसरशिप स्वप्न-उत्तेजनो को ऐसे रूप में विपर्यस्त कर देगी, जिन्हें हम डाक्टर लोग हानिरहित कामुक इच्छाएं मानते है, और जिन्हें स्वप्न-द्रष्टा भी दस वर्ष बाद इसी रूप में मानेगी।

इसके अतिरिक्त, हम अभी इतना अधिक आगे नहीं बढ़े है कि अपने अर्थ लगाने के काम के परिणामों पर परेशानी अनुभव करने लगें। मेरा ख्याल है कि अब भी हम इसे ठीक तरह नहीं समझते। पर सबसे पहले हमारा कर्तव्य यह है कि हम इस पर हो सकने वाली आलोचनाओं से इसको सुरक्षित कर दें। कमजोर पहलू ढूढ़ लेना कुछ भी कठिन नहीं है। हमारे निर्वचन उन परिकल्पनाओं के आधार पर थे, जो हमने पहले मान ली थीं; कि स्वप्नों का सचमुच कुछ अर्थ होता है। यह विचार कि मानसिक प्रक्रम कुछ समय के लिए अचेतन होते हैं, जो पहले सम्मोहन-निद्रा के द्वारा पता चला था, सामान्य नींद पर भी लागू किया जा सकता है; और सब साहचर्य नियति के अधीन, अर्थात् कार्य-कारण सम्बन्ध से अनिवार्यतः बंधे होते है। अब यदि इन परिकल्पनाओं से आगे तर्क करते हुए हमें अपने स्वप्न-निर्वचन में तर्कसंगत दीखने वाले परिणाम प्राप्त हो जाते तो हम यह नतीजा निकालकर उचित ही करते कि ये परिकल्पनाएं सही है। पर यदि ये खोजें वैसी हों जैसी मैने बताई है, तो तब क्या स्थिति होगी ? उस अवस्था में निश्चित रूप से यही कहना स्वाभाविक लगता है :"ये परिणाम अशक्य,बेहूदे, और बहुत अधिक असम्भाव्य है। इसलिए परिकल्पनाओं में कुछ न कुछ ग़लती रही होगी। या तो स्वप्न मानसिक घटना नहीं हैं, और या वे ऐसी कोई चीज़ नहीं हैं जो हमारी सामान्य अवस्था में अचेतन हों; अथवा हमारी विधि में कहीं कमजोरी है। क्या ये सब घृणायोग्य निष्कर्ष मान लेने की अपेक्षा, जिन्हें हम अपनी परिकल्पनाओं से निकाला गया बताते है, यह मान लेना अधिक सीधा और सन्तोषजनन नहीं होगा ?"

निस्संदेह यह अधिक आसान भी होगा और अधिक सन्तोषजनक भी, पर इसी कारण यह आवश्यक नहीं कि यह अधिक सही भी होगा। थोड़ी देर इन्तजार कीजिए। अभी यह मामला फैसला करने लायक हालत में नहीं पहुंचा। अव्वल तो हम अपने निर्वचनों के विरुद्ध पक्ष को अधिक प्रबल बना सकते हैं। शायद इस तथ्य का हमारे लिए बहुत महत्व न हो कि हमारे परिणाम इतने अप्रिय और घृणा पैदा करने वाले हैं। इससे भी जबर्दस्त दलील यह है कि जब हम इन स्वप्नों का निर्वचन करने के बाद स्वप्न देखने वालों पर कुछ इच्छा-प्रवृत्तियां लादने की कोशिश करते हैं, तब वे उनको बलपूर्वक और अच्छे आधार पेश करके अस्वीकार करते हैं। "तो",एक आदमी कहता है, "आप मेरे स्वप्न से मेरे आगे यह सिद्ध करना चाहते हैं

कि मैंने अपनी बहन के दहेज पर और अपने भाई की शिक्षा पर जो पैसा खर्च किया है, उसपर मेरे मन में असन्तोष है, पर यह बिलकुल बेकार बात है; मैं अपना सारा समय अपने भाई और बहनों के लिए काम करता हुआ बिता देता हूं और सबसे बड़ा होने के कारण जीवन में मेरी एक यही दिलचस्पी है कि मैं उनके प्रति अपने कर्तव्य का पालन करूं, जैसा करने की मैंने अपनी स्वर्गीय माता से प्रतिज्ञा की थी।" या कोई औरत कहती है : "लोग कहते हैं कि मैं अपने पति की मौत चाहती हूं। असल में यह तो बड़ी कष्टकारक बेहूदगी है। इतना ही नहीं कि हमारा वैवाहिक जीवन सुखी है, यद्यपि शायद आप इसपर विश्वास नहीं करेंगे, बल्कि यह बात भी है कि यदि वह मर जाए तो मेरे पास दुनिया में जो कुछ है वह सब चला जाएगा।" या कोई और यह उत्तर देगा : "क्या आप यह कहना चाहते हैं कि मैं अपनी बहन के प्रति कामुकता की इच्छाएं रखता हूं ? यह बात उपहासयोग्य है। वह मेरे लिए कुछ भी नही। हमारे आपस में अच्छे सम्बन्ध नहीं हैं और वर्षो से मैं उससे एक शब्द भी नहीं बोला।" यदि ये स्वप्न देखने वाले उन प्रवृत्तियों को स्वीकार भी न करें और अस्वीकार भी न करें, जो हमने उनके अन्दर मौजूद बताई हैं, तो भी हम पर विशेष असर नहीं पड़ेगा। हम यह कह सकते हैं कि ये वही चीज़ें हैं जिनका उन्हें बिलकुल ज्ञान नहीं है, पर जब वे अपने मन में उससे बिलकुल उलटी इच्छा देखते हैं जो उनके मन में बताई गई हैं, और जब वे जीवन के अपने सारे आचरण द्वारा हमारे सामने यह सिद्ध कर सकते हैं कि वह विपरीत इच्छा ही प्रधान रही है, तब निश्चित रूप से हमें अवाक् रह जाना पड़ता है। क्या यहां पहुंचकर हमें स्वप्न-निर्वचन के सारे कार्य को ही नहीं छोड़ देना चाहिए, क्योंकि इससे हम बड़ी बेहूदी हालत में पहुंच गए हैं ?

नहीं, अब भी नहीं। इस ज़ोरदार दलील को आलोचना की दृष्टि से देखने पर यह भी टुकड़े-टुकड़े हो जाती है। यह मान लेने पर कि मानसिक जीवन में अचेतन प्रवृत्तियां रहती हैं, यह तथ्य कुछ भी सिद्ध नही करता कि चेतन जीवन में विरोधी प्रवृत्तियां प्रधान होती हैं। शायद मन में विरोधी प्रवृत्तियों, परस्परविरुद्ध बातों, के एक साथ रहने की गुजाइश होती है। असल में, सम्भवतः एक प्रवृत्ति की प्रधानता ही उसकी विरोधी प्रवृत्ति के अचेतन होने का कारण है। इस तरह पहले उठाई गई आपत्तियों का मतलब इतना ही हुआ कि स्वप्न-निर्वचन के परिणाम सरल नहीं होते, और बहुत अरुचिकर होते हैं। पहले आरोप के उत्तर में हमें यह कहना है कि आप सरलता के चाहे जितने प्रेमी हों, पर उससे आप स्वप्नों की एक भी समस्या हल नहीं कर सकते। शुरू में ही आपको अपना मन ऐसा बनाना पड़ेगा कि उलझे हुए सम्बन्धों की बात को स्वीकार करें। दूसरी बात के बारे में मैं यह कहना चाहता हूं कि आपका इस तथ्य को वैज्ञानिक निर्णय के लिए प्रेरक कारण मानना कि कोई चीज़ आपको अच्छी लगती है या बुरी लगती है, साफ़ तौर से ग़लत है। क्या हुआ

यदि स्वप्न-निर्वचन के परिणाम आपको अप्रिय या कष्टदायक और घृणा पैदा करने वाले लगते हैं। जब मैं नया-नया डाक्टर बना था, तब एक ऐसे ही मामले में मेरे गुरु चारकोट ने ये शब्द कहे थे :

यदि हम संसार में यथार्थता को जानने का तरीका सीखना चाहते है तो हमें विनयशील होना चाहिए और अपनी सहानुभूतियों तथा घृणाओं को भलमनसाहत से गौण बनाए रखना चाहिए। यदि कोई भौतिक विज्ञान विशारद आपके सामने यह सिद्ध कर सके कि धरती का प्राणि-जीवन कुछ ही समय बाद बिलकुल नष्ट हो जाने वाला है, तो क्या आप उससे भी यह कह सकेंगे : "ऐसा नही हो सकता। मै इस सम्भावना को बहुत नापसन्द करता हूं।" मेरा ख्याल है कि आप तब तक कुछ नहीं कहेंगे जब तक कोई दूसरा भौतिकीवेत्ता आगे आकर पहले भौतिकीवेत्ता के साध्यावयवों[1] या गणनाओं में भूल दिखाकर उसका खण्डन नहीं कर देता। यदि आप पसन्द न आने वाली हर चीज़ को अस्वीकार करते है तो आप स्वप्न के ढांचे की प्रक्रिया को दोहरा रहे हैं, उसे समझ और सीख नहीं रहे।

शायद तब आप काट-छांट की गई स्वप्न-इच्छाओं के भद्देपन को नजरंन्दाज़ कर दें, और फिर इस दलील पर आएं कि यह बात बड़ी असम्भाव्य है कि हम मनुष्य के ढांचे का इतना बड़ा भाग दोषमय मान लें। पर क्या आपके अपने अनुभव आपके इस कथन को उचित ठहराते हैं? आप अपनी नज़रों में कैसे मालूम होते है, इस बात को छोड़िए। पर क्या आपने अपने से बड़ों और अपने प्रतिस्पर्धियों में इतनी सद्भावना देखी है, अपने दुश्मनों में इतनी वीरता देखी है और अपने परिचितों में इतनी कम ईर्ष्या देखी है कि आपको यह आवश्यक मालूम होता है कि मनुष्य-प्रकृति की अहंकारमय क्षुद्रता के कार्यों सम्बन्धी विचार का विरोध करें? क्या आप यह नहीं जानते कि औसत मनुष्य यौन जीवन सम्बन्धी सब बातों में कितना अनियन्त्रित और अविश्वसनीय है? या आप इस तथ्य से अनभिज्ञ है कि रात में हम जो अतियां और पाप स्वप्न में देखते है, वे सब अच्छी तरह जागृत मनुष्यों द्वारा सचमुच किए जाने वाले जुर्म होते है? मनोविश्लेषण इस सिलसिले में इतना ही तो करता है कि प्लेटो के इस पुराने कथन की पुष्टि कर दे कि अच्छे लोग उन कामों का स्वप्न देखकर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं जिन्हें बुरे लोग सचमुच करते है।

और अब व्यक्तियों को छोड़कर इस महायुद्ध को लीजिए, जो आज भी यूरोप का विध्वंस कर रहा है; सोचिए कि कितनी विराट क्रूरता, पाशविकता और मिथ्यावादिता सभ्य संसार के ऊपर फैलाई जा रही है। क्या आप सचमुच यह मानते हैं कि मुट्ठी भर सिद्धान्तहीन, पदलोलुप और लोगों को बिगाड़ने वाले आदमी इस तमाम छिपे हुए अमंगल को फैलाने में सफल हो सकते थे, यदि उनके

---

१. Premises.

लाखों अनुयायी भी दोषी न होते ? क्या इन परिस्थितियों में भी आप बुराई को मनुष्य जाति के मानसिक गठन से अलग रखने के पक्ष में खड़े होने का साहस करेंगे ?

आप मुझपर यह दोषारोपण करेंगे कि मैंने युद्ध का एकांगी दृष्टिकोण पेश किया है और मुझसे कहेंगे कि इसने मनुष्य जाति के सर्वोत्तम और उदात्ततम गुणों—वीरता, बलिदान और लोक-मंगल की भावना—को भी सामने आने का मौका दिया है। यह सच है, पर अब वह अन्याय न कीजिए जो कि मनोविश्लेषण को इतनी बार सहना पड़ा है अर्थात् यह कहकर इसकी निंदा न कीजिए कि यह इसलिए एक चीज़ का निषेध करता है क्योंकि एक और चीज़ की पुष्टि करता है। हमारा यह प्रयोजन नहीं है कि मनुष्य स्वभाव में मौजूद उदात्तता का निषेध करें, और न हमने कभी इसके महत्व को गिराने की कोई चेष्टा की है। इसके विपरीत, मैं आपको न केवल वे दुष्ट इच्छाएं दिखा रहा हूं, जो सेन्सर की जाती हैं, बल्कि वह सेन्सरशिप भी दिखा रहा हूं जो उन्हें दबाती है, और उन्हें पहचान में आने के अयोग्य बना देती है। हम मनुष्य की बुराई पर अधिक बल इसलिए देते हैं कि दूसरे लोग इसका निषेध करते हैं और इस तरह वे मनुष्य जाति के मानसिक जीवन को अच्छे के बजाय दुर्बोध बना देते हैं। यदि हम एकांगी आचार सम्बन्धी मूल्यांकन छोड़ दें तो मनुष्य प्रकृति में बुरे और अच्छे के आपसी सम्बन्ध का अधिक सही सूत्र हमें प्राप्त होगा।

बस इतनी ही बात है। हमें अपने स्वप्न-निर्वचन के काम के परिणामों को छोड़ना नहीं है, चाहे वे हमें जितने अजीब लगें। शायद बाद में हम दूसरे रास्ते से उन्हें समझने के अधिक निकट पहुंच जाएं। फिलहाल हमें इस बात को पकड़े रहना चाहिए कि स्वप्न-विपर्यास का कारण यह है कि अहम् या ईगो की कुछ पहचानी हुई प्रवृत्तियां नींद में रात के समय हमारे अन्दर उठ पड़ने वाली भद्दे प्रकार की इच्छाओं पर सेन्सरशिप या काट-छांट करती है। स्पष्ट है कि जब हम अपने आप-से यह पूछते हैं कि वे रात को ही क्यों दिखाई देती हैं और इन घृणित इच्छाओं का मूल क्या है, तब हमें पता चलता है कि अभी बहुत कुछ पता लगाना है और बहुत-से प्रश्नों के उत्तर देने हैं।

परन्तु यदि हम यहां इस जांच-पड़ताल के एक और परिणाम को उचित महत्व देने में कोताही करें तो यह हमारी ग़लती होगी। नींद को बिगाड़ने वाली स्वप्न-इच्छाएं हमारे लिए अज्ञात हैं। उनका हमें सबसे पहले स्वप्न-निर्वचन के द्वारा ही पता चलता है। इसलिए उन्हें 'उस समय अचेतन' कहा जाएगा—यहां अचेतन शब्द उसी अर्थ में है जिसमें हमने इसका प्रयोग किया है, पर हमें यह बात समझनी चाहिए कि वे उस समय अचेतन से भी कुछ अधिक हैं; क्योंकि स्वप्न देखने वाला अपने स्वरूप के निर्वचन द्वारा उन्हें जान लेने के बाद भी उनका निषेध करता है, जैसा कि हमने अनेक बार देखा है। यहां हम फिर वही बात देखते हैं जो 'हिचकी'

वाली बोलने की ग़लती का निर्वचन करते समय पहले दिखाई दी थी। भोजन के बाद बोलने वाले वक्ता ने रोष के साथ हमें यह विश्वास दिलाया था कि उसे अपने प्रधान के प्रति अनादर भावना का न तो उस समय कोई ज्ञान था और न पहले कभी रहा था। हमने तब भी उसके इस कथन की सचाई पर सन्देह किया था और इसके बदले यह माना था कि वक्ता अपने भीतर इस भावना के अस्तित्व से स्थाई रूप से अपरिचित है। जिन स्वप्नों में बहुत अधिक विपर्यास होता है उन सबके निर्वचन के समय यही स्थिति पैदा होती है और इससे हमारे विचार का महत्व बढ़ जाता है। अब हम यह मानने के लिए तैयार हैं कि मानसिक जीवन में ऐसे प्रक्रम और प्रवृत्तियां होती हैं जिनके बारे में हम कुछ नहीं जानते; कुछ नही जानते रहे; बहुत लम्बे समय से या शायद कभी भी इनके बारे में कुछ भी नहीं जानते थे। इससे **अचेतन** शब्द का एक नया अर्थ हमारे सामने आ जाता है: 'उस समय' या 'अस्थायी' विशेषण कोई आवश्यक गुण नहीं रहता, और इस शब्द का अर्थ न केवल 'उस समय गुप्त' बल्कि **स्थाई रूप से अचेतन** भी हो सकता है। इस प्रश्न पर हम बाद में और आगे विचार करेंगे।

व्याख्यान | १०

स्वप्नों में प्रतीकात्मकता*

हमने देखा था कि स्वप्नों में विपर्यास, जो हमें उन्हें समझने से रोकता है, सेन्सरशिप या काट-छांट की प्रवृत्ति की क्रिया के कारण होता है--यह क्रिया अस्वीकार्य अचेतन इच्छा-आवेगों के विरुद्ध चलती है। पर हमने यह नहीं कहा है कि विपर्यास का एकमात्र कारण सेन्सरशिप या काट-छांट ही है, और सच तो यह है कि स्वप्नों का और आगे अध्ययन करने से यह पता चलता है कि इस परिणाम में सहायता देने वाले कुछ और भी कारण हैं। कहने का आशय यह हुआ कि यदि सेन्सरशिप न रहे तो भी हम स्वप्नों को समझने में असमर्थ रहेंगे, तथा व्यक्त स्वप्न और गुप्त स्वप्न-विचार अभिन्न नहीं होंगे।

स्वप्नों की अस्पष्टता का यह दूसरा कारण, विपर्यास का यह एक और सहायक, तब हमारे सामने आता है जब हमें अपनी विधि में एक कमी या खाली जगह का पता चलता है। मैं आपसे पहले ही यह कह चुका हूं कि कई बार विश्लेषण के अधीन व्यक्तियों का अपने स्वप्नों के एक-एक पृथक अवयव से सचमुच कोई साहचर्य नहीं होता, पर यह बात जितनी बार वे कहते हैं उतनी बार सच नहीं होती। बहुत-से उदाहरणों में धीरज और परिश्रम से वह साहचर्य प्रेरित करके निकाला जा सकता है, पर फिर भी कुछ उदाहरण ऐसे रह जाते हैं जिनमें साहचर्य बिलकुल नहीं मिलता; अथवा यदि अन्त में कोई चीज़ जबर्दस्ती करने पर निकल भी आई तो यह वह नहीं होती जिसकी हमें आवश्यकता है। यदि यह बात मनोविश्लेषण द्वारा किए जा रहे इलाज में होती है तो इसका एक विशेष अर्थ होता है जिसका यहां कोई सम्बन्ध नहीं है, पर यह सामान्य लोगों के स्वप्नों के निर्वचन में, या तब भी होती है जब हम स्वयं अपने स्वप्नों का निर्वचन करते हैं। इन परिस्थितियों में जब हमें यह निश्चय हो जाए कि कितना भी जोर डालने से कोई लाभ नहीं, तब अंत में हमें यह पता चलता है कि जहां विशेष स्वप्न-अवयवों का सवाल होता है वहां यह अप्रिय स्थिति नियमित रूप से सामने आती है; और अब हम किसी नए सिद्धांत को कार्य करता हुआ देखने लगते हैं, जब कि पहले हमने सोचा था कि यह

* Symbolism.

सिर्फ़ एक अपवाद है जिसमें हमारी विधि विफल हो गई है।

इस तरह हम इन 'न बोलने वाले' अवयवों का अर्थ लगाने की कोशिश करते हैं और अपने साधनों का उपयोग करके उन्हें अनुवादित करने का यत्न करते है। यह बात हमें महसूस हुए बिना नहीं रह सकती कि जिस किसी उदाहरण में हम हिम्मत करके यह स्थानापन्नता कर देते हैं, उसमें ही हम सन्तोषजनक अर्थ पर पहुंच जाते है; परन्तु जब तक हम इस विधि का प्रयोग नही करते तब तक स्वप्न अर्थहीन और टूटा-फूटा बना रहता है। तब बहुत-से बिलकुल एक-से उदाहरण इकट्ठे हो जाने पर हमें अपने परिणाम के बारे में आवश्यक निश्चय हो जाता है जबकि शुरू में हमने बड़े अविश्वास के साथ अपने परीक्षण किए थे।

यह सब बात मैं रूपरेखा के रूप में बता रहा हूं पर शिक्षा कार्य के लिए निश्चित रूप से ऐसा करना उचित है, और ऐसा करने से यह ग़लत भी नही हो जाती बल्कि सिर्फ सरल रूप में आ जाती है।

इस प्रकार हम स्वप्न-अवयवों की एक श्रेणी का नियत अनुवाद करते है, जैसे कि स्वप्न सम्बन्धी लोकोपयोगी पुस्तकों में स्वप्न में होने वाली प्रत्येक बात के ऐसे अनुवाद दिए होते है। आप भूले नही होंगे कि जब हम मुक्त साहचर्य की विधि का प्रयोग करते है तब स्वप्न-अवयवों की नियत स्थानापन्नताएं कभी नही दिखाई देतीं।

अब आप तुरन्त कहेंगे कि निर्वचन की यह रीति आपको पहली मुक्त साहचर्य की रीति की अपेक्षा भी अधिक अनिश्चित और आक्षेप योग्य मालूम होती है। पर कुछ बात अभी बाकी है। जब हमने वास्तविक अनुभव से ऐसे नियत अनुवादों की श्रेणी जमा कर ली हो, तब हम अन्त में यह अनुभव करते है कि निर्वचन के इन अंशों में हम अपने निजी ज्ञान से खाली स्थानों को भर सकते थे, और वे स्वप्न-द्रष्टा के साहचर्यों का उपयोग किए बिना ही सचमुच समझे जा सकते थे। यह कैसे होता है कि हमें उनका अर्थ अवश्य पता होता है?—इस प्रश्न पर हम अपनी बातचीत के पिछले आधे हिस्से में विचार करेंगे।

किसी स्वप्न-अवयव और उसके अनुवाद में जो नियत, अर्थात् न बदलने वाला सम्बन्ध होता है, उसे हम प्रतीकात्मक सम्बन्ध कहते हैं और स्वयं स्वप्न-अवयव को अचेतन स्वप्न-विचार का प्रतीक या संकेत कहते हैं। आपको याद होगा कि कुछ समय पहले, जब हम स्वप्न-अवयवों और उनके पीछे मौजूद विचारों के विभिन्न सम्बन्धों पर विचार कर रहे थे, तब मैंने तीन सम्बन्ध बताए थे—सारे के स्थान पर एक भाग का आ जाना, अस्पष्ट निर्देश[1] और कल्पनाचित्र[2]। तब मैंने आपसे कहा था कि एक चौथा सम्बन्ध भी हो सकता है, पर यह नहीं बताया था

---

१. Allusion. २. Imagery

कि वह क्या हो सकता है। यह चौथा सम्बन्ध सांकेतिक या प्रतीकात्मक है जो मैं अब बता रहा हूं। इसके साथ कुछ मनोरंजक विचारणीय प्रश्न जुड़े हुए हैं जिनपर विचार करने के बाद हम इस विषय पर अपने विशेष विचार पेश करेंगे। प्रतीकात्मकता हमारे स्वप्न-सिद्धान्त का शायद सबसे अधिक विशिष्ट भाग है।

पहली बात : किसी प्रतीक और उससे निर्दिष्ट मनोबिंब का सम्बन्ध नियत, अर्थात् न बदलने वाला, होता है—मनोबिंब प्रतीक का मानो अनुवाद ही होता है, इसलिए प्रतीकवाद कुछ मात्रा में प्राचीन और प्रचलित दोनों प्रकार के स्वप्न-निर्वचन के आदर्श को मूर्त कर देता है जिससे अपनी विधि में हम बहुत दूर हट आए हैं। प्रतीकों के द्वारा हम कुछ परिस्थितियों में स्वप्न-द्रष्टा से बिना प्रश्न किए स्वप्न का निर्वचन कर सकते हैं पर स्वप्न-द्रष्टा प्रतीकों के बारे में हमें कुछ नहीं बता सकता। यदि स्वप्नों में आम तौर से दिखाई देने वाले प्रतीक ज्ञात हों और स्वप्न देखने वाले के व्यक्तित्व का, उसके रहन-सहन की अवस्थाओं का और उसे स्वप्न आने से पहले उसके मन पर पड़े हुए प्रभावों का हमें पता हो तो प्रायः हम सीधे ही उसका अर्थ लगा सकते हैं, मानो उसे देखते ही उसका भाषान्तर या अनुवाद कर सकते हैं। इस तरह के कौशल से निर्वचनकर्ता के अहंकार की संतुष्टि होती है और स्वप्न-द्रष्टा प्रभावित हो जाता है। यह स्वप्न-द्रष्टा से प्रश्न पूछने की श्रमपूर्ण रीति से बिलकुल उलटी, और इसीलिए अच्छी लगने वाली विधि है, पर इसे अपनाकर भटक न जाइए। हमारा काम ऐसे कौशल दिखाना नहीं है, और प्रतीकात्मकता के ज्ञान के आधार पर अर्थ लगाने की विधि मुक्त साहचर्य की विधि का स्थान नहीं ले सकती, और न ही उसके बराबर हो सकती है। यह मुक्त साहचर्य की विधि की पूरक है, और इससे प्राप्त परिणाम तभी उपयोगी होते हैं जब उन्हें मुक्त साहचर्य की विधि के साथ काम में लाया जाए। इसके अलावा जहां तक स्वप्न-द्रष्टा की मानसिक स्थिति के बारे में हमारी जानकारी का प्रश्न है, आपको सोचना चाहिए कि आपको उन्हीं व्यक्तियों के स्वप्नों का अर्थ नहीं लगाना है जिन्हें आप अच्छी तरह जानते हैं; कि सामान्यतः आपको पिछले दिन की उन घटनाओं का कुछ भी पता नहीं, जिन्होंने वह स्वप्न उद्दीपित किया; और विश्लेषण के अधीन व्यक्ति के साहचर्यों से ही हमें उस चीज़ का ज्ञान होता है जिसे हम मानसिक स्थिति कहते हैं।

दूसरे, यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है, खास तौर से कुछ ऐसी बातों को देखते हुए जिनकी हम बाद में चर्चा करेंगे, कि सबसे अधिक जबर्दस्त विरोध स्वप्न और अचेतन में प्रतीकात्मक सम्बन्ध होने के प्रश्न पर सामने आया है। बड़े विवेक-बुद्धि वाले और प्रसिद्ध व्यक्तियों ने भी, जो और दृष्टियों से मनोविश्लेषण को काफ़ी दूर तक स्वीकार करते रहे हैं, इस प्रश्न पर आकर इसे मानने से इन्कार कर दिया है। यह व्यवहार तब और भी उल्लेखनीय हो जाता है जब हम दो बातें

यादें करते हैं : एक तो यह कि प्रतीकात्मकता स्वप्नों में नहीं होती, और न उनकी अनन्य विशेषता है, और दूसरी यह कि स्वप्नों में प्रतीकात्मकता का प्रयोग मनोविश्लेषण का आविष्कार नहीं है, यद्यपि इस विज्ञान ने और बहुत-से आश्चर्य में डालने वाले आविष्कार किये हैं। यदि आधुनिक काल में इस क्षेत्र में सबसे पहले आविष्कारक को ढूढ़ना हो तो दार्शनिक के० ए० शर्नर (१८६१) को इसका आविष्कारक मानना चाहिए। मनोविश्लेषण ने उसके आविष्कार की पुष्टि की है, यद्यपि कुछ महत्वपूर्ण दृष्टियों से इसमें संशोधन भी किए है।

अब आप स्वप्न-प्रतीकात्मकता की प्रकृति के बारे में कुछ सुनना, और उसके कुछ उदाहरणों पर विचार करना चाहेंगे। मैं जो कुछ जानता हूं, वह खुशी से आपको बताऊंगा, पर इस विषय में हमारी जानकारी बहुत अधिक नही है।

प्रतीकात्मक सम्बन्ध सारभूत रूप में तुलना का सम्बन्ध है, पर वह किसी भी प्रकार की तुलना नहीं है। हमारा ख्याल है कि यह तुलना कुछ विशेष अवस्थाओं में ही हो सकती होगी, यद्यपि हम नही बता सकते कि वे अवस्थाएं कौन-सी है। किसी वस्तु या घटना की जिस-जिस चीज़ से तुलना की जा सकती है, वह प्रत्येक चीज़ स्वप्नों में उसका प्रतीक बनकर नही आती, और दूसरी ओर, स्वप्न प्रत्येक चीज़ के लिए प्रतीकात्मकता का प्रयोग न करके गुप्त स्वप्न-विचारों के खास अवयवों के लिए ही इसका प्रयोग करते है। इस प्रकार दोनों दिशाओं में कुछ सीमाएं है। हमें यह भी स्वीकार करना चाहिए कि अभी हम बिलकुल निश्चित रूप से यह नहीं बता सकते कि हमारी प्रतीक की अवधारणा की सीमा कहां तक है क्योंकि यह स्थानापन्नता, निरूपण आदि में विलीन होने लगता है और अस्पष्ट निर्देश के निकट तक भी जा पहुंचता है। प्रतीकों के एक समुदाय में तुलना आसानी से दिखाई देने-वाली हो सकती है, पर कुछ प्रतीकों में सामान्य अंश खोजना पड़ता है। हो सकता है, अधिक विचार करने से हमें यह पता चल जाए, पर यह भी हो सकता है कि यह हमसे सदा छिपा ही रहे। फिर, यदि प्रतीक वस्तुतः तुलना ही है तो यह बात उल्लेखनीय है कि यह तुलना मुक्त साहचर्य के क्रम से सामने नही आती, और स्वप्न-द्रष्टा को भी इसके विषय में कुछ पता नही होता, पर वह बिना जाने इसका प्रयोग करता है। इतना ही नहीं, वह तो उसके सामने पेश किए जाने पर इसे पहचानने को भी तैयार नहीं। इस प्रकार आप देखते है कि प्रतीकात्मक सम्बन्ध एक बिलकुल अनोखे किस्म की तुलना है, जिसको प्रकृति अभी तक हम पूर्णतया नहीं जानते। शायद बाद में कोई ऐसा संकेत मिल जाए जो इस अज्ञात राशि पर कुछ प्रकाश डाले।

स्वप्नों में जो वस्तुएं प्रतीकों के रूप में दिखाई देती है, उनकी संख्या अधिक नहीं है : मनुष्य का सारा शरीर, माता-पिता, बच्चे, भाई और बहनें, जन्म, मृत्यु, नंगापन तथा एक चीज़ और। मनुष्य का रूप नियमित रूप से **मकान** द्वारा

दिखाई देता है जैसा कि शर्नर ने पहचाना था, और वह तो इस प्रतीक को इतना अधिक सार्थक बताता था जितना यह वास्तव में नहीं है। लोगों को किसी मकान के सामने के हिस्से पर कभी आनन्द की भावना से और कभी भय की भावना से चढ़ने के स्वप्न आते हैं। जब दीवारें बिलकुल चिकनी होती हैं, तब मकान का अर्थ है पुरुष, जब उसमें छज्जे और जालियां हों जिन्हें पकड़ा जा सकता है, तब अर्थ है स्त्री। स्वप्नों में माता-पिता **सम्राट् और सम्राज्ञी, राजा और रानी** या अन्य ऊंचे व्यक्तियों के रूप में दिखाई देते हैं। इस मामले में स्वप्न का ढंग बड़ा पितृभक्ति से पूर्ण है। बच्चों और भाइयों तथा बहनों के साथ कुछ सख्ती बरती गई है; उनके प्रतीक हैं छोटे **पशु** या **कीड़े**। जन्म प्रायः सदा **पानी** के रूप में होता है या तो हम पानी में गिर रहे हैं या इसमें से निकल रहे हैं, या इसमें से किसीको बचा रहे हैं; या कोई हम बचा रहा है अर्थात् माता और बच्चे का सम्बन्ध प्रतीक रूप में होता है। मरने के लिए हम किसी **यात्रा** पर गाड़ी से **सफर** पर रवाना हुए हैं और मृत्यु की अवस्था बहुत-से धुधले और मानो डरते हुए अस्पष्ट संकेतों से सूचित होती है। **कपड़े** या **वर्दियां** नंगेपन को सूचित करती हैं। आप देखते हैं कि यहां प्रतीकात्मक और अस्पष्ट निर्देशात्मक निरूपणों की विभाजक रेखा मिटने लगती है।

इन थोड़ी-सी चीजों की तुलना में यह बात हमें विशेष रूप से प्रभावित किए बिना नहीं रह सकती कि एक और क्षेत्र से सम्बन्ध रखनेवाली वस्तुएं और मामले बहुत सारे प्रतीकों से सूचित होते हैं। मेरा मतलब यौन जीवन के क्षेत्र से है, अर्थात् जननेंद्रियां, लैंगिक कार्य और संभोग। स्वप्नों में अधिकतर प्रतीक लैंगिक या यौन प्रतीक होते हैं। इस प्रकार यह स्थिति होती है कि बहुत-सी कम काम में आनेवाली बातों के लिए बहुत-से प्रतीक होते हैं, और इनमें से प्रत्येक चीज़ प्रायः समानार्थक बहुत-से प्रतीकों से प्रकट की जा सकती है। इसलिए जब उनका अर्थ लगाया जाता है, तब इस विचित्रता के कारण वह सबको बुरा लगता है क्योंकि स्वप्नों में तो यह अनेक रूपों में दिखाई देता है। पर प्रतीकों का निर्वाचन बड़ा नीरस काम है; जिसे इसका पता चलता है उसे ही यह बुरा लगता है, पर हम कर ही क्या सकते हैं?

इन व्याख्यानों में यह पहला ही मौका है कि मैंने लैंगिक जीवन या यौन जीवन का उल्लेख किया है। इसलिए मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि इस विषय को मैं किस तरह पेश करूंगा। मनोविश्लेषण छिपाने या परोक्ष निर्देश करने की कोई जरूरत नहीं समझता और ऐसी महत्वपूर्ण सामग्री से अपने सम्बन्ध पर शर्म महसूस करना आवश्यक नहीं समझता। इसकी सम्मति में प्रत्येक वस्तु को इसके ठीक नाम से ही पुकारना उचित है, और इस तरह वह विक्षोभजनक सांकेतिक शब्दों से आसानी से बच जाने की आशा रखता है। इसमें इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ सकता कि मेरे श्रोताओं में लड़के और लड़कियां दोनों हैं। कोई भी विज्ञान इस

तरह नहीं पढ़ाया जा सकता कि वह छोटी लड़कियों के लिए उचित मालूम हो। जो स्त्रियां यहां उपस्थित हैं उन्होंने व्याख्यान के कमरे में हाज़िर होकर बिना मुख से कहे यह ज़ाहिर कर दिया है कि वे पुरुषों की बराबरी में ही रहना चाहती हैं।

स्वप्नों में पुरुष की जननेंद्रिय अनेक प्रकार के प्रतीकों के रूप में दिखाई देती है, जिनमें से अधिकतर में तुलना का आधारभूत सामान्य विचार आसानी से स्पष्ट हो जाता है। प्रथम तो पवित्र संख्या **तीन** सारी पुरुष-जननेंद्रिय की प्रतीक है। इसका अधिक स्पष्ट दीखने वाले और दोनों लिंगों के व्यक्तियों के लिए अधिक दिलचस्पी वाले हिस्से--शिश्न की मुख्य प्रतीक वही वस्तुएं हैं जो आकृति में इससे मिलती-जुलती हैं, अर्थात् लम्बी और सीधी खडी होनेवाली होती हैं, जैसे--**लाठी, छतरी, खम्भा, पेड़** और ऐसी ही अन्य वस्तुएं; इसकी प्रतीक वे वस्तुएं भी होती हैं जिनमें शरीर के अन्दर घुसने और परिणामतः उसे घायल करने का गुण होता है, अर्थात् सब तरह के नोकदार शस्त्र : **चाकू, छुरे, खंजर, तलवार**; आग फेंकनेवाले हथियार भी इसी तरह प्रयोग में आते हैं : **बन्दूक, पिस्तौल** और **रिवाल्वर** जिनमें से अन्तिम दो अपने रूप के कारण बहुत उपयुक्त प्रतीक होते हैं। युवा लड़कियों के चिन्ता-स्वप्नों में चाकू या राइफल धारण करने वाला मनुष्य पीछा करता हुआ बहुत दिखाई देता है। शायद यह सबसे अधिक दीखनेवाला स्वप्न-प्रतीक है। अब आप अपने लिए आसानी से इसका भाषान्तर कर सकते हैं। पुरुष की जननेंद्रिय के स्थान पर ऐसी वस्तुओं का आना भी आसानी से समझ में आता है जिनसे पानी बहता है : **टोंटी, पानी का कनस्तर** या **झरना**; और वे वस्तुएं भी इसकी प्रतीक होती हैं जो लम्बी हो सकती हैं जैसे **पुलीलैंप, पेंसिलें, जो ढांचे के अन्दर आ-जा सकती हैं** इत्यादि। **पेंसिलें, होल्डर, नेलफाइल, हथौड़े** और अन्य **उपकरण** असंदिग्ध रूप से पुरुष-लिंग के प्रतीक हैं, जो पुरुषेन्द्रिय के उस विचार पर आधारित है जिसका इतनी आसानी से बोध हो जाता है।

इस अंग के गुरुत्व के नियम के विरोध में अपने को सीधा खड़ा कर सकने का जो विशेष गुण है, उसके कारण **बैलून, विमान** और अभी कुछ समय से **जैपलिन** उसके प्रतीक बन जाते हैं। पर स्वप्नों में दृढ़ीकरण[1] के प्रतीक पेश करने का एक और अधिक प्रभावोत्पादक तरीका भी होता है। वे लिंग को सारे शरीर का आवश्यक भाग बना देती हैं जिसके परिणामस्वरूप **स्वप्न देखने वाला स्वयं उड़ता है।** यह सुनकर परेशान होने की ज़रूरत नहीं कि उड़ने के स्वप्नों का, जिनसे हम सब परिचित हैं, और जो प्रायः इतने सुन्दर होते हैं, सामान्य कामुक उत्तेजना या दृढ़ीकरण स्वप्नों के रूप में अर्थ लगाना चाहिए। एक मनोविश्लेषक पी० फेडर्न ने असंदिग्ध रूप से इस निर्वचन की सत्यता सिद्ध कर दी है; पर इसके अलावा, मोर्ली वोल्ड,

---

१. Erection.

जो गम्भीर निर्णय-बुद्धि के लिए बहुत प्रसिद्ध है और जिसने बांहों और टांगों की कृत्रिम स्थितियों से परीक्षण किए थे और जिसके सिद्धांत असल में मनोविश्लेषण से बहुत दूर थे (हो सकता है कि उसे इसके बारे में बिलकुल भी पता न हो), अपनी खोजों से इसी नतीजे पर पहुंचा था। इसपर आपको इस आधार पर आक्षेप नहीं करना चाहिए कि स्त्रियों को भी उड़ने के स्वप्न आ सकते हैं; बल्कि आपको यह याद करना चाहिए कि स्वप्नों का प्रयोजन इच्छा-पूर्ति है, और स्त्रियों में पुरुष बनने की इच्छा बहुत बार होती है, चाहे उन्हें इसका ज्ञान हो या न हो। इसके अलावा, शरीर से परिचित कोई भी आदमी इस भ्रम में नहीं पड़ेगा कि स्त्रियों के लिए पुरुष के जैसे संवेदनों द्वारा इस इच्छा को पूरा करना असम्भव है, क्योंकि स्त्री के यौन अंगों में शिश्न से मिलता-जुलता एक छोटा अंग भी होता है और यह छोटा अंग **भगनासा**[1] बचपन में लैंगिक संभोग से पहले के वर्षों में सचमुच वही कार्य करता है जो पुरुष का बड़ा लिंग करता है।

पुरुष-लिंग के कम आसानी से समझ में आने वाले प्रतीक कुछ **रेंगने वाले कीड़े और मछलियां** हैं; सबसे विचित्र प्रसिद्ध प्रतीक है **सांप**। **टोप** और **चोगा** इस तरह क्यों प्रयोग में आते हैं, यह समझ में आना निश्चय ही कठिन है, पर उनका प्रतीकात्मक अर्थ बिलकुल असंदिग्ध है। अंत में यह पूछा जा सकता है कि क्या पुरुष लिंग का किसी अन्य अंग, जैसे **हाथ** या **पैर,** द्वारा निरूपण प्रतीकात्मक कहा जा सकता है? मैं समझता हूं कि जिस प्रसंग में यह हुआ करता है, और साथ ही स्त्री के जो अंग दिखाई देते हैं, उनसे हम मजबूरन इसी नतीजे पर पहुंचते हैं।

स्त्री-जननेन्द्रियों का प्रतीकात्मक निरूपण ऐसी सब वस्तुओं से होता है जिनमें उनकी ही तरह स्थान को चारों ओर से घेरने का गुण होता है, या जो पात्र के रूप में प्रयोग में आ सकते हैं: जैसे **गढ़े, खोखली जगह** और **गुफा** तथा **मर्तबान** और **बोतलें,** और सब तरह की और आकारों की **पेटियां, तिजोरियां, जेब** इत्यादि। **जहाज़** भी इसी वर्ग में आते हैं। बहुत-से प्रतीक दूसरी जननेन्द्रियों के बजाय गर्भाशय का संकेत करते हैं। इस प्रकार **अलमारियां, स्टोव** और इन सबसे बढ़कर, **कमरे।** कमरे की प्रतीकात्मकता यहां मकान के प्रतीक से जुड़ जाती है और **दरवाज़े** तथा **किवाड़** जननेन्द्रिय के द्वार के प्रतीक हैं। इसके अलावा, विभिन्न तरह की सामग्री स्त्री की प्रतीक है, जैसे **लकड़ी, कागज़** और इनसे बनी हुई वस्तुएं, जैसे **मेज़** और **पुस्तकें**। अल्प प्राणियों में से **घोंघे** और **सीपी** असंदिग्ध रूप से स्त्री के प्रतीक हैं। शरीर के अंगों में से **मुख** योनि-द्वार का प्रतीक है, और मकानों में **चर्च** तथा **चेपल** (उपासना घर) स्त्री के प्रतीक हैं। स्पष्ट है कि ये सब प्रतीक उतनी ही आसानी से समझ में नहीं आते जितनी आसानी से पुरुष-जननेन्द्रिय के प्रतीक आ जाते हैं।

---

१. Clitoris.

छातियों को भी यौन अंगों में शामिल करना चाहिए। ये तथा स्त्री के शरीर के नितंबों के प्रतीक **सेव, आड़ू** और सामान्य **फल** होते हैं। दोनों लिंगों के व्यक्तियों में जननेन्द्रियों के बाल स्वप्नों में **जंगलों** और **झाड़ियों** से सूचित होते हैं। स्त्री की जननेन्द्रियों का स्थान जटिल होने के कारण **प्राकृतिक दृश्य** उनके प्रतीक होते हैं, जिनमें शिलाएं, जंगल और पानी दिखाई देते हैं। उधर पुरुष-जननेन्द्रिय की शानदार कार्य-प्रणाली का निरूपण सब तरह की जटिल और अवर्णनीय **मशीनरी** द्वारा होता है।

स्त्री-जननेन्द्रिय का एक और उल्लेखनीय प्रतीक **जेवर का डिब्बा** होता है, पर जेवर और सोना-चांदी स्वप्न में प्रिय व्यक्ति के सूचक भी होते हैं, और **मिठाइयां** प्रायः कामुक आनन्द की प्रतीक होती हैं। किसी व्यक्ति को अपनी जननेन्द्रियों से प्राप्त सन्तुष्टि किसी भी तरह के **खेल** से सूचित होती है, जिसमें पियानो बजाना भी शामिल है। स्वयंरति[1] के प्रतीक **सरकना** या **चलना** और कोई **टहनी तोड़ना** भी होते हैं। एक विशेष उल्लेखनीय स्वप्न-प्रतीक **दांतों का गिरना या निकालना** है। इसका मुख्य अर्थ निश्चित रूप से स्वयंरति का दण्ड देने के लिए बधिया करना है। मैथुन या संभोग का विशेष निरूपण स्वप्नों में उतना नहीं होता, जितना इन सब बातों के बाद हमें आशा करनी चाहिए, पर इस सिलसिले में हम **नाचना, सवारी करना और (ऊंचाई पर) चढ़ना** जैसी तालबद्ध क्रियाओं का और **किसी प्रकार की चोट अनुभव करने का**, उदाहरण के लिए, कुचले जाने का, उल्लेख कर सकते हैं। इनके अलावा, कुछ हाथ के धन्धे, और हथियारों से घायल किए जाने का भय भी इसके प्रतीक होते है।

आप यह मत समझिए कि इन प्रतीकों का उपयोग या अनुवाद अर्थात् भाषान्तर बिलकुल सीधे तौर से हो जाता है। चारों ओर ऐसी चीजें होती है, जिनकी हम आशा नहीं करते। उदाहरण के लिए, यह बात विश्वसनीय नहीं जंचती कि इन प्रतीकात्मक निरूपणों में प्रायः स्त्री-पुरुष के लिंगों का अन्तर नहीं होता। बहुत-से प्रतीक सामान्यतः जननेन्द्रियों के सूचक होते हैं चाहे वे पुरुष की हों या स्त्री की। उदाहरण के लिए, **छोटा** बालक या **छोटा** पुत्र या पुत्री कभी-कभी, सामान्यतः पुल्लिग का प्रतीक, स्त्री-जननेन्द्रिय को निर्दिष्ट करता है और इसी तरह इसका उल्टा भी होता है। यह बात तब तक पूरी तरह समझ में नहीं आ सकती जब तक हम मनुष्यों में मैथुन या कामुकता सम्बन्धी विचारों के परिवर्धन की कुछ जानकारी प्राप्त न कर लें। बहुत-से उदाहरणों में प्रतीकों की यह अस्पष्टता ऊपरी होती है, वास्तविक नहीं और उनमें से सबसे विशेष प्रतीक, जैसे हथियार, जेब और तिजोरी, इन दोनों लिंगों के लिए कभी प्रयोग में नहीं आते।

---

१. Onanism.

अब मैं प्रतीकों से सूचित वस्तुओं के बजाय स्वयं प्रतीकों से शुरू करके संक्षेप में यह बताऊंगा कि मैथुन सम्बन्धी प्रतीक अधिकतर किन क्षेत्रों से आए हैं, और विशेष रूप से उनपर थोड़ी-सी टिप्पणी करूंगा जिनमें प्रतीक से सूचित वस्तु का गुण प्रतीक में खोज पाना कठिन है। इस तरह के अस्पष्ट प्रतीक का एक उदाहरण **टोप** या शायद सिर ढ़कने की सभी चीजें हैं; टोप आम तौर से पुल्लिग का सूचक है पर कभी-कभी स्त्रीलिंग को भी सूचित करता है। इसी प्रकार **चोगा** पुरुष को सूचित करता है, पर शायद कभी-कभी उसका जननेन्द्रियों की ओर विशेष निर्देश नहीं होता। आप पूछेंगे कि ऐसा क्यों होता है। **टाई** जो नीचे लटकने वाली वस्तु है और जिसे स्त्रियां नहीं धारण करतीं, स्पष्टतः पुल्लिग प्रतीक है, और **अन्डरलिनन** या सामान्य रूप मे **लिनन,** अर्थात् रेशमी वस्त्र, स्त्री लिंग का प्रतीक होता है। **कपड़े** और **वर्दियां,** जैसा कि हम देख चुके हैं, नंगेपन या मनुष्य की आकृति की प्रतीक होती हैं; **जूते** और **स्लीपर** स्त्री-जननेन्द्रियों के प्रतीक होते हैं। हम कह चुके हैं कि मेज़ और लकड़ी कुछ उलझनदार चीजें हैं, पर फिर भी वे निश्चित रूप में स्त्रीलिंग की प्रतीक है; नसैनियों, सीधे खड़े स्थानों और सिढ़ियों पर **चढ़ने का कार्य** असंदिग्ध रूप से मैथुन का प्रतीक है। बारीकी से विचार करने पर हमें यह पता चलता है कि इस चढ़ने की तालबद्धता अर्थात् नियमित उतार-चढ़ाव का गुण और शायद इसके साथ होने वाली उत्तेजना-वृद्धि——चढ़ते-चढ़ते चढ़ने वाले का सांस जल्दी-जल्दी लेने लगना, दोनों में सामान्य विशेषता है।

हम पहले यह देख चुके है कि **प्राकृतिक दृश्य** स्त्री-जननेन्द्रियों के सूचक हैं; पर्वत और चट्टानें पुरुषेन्द्रिय की प्रतीक है; **बाग़** स्त्री-जननेन्द्रिय का बहुत बार दीखने वाला प्रतीक है; **फल** स्तनों का प्रतीक है, बच्चे का नही। **जंगली पशु** मनुष्य की उत्तेजित अवस्था, और इसीलिए दुष्ट आवेगों या प्रबल वासना के आवेशों के प्रतीक हैं। **कलियां** और **फूल** स्त्री-जननेन्द्रियों के प्रतीक है, विशेष रूप से कुमारा-वस्था में। इस सिलसिले में आपको स्मरण होगा कि कलियां वास्तव में वनस्पतियों की जननेन्द्रियां ही है।

हम यह देख चुके हैं कि कमरों का प्रतीकों के रूप में कैसे उपयोग होता है। इन प्रतीकों का क्षेत्र विस्तृत हो सकता है, जिसमें **खिड़कियां** और **दरवाजे** (कमरों में घुसने और उनसे निकलने के रास्ते) शरीर के द्वारों को सूचित करते है; कमरों के **खुला** या **बन्द** होने का तथ्य भी इस प्रतीक से मेल खाता है : चाबी, जिससे वे खोले जाते हैं, निश्चित ही पुल्लिग प्रतीक है।

इस थोड़ी-सी सामग्री से स्वप्न-प्रतीकात्मकता का कुछ अध्ययन किया जा सकता है। पर यह सामग्री इतनी ही नहीं है, तथा इसे विस्तृत भी किया जा सकता है, और गहरा भी; पर मैं समझता हूं कि यह आपको काफी से ज्यादा मालूम होगी। शायद आप इसे नापसन्द करें। आप पूछेंगे : "तो क्या मैं सचमुच मैथुन सम्बन्धी प्रतीकों

के बीच में ही रहता हूं ? क्या मेरे चारों ओर की सब वस्तुएं, मेरे पहनने के कपड़े, मेरे पकड़ने की सब चीजें, सदा मैथुन सम्बन्धी प्रतीक ही है, और कुछ भी नहीं ?" सचमुच ये आश्चर्यमय प्रश्न करना युक्ति संगत है और इनमें से पहला प्रश्न यह होगा : इन स्वप्न-प्रतीकों के अर्थ पर पहुंचने का दावा हम कैसे करते है जबकि स्वप्न देखने वाला स्वयं हमें इस बारे में कुछ भी जानकारी नहीं दे सकता।

मेरा उत्तर यह है कि हम भिन्न-भिन्न स्रोतों से यह ज्ञान प्राप्त करते है। परियों की कहानियों और पुराण-कथाओं से, मज़ाकों और विनोद के चुटकुलों से, लोककथाओं से, अर्थात् ऐसी हर चीज़ से, जिससे हमें विभिन्न जातियों के रीति-रिवाजों, कहावतों और गीतों का पता चलता है, और भाषा के काव्यमय तथा ग्राम्य बोल-चाल के प्रयोगों से हम यह ज्ञान प्राप्त करते है। इन विभिन्न क्षेत्रों में सब जगह एक ही प्रतीकात्मकता मिलती है, और उनमें से बहुतों में इसके बारे में बिना कुछ सिखाए हम इसे समझ सकते है। यदि इन विभिन्न क्षेत्रों पर हम अलग-अलग विचार करें तो हमें स्वप्न-प्रतीकात्मकता के इतने सारे मिलते-जुलते रूप दिखाई दें कि हमको इन निर्वचनों के सही होने का विश्वास करना ही पड़ेगा।

हमने बताया है कि शर्नर के अनुसार मनुष्य का शरीर स्वप्न में बहुत बार मकान से सूचित होता है। इस प्रतीकात्मकता को और बढ़ाने पर खिड़कियां, दरवाजे और किवाड़ शरीर के द्वारों में प्रवेश-स्थान को सूचित करते है और मकान का सामना या तो चिकना होता है और या उसपर पकड़ने के लिए छज्जे, और झंझरियां होती है। यही प्रतीकात्मकता बोलचाल के प्रयोगों में मिलती है। उदाहरण के लिए, हम कहते है : बालों का 'छप्पर' या 'टाइलहैट' या किसी के बारे में हम कहते है कि उसकी 'ऊपर की मंजिल'[1] ठीक नहीं। शरीर में भी हम शरीर के छिद्रों को इसके 'पोर्टल'[2] या द्वार कहते है।

शुरू में हमें यह बात आश्चर्यजनक लगेगी कि स्वप्नों में हमें अपने माता-पिता राजा-रानियों के रूप में दिखाई देते है, पर इसी तरह की चीज़ परियों की कहानियों में होती है। क्या हमें यह नहीं लगने लगता कि बहुत-सी परियों की कहानियों का, जो 'एक था राजा, एक थी रानी' से शुरू होती है, अर्थ सिर्फ यह होता

---

१. जर्मन भाषा में पुराने परिचित को प्रायः 'पुराना मकान' (Altes Haus) कहकर पुकारा जाता है; 'उसे छत पर एक दे दो' (Einem eins aufs Dachl geben) का अर्थ है 'उसके सिर पर मारो।'

२. पोर्टल शिरा आंतों से पोषण, जिगर के रास्ते, शरीर को पहुंचाती है। पाईलोख (जो π vλ n (पाइल) द्वार से बना है) छोटी आंत का प्रवेश द्वार होता है। जर्मन भाषा में शरीर के छिद्र Leibespforten (शरीर के द्वार) कहलाते हैं।

है कि एक बार एक पिता था और एक माता थी। परिवार में बच्चों को हंसी में कभी-कभी राजा बेटा कहा जाता है, और सबसे बड़े पुत्र को युवराज कहा जाता है। स्वयं राजा जनता का पिता कहलाता है[1]। फिर कुछ स्थानों में छोटे बच्चे प्रायः खेल में छोटे जानवर कहलाते हैं। उदाहरण के लिए, कार्नवाल में 'छोटा मेंढ़क', या जर्मनी में 'छोटा कीड़ा', और बच्चे से सहानुभूति दिखाते हुए कहते हैं, 'बिचारा छोटा कीड़ा।' (हिन्दी-भाषी प्रदेश में बच्चे को 'बंदर', बच्ची को 'चिड़िया' और सामान्यता बच्चे को 'चूहा या चुहिया' कहते हैं।)

अब फिर मकान के प्रतीक पर विचार करेंगे। जब हम अपने स्वप्नों में मकानों के छज्जों को पकड़ते हैं, तब क्या हमारे मन में विशेष रूप से उभरी हुई छातियों वाली स्त्री के सम्बन्ध में जर्मन भाषा की यह प्रसिद्ध और प्रचलित कहावत नहीं आती। 'उसके पास किसीके पकड़ रखने योग्य चीज है।' (Die hat etwas zum Anhalten)। इसी तरह का एक और बोलचाल का प्रयोग है। 'उसके मकान के सामने बहुत-सी लकड़ी है।' (Die hat viel Holz vor dem Hause) मानो इस तरह जब हम यह कहते हैं कि लकड़ी स्त्री का मातृरूप प्रतीक है, तब इससे हमारे निर्वचन की पुष्टि हो जाती है।

लकड़ी के विषय पर अभी कुछ और कहना पड़ेगा। आसानी से समझ में नहीं आता कि लकड़ी स्त्री और माता का प्रतीक क्यों हो पर इसमें विभिन्न भाषाओं की तुलना हमारे लिए उपयोगी हो सकती है। जर्मन शब्द Holz (लकड़ी) उसी धातु से निकला हुआ बताया जाता है जिससे ग्रीक UΛn, जिसका अर्थ है सामग्री या कच्चा सामान। यह उस प्रकार का उदाहरण है जिसमें एक सामान्य नाम अंत में एक विशेष वस्तु का वाचक हो जाता है, और यह प्रक्रम बहुत जगह दिखाई देता है। एटलांटिक महासागर में मैडीरा नामक एक द्वीप है, और यह नाम इसे तब दिया गया था जब पुर्तगालियों ने इसे ढूढा था, क्योंकि उस समय इसमें घने जंगल थे और पुर्तगाली भाषा में जंगल या लकड़ी के लिए 'मैडीरा' शब्द है। पर आप देखेंगे कि यह मैडीरा शब्द लैटिन के 'मैटीरिया' शब्द का ही रूपान्तर है, और 'मैटीरिया' शब्द सामान्य रूप से वस्तु का वाचक है पर मैटीरिया शब्द 'मैटर' (माता) शब्द से निकला है, और जिस सामान में से कोई चीज़ बनती है उसे उस चीज़ का जन्मदाता माना जा सकता है। इस प्रकार स्त्री या माता के प्रतीक के रूप में लकड़ी या जंगल का प्रयोग इस पुराने विचार का अवशेष भी है।

जन्म सदा पानी से कुछ सम्बन्ध रखता हुआ दिखाई देता है। या तो हम पानी में गोता लगा रहे हैं, या उससे निकल रहे हैं, अर्थात् हम जन्म लेते हैं, या पैदा होते

---

१. रूसी भाषा में 'छोटा पिता'। (देखिए कालिदास—स पिता पितरस्तासां केवलं जन्म हेतवः—अनुवादक)

हैं। यह नहीं भूलना चाहिए कि विकास[1] के वास्तविक तथ्यों की ओर यह प्रतीक दो निर्देश करता है। धरती पर रहने वाले सब स्तन्यपायी[2] जिनसे मनुष्य वंश पैदा हुआ है, उन प्राणियों के वंशज हैं जो पानी में रहते थे--यह दोनों में से दूर वाला संकेत है--पर प्रत्येक स्तन्यपायी व्यक्ति अर्थात् प्रत्येक मनुष्य भी पानी में रहने की पहली अवस्था में से गुजरा है, अर्थात् वह भ्रूण[3] के रूप में माता के गर्भ के एमनियोटिक तरल में रहा है और इस प्रकार जन्म के समय पानी से निकला है। मैं यह नहीं कहता कि स्वप्न-द्रष्टा यह बात जानता है; इसके विपरीत, मेरा यह कहना है कि उसे यह जानने की कोई आवश्यकता ही नहीं। शायद वह बचपन से सुनता हुआ कुछ और बात जानता है, पर मैं यह कहता हूं कि इससे भी प्रतीक बनने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। बच्चे को छुटपन में कहा जाता है सारस पक्षी बच्चे दे जाते हैं। पर फिर उन्हें बच्चे मिलते कहां से है ? किसी तालाब या कुएं में से, अर्थात् पानी से। मेरा एक रोगी, जिसे बचपन में जब वह बहुत छोटा ही था यह बात बताई गई थी, एक दिन तीसरे पहर कहीं गायब हो गया और अन्त में एक झील के किनारे लेटा हुआ मिला। उसने अपना छोटा-सा मुंह निर्मल जल की ओर कर रखा था और वह उत्सुकतापूर्वक ताक रहा था कि क्या झील के तले में वह बच्चों को देख सकेगा।

वीर पुरुषों के जन्मों की पौराणिक कहानियों में, जिनका ओ० रैन्क ने तुलनात्मक अध्ययन किया है--इनमें सबसे प्राचीन, लगभग अट्ठाईस सौ ईस्वी पूर्व का अक्कड् का राजा सारगोन है—पानी में पड़े होने और उसमें से बचाए जाने का उल्लेख प्रमुख होता है। रैन्क ने देखा कि यह उसी प्रकार जन्म का प्रतीक है जैसे स्वप्नों में होता है। स्वप्न में कोई आदमी किसीको पानी में से बचाता है। तब वह उस व्यक्ति को अपनी माता बना लेता है या कम से कम **एक** माता तो बना ही लेता है; और पुराण-कथाओं में जो कोई किसी बच्चे को पानी में से बचाती है, वह स्वयं को उसकी सगी माता बताती है। एक प्रसिद्ध मज़ाक है जिसमें एक तीव्र-बुद्धि यहूदी लड़का, यह पूछने पर कि मूसा की माता कौन थी, तुरन्त उत्तर देता है : "राजकुमारी।" हम उससे कहते हैं "नहीं, उसने तो उसे सिर्फ पानी में से निकाला था।" "यह तो **वह** कहती थी," वह उत्तर देता है, और इस तरह प्रकट करता है कि उसने पौराणिक कथा का सही अर्थ समझ लिया है।

यात्रा पर जाना स्वप्नों में मरने का प्रतीक होता है; इसी प्रकार जब कोई बालक किसी ऐसे व्यक्ति के बारे में पूछता है जो मर गया है और जिसका अभाव उसे अनुभव हो रहा है, तब उससे कह दिया जाता है कि 'वह परदेस गया है।' यहां

---

१. Evolution. २. Mammal. ३. Embryo.

भी मैं इस विचार को नापसन्द करता हूं कि इस स्वप्न-प्रतीक का मूल बच्चे को दिए गए टालू जवाब में है। कवि जब परलोक के लिए यह कहता है कि 'वह अज्ञात देश जहां से कोई पथिक वापस नहीं लौटता' तब वह इसी प्रतीक का प्रयोग करता है। इसी तरह रोज़ की बातचीत में हम 'अन्तिम यात्रा' (महाप्रयाण या गंगा यात्रा) शब्दों का प्रयोग करते हैं, और प्राचीन कर्मकाण्ड से परिचित लोग अच्छी तरह जानते हैं कि मृतों के देश में यात्रा का विचार, उदाहरण के लिए, प्राचीन मिस्र-वासियों में कितनी गम्भीरता से माना जाता था। बहुत जगह 'मृत का लेखा' (Book of the Dead) देने की पद्धति अब भी कायम है—यह लेखा ममी अर्थात् संरक्षित शव को अपनी अन्तिम यात्रा पर ले जाने के लिए दे दिया जाता था। कब्रिस्तान बस्ती से दूर होते हैं इसलिए मृत व्यक्ति की अन्तिम यात्रा एक वास्तविकता बन गई है।

यौन प्रतीक सिर्फ़ स्वप्नों से ही सम्बन्ध नहीं रखते। 'सामान' शब्द से आप सब परिचित होंगे,जो स्त्री का तिरस्कार के साथ उल्लेख करने में प्रयुक्त होता है। पर शायद लोगों को पता नहीं है कि वे जननेन्द्रिय के एक प्रतीक का प्रयोग कर रहे हैं। नए अहदनामे (New Testament) में लिखा है : "औरत कमजोर **जहाज़** है।" यहूदियों के धर्मलेखों में जिनकी शैली कविता से बहुत मिलती-जुलती है, यौन प्रतीकों वाली बहुत-सी पदावलियां हैं, जिनका बहुत बार ठीक-ठीक अर्थ नहीं लगाया गया है और जिनके भाष्य से, उदाहरण के लिए, सौंग ऑफ सोलोमन में बड़ी ग़लतफहमी पैदा हुई है।[1] बाद के हिब्रू साहित्य में स्त्री को बहुत बार मकान द्वारा निरूपित किया गया है, जिसमें दरवाजा योनि-द्वार का प्रतीक है। इस प्रकार, जब पुरुष यह देखता है कि कोई स्त्री अब कुमारी या अक्षतयोनि नहीं है, तब वह कहता है कि 'मैंने दरवाजा खुला पाया है।' इस साहित्य में स्त्री के लिए 'मेज़' का प्रतीक भी आता है; स्त्री अपने पति के विषय में कहती है : "मैंने उसके लिए मेज़ लगाई, पर उसने इसे उल्टा कर दिया।" लंगड़े बच्चों की दुर्बलता का कारण इस तथ्य को बताया जाता है : "पुरुष ने मेज़ को उल्टा कर दिया।" यहां मैं एल० लेवी के एक ग्रन्थ से एक उदाहरण देता हूं। वह ग्रन्थ है **'सेक्सुअल सिम्बोलिज्म इन द बाईबल एण्ड द तालमद'** (अर्थात् बाईबल और तालमद में मैथुन विषयक प्रतीक)।

स्वप्नों में जहाज़ स्त्री का वाचक होता है, जिसका समर्थन व्युत्पत्ति-शास्त्री भी करते हैं। उनका कहना है कि जहाज़ (Schiff) शब्द पहले मिट्टी के बर्तन का नाम था, और यह शब्द Schaff (टब या कठौता) ही है। चूल्हा स्त्री या माता के

---

१. **"मैं एक दीवार हूं और मेरे स्तन बुर्जों के समान हैं : तब मैं उसकी नज़रों को बांध सकी थी।"**—Cant viii. 10.

गर्भ का प्रतीक है--इस बात की पुष्टि कोरिन्थ के पेरिएन्डर और उसकी पत्नी मैलिसा की यूनानी कहानी से भी होता है। हैरोडोटस के लेख के अनुसार, उस ज़ालिम ने अपनी पत्नी को, जिसे वह बहुत प्रेम करता था, ईर्ष्या के कारण मार दिया था; अब इसने उसकी छाया (अथवा प्रेत) से सौगन्ध देकर उसके बारे में बताने को कुछ कहा। इस पर मृत स्त्री ने अपना परिचय स्पष्ट करने के लिए उसे यह स्मरण कराया कि 'तूने (अर्थात् पेरिएन्डर ने) अपनी रोटी एक ठंडे चूल्हे में रख दी थी', और इस प्रकार छिपे रूप में एक ऐसी परस्थिति जाहिर की जिससे और कोई परिचित नहीं था। एफ० एस० क्राउस द्वारा सम्पादित **एन्थ्रोपोफाइटिया** नामक ग्रन्थ में, जो विभिन्न जातियों के यौन जीवन सम्बन्धी प्रत्येक बात के विषय में एक अपरिहार्य पुस्तक है, लिखा है कि जर्मनी के एक हिस्से में लोग प्रसूता स्त्री के बारे में कहते हैं कि 'उसका चूल्हा गिर कर टुकड़े-टुकड़े हो गया है।' आग जलाना और इससे जुड़ी हुई हर बात मैथुन सम्बन्धी प्रतीकों की सूचक है। ज्वाला सदा पुरुषेन्द्रिय की प्रतीक होती है और अंगीठी स्त्री के गर्भ की।

अगर आपको इस बात पर आश्चर्य हुआ हो कि स्वप्न में स्त्री के लिंगों के प्रतीक के रूप में धरती के दृश्य क्यों इतनी अधिक बार दिखाई देते हैं तो इसका उत्तर आपको पुराण विद्या के विद्वानों से मिल सकता है। वे आपको बताएंगे कि पुराने ज़माने के विचारों और पन्थों में 'धरती माता' का कितना महत्वपूर्ण कार्य रहा है, और जिस तरह खेती का सारा अवधारण इस प्रतीक के अनुसार ही निश्चित है। स्वप्न में कमरा स्त्री का प्रतीक होता है। इस तथ्य का मूल जर्मन बोलचाल के फ्राउएनजिमर = Frauenzimmer (शब्दार्थ 'स्त्री का कमरा') शब्द में फ्राउ = Frau (स्त्री) के लिए प्रयोग में आता है, अर्थात् स्त्री को उसके रहने के कमरे से निरूपित किया जाता है। इसी प्रकार सुलतान और उनकी सरकार के अर्थ में हम दरबार का प्रयोग करते हैं, और पुराने मिस्र के राजा के नाम 'फेराओ' शब्द का अर्थ सिर्फ 'बड़ा दरबार' है (पुराने जमाने में पूर्वी देशों में नगर के दोहरे द्वारों के बीच के आंगनों में दरबार होते थे, जैसे बाद में बाजार होने लगे); पर मैं समझता हूं कि यह व्युत्पत्ति बिलकुल ऊपरी है, और मुझे यह ज्यादा सम्भाव्य लगता है कि कमरा स्त्री का प्रतीक इस कारण हुआ कि वह पुरुष को अपने अन्दर बन्द कर सकती है। इस अर्थ में हम मकान को पहले देख चुके हैं; पुराण-कथाओं और काव्य से हमें पता चलता है कि नगर, किले, गढ़ और दुर्ग भी स्त्री के प्रतीक होते हैं। यह बात उन लोगों के स्वप्नों से आसानी से निश्चित की जा सकती है जो न जर्मन बोलते हैं, और न जर्मन समझते हैं। कुछ वर्षों से मैंने मुख्यतः विदेशी रोगियों का इलाज किया है, पर मुझे याद है कि उनके स्वप्नों में कमरा उसी तरह स्त्री का प्रतीक होता है जैसे हमारे यहां, हालांकि उनकी भाषा में फ्राउएनजिमर = Frauenzimmer जैसा कोई शब्द नहीं। इस बात के और भी संकेत मिलते हैं कि

ये प्रतीक भाषा की सीमाओं में बंधे हुए नहीं होते--इस तथ्य की पहले ही, स्वप्नों की बहुत समय से जांच करने वाले विद्वान शूबर्ट ने १८६२ में स्थापना की थी। पर मेरा कोई भी रोगी जर्मन भाषा से पूरी तरह अपरिचित नहीं था, इसलिए यह प्रश्न मैं उन विश्लेषकों पर फैसले के लिए छोड़ता हूं जो दूसरे देशों में ऐसे व्यक्तियों से उदाहरण इकट्ठे कर सकते है जो केवल एक भाषा बोलते है।[1]

पुरुष के लिंग के प्रतीकों में शायद ही कोई ऐसा हो जो मज़ाक में, गंवारू प्रयोगों में या काव्य के शब्दों में, विशेष रूप से पुराने क्लासिकल कवियों में प्रयुक्त न हुआ हो। यहां भी हमें न केवल वे प्रतीक मिलते है जो स्वप्न में आते है, बल्कि नए प्रतीक भी मिलते है। उदाहरण के लिए, विभिन्न प्रकार की दस्तकारियों में काम आने वाले **उपकरण**, जिनमें सबसे मुख्य है **हल**। इसके अलावा, जब हम पुल्लिंग प्रतीकों पर आते है, तब बड़े विस्तृत और विवादास्पद क्षेत्र में पहुंच जाते है, और समय बचाने की दृष्टि से मैं उसका विवेचन नहीं करना चाहता। मैं सिर्फ एक प्रतीक के बारे में दो-एक बातें कहना चाहता हूं जो अद्वितीय है। मेरा मतलब **तीन** संख्या से है। इस संख्या को बहुत सम्भवत: इसके प्रतीकात्मक अर्थ के कारण पवित्र नही माना जाता, इस प्रश्न को मैं बिना तय किए छोड़ देना चाहता हूं, पर यह बात निश्चित मालूम होती है कि बहुत-से तीन भागों वाले प्राकृतिक पदार्थ, उदाहरण के लिए, क्लोवर के पत्ते (एक तरह का पशुओं का चारा) कोट ऑफ आर्म्स (कवच के ऊपर अंकित कुल-मर्यादा सूचक चित्र) और चिह्न के रूप में अपनी प्रतीकात्मकता के कारण प्रयोग में लाए जाते हैं। तथा कथित 'फ्रेंच' लिली, जिसमें तीन भाग होते है और 'तिपाई' (Trisceles)--वह विचित्र कवच-चिह्न जिसमें दो एक दूसरे से काफ़ी दूर पर स्थित द्वीप, जैसे सिसली और आइल ऑफ मैन होते है। (इस आकृति में एक केन्द्रीय बिन्दु से तीन मुड़ी हुई टांगें आगे को निकली हुई होती है) पुरुष-लिंग के छिपे हुए रूप ही माने जाते है, जिनके प्रतिबिंबों को पुराने ज़माने में भूत, प्रेत आदि को भगाने का सबसे उत्तम साधन माना जाता था; इसके साथ एक वह तथ्य है कि हमारे ज़माने के सौभाग्यप्रेरक कवच को भी आसानी से जननेन्द्रिय या मैथुन सम्बन्धी प्रतीक के रूप में पहचाना जा सकता है। छोटे-छोटे चांदी के ताबीज़ों के रूप में लटकने वाले ऐसे बहुत-से कवचों को देखिए: कोई चार पत्तियों वाला क्लोवर है, कोई सुअर है, कोई कुकुरमुत्ता है, कोई घोड़े की नाल है, कोई नसैनी है, और कोई चिमनी साफ करने वाली झाड़ू है। चार पत्तों वाला क्लोवर तीन पत्तों वाले के स्थान पर आ गया है, पर असल में तीन पत्तों वाला प्रतीक के प्रयोजन के लिए अधिक ठीक था; सुअर सफलता का प्राचीन

---

१. अंग्रेजी-भाषी रोगियों में निश्चित रूप से यह बात होती है।--अंग्रेजी अनुवादक।

प्रतीक है; कुकुरमुत्ता निःसन्देह शिश्न का प्रतीक है, कुछ कुकुरमुत्तों का नाम इस अंग से उनकी स्पष्ट समानता से ही रखा गया है (फैलस इम्पुडिकस); नाल स्त्री-योनि की रूप-रेखा प्रस्तुत करती है; और चिमनी साफ़ करने वाली झाड़ू तथा उसकी नसैनी इस समुदाय में इसलिए आती हैं क्योंकि उसके पेशे की तुलना गंवारू भाषा में मैथुन से की जाती है।[1] हम उसकी नसैनी को स्वप्न में दीखने वाला यौन प्रतीक बता चुके हैं। भाषा के प्रयोगों से पता चलता है कि Steigen, अर्थात् चढना शब्द पूरी तरह मैथुन सम्बन्धी अर्थ प्रकट करता है जैसे इन वाक्यांशों में : Den Frauen nachsteigen (स्त्रियों के पीछे दौड़ना) और ein alter Steiger (एक पुराना बदमाश या व्यभिचारी)। इस प्रकार फ्रेंच में, जिसमें 'कदम' के लिए **ला मर्श** (La marche) है, हमें पुराने बदमाश के लिए बिलकुल इसी तरह का शब्द-प्रयोग मिलता है : **आं व्यू मार्शोर** (Un vieux marcheur)। विचारों के इस साहचर्य से सम्भवतः इस तथ्य का कुछ सम्बन्ध है कि बहुत-से बड़े पशुओं में मैथुन के लिए मादा या स्त्री पशु पर 'चढ़ने' की आवश्यकता होती है।

स्वयं रति को निरूपित करने वाला प्रतीक टहनी तोड़ना न केवल इस कार्य के गंवारू वर्णन से मेल खाता है, बल्कि पुराण-कथाओं में भी इसके बड़ी दूर तक सादृश्य मिलते हैं पर विशेष रूप से उल्लेखनीय बात यह है कि स्वयं रति का या स्वयं रति की सजा के रूप में बधिया करने का प्रतीक दांतों का गिरना या निकालना है; क्योंकि लोककथाओं में इस जैसी एक चीज़ मिलती है जो बहुत ही थोड़े स्वप्न देखने वालों को पता हो सकती है। मैं समझता हूं कि इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि खतना, जो इतनी सारी जातियों में प्रचलित है, बधिया करने के समान और उसके स्थान पर आया हुआ है; और हाल में ही हमें पता चला है कि आस्ट्रेलिया की कुछ आदिम जातियों में तरुणावस्था प्राप्त करने के अवसर पर (लड़के के बालिग होने के समारोह पर) धार्मिक कृत्य के रूप में खतना किया जाता है और उनके बिलकुल पास रहने वाली दूसरी जातियों में इस प्रथा के स्थान पर एक दांत तोड़ देने की प्रथा है।

मैं अपना कथन इन उदाहरणों से खत्म करूंगा। वे सिर्फ़ उदाहरण हैं। हम इस विषय के बारे में और अधिक जानते हैं और आप समझ सकते हैं कि यदि हमारे जैसे अनाड़ियों के बजाय पुराण विद्या, नृतत्व विज्ञान, भाषा-तत्व, और लोककथाओं के सच्चे विशेषज्ञों द्वारा इस तरह की सामग्री का संग्रह किया जाए तो वह कितना अधिक विस्तृत और मनोरंजक होगा। हमें मजबूरन कुछ निष्कर्षों पर आना पड़ता है जो इस तरह सारे के सारे हमारे सामने नहीं आ सकते, पर फिर भी जो हमें सोचने के लिए बहुत कुछ मसाला दे जाएंगे।

---

१. **देखिए, एन्थ्रोपोफाइटिया।**

प्रथम तो हमारे सामने यह तथ्य आता है कि स्वप्न-द्रष्टा के पास अपने मन की बात कहने की प्रतीकात्मक रीति है जिसके बारे में वह जागृत जीवन में कुछ नहीं जानता और जिसे वह पहचानता भी नहीं। इससे उतना ही आश्चर्य होता है जितना आपको यह पता लगने पर होगा कि आपकी नौकरानी संस्कृत भाषा जानती है, यद्यपि आपको यह मालूम है कि वह बोहेमिया के एक गांव में पैदा हुई थी और उसने वह भाषा कभी नहीं सीखी। इस तथ्य का हमारे मनोविज्ञान विषयक विचारों से मेल बिठाना आसान काम नहीं। हम इतना ही कह सकते है कि स्वप्न-द्रष्टा का प्रतीकात्मकता का ज्ञान अचेतन है और उसके अचेतन मानसिक जीवन में रहता है, पर यह धारणा भी हमारे लिए अधिक उपयोगी नहीं होती। अब तक हमें सिर्फ़ यह कल्पना करनी पड़ी थी कि अचेतन प्रवृत्तियों का अस्तित्व है, जो हमारे स्थायी या अस्थायी रूप से अज्ञात होती है, पर अब कुछ बड़ा सवाल है और हमें एसी चीजों में सचमुच विश्वास करना है, जैसे अचेतन ज्ञान, विचार-सम्बन्ध और विभिन्न वस्तुओं में साम्य, जिनके द्वारा एक मनोबिंब के स्थान पर दूसरा मनोबिंब नियत रूप में स्थापित किया जा सकता है। ये साम्य हर बार नए सिरे से नहीं शुरू होते, बल्कि हमेशा के लिए तैयार की हुई हमारी सूची में होते है। यह हम विभिन्न व्यक्तियों में सम्भवतः भाषा सम्बन्धी भेदों के होते हुए भी, उनके अभिन्न होने का अनुमान करते है।

इसी प्रतीकात्मकता का ज्ञान हमें कहां से होता है? भाषा में प्रयुक्त शब्दों में बहुत थोड़े प्रतीक आते है और दूसरे क्षेत्रों से बहुत सारे सादृश्य स्वप्न-द्रष्टा को अधिकतर अज्ञात होते है। सबसे पहले हमें स्वयं उन्हें मेहनत से क्रमबद्ध करना होगा।

दूसरी बात यह कि ये प्रतीकात्मक सम्बन्ध स्वप्न-द्रष्टा के लिए अलग नहीं होते, या उसी स्वप्न-रचना के लिए अलग नहीं होते जिसमें ये प्रकट होते हैं; क्योंकि हमने देखा है कि वही प्रतीक पुराण-कथाओं में और परियों की कहानियों में, आम लोगों की भाषा में और गीतों में, बोलचाल की भाषा और काव्य की कल्पना में प्रयोग में आते है। प्रतीकात्मकता का क्षेत्र सामान्य रूप से विस्तृत है; स्वप्न-प्रतीकात्मकता उसका एक छोटा-सा अंशमात्र है। सारी समस्या पर स्वप्नों के पहलू से विचार करना उचित भी नहीं होगा। और जगह आमतौर से काम आनेवाले बहुत-से प्रतीक या तो स्वप्नों मे बिलकुल ही नहीं आते और या बहुत कम आते है; दूसरी ओर, बहुत-से स्वप्न-प्रतीक दूसरे हर क्षेत्र में नही मिलते, बल्कि जैसा कि आप देख चुके है, सिर्फ कहीं-कहीं मिलते है। हमपर यह असर पड़ता है कि यह कोई प्राचीन, और अब अप्रचलित भाव-प्रकाशन की रीति होगी, जिसके विभिन्न टुकड़े विभिन्न क्षेत्रों में, कोई कहीं और कोई कहीं, मामूली हेर-फेर के साथ बचे हुए हैं। यहां मुझे एक बड़े मनोरंजक पागल रोगी की कल्पना की याद आती है

जो कहता था कि एक 'आद्य भाषा' रही होगी जिसके अवशेष ये सब प्रतीक है।

तीसरी बात यह है कि आपको यह महसूस होगा कि ऊपर बताए गए अन्य क्षेत्रों में होने वाली प्रतीकात्मकता यौन विषयों तक ही सीमित नहीं है। पर स्वप्नों में इन प्रतीकों का प्रयोग सिर्फ़ यौन वस्तुओं और सम्बन्धों को सूचित करने के लिए होता है। इसका कारण बताना भी कठिन है। क्या यह माना जाए कि पहले यौन या मैथुन सम्बन्धी अर्थ रखने वाले प्रतीक बाद में विभिन्न रूपों में प्रयुक्त हुए और शायद इसी कारण प्रतीकात्मक निरूपण का ह्रास हो गया और निरूपण की दूसरी रीतियां अपना ली गई ? सिर्फ़ स्वप्न-प्रतीकात्मकता पर विचार करके इन प्रश्नों का उत्तर देना स्पष्टतः असम्भव है; हम इतना ही कर सकते है कि इस कल्पना को दृढ़ता से माने रहें कि सच्चे प्रतीकों और मैथुन में विशेष रूप से नजदीकी सम्बन्ध है।

इस सिलसिले में हमें हाल में ही एक महत्वपूर्ण संकेत एक भाषा तत्वज्ञ (अपस्ला के एच० स्पर्बर, जो मनोविश्लेषण से बिलकुल अलग कार्य करते है।) के इस विचार से मिला है कि भाषा की उत्पत्ति और परिवर्द्धन में मैथुन सम्बन्धी आवश्यकताओं का सबसे बड़ा प्रभाव पड़ा है। आपने लिखा है कि जो सबसे पहली ध्वनि मनुष्य के मुख से निकली, वह अपनी बात कहने का साधन और मैथुन के साथी को बुलाने का साधन थी और बाद में भाषण के अवयवों का प्रयोग आदिम काल के मनुष्य द्वारा किए जाने वाले विभिन्न कार्यो के साथ होने लगा। यह कार्य तालबद्ध रीति से दोहराए गए वचनों की ध्वनि के साथ किया जाता था और इसका असर यह होता था कि मैथुन सम्बन्धी दिलचस्पी कार्य में बदल जाती थी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आदिम काल के मनुष्य ने अपने कार्य को मैथुन सम्बन्धी कार्यो के समान और उनका स्थानापन्न मानकर सुखदायक बनाया। इसलिए सामाजिक कार्य में प्रयुक्त शब्द के दो अर्थ होते थे--एक तो मैथुन सम्बन्धी कार्य को सूचित करता था और दूसरा उस परिश्रम को सूचित करता था जिसके तुल्य इसे मान लिया गया। धीरे-धीरे उस शब्द का मैथुन सम्बन्धी अर्थ खत्म हो गया और उसका प्रयोग सिर्फ कार्य के लिए होने लगा। अनेक पीढ़ियों बाद यही बात नए शब्द के बारे में हुई--वह भी पहले मैथुन सम्बन्धी अर्थ का वाचक बना और फिर किसी नए तरह के कार्य के लिए प्रयोग में आने लगा। इस प्रकार अनेक मूल शब्द बन गए जो सब मैथुन सम्बन्धी प्रसंग से पैदा हुए थे पर बाद में अपना मैथुन सम्बन्धी अर्थ खो बैठे। यदि उपर्युक्त कथन सही है तो स्वप्न-प्रतीकों को समझने की एक सम्भावना हमें दिखाई देने लगती है। हमको समझना चाहिए कि स्वप्नों में, जिनमें उन आदिम अवस्थाओं का कुछ अंश बाकी है, इतने अधिक मैथुन सम्बन्धी प्रतीक क्यों होते है, और आम तौर से हथियार और औजार पुरुष के तथा जिन वस्तुओं और सामान को बनाया-संवारा जाता है, वे स्त्री के प्रतीक क्यों होते

हैं। तब प्रतीकात्मक सम्बन्ध इसी बात के अवशेष होंगे कि पहले दोनों के लिए एक शब्द-प्रयोग होता था। जिन वस्तुओं का वाचक पहले जननेन्द्रिय वाचक शब्द था वे अब स्वप्न में जननेन्द्रिय की प्रतीक बन सकती हैं।

इसके अतिरिक्त, स्वप्न-प्रतीकात्मकता से आपको यह समझने में मदद मिल सकती है कि मनोविश्लेषण क्यों इतना आम दिलचस्पी का विषय बन जाता है, जितना मनोविज्ञान और मनश्चिकित्सा नहीं बन सकते। मनोविश्लेषण कार्य विज्ञान की और बहुत-सी शाखाओं के साथ अच्छी तरह गुथा हुआ है, और इन शाखाओं की जांच-पड़ताल करने से बहुत कीमती नतीजे निकल सकते हैं, जैसे पुराणविद्या, भाषा-तत्व और भाषा-विज्ञान, लोककथाएं, लोकमनोविज्ञान और धर्मशास्त्र। आपको यह जानकर आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि मनोविश्लेषण के आधार पर एक ऐसी पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ है जिसका एकमात्र उद्देश्य इन सम्बन्धों को बढाना है। मेरा संकेत **ईमेगो** की ओर है जो सबसे पहले १९१२ में प्रकाशित हुई थी और जिसके सम्पादक हैन्स सैक्श और ओटो रैन्क थे। इन दूसरे विषयों के साथ सम्बन्ध रखते हुए मनोविश्लेषण ने इनसे जितना पाया है उससे अधिक इन्हें दिया है। यह सच है कि मनोविश्लेषण अपने ही परिणामों की पुष्टि इन दूसरे क्षेत्रों में करता है, जो बड़ी विचित्र बात मालूम होती है, पर कुल मिलाकर मनोविश्लेषण द्वारा दी हुई तकनीकी विधियों और दृष्टिकोणों का प्रयोग ही दूसरे क्षेत्रों में सफल सिद्ध होता है। मनुष्य का मानसिक जीवन मनोविश्लेषण की जांच-पड़ताल के द्वारा ऐसी व्याख्याएं पेश करता है जो मनुष्य जाति के जीवन की बहुत-सी पहेलियों को हल कर देती है, या कम से कम उन्हें ठीक रूप में सामने ले आती है।

अब तक मैंने उन परिस्थितियों के बारे में आपको कुछ नहीं बताया जिनमें हम उस परिकल्पित 'आद्य भाषा' की गहराई में पहुंच सकते है, या उस क्षेत्र में पहुंच सकते हैं जिसमें यह आद्य भाषा अधिकतर जैसी की तैसी मौजूद होती है। जब तक आपको यह पता न चले तब तक आप सारे विषय का वास्तविक महत्व नहीं समझ सकते। मेरा आशय स्नायु-रोगों के क्षेत्र से है। इसकी सामग्री स्नायु-रोगियों के लक्षणों और अभिव्यक्ति की दूसरी रीतियों में मिलती है—इन स्नायु-रोगियों के लक्षणों की व्याख्या और इलाज के लिए ही असल में मनोविश्लेषण की रीति निकाली गई थी।

मेरा चौथा दृष्टिकोण हमें वापस नहीं ले जाता है जहां से हम चले थे बल्कि हमें उस मार्ग पर चलाता है जो हमने पहले ही देख लिया है। हमने कहा था कि यदि स्वप्न की काट-छांट न हो, तो भी स्वप्नों का अर्थ लगाना हमारे लिए कठिन होगा क्योंकि तब हमारे सामने यह सवाल होगा कि स्वप्नों की प्रतीकात्मक भाषा का जागृत जीवन की भाषा में अनुवाद किया जाए। इस प्रकार प्रतीकात्मकता स्वप्न-विपर्यास में दूसरा और स्वतन्त्र कारण है, जो सेन्सरशिप या काट-छांट के

साथ-साथ होता है, पर यह नतीजा तो सीधा ही है कि सेन्सरशिप को प्रतीकात्मकता का उपयोग करने में सहूलियत होती है, क्योंकि दोनों का एक ही प्रयोजन होता है कि स्वप्न को विचित्र और दुर्बोध बना दिया जाए।

स्वप्न के और आगे अध्ययन से हमें विपर्यास के किसी और कारण का पता चलेगा या नहीं यह अभी हम देखेंगे। पर स्वप्न-प्रतीकात्मकता के विषय को छोड़ने से पहले मैं इस अजीब तथ्य का उल्लेख एक बार और कर देना चाहता हूं कि इसका शिक्षित व्यक्तियों में बड़ा प्रबल विरोध हुआ है, यद्यपि पुराण-कथाओं, धर्म, कला और भाषा में असंदिग्ध रूप से प्रतीकात्मकता मौजूद है। क्या यहां भी यही सम्भव नहीं है कि मैथुन से इसका सम्बन्ध ही इसका कारण हो ?

स्वप्न-तंत्र*

स्वप्न-सेन्सरशिप और प्रतीकात्मक निरूपण को पूरी तरह समझ लेने के बाद भी आप स्वप्न-विपर्यास का रहस्य पूरी तरह नही समझ सके । फिर भी अब आप अधिकतर स्वप्नों को समझ सकने की स्थिति में हो गए है । स्वप्नों को समझने के लिए आप दो परस्पर सहायक विधियों का प्रयोग करेंगे : आप स्वप्न-द्रष्टा के साहचर्यों का पता लगाते-लगाते स्थानापन्न से उस असली विचार पर पहुंचेंगे जिसका वह सूचक है, और प्रतीकों का अर्थ आप इस विषय की जानकारी से प्राप्त करेंगे । इस प्रक्रम में पैदा होने वाले कुछ संदिग्ध प्रश्नों की चर्चा हम बाद में करेंगे ।

अब हम फिर उसी विषय पर आते है जिसे हमने स्वप्न-अवयवों और उनके आधारभूत असली विचारों के सम्बन्धों का अध्ययन करते हुए अधूरे साधनों के कारण छोड़ दिया था । तब हमने चार मुख्य सम्बन्ध बताए थे—सम्पूर्ण की जगह एक अंश का आ जाना, संकेत या अस्पष्ट निर्देश, प्रतीकात्मक सम्बन्ध, और सुघट्य[1] शब्द-निरूपण (प्रतिबिंब) । अब हम सारी **व्यक्त** स्वप्न-वस्तु की तुलना अपने निर्वचन से प्रस्तुत हुए **गुप्त** स्वप्न से करेंगे और इस प्रकार इस विषय पर जरा बड़े पैमाने पर विचार करेंगे ।

मुझे आशा है कि अब आपको इन दोनों वस्तुओं के पृथक् स्वरूपों के बारे में कोई भ्रम न होगा । यदि आप उन दोनों में भेद कर सकते हों तो स्वप्न को समझने की दिशा में आप सम्भवतः उन सब लोगों से आगे बढ़ गए है जिन्होंने मेरी पुस्तक **इन्टरप्रिटेशन आफ ड्रीम्स** (स्वप्नों का निर्वचन) पढ़ी है । मैं आपको यह फिर याद दिला देना चाहता हूं कि **जिस प्रक्रम से गुप्त स्वप्न को व्यक्त स्वप्न में बदला जाता है उसे स्वप्न-तन्त्र कहते हैं;** और इससे उलटे प्रक्रम को, जो व्यक्त स्वप्न से गुप्त विचार की ओर बढ़ता है, निर्वचन या अर्थ लगाना कहते हैं। इसलिए निर्वचन का उद्देश्य स्वप्न-तन्त्र को खत्म करना है । शैशवीय ढंग के

---

* Dream-work. १. Plastic.

स्वप्नों में, जिनमें स्पष्ट इच्छा-पूर्तियां आसानी से पहचानी जाती हैं, फिर भी स्वप्न-तन्त्र का प्रक्रम कुछ दूर तक कार्य करता रहा है, क्योंकि इच्छा एक यथार्थता में रूपान्तरित हुई है, और आम तौर से विचार भी दृष्टिगम्य प्रतिबिंबों के रूप में परिवर्तित हुए हैं। यहां निर्वचन की कोई आवश्यकता नहीं। इन दोनों रूपान्तरों को पूर्व रूप में ले आना ही हमारा काम है। स्वप्न-तंत्र के और कार्य, जो दूसरी तरह के स्वप्नों में दिखाई देते हैं, **स्वप्न-विपर्यास** कहलाते हैं और इनमें मूल मनो-बिंब या विचार हमारे निर्वचन-कार्य द्वारा ही सामने लाए जाते हैं।

मुझे बहुत-से स्वप्न-निर्वचनों की तुलना करने का मौका मिला है। इसलिए मैं आपको विस्तार से यह बता सकता हूं कि स्वप्न-तन्त्र गुप्त स्वप्न-विचारों की सामग्री पर किस तरह असर डालता है, पर कृपा करके बहुत कुछ समझ में आ जाने की आशा मत करिए। वर्णन के इस अंश को शांति से और ध्यान से सुनना चाहिए।

स्वप्न-तंत्र का पहला काम है **संघनन**[1]; इस शब्द से हम यह बात बताना चाहते हैं कि व्यक्त स्वप्न की वस्तु गुप्त विचारों की अपेक्षा कम सम्पन्न या भरी-पूरी होती है; यह मानो गुप्त विचारों का एक तरह का संक्षिप्त अनुवाद होती है। कभी-कभी संघनन नहीं भी होगा, पर आम तौर से यह होता है, और प्रायः बहुत दूर तक होता है। यह उलटी दिशा में कभी नहीं चलता, अर्थात् ऐसा कभी नहीं होता कि व्यक्त स्वप्न गुप्त स्वप्न की अपेक्षा अधिक सम्पन्न वस्तु वाला या अधिक विस्तृत क्षेत्र वाला हो। संघनन निम्नलिखित रीतियों से होता है: (१) कुछ गुप्त अवयव बिलकुल गायब होते हैं, (२) गुप्त स्वप्न की बहुत-सी ग्रन्थियों में से सिर्फ़ एक खण्ड व्यक्त वस्तु में आता है, (३) किसी सामान्य विशेषता वाले गुप्त अवयव व्यक्त स्वप्न में मिलकर एक हो जाते हैं।

यदि आप चाहें तो संघनन शब्द इस अन्तिम प्रक्रम के लिए सुरक्षित रख सकते हैं जिसके प्रभावों को विशेष आसानी से दिखाया जा सकता है। अपने स्वप्नों पर विचार करते हुए आप बड़ी आसानी से ऐसे उदाहरण याद कर सकेंगे, जिनमें विभिन्न व्यक्ति मिलकर एक व्यक्ति बन गए हों। ऐसी मिली-जुली आकृति शकल में **क** से मिलती है, पर कपड़ों में **ख** से मिलती है, पेशे से **ग** की याद दिलाती है और फिर भी आप सारे समय यह समझते हैं कि यह **घ** है। मिली-जुली तस्वीर चारों व्यक्तियों की किसी सामान्य विशेषता पर विशेष बल देती है, और यह भी हो सकता है कि मिली-जुली तस्वीर व्यक्तियों की तरह वस्तुओं या स्थानों से बनी हो, शर्त यही है कि अलग-अलग वस्तुओं या स्थानों में कोई ऐसा सामान्य गुण हो जिसपर गुप्त स्वप्न बल देता हो। यह ऐसी अवस्था है जिसमें मानो कोई नया और उड़ जाने वाला अवधारण बन गया हो जो उस सामान्य गुण के सूत्र में बंधा

---

१. Condensation.

हो। अलग-अलग भागों के एक दूसरे के ऊपर आ जाने से प्रायः एक धुंधला और अस्पष्ट चित्र बनता है, जैसे एक ही प्लेट पर कई फोटो ले लिए गए हों।

ऐसी मिली-जुली आकृतियों का बनना स्वप्न-तंत्र में बड़े महत्व का है, क्योंकि हम यह सिद्ध कर सकते है कि उनके बनने के लिए आवश्यक सामान्य गुण जान-बूझकर बनाए गए है, जबकि ऊपर से देखने पर वे गुण उनमें दिखाई नही देते; जैसे, किसी विचार के लिए कोई विशेष पदावली छांटकर। इस तरह के संघनन और मिले-जुले शब्दों के उदाहरण हम पहले देख चुके है। उनका बोलने की बहुत-सी ग़लतियां पैदा करने में महत्वपूर्ण हिस्सा होता है। आपको उस नौजवान की बात याद होगी जो एक महिला को 'इन्सौर्ट' (बेग्लीटडाइजेन) करना चाहता था (बेलीडाइजेन = इनसल्ट = अपमान करना, बेग्लीटन = एसकोर्ट = हिफाजत से पहुंचाना, मिला-जुला शब्द 'बेग्लीटडाइजेन')। इसके अलावा, अनेक मज़ाकों में इस तरह की संघनन की विधि दिखाई देती है, परन्तु इसके बाद भी हम यह कह सकते है कि यह प्रक्रम बिलकुल अजीब और अप्रचलित-सा है। यह सच है कि बहुत-से कल्पना-जालों की सृष्टि में हमें अपने स्वप्नों के मिले-जुले व्यक्तियों का निर्माण करने वाले अवयव मिल जाते हैं--ये घटक अवयव यथार्थतः एक दूसरे से सम्बन्धित नहीं होते, बल्कि कल्पना-सृष्टि के द्वारा मिलकर एक पूर्ण चित्र बनाते हैं; जैसे सैंटौर, अर्थात् आधा मनुष्य की और आधा घोड़े की आकृति वाला कल्पित राक्षस और प्राचीन पौराणिक कथाओं में आने वाले या बोकलिन की तस्वीरों में दिखाई देने वाले कल्पित पशु। असल में 'सृजनात्मक' कल्पना कोई नई चीज़ नहीं बना सकती, यह विभिन्न वस्तुओं के अवयव जोड़ सकती है, पर स्वप्न-तंत्र की प्रक्रिया के बारे में विशेष बात यह है कि इसकी सामग्री विचार होते है, जिनमें से कुछ आपत्ति योग्य और अप्रिय हो सकते है, पर फिर भी वे सही रूप में बनते और प्रकट होते है। स्वप्न-तंत्र इन विचारों को दूसरे रूप में बदल देता है और यह बात विचित्र है और समझ में नहीं आती कि इस अनुवाद के प्रक्रम में--मानो उन्हें दूसरी लिपि या भाषा में परिवर्तित करने में--मिलाकर जोड़ देने के साधन भी काम लाए जाते है। दूसरी अवस्थाओं में अनुवादक का निश्चित रूप से यह प्रक्रम होना चाहिए कि वह मूल में दिखाए गए भेदों को माने और विशेष रूप से उन वस्तुओं में भेद स्पष्ट करे जो समरूप है, पर अभिन्न नहीं है, या एक जैसी है पर एक नहीं है; इसके विपरीत, स्वप्न-तंत्र चुटकुले के ढंग से ऐसा संदिग्ध अर्थ छांटकर, जिससे दोनों विभिन्न विचार ध्वनित हो सकते है, दोनों को संघनित करने की कोशिश करता है। हमें इस विशेषता को सीधे ही समझ लेने की आशा न करनी चाहिए, पर हमारी स्वप्न-तंत्र की अवधारणा के लिए इसका बड़ा महत्व हो सकता है।

यद्यपि संघनन स्वप्न को अस्पष्ट कर देता है, तो भी यह स्वप्न सेन्सरशिप का

परिणाम नहीं लगता। इसका कारण यांत्रिक या मितव्ययिता सम्बन्धी प्रतीत होता है, तो भी इससे सेन्सरशिप की हितसिद्धि होती है।

कभी-कभी संघनन से बड़ा असाधारण काम हो जाता है। इसके द्वारा कभी-कभी दो सर्वथा भिन्न गुप्त विचार-शृंखलाएं मिलकर एक व्यक्त स्वप्न का रूप ग्रहण कर लेती हैं, जिससे हमें ऊपर से देखने पर स्वप्न का पर्याप्त निर्वचन मिल जाता है, और फिर भी, उसका जो दूसरा अर्थ हो सकता है उसे हम नज़रन्दाज कर देते हैं।

इसके अलावा, व्यक्त और गुप्त स्वप्न के सम्बन्ध पर संघनन का एक प्रभाव यह होता है कि दोनों के अवयवों में कहीं भी सीधा सिलसिला नहीं रहता क्योंकि कभी तो एक व्यक्त अवयव एक साथ कई गुप्त विचारों को निरूपित करता है और कभी एक गुप्त विचार कई व्यक्त अवयवों में मौजूद होता है। फिर, जब हम स्वप्नों का निर्वचन करने लगते हैं, तब देखते हैं कि आम तौर से एक व्यक्त अवयव के साहचर्य किसी नियमित क्रम से सामने नहीं आते, हमें प्रायः सारे स्वप्न की निर्वचन होने तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

इस प्रकार स्वप्न-तंत्र स्वप्न-विचारों को अनुवादित या रूपान्तरित करने के लिए एक बड़ी अजीब रीति अपनाता है, यह प्रत्येक शब्द का दूसरे शब्द से या प्रत्येक चिह्न का दूसरे चिह्न से अनुवाद नहीं होता, यह किसी निश्चित नियम के अनुसार छांटने का प्रक्रम भी नहीं होता; उदाहरण के लिए, शब्दों के सिर्फ व्यंजन आते हों और स्वर लुप्त हो जाते हों; न ऐसा ही होता है कि एक अवयव छांटकर उससे कई अन्य अवयवों को निरूपित कर दिया जाए, जिसे हम निरूपण का प्रक्रम कह सकते हैं। यह बिलकुल दूसरी और उलझनदार विधि से क्रिया करता है।

स्वप्न-तंत्र का दूसरा काम है **विस्थापन**[1]। खुश किस्मती से यह कोई बिलकुल नई चीज नहीं है। हम जानते हैं कि यह पूरी तरह स्वप्न-सेन्सरशिप का कार्य है। विस्थापन दो रूपों में होता है: प्रथम, किसी गुप्त अवयव के स्थान पर कोई और दूर की चीज़, जैसे कोई अस्पष्ट निर्देश, **प्रतिस्थापित**[2] हो जाता है—उसका ही कोई भाग प्रतिस्थापित नहीं होता; और दूसरे, **बलाघात** किसी महत्वपूर्ण अवयव से हटकर किसी महत्वहीन अवयव पर पहुंच जाता है, जिससे मानो स्वप्न का केन्द्र हट जाता है और इस तरह स्वप्न अपरिचित दीखने लगता है।

अस्पष्ट निर्देश से स्थानापन्नता, अर्थात् एक अवयव के स्थान पर दूसरे का आ जाना, जागते समय के विचारों में भी होता रहता है, पर दोनों में एक अन्तर है: जागते समय के विचारों में यह आवश्यक है कि अस्पष्ट निर्देश आसानी से समझ में आने वाला हो और कि स्थानापन्न वस्तु का असली विचार की वस्तु से

---

१. Displacement. २. Replaced.

साहचर्य हो। अस्पष्ट निर्देश का प्रयोग वाणी के चमत्कारों में भी बहुत किया जाता है, जिनमें वस्तु में साहचर्य की शर्त नही रहती और उसके स्थान पर अपरिचित बाहरी साहचर्य, जैसे ध्वनि की समानता, अर्थ की स्पष्टता, आदि आ जाते हैं, पर सुबोधता की शर्त रहती है। यदि हम मजाक में बिना मेहनत के यह न समझ सकें कि जिस वस्तु का निर्देश किया जा रहा है वह क्या है, तो मज़ाक का सारा मज़ा ही किरकिरा हो जाएगा; पर स्वप्नों में विस्थापन द्वारा निर्देश पर दोनों में से एक भी बन्धन नही होता। यह जिस अवयव का सूचक है, उससे बहुत अस्पष्ट रूप से और हल्का-सा जुड़ा रहता है, और इस कारण आसानी से समझ में नहीं आता, और जब सम्बन्ध-सूत्र ढूढ़ा जाता है, तब निर्वचन से वह असर पड़ता है जो किसी असफल मज़ाक का या 'ज़बरदस्ती की' या खीचातानी से की गई व्याख्या का। स्वप्न-सेन्सरशिप का उद्देश्य उसी समय पूरा हो जाता है जब वह अस्पष्ट निर्देश से असली विचार का सम्बन्ध जोड़ने को असम्भव बनाने में सफल हो जाए।

यदि हमारा उद्देश्य विचार को प्रकट करना है तो बलाघात का विस्थापन, अर्थात् स्थान-परिवर्तन, उसका उचित उपाय नही है, यद्यपि हम हंसी पैदा करने वाला असर लाने के लिए जागृत जीवन में कभी-कभी इसे स्वीकार करते हैं। इससे कितनी गड़बड़ पैदा होती है, यह मै उदाहरण से स्पष्ट करूंगा। किसी गांव में एक बढ़ई रहता था, जिसने हत्या का अपराध किया था। अदालत ने फ़ैसला किया कि बढ़ई सचमुच अपराधी है, परन्तु क्योंकि वह गांव में अकेला बढ़ई था, और इसलिए उसके बिना काम नहीं चल सकता, जबकि वहां दर्जी तीन रहते थे; इसलिए उसकी जगह उन तीन में से एक को फांसी पर लटका दिया गया।

स्वप्न-तंत्र का तीसरा कार्य मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सबसे अधिक मनोरंजक है। इसमें **विचार-दृष्टि गम्यप्रतिबिम्ब**[1] में रूपान्तरित हो जाते है। यह बात अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि स्वप्न-विचारों की हर चीज इस तरह रूपान्तरित नहीं होती; बहुत-सी चीज़ अपने मूल रूप में कायम रहती है और व्यक्त स्वप्न में भी स्वप्न-द्रष्टा के विचार या ज्ञान के रूप में दिखाई देती है; दूसरी बात यह है, कि विचारों का रूपान्तर सिर्फ इसी रूप में नहीं होता कि वे दृष्टिगम्य प्रतिबिम्बों का रूप ग्रहण कर लें; पर फिर भी स्वप्नों के निर्माण में यह अनिवार्य विशेषता है, और जैसा कि हम जानते है, स्वप्न-तन्त्र का यह भाग सिर्फ़ एक और अवस्था को छोड़कर, सबसे कम बदलता है। इसके अतिरिक्त, अलग-अलग स्वप्न-अवयवों के लिए **सुघट्य शब्द-निरूपण** के प्रक्रम से हम पहले ही परिचित है।

स्पष्ट है कि यह कार्य आसान नहीं, इसकी कठिनाई का कुछ अन्दाज़ा लगाने के लिए यह कल्पना कीजिए कि आपको किसी समाचारपत्र के राजनीतिक अग्र-

---

१. Visual image.

लेख के स्थान पर कुछ चित्र बनाने हैं। अब आपको चित्रलिपि ग्रहण करनी होगी और वर्णमाला वाली लिपि छोड़नी होगी। लेख में उल्लिखित व्यक्तियों और ठोस वस्तुओं का निरूपण चित्र के रूप में, आसानी से, और शायद अधिक अच्छे तरीके से, किया जा सकता है; पर अमूर्त शब्दों तथा संबंधवाचक शब्दों जैसे विभक्तियां, संयोजक शब्द आदि को चित्रित करने में कठिनाई होगी। अमूर्त शब्दों को चित्रित करने में आप सब तरह की युक्तियां काम में लाएंगे, उदाहरण के लिए लेख के मूल पाठ को आप ऐसे शब्दों में बदलने की कोशिश करेंगे जो शायद परिचित तो कम होंगे पर अधिक मूर्त, और इसलिए आसानी से निरूपण योग्य होंगे। इससे आपको इस तथ्य का ध्यान आएगा कि अधिकतर अमूर्त शब्द शुरू में मूर्त थे और उनका मूल अर्थ जाता रहा है, और इसलिए जहां कहीं सम्भव होगा, आप इन शब्दों के शुरू के मूर्त अर्थ को पकड़ेंगे। इस प्रकार आपको यह सोचकर प्रसन्नता होगी कि किसी वस्तु के 'धारण' (अर्थात् स्वामित्व) को आप उसके शब्दार्थ के अनुसार धारण करने के रूप में निरूपित कर सकते हैं। स्वप्न-तन्त्र भी ठीक इसी तरह चलता है। ऐसी परिस्थितियों में आप चित्रण की बहुत यथार्थता की आशा नही कर सकते, और न इस बात पर आपत्ति कर सकते हैं कि स्वप्न-तन्त्र में किसी ऐसे अवयव की जगह, जिसे चित्र रूप में लाना कठिन है, जैसे विवाह की प्रतिज्ञाओं को भंग करने का मनोबिम्ब, किसी और तरह का भंग या तोड़ना, जैसे बांह या टांग का तोड़ना, आ गया है। इस तरह आप वर्णलिपि को चित्रलिपि में परिवर्तन करने की कठिनाई कुछ हद तक दूर कर सकते हैं। (इन पृष्ठों को शुद्ध करते हुए मेरी दृष्टि अखबार के एक अनुच्छेद पर पड़ी, जिससे उपर्युक्त बात की अचानक ही पुष्टि होती है। वह अनुच्छेद मैं यहां प्रस्तुत करता हूं।):

"ईश्वरीय बदला

विवाह की प्रतिज्ञा तोड़ने पर बांह टूटी

रिजर्व फौज के एक सैनिक की पत्नी अन्ना एम० ने क्लीमेन्टाइन के० पर पातिव्रत्य भंग करने का आरोप लगाया। उसने कहा कि क्लीमेन्टाइन के० का अपने पति के मोर्चे पर चले जाने के दिनों में कार्ल एम० से अवैध सम्बन्ध था, जबकि उसका पति उसे ७० क्राउन प्रतिमास भेज रहा था। इसके अलावा, उसको अन्ना के पति से भी बहुत-सा धन मिला था, जबकि अन्ना और उसके बच्चों को भूख और मुसीबत में दिन गुज़ारने पड़ते थे। अन्ना ने अपने आरोप में यह भी कहा कि मेरे पति के कुछ साथियों ने मुझे सूचना दी है कि मेरा पति और क्लीमेंटाइन इकट्ठे शराब घर में गए और वहां बहुत रात तक शराब पीते रहे। क्लीमेन्टाइन ने एक बार कई सैनिकों के सामने मेरे पति से सचमुच पूछा था कि जल्दी ही अपनी 'बुढ़िया औरत' को छोड़कर मेरे पास आ जाओगे या नहीं, और

जिस मकान में क्लीमेन्टाइन रहती है उसके चौकीदार ने मेरे पति को क्लीमेन्टाइन के कमरे में बिलकुल कपड़े उतारे हुए देखा है।

कल लियोपोर्डस्टैड में क्लीमेन्टाइन ने एक मैजिस्ट्रेट के सामने कहा कि मैं कार्ल एम० को बिलकुल नहीं जानती। हमारे गोपनीय सम्बन्ध का तो प्रश्न ही नहीं पैदा होता।

पर एक गवाह एलबर्टाइन ने कहा कि मैंने क्लीमेन्टाइन को अन्ना के पति को चूमते देखा है, मुझे देखकर क्लीमेन्टाइन घबरा गई थी। कार्ल ने, जिसे पहले गवाह के तौर पर बुलाया गया था और जिसने तब क्लीमेन्टाइन से अपना गोपनीय सम्बन्ध होने की बात से इन्कार किया था, कल मैजिस्ट्रेट को एक पत्र दिया। इसमें गवाह ने अपने पहले के इन्कार को वापस ले लिया था, और यह स्वीकार किया था कि पिछले जून तक उसका क्लीमेन्टाइन के साथ अवैध सम्बन्ध जारी था। 'पहले मैंने क्लीमेन्टाइन के साथ अपने सम्बन्ध से इस कारण इन्कार किया था क्योंकि वह, मामला अदालत में आने से पहले, मेरे पास आई और उसने घुटने टेककर मुझसे कहा कि मैं कुछ न कहूं, और उसकी रक्षा करूं। आज', गवाह ने लिखा था, 'मैं अदालत के सामने सारी बात सच-सच कह देने को मजबूर हो गया हूं, क्योंकि मेरी बाई बांह टूट गई है, और इसे मैं अपने अपराध का ईश्वर द्वारा दिया गया दंड समझता हूं।'

जज ने फ़ैसला किया कि दण्डनीय अपराध हुए इतने दिन हो चुके हैं कि अब उसपर कार्यवाही नहीं हो सकती। इसपर आरोप लगाने वाली ने अपना आरोप वापस ले लिया और अभियुक्ता को बरी कर दिया गया।"

जब आपके सामने उन शब्दों के चित्र बनाने का प्रश्न आता है, जो विचार-सम्बन्धों को सूचित करते हैं, उदाहरण के लिए 'क्योंकि', 'इसलिए', 'परन्तु' इत्यादि, तब आपके पास उस तरह के साधन नहीं होते जैसे ऊपर बताए गए हैं। और इस तरह जहां तक चित्रों के रूप में आपके अनुवाद का प्रश्न है, मूल के ये हिस्से निश्चित रूप से नष्ट हो जाएंगे। इसी प्रकार स्वप्न-तंत्र स्वप्न-विचारों की वस्तु को अपनी 'कच्ची सामग्री' में परिवर्तित कर लेती है, जिसमें वस्तुएं और क्रियाएं होती हैं। यदि किसी तरह प्रतिबिंबों को कुछ और बढ़ाकर ऐसे सम्बन्धों को सूचित करने की सम्भावना हो जो अपने आप में चित्रित नहीं किए जा सकते तो भी आप सन्तोष कर सकते हैं। ठीक इसी तरह स्वप्न-तंत्र अधिकतर स्वप्न-विचारों की अधिकांश वस्तु को व्यक्त स्वप्न की **आकृति**[1] की विशेषताओं द्वारा इसकी स्पष्टता या धुंधलेपन द्वारा, इसके अनेक भागों में विभाजन द्वारा तथा ऐसे ही उपायों से प्रकट करने में सफल होता है। साधारणतया कोई स्वप्न उतने ही

---

१. Form.

भागों में बांटा जाता है जितने उसके मुख्य प्रतिपाद्य विषय होते हैं या जितनी गुप्त स्वप्नों में विचारों की क्रमिक श्रेणियां होती है; प्रायः एक छोटा आरम्भिक स्वप्न बाद के विस्तृत मुख्य स्वप्न का भूमिकारूप होता है; पर कोई गौण स्वप्न-विचार व्यक्त स्वप्न के बीच में **दृश्य-परिवर्तन** आदि द्वारा निरूपित होता है। इस प्रकार स्वप्नों की आकृति अपने आप में महत्वहीन चीज़ नही है, और उसका भी अर्थ लगाने की आवश्यकता है। प्रायः एक ही रात में आने वाले कई स्वप्नों का एक ही अर्थ होता है, और वे बढ़ती हुई प्रबलता वाले किसी उद्दीपन को अधिकाधिक पूर्णता से काबू में करने के प्रयत्न का संकेत करते है। एक स्वप्न में भी कोई विशेष रूप से कठिन अवयव 'डबलिंग' (दोहरेपन) अर्थात् एक से अधिक प्रतीकों द्वारा निरूपित हो सकता है।

यदि हम स्वप्न-विचारों और उन्हें निरूपित करने वाले व्यक्त स्वप्नों की तुलना जारी रखें तो सब दिशाओं में हमें ऐसी वस्तुएं दिखाई देती है जिनकी हमें कभी आशा नहीं हो सकती थी। उदाहरण के लिए, यह कि स्वप्न की अर्थहीन बेतुकी बातों का भी अर्थ होता है। असल में यहां आकर स्वप्नों के बारे में डाक्टरी विचार और मनोविश्लेपण सम्बन्धी विचार में विभेद बहुत स्पष्ट हो जाता है। डाक्टरी विचार के अनुसार, स्वप्न इसलिए बेतुका होता है क्योंकि स्वप्न देखते समय हमारी मानसिक क्रिया ने अपना कार्य करना छोड़ दिया है; दूसरी ओर, हमारे विचार के अनुसार, स्वप्न तब बेतुका बन जाता है जब उसे गुप्त विचारों में निहित आलोचना, अर्थात् यह राय कि 'यह बेतुका है' निरूपित करनी होती है। थिएटर जाने विषयक जो स्वप्न मैंने आपको बताया था, (डेढ़ फ्लोरिन में तीन टिकट), वह इसका एक अच्छा उदाहरण है। इसमें यह राय ज़ाहिर की गई थी: 'इतनी जल्दी विवाह करना **बेहूदगी** थी।'

इसी प्रकार जब हम स्वप्नों का अर्थ लगाते हैं, तब हमें स्वप्न-द्रष्टाओं द्वारा प्रायः प्रकट किए जाने वाले इस तरह के सन्देहों और अनिश्चयों का, कि अमुक अवयव स्वप्न में सचमुच दिखाई दिया या नहीं, कि वह सचमुच वैसा ही था और कुछ और चीज़ नहीं थी, असली अर्थ पता चल जाता है। आमतौर से, गुप्त विचारों में इन सन्देहों और अनिश्चयों से सम्बन्धित कोई चीज़ नही होती और वे पूरी तरह सेन्सरशिप के कार्य करने से ही पैदा होते हैं, और उनकी तुलना लिखे हुए को रबड़ से मिटाने की अंशतः असफल कोशिश से की जाती है।

हमारी सबसे आश्चर्यजनक खोज यह है कि स्वप्न-तंत्र गुप्त स्वप्न में **विरोधी** बातों से किस तरह निपटता है। हम पहले ही देख चुके हैं कि गुप्त वस्तु में जिन प्रश्नों पर एक ही मत होता है उनके स्थान पर व्यक्त स्वप्न में संघनन या संक्षेप हो जाता है। वरोधी विचारों का भी वही हाल होता है जो समान विचारों का, पर उन्हें **उसी** व्यक्त अवयव के द्वारा प्रकट करने का यत्न किया जाता है। व्यक्त

स्वप्न के जिस अवयव का कोई विरोधी रूप हो सकता है, वह या तो सिर्फ़ अपना, या अपने विरोधी का, और या इकट्ठे दोनों का प्रतीक हो सकता है; तात्पर्य से ही यह निश्चय करना होगा कि कौन-सा अनुवाद किया जाए। इसीलिए स्वप्नों में 'नहीं' का निरूपण नहीं होता, या स्पष्ट अर्थ वाली 'नहीं' नहीं होती।

स्वप्न-तंत्र की इस विचित्रता का एक मनोरंजक सादृश्य भाषा के परिवर्धन में प्राप्त होता है। बहुत-से भाषा-शास्त्रियों ने यह माना है कि सबसे पुरानी भाषाओं में विपरीतार्थक शब्द जैसे मज़बूत-कमज़ोर; प्रकाश-अन्धकार; बड़ा-छोटा आदि, एक ही धातु से उत्पन्न शब्द से प्रकट किए जाते थे (आदिम शब्दों के परस्पर विरोधी अर्थ)। इस प्रकार प्राचीन मिस्री भाषा में 'केन' शब्द शुरू में मज़बूत और कमजोर दोनों के लिए था। बोलचाल में, ऐसे उभयक[1] (अर्थात् उभयार्थक) शब्दों के अर्थ में ग़लतफ़हमी से बचने के लिए उनका अर्थभेद काकु या लहजे, और उसके साथ होने वाली चेष्टाओं से स्पष्ट किया जाता था। लिखने में ऐसे शब्दों के साथ एक और 'निश्चायक' जोड़ दिया जाता था, जो बोलचाल में प्रयोग के लिए नहीं होता था। इस प्रकार, 'केन' शब्द जब मज़बूत के अर्थ में लिखा जाता था तब इसके बाद एक सीधे खड़े हुए छोटे आदमी का चित्र बना दिया जाता था, और जब 'केन' शब्द का प्रयोग कमज़ोर के अर्थ में होता था तब इसके बाद एक कमजोर ढीले-ढाले आदमी की तस्वीर बना दी जाती थी। एक ही आदिम शब्द के दो विरोधी अर्थों का बहुत समय बाद, मूल में थोड़ा हेर-फेर करके, दो भिन्न रूपों में अंकन शुरू हुआ। इस प्रकार 'मजबूत-कमज़ोर' वाचक 'केन' शब्द से दो शब्द निकले। केन=मजबूत और कान=कमज़ोर। इस तरह दो विरोधी अर्थ रखने वाले शब्दों के बहुत-से अवशेष प्राचीनतम भाषाओं में ही नहीं मिलते, जो अब अपने परिवर्धन की अंतिम मंज़िलों में हैं, बल्कि यही बात नई भाषाओं में भी है, जो आज भी जीवित हैं। इसके कुछ दृष्टान्त मैं सी० एबल की पुस्तक (१८८४) से उद्धृत करता हूं।

लैटिन में ऐसे उभयक शब्द ये हैं :

एलटस=ऊंचा या गहरा; **सेकर**=पवित्र या अभिशप्त।

मूलधातु के रूप-भेदों के उदाहरण ये हैं :

क्लेमेअर=चिल्लाना; **क्लैम**=शांति से, चुपचाप, गुप्तरूप से।

सिकस=सूखा; **सकस**=रस; और जर्मन में **स्टिम**=वाणी **स्टम**=गूंगा।

सम्बन्धित भाषाओं की तुलना से ऐसे बहुत-से उदाहरण मिल जाते हैं :

अंग्रेजी : **लौक**=बन्द करना; जर्मन : **लौक**=छिद्र, **लक**=खाली स्थान।

---

१. Ambivalent.

अंग्रेज़ी : **क्लीव**[1], जर्मन : **क्लेबेन** = चिपकना ।

अंग्रेजी के **'विदआउट'** शब्द में पहले 'साथ' और 'बिना' ये दोनों अर्थ थे, पर आज यह 'बिना' के अर्थ में ही प्रयोग होता है, पर यह बात स्पष्ट है कि **'विद'** में जोड़ने के अर्थ के अलावा वंचित करने का अर्थ भी है, जैसे **विदड्रा, विदहोल्ड** (देखिए जर्मन **वीड्र**) ।

स्वप्न-तंत्र की एक और विशेषता भी भाषा के परिवर्धन में दिखाई देती है । प्राचीन मिस्री भाषा में, और कुछ बाद की भाषाओं में भी, ध्वनियों का क्रम बदलने से उसी मूल विचार के लिए भिन्न-भिन्न शब्द बन जाते थे । अंग्रेजी और जर्मन शब्दों के इस तरह के कुछ सादृश्य ये हैं (जर्मन शब्द काले टाइप में हैं):

टोप (बर्तन)—पौट; बोट—**टब**; हरी—**रुह** (विश्राम)—रेस्ट; **बालकन** (शहतीर)—बीम; **क्लोबेन** (डंडा)—क्लब; वेट—**टोवेन** (प्रतीक्षा करना) ।

लैटिन और जर्मन के सादृश्य :

कैपेयर—पैकेन (पकड़ना); **रेन—निएर** (गुर्दा) ।

यहां अकेले शब्दों में ध्वनियों का जैसा स्थान-परिवर्तन हुआ है, वैसा स्वप्न-तंत्र द्वारा कई तरह से किया जाता है—अर्थ का उलटा हो जाना, अर्थात् विरोधी अर्थ का आ जाना, हम पहले देख चुके हैं; इसके अलावा, हम स्वप्नों में देखते ह कि स्थितियां उल्टी हो जाती हैं, या दो व्यक्तियों के सम्बन्ध उलट जाते हैं, मानो वह दृश्य किसी उलटी दुनिया में हो रहा है । स्वप्नों में प्रायः खरगोश शिकारी का पीछा करता है । कभी-कभी घटनाओं का क्रम उलट जाता है, और इस तरह स्वप्नों में कार्य पहले और कारण पीछे हो जाता है, जिससे हमें किसी घटिया दर्जे के नाटक की बात याद आ जाती है, जिसमें नायक पहले गिर जाता है और उसे मारने वाली गोली इसके बाद में चलाई जाती है । या ऐसे स्वप्न होते है जिनमें अवयवों का सारा विन्यास या सिलसिला उल्टा हो जाता है । ये तब समझ में आ सकते हैं जब अंतिम अवयव को पहले और पहले अवयव को अंत में रखा जाए । आपको याद होगा कि स्वप्न-प्रतीकात्मकता का अध्ययन करते हुए भी हमने यही बात देखी थी : उसमें पानी में कूदने या गिरने का, या पानी मे से निकलने का एक ही अर्थ है—पैदा होना या पैदा करना; और सीढ़ियों से चढ़ने या उतरने का एक ही अर्थ है । इससे हमें यह पता चलता है कि स्वप्न-विचारों को निरूपित करने में इतनी आज़ादी होने से स्वप्न-विपर्यास को कितना लाभ हो जाता है ।

स्वप्न-तंत्र की इन विशेषताओं को **पुराने ढंग** की विशेषताएं कहा जा सकता

---

१. **अंग्रेजी में क्लीव के दोनों अर्थ अब भी मौजूद हैं :** To Cleave (=**अलग करना**) **और** To Cleave to (=**चिपकना**) ।

—अंग्रेजी अनुवादक.

है। इनमें भाषाओं या लिपियों की अभिव्यक्ति की आदिम रीतियां बनी हुई हैं और उनसे वही कठिनाइयां सामने आती हैं, जिन पर हम बाद में इन विषयों की आलोचना करते हुए विचार करेंगे।

अब इस विषय के कुछ और पहलुओं पर विचार करना है। यह स्पष्ट हो चुका है कि स्वप्न-तंत्र का कार्य गुप्त विचारों के शब्दों वाले रूप को अवबोध्य रूपों[1] और अधिकतर दृष्टिगम्य प्रतिबिंबों के रूप में बदलना है। हमारे विचार ऐसे अवबोध्य या इन्द्रिय-गोचर रूपों में ही पैदा हुए थे। उनकी सबसे पुरानी सामग्री और उनके परिवर्धन की सबसे पहली अवस्था इन इन्द्रिय संवेदनों[2] की, या अधिक यथार्थ रूप में कहें तो इनके स्मृति-चित्रों की ही थी। बाद में इन चित्रों में शब्द जोड़े गए और वे एक दूसरे से इस तरह बांध दिए गए जिससे विचार बन जाएं। इस तरह स्वप्न-तंत्र हमारे विचारों पर प्रतिगामी[3] अर्थात् उल्टी ओर चलने वाला प्रक्रम करती है, और उसी रास्ते से लौटती है जिससे उनका परिवर्धन हुआ था; इस प्रतिगमन के मार्ग में वे सब नई बातें, जो स्मृति-चित्रों का विचारों में परिवर्धन होने के समय आई थी, आवश्यक रूप से दूर हो जाती है।

इस प्रकार, स्वप्न-तंत्र से हमारा यह अभिप्राय है। हमने इसके प्रक्रमों के बारे में जो कुछ जाना है, उसके अलावा, व्यक्त स्वप्न में हमारी दिलचस्पी अवश्य बहुत कम हो जाएगी। पर फिर भी व्यक्त स्वप्न के बारे में मैं दो-तीन बातें कहूंगा, क्योंकि आखिरकार स्वप्न के इसी हिस्से से तो हमारा सीधा परिचय होता है।

यह स्वाभाविक है कि व्यक्त स्वप्न का महत्व हमारी नज़रों में कुछ कम हो जाए। वह सावधानी से बनाया हुआ है, या कई असम्बन्धित चित्रों का एक क्रम-मात्र है, इस विषय में हमारी बहुत कुछ उपेक्षा हो जाएगी। किसी स्वप्न का बाहरी रूप ऊपर से कितना ही सार्थक दीखने पर भी हम जानते है कि यह रूप स्वप्न-विपर्यास के प्रक्रम द्वारा ही बना है, और इसका स्वप्न की अन्तर्वस्तु से कुछ भी सम्बन्ध नही है। पर कभी-कभी स्वप्न से इस ऊपरी रूप का भी अर्थ होता है, और वह बिना विपर्यास के, या मामूली विपर्यास करके गुप्त विचारों के एक महत्वपूर्ण अंश को पेश करता है; पर हम इस नतीजे पर तब तक नही पहुंच सकते जब तक हमने स्वप्न का अर्थ न लगा लिया हो, और इस तरह विपर्यास की मात्रा के बारे में हम किसी विचार पर न पहुंच गए हों। इसी तरह का सन्देह वहां होता है जहां दो अवयवों में नजदीकी सम्बन्ध मालूम होता है; यह सम्बन्ध इस बात का मूल्यवान् संकेत भी हो सकता है कि गुप्त स्वप्न के वे अवयव इसी प्रकार जुड़े हुए है; पर कभी-कभी हमें यह निश्चित रूप से पता चल सकता है कि विचार में जो चीज जुड़ी हुई है, वह स्वप्न में बहुत अलग-अलग हो गई है।

१. Perceptual forms. २. Sense-impressions. ३. Regressive.

साधारणतया हमें व्यक्त स्वप्न के एक हिस्से की, दूसरे हिस्से के द्वारा, यह मान-कर व्याख्या करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए कि जैसे स्वप्न एक सुसम्बद्ध अवधारण और वस्तुस्थिति-रूप-निरूपण है। अधिकतर अवस्थाओं में इसकी तुलना किसी ब्रेकिया पत्थर के टुकड़े से की जा सकती है, जिसमें विभिन्न किस्मों के पत्थरों के टुकड़े सीमेंट से जुड़े रहते है, और उसपर दिखाई देनेवाली धारियां उन टुकड़ों की नहीं होतीं जिनसे यह बना है। सच तो यह है कि स्वप्न-तंत्र में एक प्रक्रिया ऐसी होती है जिसे परवर्ती विशदन[1] कहते हैं; इसका उद्देश्य स्वप्न-तंत्र के तात्कालिक परिणामों को मिलाकर एक और काफ़ी सुसम्बद्ध समष्टि बना देना है। इस प्रक्रम में सामग्री प्रायः इस तरह सजाई जाती है जिससे वह समझ में आने के बिलकुल अयोग्य हो जाती है, और इसके लिए बीच में जितनी बातें डालने की जरूरत हो, उतनी डाल दी जाती है।

दूसरी ओर, हमें स्वप्न-तंत्र के महत्व को बहुत अधिक बढ़ाकर न समझना चाहिए, या इसमें वे बातें नही मान लेनी चाहिएं जो इसमें नहीं है। इसका कार्य उतना ही है जितना यहां बताया गया है। संघनन, विस्थापन, सुघट्य निरूपण और सारे स्वप्न का परवर्ती विशदन, इतनी ही बातें यह कर सकता है। स्वप्नों मे निर्णय, आलोचना, आश्चर्य या निगमनात्मक[2] तर्क दिखाई देते हैं। वे स्वप्न-तंत्र से नही पैदा होते, और ऐसा बहुत कम होता है कि वे स्वप्न के बारे में बाद के चिन्तन को प्रकट करते हों। वे अधिकतर गुप्त विचारों के खंड होते है, जो थोड़ा-बहुत परि-वर्तित रूप में और प्रसंग के अनुकूल रूप में व्यक्त स्वप्न में घुस जाते है। दूसरे, स्वप्न-तंत्र स्वप्नों में वार्तालाप नही पैदा कर सकता। थोड़े-से अपवादरूप उदा-हरणों को छोड़कर सर्वत्र यह स्वप्न-द्रष्टा द्वारा पिछले दिन सुनी गई या कही गई बातों का अनुकरण होता है और उन बातों से बना हुआ होता है—ये बातें गुप्त विचारों में स्वप्न-द्रष्टा के स्वप्न की सामग्री या उसकी उत्तेजक वस्तु बनकर घुस जाती हैं। गणित सम्बन्धी गणनाएं भी स्वप्न-तंत्र के क्षेत्र में नही आती। व्यक्त स्वप्न में इस तरह की जो चीज़ दिखाई देती है, वह साधारणतया संख्याओं का मेलमात्र होती है; वह गणना-सी प्रतीत होती है, परन्तु बिलकुल बेहूदी गणना होती है, और गुप्त विचारों में उपस्थित किसी गणना की नकलमात्र होती है। इन परिस्थितियों में यह आश्चर्य की बात नहीं है कि हमें स्वप्न-तत्र में जो दिल-चस्पी अनुभव हुई थी, वह शीघ्र ही गुप्त विचारों की ओर मुड़ जाती है जो कि व्यक्त स्वप्न द्वारा थोड़े या बहुत विपर्यस्त रूप में प्रकट होते हैं। परन्तु इस विषय पर सिद्धान्त रूप से विचार करते हुए यह उचित न होगा कि हमारी दिलचस्पी ऐसी मार्ग भ्रष्ट हो जाए कि हम सारे स्वप्न के स्थान पर पूरी तरह से गुप्त विचारों

१. Secondary-elaboration. २. Deductive.

को ही स्थापित कर दें, और स्वप्न के बारे में कोई ऐसा विचार प्रकट करने लगें जो गुप्त विचारों के बारे में ही सही है। यह बड़ी विचित्र बात है कि मनोविश्लेषण के परिणामों का ऐसा ग़लत प्रयोग किया गया है कि इन दोनों में भ्रम होने लगा। स्वप्न शब्द का प्रयोग **स्वप्न-तंत्र के परिणामों**, अर्थात् उस **रूप** के लिए ही हो सकता है जिसमें स्वप्न-तंत्र ने गुप्त विचारों को परिवर्तित किया है।

यह कार्य एक अद्भुत प्रक्रम है। मानसिक जीवन में ऐसी कोई चीज़ अब तक ज्ञात नहीं थी। इस तरह संघनन, विस्थापन और मनोबिंबों के रूप में विचारों का प्रतिगामी अनुवाद एक नई चीज़ है और इसका स्वीकार कर लिया जाना ही मनोविश्लेषण के क्षेत्र में किए गए हमारे प्रयत्नों का प्रचुर पारितोषिक है। स्वप्न-तंत्र के साथ जो सादृश्य दिखाए गए हैं, उनसे आप यह भी देखेंगे कि मनोविश्लेषण सम्बन्धी तथा दूसरे प्रकार की गवेषणा में, विशेष रूप से भाषा और विचार-परिवर्धन के क्षेत्रों में क्या सम्बन्ध है। इस तरह प्राप्त हुए ज्ञान का और भी अधिक महत्व आपको तब पता चलेगा जब आपको यह मालूम होगा कि स्वप्न-तंत्र की प्रक्रिया की तरह ही स्नायु-रोगों के लक्षणों का निर्माण होता है।

मैं यह भी जानता हूं कि इन प्रयत्नों से मनोविज्ञान को जो नया लाभ हुआ है, उसका पूरी तरह अर्थ समझना अभी हमारे लिए सम्भव नहीं है। हम उन नए प्रमाणों का संकेतमात्र करेंगे जो अचेतन मानसिक क्रियाओं के अस्तित्व के बारे में--असल में गुप्त स्वप्न-विचारों का यही स्वरूप है--उससे प्राप्त हुए हैं और यह निर्देश करेंगे कि स्वप्न-निर्वचन से मन के अचेतन जीवन के ज्ञान के लिए कितना बड़ा दरवाजा--इतना बड़ा कि हमने कभी उसकी कल्पना भी नहीं की थी--खुल जाने की आशा है।

मैं समझता हूं कि अब आपके सामने तरह-तरह के छोटे स्वप्नों के उदाहरण रखने का समय आ गया है, जिनसे ऊपर बताई गई बातों का स्पष्टीकरण हो सके।

व्याख्यान | १२

स्वप्नों के उदाहरण और उनका विश्लेषण

आपको इस बात से निराशा न होनी चाहिए कि मैं आपके सामने किसी बढ़िया लम्बे स्वप्न का अर्थ पेश करने के बजाय फिर स्वप्न-निर्वचनों के खण्ड पेश कर रहा हूं। आप कहेंगे कि इतनी तैयारी के बाद हम निश्चित रूप से कोई बड़ा स्वप्न पेश किए जाने की आशा करते है, और आप अपना यह निश्चित विश्वास प्रकट करेंगे कि हज़ारों स्वप्नों का सफल निर्वचन कर लेने के बाद कुछ ऐसे स्पष्ट उदाहरण बहुत पहले जमा हो गए होंगे जिनसे स्वप्न-तंत्र और स्वप्न-विचारों के बारे में हमारे सब कथनों की सचाई प्रत्यक्ष सिद्ध की जा सके। बात ठीक है, पर आपकी इस इच्छा को पूरा करने के रास्ते में बहुत-सी कठिनाइयां है।

प्रथम तो, मुझे यह स्वीकार करना होगा कि ऐसा कोई भी व्यक्ति नही जिसने स्वप्नों के निर्वचन को अपना मुख्य व्यवसाय बनाया हो। तो फिर, हम उनका निर्वचन किन परिस्थितियों में किया करते है? कभी तो बिना किसी विशेष प्रयोजन के हम किसी मित्र के स्वप्नों पर विचार करने लगते है, या मनोविश्लेषण-कार्य के अभ्यास के लिए अपने ही स्वप्नों का अर्थ लगाते रहते है; परन्तु मुख्यतः हमें उन स्नायु-रोगियों के स्वप्नों का अर्थ लगाना होता है जो मनोविश्लेषण से इलाज कराते हैं। इन रोगियों के स्वप्नों से बहुत अच्छी सामग्री मिलती है और वे स्वस्थ व्यक्तियों के स्वप्नों से किसी भी तरह हीन नही होते, पर इलाज की विधि के कारण हमें इलाज के प्रयोजन को मुख्य रखते हुए स्वप्न-निर्वचन को गौण स्थान देना पड़ता है और उनसे हमें ज्योंही इलाज के लिए कोई उपयोगी चीज़ मिल जाती है त्योंही बहुत सारे स्वप्नों का अर्थ लगाने की कोशिश छोड़ देनी पड़ती है। इसके अलावा, इलाज के समय आने वाले बहुत सारे स्वप्नों का पूरी तरह अर्थ नहीं लग पाता, क्योंकि उनका जन्म मन में, जो अभी हमें ज्ञात नही है, मौजूद प्रचुर सामग्री से होना है। इसलिए इलाज पूरा होने से पहले उन्हें समझना सम्भव नहीं। ऐसे स्वप्नों की पूरी कथा कही जाए तो स्नायु-रोग के सारे रहस्य प्रकट करने होंगे; ऐसा करना हमारे लिए सम्भव नही है, क्योंकि हमने स्नायु-रोगों के अध्ययन की तैयारी करने के लिए ही स्वप्नों की समस्या उठाई है।

अब मुझे आशा है कि आप खुशी से इस सामग्री को छोड़ देंगे, और स्वस्थ व्यक्तियों के या शायद अपने ही स्वप्नों की व्याख्या सुनना पसन्द करेंगे। पर इन स्वप्नों की वस्तु के कारण ऐसा होना असम्भव है। कोई आदमी अपने आपको, या अपने पर विश्वास करने वाले व्यक्ति को इतनी स्पष्टता से खोलकर नहीं रखेगा, जितनी स्पष्टता से स्वप्न के पूरे निर्वचन के लिए उसे खोलकर रखना आवश्यक है; क्योंकि, जैसा कि आप पहले ही जानते है, उनका सम्बन्ध व्यक्तित्व के सबसे अधिक घनिष्ठ अंशों से होता है। स्वप्न सुनाने में उनकी कथावस्तु के कारण होने वाली कठिनाई के अलावा एक और भी कठिनाई है। आप जानते हैं कि स्वप्न स्वयं स्वप्न-द्रष्टा को अपरिचित और अजीब मालूम होता है। जिस बाहरी व्यक्ति को उसके व्यक्तित्व का पता नहीं, उसे तो यह और भी अजीब लगेगा। मनोविश्लेषण के साहित्य में अच्छे और विस्तृत स्वप्न-विश्लेषणों की कमी नहीं है। स्वयं मैंने कुछ ऐसे विश्लेषण प्रकाशित किए हैं जो कुछ रोगियों के इतिहास के अंग थे। स्वप्न-निर्वचन का शायद सबसे अच्छा उदाहरण वह है जो ओ० रैन्क ने प्रकाशित किया है, जिसमें एक नौजवान लड़की के परस्पर सम्बन्धित दो स्वप्नों का विश्लेषण है। यह छपे हुए लगभग दो पृष्ठों पर है, पर इनका विश्लेषण ७८ पृष्ठों में है। इतने बड़े काम के लिए तो प्रायः एक पूरा सत्र चाहिए। यदि हम कुछ लम्बे और काफी विपर्यस्त स्वप्न छाट लेते तो हमें इतनी सारी व्याख्याओं में जाना पड़ता, साहचर्यों और स्मृतियों के रूप में इतनी सारी सामग्री पेश करनी पड़ती, और इतने अधिक नए प्रसंगों में जाना पड़ता कि एक व्याख्यान इसके लिए बिलकुल अपर्याप्त रहता, और आपको इस सारे स्वप्न का कुछ भी अन्दाज न होता। इसलिए यदि मैं कम कठिनाई वाला रास्ता पकड़ूं और स्नायु-रोगियों के स्वप्नों के कुछ खण्ड आपके सामने पेश करूं, जिनमें कोई एक या दूसरी विशेषता पहचानी जा सके, तो आपको सन्तुष्ट हो जाना चाहिए। पेश करने के लिए प्रतीक सबसे आसान चीज़ हैं और उनके बाद स्वप्न-निर्वचन के प्रतिगामी स्वरूप की कुछ विशेषताओं का नंबर है। मैं आपको यह बताऊंगा कि नीचे दिए गए स्वप्नों में से प्रत्येक स्वप्न को मैं क्यों सुनाने योग्य समझता हूं।

१. सिर्फ़ दो छोटे चित्रों वाला स्वप्न; **स्वप्न-द्रष्टा का चाचा सिगरेट पी रहा था, हालांकि उस दिन शनिवार था—एक स्त्री स्वप्न-द्रष्टा को लाड़-प्यार कर रही थी जैसे वह उसीका बच्चा हो।**

पहले चित्र के विषय में स्वप्न-द्रष्टा (एक यहूदी) ने कहा कि मेरा चाचा बड़ा धर्मात्मा आदमी है, जिसने पवित्र दिनों में सिगरेट पीने जैसा पाप का काम न कभी किया है और न कभी करेगा। दूसरे चित्र वाली स्त्री के साथ एकमात्र साहचर्य स्वप्न-द्रष्टा की माता का था। ये दोनों चित्र या विचार अवश्य एक दूसरे से संबंधित होने चाहिएं, पर किस रूपमें? क्योंकि उसने साफ तौर से इस बात का खण्डन किया

कि उसका चाचा स्वप्न का कार्य कभी सचमुच करेगा, इसलिए शर्तसूचक 'यदि' शब्द लगा देने से इसका अर्थ सूझने लगेगा : "यदि मेरा चाचा, जो इतना धार्मिक आदमी है, शनिवार को सिगरेट पीने लगे तो मुझे भी मेरी माता लाड़-प्यार कर सकती है।" स्पष्ट है कि इसका अर्थ यह हुआ कि माता द्वारा लाड़ किए जाने का उतना ही सख्त निषेध था जितना धर्मात्मा यहूदी के लिए पवित्र दिन पर सिगरेट पीने का। आपको मेरा वह कथन याद होगा कि स्वप्न में स्वप्न-विचारों के सब आपसी सम्बन्ध लोप हो जाते हैं, विचार टूटकर मूल वस्तु के रूप में आ जाते हैं, और निर्वचन करते हुए हमारा कार्य यह है कि जो सम्बन्ध लुप्त हो गए हैं, उन्हें फिर से जोड़ें।

२. स्वप्नों के विषय में मैंने जो कुछ लिखा है उसके कारण मैं इस विषय में आम जनता का सलाहकार-सा हो गया हूं और बहुत वर्षों से मेरे पास बड़े दूर-दूर के स्थानों से पत्र आते हैं, जिनमें स्वप्न लिखे रहते हैं, या मेरी राय पूछी होती है। स्वभावतः मैं उन लोगों का आभारी हूं जिन्होंने मुझे अपने स्वप्नों के साथ इतनी काफ़ी सामग्री भी दी कि उनका निर्वचन हो सके या जिन्होंने स्वयं निर्वचन पेश किए हैं। म्युनिख के एक मेडिकल विद्यार्थी का १९१० का निम्नलिखत स्वप्न इसी तरह का है, जिसे मैं आपको सुना रहा हूं, इसलिए कि आपकी यह समझ में आ जाए कि साधारणतया तब तक स्वप्न को समझना कितना कठिन है जब तक स्वप्न-द्रष्टा स्वयं इसके बारे में जो कुछ बता सकता है, वह न बता दे। कारण कि मुझे शक है कि अपने मन में आप सोच रहे हैं कि प्रतीकों का अनुवाद कर देना निर्वचन का आदर्श तरीका है और मुक्त साहचर्य की विधि आप छोड़ देना पसन्द करेंगे, इसलिए ऐसी घातक ग़लती को मैं आपके मन से निकाल देना चाहता हूं।

१३ जुलाई, १९१०। सवेरे के समय मुझे यह स्वप्न आया : मैं टीविनजेन की एक गली में साइकिल चलाता जा रहा था कि एक भूरा कुत्ता मेरे पीछे दौड़ता हुआ आया और उसने मेरी एक एड़ी पकड़ ली। मैं कुछ दूर और चलकर साइकिल से उतर गया और एक सीढ़ी पर बैठ कर कुत्ते को भगाने लगा, क्योंकि उसने अपने दांत मेरी एड़ी में अच्छी तरह गड़ा दिए थे। (कुत्ते के मुझे काटने से और इस सारे दृश्य से मुझे कुछ बुरा नहीं मालूम हुआ।) दो अधिक उम्र की महिलाएं सामने बैठी हंसती हुई मेरी ओर देख रही थीं। इसके बाद मैं जाग उठा, और जैसा कि पहले बहुत बार हुआ है, जाग जाने पर भी सारा स्वप्न मुझे स्पष्ट याद था।

इस उदाहरण में प्रतीकात्मकता से हमें कोई लाभ नहीं हो सकता, और स्वप्न-द्रष्टा हमें स्वयं आगे बताता है। "हाल में ही सड़क पर एक लड़की को देखने मात्र से मेरा उससे प्रेम हो गया था, पर मेरे पास उससे परिचय करने का कोई उपाय नहीं था। मैं उसके कुत्ते को माध्यम बनाकर उससे आसानी से परिचय प्राप्त कर सकता था, क्योंकि मैं स्वयं कुत्तों का बड़ा प्रेमी हूं और यह देखकर ही उसकी ओर आकृष्ट

हुआ था कि वह भी कुत्तों से प्रेम करती है।" आगे वह कहता है : "मैंने कई बार लड़ते हुए कुत्तों को बड़ी चतुराई से अलग किया है, जिससे देखने वाले चकित हो जाते थे।" अब हमें पता चलता है कि जो लड़की उसकी नज़र में चढ़ी है, वह सदा इसी कुत्ते के साथ घूमती दिखाई देती थी, पर व्यक्त स्वप्न में वह नहीं है; सिर्फ उसके साहचर्य में रहने वाला कुत्ता है। शायद वे बुजुर्ग महिलाएं, जो उसकी ओर देखकर हंस रही थीं, उस लड़की को निरूपित करती हैं, पर वह और जो कुछ बताता है, उससे वह बात स्पष्ट नहीं होती। वह स्वप्न में साइकिल चला रहा था--यह बात उस स्थिति को ही सूचित करती है, जो उसे याद थी, क्योंकि वह कुत्ते के साथ उस लड़की से जब मिला, तब वह साइकिल ही चला रहा था।

३. जब किसी आदमी का कोई प्रिय व्यक्ति मर जाता है, तब काफ़ी दिनों बाद उसे एक विशेष तरह का स्वप्न आता है, जिसमें उसके इस ज्ञान का कि वह व्यक्ति मर चुका है, और उसकी उसे पुनः जीवित देखने की इच्छा का बड़ा अजीब मिश्रण हो जाता है। कभी-कभी मृत व्यक्ति स्वप्न में मृत और साथ ही जीवित दिखाई देता है--जीवित इसलिए क्योंकि वह यह नही जानता कि वह मर चुका है; मानो वह तब ही सचमुच मरेगा जब वह इस बात को जान लेगा। कभी-कभी वह आधा मरा और आधा ज़िन्दा होता है, और इन दोनों दशाओं के सूचक चिह्न अलग-अलग दिखाई देते हैं। आप इन स्वप्नों को निरे अर्थहीन नहीं कह सकते, क्योंकि परियों की कहानियों की तरह, जिनमें मरने के बाद फिर ज़िन्दा हो जाना बिलकुल आम बात है, स्वप्नों में भी यह अग्राह्य नही हो सकता। जहां तक मैं ऐसे स्वप्नों का विश्लेषण कर सका हूं, मुझे यह प्रतीत हुआ कि उनकी तर्कसंगत व्याख्या की जा सकती है, कि मृत व्यक्ति को वापस बुलाने की पवित्र इच्छा बड़े अजीबो-गरीब रूपों में अपने आप को प्रकट करती है। मैं आपके सामने इस तरह का एक स्वप्न पेश करूंगा जो निश्चित ही बड़ा अजीब और बेतुका लगता है और जिसके विश्लेषण से हमारे सिद्धान्त-विवेचन में पहले आई हुई बहुत-सी बातें स्पष्ट हो जाएंगी। स्वप्न-द्रष्टा का पिता कुछ वर्ष पहले गुज़र गया था :

मेरे पिता की मृत्यु हो गई थी, पर उसे जमीन में गाड़ दिया गया था और वह बीमार दिखाई देता था। वह जीवित रहा और मैंने भरसक कोशिश की कि वह यह बात न देख सके। इसके बाद स्वप्न में और बातें आ जाती हैं, जिनका कोई सीधा सम्बन्ध पहली बातों से नहीं मालूम पड़ता।

यह तथ्य, कि पिता मर गया था, हम जानते हैं; पर असल में उसे गाड़ा नही गया था। असल में, आगे होने वाली बातों से इस प्रश्न का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है कि असली तथ्य क्या था। पर स्वप्न देखने वाले ने आगे कहा कि अपने पिता के अन्तिम संस्कार से लौटने के बाद उसका एक दांत दर्द करने लगा। वह यहूदी धर्म-वचन, 'यदि तेरा दांत तुझे तंग करे तो उसे निकाल दे' के अनुसार चलना चाहता

था, और इसलिए दांत निकालने वाले के पास गया पर दांत निकालने वाले ने कहा कि ऐसे काम नहीं चलेगा, थोड़ा धीरज रखो। "मैं इसमें", दांत निकालने वाले ने कहा, "कुछ लगाकर स्नायु को संज्ञाहीन कर दूगा और तीन दिन बाद तुम आना, तब मै इसे निकाल दूंगा।" "यह निकालना", स्वप्न-द्रष्टा एकाएक बोला, "ही गाड़ना है।"

क्या उसका कहना सही था ? सच है कि यहां ठीक सादृश्य नहीं है क्योंकि दांत नहीं निकाला गया, बल्कि उसका सिर्फ एक मुर्दा अंश निकाला गया है, पर अनुभव से हमें यह पता चलेगा कि इस तरह की गलतियां स्वप्न-तंत्र पैदा करता है। हम यह कल्पना करते हैं कि स्वप्न-द्रष्टा ने संघनन के प्रक्रम द्वारा मृत पिता और दांत को, जो मरा हुआ था पर फिर भी मौजूद था, मिलाकर एक कर लिया था, इसलिए कोई आश्चर्य की बात नहीं कि उसका स्वप्न में बेतुकापन आ गया; क्योंकि स्पष्टतः दांत के बारे में कही गई सारी बात पिता पर लागू नही हो सकती। तब फिर पिता और दांत दोनों मे ऐसी सामान्य बात कौन-सी है जिससे इनकी तुलना हो सके।

ऐसी कोई बात अवश्य रही होगी, क्योंकि स्वप्न-द्रष्टा ने आगे बताया कि मै इस कहावत से परिचित हूं कि यदि किसीको एक दांत टूटने का स्वप्न आए तो इसका अर्थ यह है कि उसके परिवार का कोई व्यक्ति विदा होने वाला है।

हम जानते है कि यह आम प्रचलित निर्वचन गलत है या एक बड़े विकृत अर्थ में ही सही है। इसलिए हमें सचमुच यह पता लगने पर और भी आश्चर्य होगा कि स्वप्न-वस्तु के अन्य अवयवों के पीछे इस प्रकार संकेत से सूचित की गई बात क्या है।

इसके बाद, बिना किसी अनुरोध के, स्वप्न-द्रष्टा अपने पिता की बीमारी और मृत्यु के, तथा अपने और अपने पिता के सम्बन्धों के बारे में बातचीत करने लगा। बीमारी बहुत लम्बी चली थी और पिता की देखभाल और इलाज में पुत्र को बहुत धन खर्च करना पड़ा था। पर उसे वह खर्च भारी नही मालूम हुआ, न उसने कभी धीरज छोड़ा, और न उसके मन में यह इच्छा ही हुई कि पिता का अन्त जल्दी आ जाए। उसे अपनी सच्चे यहूदियों के योग्य पितृभक्ति पर और यहूदी धर्म का पूरी तरह पालन करने पर अभिमान था। क्या यहां हमें स्वप्न से सम्बन्धित विचारों में कोई परस्पर विरोध नहीं अनुभव होता ? उसने दांत और पिता को एक बताया था। वह यहूदी धर्म के अनुसार ही दांत को निकाल डालना चाहता था। यहूदी धर्म कहता है कि दर्द करने वाले दात भी निकाल देना चाहिए। वह अपने पिता से भी धर्म के आदेश के अनुसार ही व्यवहार करना चाहता था। पर यहां धर्म का आदेश यह था कि उसे खर्च और परेशानी की परवाह नहीं करनी चाहिए, सारा बोझ अपने ऊपर लेना चाहिए, और अपने मन में अपनी परेशानी

के कारण कोई विरुद्ध बात नहीं आने देनी चाहिए। क्या इन दोनों स्थितियों में तब अधिक अच्छा मेल न हो जाता यदि उसने अपने रोगी पिता के प्रति भी धीरे-धीरे सचमुच वे ही भावनाएं अपनाई होतीं जो उसने अपने रोगी दांत के प्रति अपनाई थीं, अर्थात् यदि उसने मृत्यु से यह चाहा होता कि वह उसके पिता के अनावश्यक, कष्टकारक और मंहगे जीवन का जल्दी खात्मा कर दे ?

मुझे ज़रा भी सन्देह नहीं कि अतल में लम्बी बीमारी में अपने पिता के प्रति उसका यही रुख रहा था और दिखावटी तौर से उसका अपनी पितृभक्ति पर ज़ोर देना इस तरह की स्मृतियों को अपने मन से दूर रखने के उद्देश्य से था। इस तरह की अवस्थाओं में पिता की मृत्यु की इच्छा पैदा हो जाना, और उसे कोई ऐसा करुण उद्गार प्रकट करके, जैसे 'इससे वह कष्ट से मुक्त हो जाएगा' छिपाना कोई असामान्य बात नहीं है। पर मैं विशेष रूप से आपको यह ध्यान दिलाना चाहता हूं कि यहां गुप्त विचारों में ही एक बाधा दूर हो गई है। हम निश्चित रूप से मान सकते हैं कि विचारों का पहला भाग सिर्फ़ अस्थायी रूप से अचेतन था, अर्थात् स्वप्न-तंत्र के वास्तविक प्रक्रम के समय वह अचेतन था। दूसरी ओर, पिता के प्रति भावनाएं सम्भाव्यतः स्थायी रूप से, और हो सकता है कि बचपन से ही, विरोधी थीं, और पिता की बीमारी के दिनों में मानो डरते-डरते और छिपे रूप में ये चेतना में घुस आई थीं। यह बात अन्य गुप्त विचारों के बारे में, जो अस्पष्ट रूप से स्वप्न की वस्तु के सहायक हुए हैं, हम और भी अधिक निश्चय के साथ कह सकते हैं। यह सच है कि इसमें पिता के प्रति विरोधी भावनाओं के कोई संकेत नहीं हैं, पर जब हम बच्चे के जीवन में इन विरोधी भावों के उद्गम की खोज करते हैं, तब हमें यह याद आता है कि पिता का भय इस कारण उत्पन्न होता है कि जीवन के आरम्भिक वर्षों में वह ही लड़के की यौन चेष्टाओं का विरोध करता है, जैसा कि उसे पुत्र में जवानी आने के बाद सामाजिक दृष्टि से प्रायः मजबूरन करना पड़ता है। हमारे स्वप्न-द्रष्टा का अपने पिता से यह सम्बन्ध था। उसके पितृप्रेम में आदर और भय मिले हुए थे, और इस भय का मूल यह था कि शुरू में यौन चेष्टाओं से बचने के लिए उसे डराया गया।

स्वप्न की अगली बातों की व्याख्या अब हम स्वयं रति-ग्रंथि[1] से कर सकते हैं। **'वह बीमार लगता था'**, यह दांत के डाक्टर के इस कथन का कि इस जगह से दांत का हट जाना अच्छा नहीं लगता, निर्देश था; पर यह साथ ही उस 'बीमार (अर्थात् बुरा) लगने' का भी निर्देश करता है जिससे वह युवक अपनी तरुणाई के दिनों में अपनी अत्यधिक यौन चेष्टाओं को प्रदर्शित करता है, या उनके प्रदर्शित हो जाने से डरता है। स्वप्न-द्रष्टा ने अपना दिल हल्का करने के लिए व्यक्त स्वप्न

---

१. Onanism Complex.

में बीमारी का रूप अपने ऊपर से हटाकर अपने पिता पर पहुंचा दिया था। आप जानते ही हैं कि इस तरह का अपवर्तन[1] या विस्थापन अर्थात् कोई बात किसी स्थान से हटाकर दूसरी जगह पहुंचा देना, स्वप्न-तंत्र की एक युक्ति है। यह बात कि **'वह ज़िंदा रहा'**, पिता को फिर जीवित देखने की इच्छा तथा दांत-डाक्टर के दांत को बचाने के वायदे, इन दोनों से मेल खाती है। यह कथन कि **'मैंने भरसक कोशिश की कि वह इसे देख न सके'** बड़े सूक्ष्म तरीके से हमें यह बात इस तरह पूरी करने के लिए प्रेरित करता है कि **'वह मृत था।'** पर उनको ऐसे ढंग से पूरा करने का कि उसका सचमुच कुछ अर्थ बन जाए, जो एकमात्र तरीका है, वह भी हमें स्वयं रति-ग्रंथि की सूचना देता है; क्योंकि यह सामान्य बात है कि वह नौजवान अपने यौन जीवन को अपने पिता से छिपाने की भरसक कोशिश करे। अन्त में मैं आपको यह याद दिलाना चाहता हूं कि तथाकथित 'दांत-दर्द के स्वप्न' सदा स्वयं रति और इसकी आशंकित सज़ा का ही निर्देश करते हैं।

आपने देखा कि किस तरह यह समझ में न आनेवाला स्वप्न, एक विशेष प्रकार के और भ्रम में डालने वाले संघनन द्वारा, इसमें से उन सब विचारों का विलोप कर देता है जो गुप्त विचार-श्रेणी के असली केन्द्र से सम्बन्धित हैं; और जो विचार सबसे गहरे और समय की दृष्टि से सबसे दूर वाले थे, उन्हें निरूपित करने के लिए दो तरह के अर्थों वाली स्थानापन्न रचनाएं पैदा करके बना है।

४. हम उन विशेषताहीन और तुच्छ स्वप्नों की जड़ तक पहले पहुंचने की बार-बार कोशिश कर चुके हैं जिनमें कोई बेतुकी या अजीब बात नहीं होती बल्कि जिनसे यह प्रश्न पैदा होता है: हमें ऐसी तुच्छ बातों का स्वप्न क्यों आता है? इसलिए मैं इस तरह का एक नया उदाहरण दूंगा, जिसमें एक दूसरे से जुड़े हुए तीन स्वप्न हैं जो एक युवती महिला ने एक ही रात में देखे थे।

(क) वह अपने मकान में अपने हॉल में से गुजर रही थी कि उसका सिर एक नीचे लटकते हुए फानूस से इतने ज़ोर से टकराया कि खून निकल आया। इस घटना से उसे ऐसी किसी बात का ध्यान नहीं आया जो सचमुच हुई हो। उसका कथन बिलकुल दूसरी दिशा में जाता था: "आप देखते हैं कि मेरे बाल कितनी बुरी तरह झड़ रहे हैं। कल मेरी मां ने मुझसे कहा था: बेटी, यदि ऐसे ही चलता रहा तो तेरा सिर शीघ्र ही तेरे नितम्ब की तरह केशहीन हो जाएगा।" यहां हम देखते हैं कि सिर शरीर के दूसरे सिरे का सूचक है। फ़ानूस के प्रतीक को समझने के लिए और किसी मदद की ज़रूरत नहीं; लम्बे हो सकने वाले सब पदार्थ पुरुष-लिंग के प्रतीक होते हैं। इस प्रकार, स्वप्न का वास्तविक विषय शिश्न के संस्पर्श से शरीर के निचले सिरे पर होनेवाला रक्तस्राव है। इसके और अर्थ भी हो सकते हैं। स्वप्न-

---

१. Inversion.

द्रष्टा के और साहचर्यों से पता चलता है कि इस स्वप्न का इस धारणा से सम्बन्ध है कि मासिक धर्म पुरुष के साथ सम्भोग करने से पैदा होता है--यौन विषयों में यह धारणा कच्ची उम्र की लड़कियों में आम तौर पर मिल जाती है।

(ख) **स्वप्न-द्रष्टा ने देखा कि एक अंगूरों के बाग में एक गहरा गड्ढा है, जिसके बारे में वह जानती थी कि वह एक पेड़ के उखड़ने से बना है।** इस मामले में उसने बताया कि 'पेड़ **गायब** था', जिसका अर्थ यह हुआ कि उसने स्वप्न में पेड़ नहीं देखा। परन्तु इन्हीं शब्दों से एक दूसरा विचार भी प्रकट होता है जिससे हमें इसके प्रतीकात्मक निर्वचन के बारे में कोई सन्देह नहीं रहता। यह स्वप्न यौन विषयों में एक और बालकों की-सी धारणा, अर्थात् इस धारणा का निर्देश करता है कि शुरू में लड़कियों की जननेन्द्रियां लड़कों जैसी ही थीं, और इस अंग का बाद वाला रूप लिंग-विच्छेद (पेड़ उखड़ने) से बना है।

(ग) **स्वप्न-द्रष्टा अपनी मेज़ की दराज़ के आगे खड़ी थी जिसे वह इतनी अच्छी तरह जानती है कि यदि उसे कोई छूए तो उसे तुरन्त पता चल जाएगा।** मेज की दराज़ भी और सभी दराज़ों, तिजोरियों और सन्दूकों की तरह स्त्री जननेंद्रिय की प्रतीक है। वह जानती थी कि सम्भोग (या उसके अनुसार कोई भी संस्पर्श) होने पर जननेन्द्रिय इस बात के कुछ संकेत प्रकट करती है और उसे बहुत समय से इस बात की दोषी समझे जाने का भय था। मैं समझता हूं कि इन तीनों स्वप्नों में मुख्य बल **जानने** पर है। उसके मन में वह समय था जब वह यौन विषयों में बालबुद्धि से खोजबीन किया करती थी, जिसके परिणामों पर उसे उस समय बड़ा अभिमान था।

५. प्रतीकात्मकता का एक और उदाहरण देखिए; पर इस बार मैं उस मानसिक स्थिति का भी संक्षेप में उल्लेख करूंगा जिसमें वह स्वप्न पैदा हुआ। एक पुरुष और एक स्त्री ने, जो एक दूसरे से प्रेम करते थे, एक रात इकट्ठे गुज़ारी; पुरुष ने उसका स्वभाव मातृत्वपूर्ण बताया। वह उन स्त्रियों में से थी जिसकी संतान-प्राप्ति की इच्छा आलिंगनों के समय बलात् प्रकट हो जाती है, परन्तु उनकी मिलन की अवस्थाओं में यह सावधानी रखना आवश्यक था कि वीर्य को गर्भ में जाने से रोका जाए। अगले दिन सवेरे उठने पर उसने यह स्वप्न सुनाया:

एक लाल टोपीधारी अफसर गली में उसका पीछा कर रहा था। वह उससे बचकर भागी और सीढ़ियों पर चढ़ गई और पीछे-पीछे वह भी आ गया। वह दम साधे अपने कमरे में पहुंची और उसने अपने पीछे के दरवाजे को बन्द करके ताला लगा दिया। वह आदमी बाहर रहा और उसने दरवाज़े के छेद में से झांककर देखा कि वह बाहर बेंच पर बैठा रो रहा था।

लाल टोपीवाले अफसर का पीछा करना और इसका दम साधे हुए सीढ़ियों पर चढ़ जाना, जैसा कि आप जानते हैं, सम्भोग कार्य को निरूपित करता है।

स्वप्न देखने वाली का दरवाजा बन्द करके अपना पीछा करने वाले को बाहर रोक देना अपरिवर्तन या विस्थापन की युक्ति का एक उदाहरण है, जिसका स्वप्नों में इतना अधिक प्रयोग होता है, क्योंकि वास्तव में पुरुष ही सम्भोग-कार्य पूरा होने से पहले हटा था। इसी प्रकार, उसने अपने मन के दुःख की भावना को अपने साथी पर डाल दिया है, क्योंकि वही स्वप्न में रोता है; साथ ही उसके आंसू वीर्य का भी निर्देश करते हैं।

आपने यह बात निश्चित ही कभी न कभी सुनी होगी कि मनोविश्लेषण के अनुसार सारे स्वप्न मैथुनार्थक होते हैं। अब आप इस निंदा के झूठ होने के बारे में स्वयं अपनी राय बना सकते हैं। आप इच्छा-पूर्ति-स्वप्नों के बारे में, जिनमें प्राथमिक आवश्यकताओं—भूख, प्यास और आज़ादी की चाह—की सन्तुष्टि होती है, सुविधा-स्वप्नों और अधैर्य-स्वप्नों तथा ऐसे स्वप्नों के बारे में जो स्पष्टतः लोभ और अहंकार सूचित करते हैं, सुन चुके ह। पर यह बात आप निश्चित रूप से याद रख सकते हैं कि मनोविश्लेषण के परिणामों के अनुसार वे स्वप्न जिनमें विपर्यास की मात्रा काफ़ी होती है **मुख्यतः** (पर यहां भी अनन्यतः नही) मैथुन सम्बन्धी इच्छाओं को प्रकट करते है।

६. स्वप्नों में प्रतीकों के उपयोग के बहुत-से उदाहरण मैं एक विशेष विचार से दे रहा हूं। अपने पहले व्याख्यान में मैंने यह कठिनाई बताई थी कि मेरे कथनों को इस तरह प्रत्यक्ष प्रदर्शित नहीं किया जा सकता कि आपको मनोविश्लेषण की जांच के परिणामों पर विश्वास हो जाए और अब तक आप मुझसे निःसंदेह सहमत हो गए होंगे। परन्तु मनोविश्लेषण की अलग-अलग स्थापनाएं फिर भी इतने घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है कि किसी भी प्रश्न पर विश्वास और निश्चय हो जाने पर सारे सिद्धान्त के अधिकतर भाग को आसानी से स्वीकार कर लिया जाता है। मनोविश्लेषण के बारे में यह कहा जा सकता है कि यदि आप इसे अपनी कनिष्ठिका पकड़ाएंगे तो शीघ्र ही यह आपका पहुंचा पकड़ लेगा। यदि ग़लतियों की व्याख्या को आप सन्तोषजनक मानते हैं तो तर्क का तकाजा है कि बाकी सारी बातों में भी आप अविश्वास न करें। स्वप्न-प्रतीकात्मकता भी इसी तरह इन बातों को स्वीकार करने में सहायता पहुंचाती है। मै आपको एक गरीब वर्ग की औरत का स्वप्न सुनाऊंगा, जो प्रकाशित हो चुका है। इस औरत का पति चौकीदार था, और हम निश्चयपूर्वक मान सकते है कि उसने स्वप्न-प्रतीकात्मकता और मनोविश्लेषण का नाम भी कभी नहीं सुना था। तब आप स्वयं यह फैसला कर सकते है कि यौन प्रतीकों की मदद से निकाले गए अर्थ को मनमाना या खींच-तान से निकाला गया कहना उचित है या नहीं।

"तब कोई सेंध लगाकर मकान में घुस आया और उसने डर के मारे चौकीदार को आवाज़ लगाई, पर चौकीदार दो आवारागर्दों के साथ एक चर्च में चला गया

था, जिसमें कई सीढ़ियां चढ़कर जाया जाता था। चर्च के पीछे एक पहाड़ था, और पहाड़ पर एक घना जंगल। चौकीदार ने लोहे का टोप, गले का कवच और चोगा पहन रखा था और उसकी भूरी दाढ़ी लहरा रही थी। उसके साथ जो दो आवारा-गर्द शान्तिपूर्वक गए थे, वे चोगे पहने हुए थे, जो उनके धड़ों पर बोरों की तरह लिपटे हुए थे। एक पगडंडी चर्च से पहाड़ की ओर जाती थी और उसके दोनों ओर ऊंची-ऊंची घास और झाड़ियां थीं जो अधिकाधिक घनी होती जाती थीं और पहाड़ की चोटी पर वाकायदा जंगल था।"

आप यहां उपर्युक्त प्रतीकों को बिना परेशानी के पहचान जाएंगे। पुरुष-लिंग **तीन** व्यक्तियों के दीखने से निरूपित हुआ है, और स्त्री के यौन अंग चर्च, पहाड़ और जंगल से युक्त दृश्य से निरूपित हुए हैं और सीढ़ियों पर चढ़ने का कार्य यहां भी संभोग-कार्य का प्रतीक है। शरीर का जो भाग स्वप्न में 'पहाड़' कहा गया है, उसे शरीर-शास्त्र में भी कामाचल (Mons veneris) कहते हैं।

७. अब मैं आपको एक और स्वप्न बताऊंगा। उसकी व्याख्या भी प्रतीकों के द्वारा ही की जाएगी। इसके अलावा, यह स्वप्न इस दृष्टि से अधिक ध्यान देने योग्य और विश्वास पैदा करने वाला है कि स्वप्न-द्रष्टा ने स्वयं सब प्रतीकों का अनुवाद कर दिया, यद्यपि इसे निर्वचन के बारे में पहले से कोई जानकारी नहीं थी। ऐसी परिस्थिति बहुत कम होती है, और हम ठीक-ठीक नहीं समझ सकते कि यह किन अवस्थाओं में होती है।

वह अपने पिता के साथ एक स्थान पर घूम रहा था जो प्रेटर (विएना का मुख्य पार्क) ही होगा, क्योंकि उन्होंने गोलघर और उसके सामने एक छोटा मकान देखा, जिसपर एक गुब्बारा कैद था जो सुस्त मालूम होता था। उसके पिता ने उससे पूछा कि यह सब किसलिए है। पुत्र को उसके पूछने पर आश्चर्य हुआ, पर फिर भी उसने कुछ स्पष्टीकरण किया। इसके बाद वे एक आंगन में आए। धातु की एक बड़ी चादर फैली हुई थी। उसका पिता उसमें से एक बड़ा टुकड़ा काट लेना चाहता था, पर उसने पहले चारों तरफ देखा कि मुझे कोई देख तो नहीं रहा। उसने अपने पुत्र से कहा कि तुम्हें सिर्फ ओवरसियर से कहने भर की जरूरत है, और फिर उसके बाद तुम इसे योंही ले जा सकते हो। इस आंगन से कुछ सीढ़ियां नीचे एक डण्डे की ओर जाती थीं। इस डण्डे के पार्श्वों पर कोई नरम वस्तु लगी हुई थी, जैसे यह चमड़े की आराम कुर्सी हो। इस डण्डे के नीचे एक लम्बा चबूतरा, और इससे परे एक और डण्डा था।

स्वप्न-द्रष्टा ने इसका स्वयं यह अर्थ बताया: "गोलघर मेरी जननेन्द्रियों का प्रतीक है और इसके सामने वाला कैदी गुब्बारा शिश्न का प्रतीक है जिसके ढीला या नरम होने की मुझे शिकायत है।" उसका अधिक विस्तृत अनुवाद इस प्रकार होगा: गोलघर नितम्बों का प्रतीक है (जिसे बच्चे सदा जननेन्द्रियों में शामिल

करते हैं) और सामने का छोटा मकान अण्डकोष है। स्वप्न में उसका पिता उससे पूछता है कि यह सब क्या है, अर्थात् जननेन्द्रियों का प्रयोजन और कार्य क्या है? इस स्थिति को अपवृत्त, अर्थात् उलटा, करना जिससे यह हो कि पुत्र सवाल पूछे, सीधी बात है, और ये सवाल असल में कभी नहीं पूछे गए; इसलिए हमें स्वप्न-विचारों को या तो अभिलाषा मानना चाहिए और या उन्हें इस तरह सशर्त अर्थ में लेना चाहिए: "यदि मैं अपने पिता से इसकी व्याख्या करने के लिए कहता..." इस विचार का बाद का हिस्सा हम अभी देखेंगे।

जिस आंगन में धातु की चादर पड़ी है, उसकी प्रतीकों द्वारा व्याख्या नहीं करनी है, बल्कि वह पिता के कारबार के स्थान का निर्देश है। समझदारी के ख्याल से मैंने उसकी बताई हुई असली चीज की जगह धातु की चादर कर दी है, पर इसके अलावा, स्वप्न के शब्दों में मैंने कोई परिवर्तन नहीं किया। स्वप्न-द्रष्टा अपने पिता के कारबार में शामिल हुआ था और जिन बहुत आपत्तिजनक कार्यों पर अधिक लाभ का दारोमदार था, उनसे बहुत लज्जित हुआ था। इसलिए इस स्वप्न-विचार का ऊपर निर्दिष्ट पिछला अंश इस प्रकार होगा, "(यदि मैं उससे पूछता तो) वह मुझे भी वैसे ही धोखा देता, जैसे अपने ग्राहकों को देता है।" स्वप्न-द्रष्टा धातु का टुकड़ा तोड़ने की, जो व्यापार की बेईमानी का प्रतीक है, एक दूसरी व्याख्या पेश करता है। वह कहता है कि इसका अर्थ है हस्त-मैथुन[1] का कार्य। यह व्याख्या न केवल हमारी पूर्वपरिचित है, बल्कि इस निर्वचन के भी अनुसार है कि हस्त-मैथुन के गुप्त कार्य को उलटे विचार (**"हम इसे खुलेआम कर सकते हैं।"**) द्वारा प्रकट किया जाए। इस प्रकार यह तथ्य कि हस्त-मैथुन का आरोप पिता पर लगाया जाए, जैसे कि स्वप्न के पहले दृश्य में पूछने को उसके साथ जोड़ा गया था, ठीक वैसा है जैसी कि हमें आशा करनी चाहिए थी। स्वप्न-द्रष्टा ने दीवारों के मुलायम स्पर्श के कारण डण्डे का अर्थ तुरन्त योनि बताया और मैं अपनी ओर से यह कहता हूं कि ऊपर जाना तथा नीचे आना मैथुन-कार्य या सम्भोग का सूचक है।

पहले डंडे के नीचे और दूसरे डंडे के परली ओर वाले लम्बे चबूतरे की व्याख्या स्वप्न-द्रष्टा ने अपने इतिहास से स्वयं की। वह कुछ समय सम्भोग करता रहा था और इसके बाद निरोधों के कारण उसने इसे छोड़ दिया था, पर इलाज कराकर वह फिर इसे करने योग्य बनने की आशा करता था।

८. नीचे मैं दो ऐसे स्वप्न पेश करता हूं जो उल्लेखनीय बहुपत्नी-प्रवृत्तियों वाले एक विदेशी को आए थे; क्योंकि उनसे इस कथन का स्पष्टीकरण हो सकता है कि प्रत्येक स्वप्न-द्रष्टा का अपना व्यक्तित्व मौजूद होता है, चाहे वह व्यक्त वस्तु

---

१. Masturbation.

में छिपा हुआ ही क्यों न हो। स्वप्नों में संदूक स्त्री-प्रतीक है।

(क) स्वप्न-द्रष्टा एक यात्रा करने वाला था और उसका सामान एक गाड़ी में स्टेशन ले जाया जा रहा था। उसमें एक दूसरे के ऊपर बहुत-से सन्दूक लदे हुए थे और उनमें दो बड़े काले सन्दूक वैसे थे जैसे कि एजेन्टों के होते हैं। उसने दिलासा देते हुए किसीसे कहा "देखो, वे सिर्फ स्टेशन तक जा रहे हैं।"

असल में, वह बहुत सारे सामान के साथ सफ़र करता है और इलाज में स्त्रियों सम्बन्धी बहुत-से किस्से बताये। दो काले सन्दूक, दो काली स्त्रियों के प्रतीक हैं जो उस समय उसके जीवन में प्रमुख स्थान रखती थीं। उनमें से एक उसके पास वियेना आना चाहती थी। पर मेरी सलाह से उसने उसे, तार द्वारा, आने से रोक दिया।

(ख) चुंगी घर का एक दृश्य : एक सहयात्री ने उसका सन्दूक खोला और बेतकल्लुफी से सिगरेट पीते हुए कहा : "उसमें चुंगी योग्य कोई चीज़ नहीं।" चुंगी अधिकारी उसपर विश्वास करता मालूम दिया, पर उसने फिर सन्दूक में हाथ डाला और एक सख्त निषिद्ध चीज़ उसमें मिली। तब यात्री ने लाचारी के ढंग से कहा : "क्या करूं इसके लिए लाचार हूं।" स्वप्न-द्रष्टा स्वयं यात्री है, और मैं चुंगी अफसर हूं। साधारणतया वह मेरे साथ बहुत साफ़ और सीधा रहता है, पर उसने एक नया सम्बन्ध, जो उसने हाल में ही एक महिला के साथ स्थापित किया था, मुझसे छिपाने का पक्का इरादा किया था; क्योंकि उसकी कल्पना थी, और बिलकुल ठीक थी, कि मैं उस महिला को जानता था। वह इस चीज़ के पता लग जाने से उत्पन्न दुविधा और परेशानी की स्थिति एक अपरिचित पर डाल देता है, जिससे यह प्रतीत होता है कि वह स्वयं स्वप्न में बिलकुल नहीं आता।

९. अब मैं एक ऐसे प्रतीक का उदाहरण देता हूं जिसका मैंने अब तक उल्लेख नही किया :

स्वप्न-द्रष्टा को अभी उसकी बहन मिली जिसके साथ उसकी दो सहेलियां थीं, जो आपस में बहनें थीं। उसने उन दोनों से हाथ मिलाया, पर अपनी बहन से नहीं मिलाया।

इसके साथ सम्बन्धित कोई असली घटना उसके मन में नहीं थी। असल में उसके विचार उस समय में पहुंच गए थे जब उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ करता था कि लड़की की छातियां इतनी देर में क्यों बढ़ती हैं। इसलिए दो बहनें छातियों की प्रतीक है। वह उन्हें अपने हाथ से पकड़ना पसन्द करता यदि वह उसकी बहन न होती।

१०. स्वप्नों में मृत्यु-प्रतीकात्मकता का एक उदाहरण है :

स्वप्न-द्रष्टा एक बहुत ऊंचा, सीधा, लोहे का पुल पार कर रहा था, और उसके साथ दो आदमी थे जिनके नाम वह जानता था, पर जागने पर भूल गया। एका-एक वे दोनों गायब हो गये और उसने एक भूत जैसा आदमी देखा, जिसने टोपी

और बड़ा चोगा पहन रखा था। उसने उससे पूछा कि क्या तुम तार-घर के हरकारे हो···? 'नहीं' या गाड़ी वाले हो?···'नहीं'। इसके बाद वह आगे चला गया और स्वप्न में उसे बड़ा डर लगा; जागने पर वह यह कल्पना करने लगा कि लोहे का पुल एकाएक टूट गया और वह गहरे खड्ड में जा गिरा।

जब इस बात पर बल दिया जाता है कि स्वप्न में दिखाई दिए व्यक्ति स्वप्न-द्रष्टा के अपरिचित हैं, या वह उनके नाम भूल गया है, तब साधारणतया वे ऐसे व्यक्ति होते हैं जिनके साथ उसका घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। स्वप्न-द्रष्टा के परिवार में तीन बच्चे थे यदि उसने शेष दो बच्चों की मृत्यु की कामना की होती, तभी उसे मृत्यु का भय लगना चाहिए। तार के हरकारे के बारे में उसने कहा कि वे सदा बुरी खबरें लाते हैं। अपनी वर्दी के अनुसार, स्वप्न में दिखलाई दिया मनुष्य लैंप जलाने वाला भी हो सकता था, जो लैंप बुझाता भी है क्योंकि मृत्यु जीवन की रोशनी को बुझाती है। गाड़ी वाले के बारे में उसके मन में राजा कार्ल की जल-यात्रा के विषय में ऊलैंड की कविता थी। उसने दो साथियों के साथ एक झील पर की गई खतरनाक यात्रा का भी स्मरण किया, जिसमें उसने कविता में वर्णित राजा का अभिनय किया था। लोहे का पुल उसे एक हाल की दुर्घटना की और इस मूर्खता-पूर्ण कहावत की याद दिलाता था: 'जीवन एक लटका हुआ पुल है।'

११. यह मृत्यु-स्वप्न का एक और एक उदाहरण माना जा सकता है:

कोई अपरिचित सज्जन स्वप्न-द्रष्टा के ऊपर काली किनारी वाली विज़िटिंग कार्ड डाल रहा था।

१२. अब मैं आपके सामने एक और स्वप्न रखता हूं जो कई दृष्टियों से दिलचस्प लगेगा, परन्तु इसका आंशिक कारण स्वप्न-द्रष्टा में स्नायु-रोग की अवस्था का होना है:

वह एक रेलगाड़ी में था जो खुली जगह रुकी। उसने सोचा कि कोई दुर्घटना होने वाली है और इसलिए मुझे भाग निकलना चाहिए। अतः सब डिब्बों में जाकर उसने गार्ड, ड्राइवर आदि जो भी कोई उसे मिला, सबको मार डाला।

इस स्वप्न से उसे एक दोस्त द्वारा सुनाई गई कहानी याद आई। किसी इटालियन रेलवे लाइन पर एक छोटे डिब्बे में एक पागल आदमी को ले जाया जा रहा था, पर ग़लती से एक मुसाफिर को उस डिब्बे में आ जाने दिया गया। पागल आदमी ने दूसरे यात्री की हत्या कर दी। इस प्रकार स्वप्न-द्रष्टा ने अपने आपको वह पागल आदमी बना लिया। इसका कारण यह था कि उसे कभी-कभी इस मनोग्रस्तता से परेशानी होती थी कि मुझे 'उन सबके साथ, जिन्हें मेरी बातों का ज्ञान है', भाग जाना चाहिए। इसके बाद उसने स्वयं स्वप्न का अधिक अच्छा प्रयोजन तलाश किया: पिछले दिन उसने थियेटर में एक लड़की को देखा था, जिससे वह विवाह करना चाहता था, पर उसने अपना यह विचार त्याग दिया था, क्योंकि उस लड़की

ने उसके लिए ईर्ष्या का कारण पैदा किया। ईर्ष्या उसमें कितने तीव्र रूप में हो सकती थी, यह जानने पर भी वह उससे शादी करने की इच्छा रखता तो सचमुच पागल हो जाता। कहने का मतलब यह है कि वह उसे इतना अविश्वसनीय समझता था कि अपनी ईर्ष्या के कारण वह अपने रास्ते में रोड़ा डालने वाले हर किसी की हत्या कर देता। कई कमरों में से, या यहां की तरह डिब्बों में से, गुजरना, जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, विवाह का प्रतीक है। (विरोधी बातों के नियम के अनुसार यह एकपत्नीत्व को प्रकट करता है।)

खुली जगह में गाड़ी के रुकने और दुर्घटना के भय के बारे में उसने यह किस्सा सुनाया :

एक बार स्टेशन से बाहर रेलवे लाइन पर इस तरह एकाएक गाड़ी रुकने पर डिब्बे में बैठी हुई एक नवयुवती ने कहा था कि शायद गाड़ियों में टक्कर होनेवाली है, और सबसे अच्छा यह होगा कि टांगें ऊंची उठा ली जाएं। 'टांगें उठाना' पदावली के साथ उसके देहात में बहुत बार की गई यात्राओं के साहचर्य थे, जिनमें वह ऊपर बताई गई लड़की के साथ अपने प्रेम के आरम्भिक सुखमय दिनों में गया था। यह इस बात के लिए कि यदि वह उससे अब विवाह करे तो पागल हो जाएगा, एक और युक्ति है। तो भी स्थिति को देखकर मेरा यह निश्चित विचार बना कि उसमें तब भी पागलपन का शिकार होने की इच्छा थी।

स्वप्नों में अति प्राचीन और शैशवीय विशेषताएं

अब हम अपने इस निष्कर्ष से फिर नए सिरे से आगे बढ़ते हैं कि सेंसरशिप या काट-छांट के प्रभाव से स्वप्न-तंत्र गुप्त स्वप्न-विचारों को दूसरे रूप में बदल देता है। ये विचार उसी तरह के होते हैं जैसे जागृत जीवन के सुपरिचित चेतन विचार। वे जिस नए रूप में प्रकट होते हैं, वह अपनी बहुत-सी विशेषताओं के कारण हमें समझ में नहीं आता। हम कह चुके हैं कि इसका विकास हमारे बौद्धिक परिवर्धन की उन अवस्थाओं से है जिनसे हम बहुत आगे बढ़ आए हैं, अर्थात् चित्र-लिपियों, प्रतीकात्मक सम्बन्धों, और संभवत: उन अवस्थाओं से है जो विचार की भाषा का विकास होने से पहले मौजूद थीं। इस कारण हमने स्वप्न-तंत्र द्वारा प्रयुक्त अभिव्यक्ति के प्रकार को **अतिप्राचीन** या **प्रतिगामी** कहा था।

इससे आप यह नतीजा निकाल सकते हैं कि स्वप्न-तंत्र का अधिक गहरा अध्ययन करके हमारे बौद्धिक परिवर्धन की आरम्भिक अवस्थाओं के बारे में, जिनका इस समय कुछ भी पता नहीं है, मूल्यवान निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। मुझे आशा है कि यही होगा, पर इसका यत्न नहीं किया गया है। स्वप्न-तंत्र हमें जिस युग में पहुंचाता है, वह दो दृष्टियों से 'आदिम' है : प्रथम तो इसका अर्थ है **व्यष्टि** अर्थात् मनुष्य के आरम्भिक दिन, अर्थात् उसका बचपन; और दूसरे, जहां तक यह बात है कि प्रत्येक व्यष्टि बचपन में, कुछ संक्षिप्त रूप में, मानव-मूलवंश के परिवर्धन के सारे क्रम को दोहराता है, वहां यह निर्देश **जातिचरित** या **वंशवृत्त**[1] का निर्देश है। मैं इस बात को असंभव नहीं मानता कि हम गुप्त मानसिक प्रक्रमों के उस भाग में जो व्यष्टि के आरम्भिक दिनों से सम्बन्ध रखता है, और उस भाग में, जिसकी जड़ मूलवंश के बाल्यकाल में है, भेद कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, मुझे ऐसा लगता है कि प्रतीकात्मकता को, जो अभिव्यक्ति की ऐसी रीति है जो कि कभी भी व्यष्टि द्वारा नहीं सीखी गई, मूलवंश की देन माना जाना चाहिए।

---

१. Phylogenetic.

परन्तु स्वप्नों की एक यही अतिप्राचीन या पुरानी विशेषता नहीं होती। आप सब अनुभव से यह जानते हैं कि हम सबमें बचपन का स्मृतिनाश[1] (एमनेशिया) होता है। मेरा मतलब यह है कि जीवन के आरम्भिक, अर्थात् पांच, छः या आठ वर्ष की आयु के दिनों के हमारी स्मृति में वैसे अवशेष नहीं रहते जैसे बाद के अनुभवों के। यह ठीक है कि हमें ऐसे लोग भी मिलते हैं जो बचपन से आज तक लगातार स्मृति का दावा कर सकते हैं, पर उनकी तुलना में इसके विपरीत बहुत आदमी हैं, जिनकी स्मृति में बहुत-से खाली स्थान हैं। मेरी राय में इसपर काफ़ी आश्चर्य नहीं पैदा हुआ। दो वर्ष की आयु का बच्चा अच्छी तरह बोल सकता है, और शीघ्र ही यह सिद्ध कर देता है कि वह अपने आपको उलझनदार मानसिक स्थितियों के अनुकूल बना सकता है, और इसके अलावा ऐसी बातें कहता है जो वर्षों बाद उसके सामने पेश किए जाने पर वह स्वयं भूल गया होता है और फिर भी आरम्भिक वर्षों में स्मृति अधिक दक्ष होती है क्योंकि उस समय इसपर उतना बोझा नहीं होता जितना बाद में हो जाता है। दूसरे, यह समझने का कोई कारण नहीं है कि स्मृति का कार्य मानसिक व्यापार का कोई विशेष रूप से ऊंचा या कठिन रूप हो। इसके विपरीत, उन लोगों में भी बहुत अच्छी स्मृति-शक्ति हो सकती है जो बुद्धि की दृष्टि से बहुत नीचे धरातल पर हैं।

पर मैं पहली विशेषता के आधार पर आश्रित एक दूसरी विशेषता की ओर आपका ध्यान खींचना चाहता हूं, और वह यह है कि बचपन के आरम्भिक वर्षों की विस्मृति में कुछ स्पष्ट रूप से रखी हुई स्मृतियां निकल आती हैं, जो अधिकतर सुघट्य प्रतिबिम्बों के रूप में होती हैं, जिनके बने रहने के लिए कोई पर्याप्त कारण नहीं मालूम होता। बाद के जीवन में जो अनेक संस्कार पड़ते हैं, उनपर स्मृति वरण, अर्थात् छंटाई के प्रक्रम से कार्य करती है--महत्वपूर्ण को रख लेती है और महत्वहीन को छोड़ देती है, पर बचपन से याद बातों के बारे में यह स्थिति नहीं है। आवश्यक नहीं है कि वे बातें बचपन के महत्वपूर्ण अनुभवों को सूचित करती हों, यहां तक कि बहुत बार वे ऐसी चीज़ें भी नहीं होतीं जो बच्चे के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण मालूम हुई हों, बल्कि प्रायः अपने आपमें इतनी तुच्छ और अर्थहीन होती हैं कि हम अपने आप से आश्चर्य के साथ यही पूछ सकते हैं कि यह विशेष घटना भूली क्यों नहीं? मैंने विश्लेषण की मदद से बचपन के स्मृति-नाश की और उसमें से दीखने वाले स्मृति-खंडों की समस्या हल करने की कोशिश की है, और मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि चाहे उसके विपरीत कोई भी प्रमाण मिले, पर असलियत यह है कि बड़ों की तरह बच्चा भी महत्व की बातें ही स्मृति में कायम रखता है; पर जो चीज़ महत्वपूर्ण है वह (संघनन के, और विशेष रूप से, विस्थापन के, जिन

---

१. Amnesia

दोनों से आप परिचित हैं, प्रक्रमों द्वारा) स्मृति में किसी ऊपर से मामूली दीखने वाली बात के रूप में निरूपित होती है। इस कारण मैंने बचपन की इन स्मृतियों को **पर्दे की स्मृतियां**[1] कहा है। पूरे विश्लेषण के द्वारा उनसे वे सब बातें निकाली जा सकती हैं, जो भूल चुकी हैं।

मनोविश्लेषण द्वारा होने वाले इलाज में बचपन की स्मृतियों की खाली जगहों को प्रायः भरना पड़ता है और वह इलाज जहां तक सफल होता है वहां तक हम उन आरम्भिक वर्षों की विस्मृति के गर्त में गड़ी हुई वस्तु को सामने लाने में सफल होते हैं। ये संस्कार असल में कभी भूले नहीं, बल्कि सिर्फ पहुंच से बाहर और गुप्त हो गए थे, क्योंकि वे अचेतन का हिस्सा बन गए थे। पर कभी-कभी ऐसा होता है कि वे अचेतन से आप से आप निकल आते हैं और स्वप्नों के सिलसिले में ही ऐसा होता है। स्पष्ट है कि स्वप्न-जीवन इन गुप्त तथा बचपन के अनुभवों पर लौटने का रास्ता जानता है। इनके बहुत-से अच्छे उदाहरण मनोविश्लेषण सम्बन्धी साहित्य में मिल जाते हैं, और मैंने भी इस प्रकार के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। एक बार एक खास सिलसिले में मुझे एक ऐसे व्यक्ति का स्वप्न आया जिसने स्पष्टतः मेरी कुछ सेवा की और जिसे मैंने स्पष्ट रूप में देखा। वह काना, छोटे कद का, मोटा और ऊंचे कंधों वाला आदमी था। प्रसंग से मुझे यह पता चला कि वह डाक्टर था। सौभाग्य से मेरी मा उस समय जीवित थी। मैंने उससे पूछा कि जहां मैं पैदा हुआ था और जहां से मैं तीन वर्ष की आयु में चला आया था, वहां हमारा इलाज करने वाले डाक्टर का ऊपरी रूप कैसा था। उसने मुझे बताया कि उसके सिर्फ एक आंख थी, और वह नाटा, मोटा और ऊंचे कन्धों वाला था। मुझे वह घटना भी बताई गई जिसपर उस डाक्टर को बुलाया गया था और जिसे मैं भूल गया था। बचपन के शुरू के वर्षों की भूली हुई सामग्री की यह सत्ता भी इस प्रकार स्वप्नों की एक और 'अति प्राचीन' विशेषता है।

इस जानकारी का एक और समस्या पर जो अब तक हल नहीं हो सकी है, कुछ असर पड़ता है। आपको हमारी इस खोज से उत्पन्न आश्चर्य का स्मरण होगा कि स्वप्न बहुत अधिक बुरी या बहुत अधिक कामुक इच्छाओं से पैदा होते हैं, और इस कारण स्वप्न-सेन्सरशिप और स्वप्न-विपर्यास, ये दोनों आवश्यक हो गए हैं। अब मान लीजिए कि हमने इस तरह के एक स्वप्न का निर्वचन किया है और परिस्थितियां विशेष रूप से ऐसी अनुकूल हैं कि स्वप्न-द्रष्टा हमारे निर्वचन पर कोई आपत्ति नहीं उठाता। तो भी, वह सदा यह पूछता है कि मेरे मन में ऐसी इच्छा कैसे आ सकती है क्योंकि यह उसे बिलकुल अपरिचित मालूम होती है और वह जानता है कि मैं ठीक इससे उलटी इच्छा किया करता हूं। हमें उसे यह बताने में

---

१. Screen-memories.

कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि जिस इच्छा का वह खण्डन करता है, उसका मूल या उद्गम कहां है। ये दूषित आवेग अतीत काल में और प्रायः निकट अतीत काल की घटनाओं में मौजूद होते हैं। यह भी उससे प्रत्यक्ष कराया जा सकता है कि कभी वह उन्हें जानता था और उनके बारे में सचेत था, चाहे अब यह बात न हो। एक स्त्री को, जिसे इस अर्थ वाला स्वप्न आया था कि वह अपनी एकमात्र पुत्री (जो तब १७ वर्ष की थी) को मरा हुआ देखना चाहती थी, हमारी सहायता से यह पता चला कि एक समय उसके मन में सचमुच ही यह मृत्यु की इच्छा रही थी। यह बच्ची एक दुःखद विवाह की संतान थी, जिसमें पति-पत्नी शीघ्र ही अलग हो गए थे। एक बार, जब यह बच्ची नहीं पैदा हुई थी, माता ने अपने पति के साथ ज़ोर का झगड़ा होने के बाद क्रोध के आवेग में अपने गर्भ के बच्चे को मारने के लिए अपने शरीर को मुक्कों से पीटा था। कितनी ही माताओं ने, जो आज अनेक बच्चों को बहुत प्यार करती हैं, बड़ी अनिच्छा से उन्हें गर्भ में धारण किया था, और यह चाहा था कि उनके भीतर मौजूद जीव और आगे न बढ़े, और अपनी इस इच्छा को अनेक क्रियाओं में भी परिणत किया था, जो खुशकिस्मती से हानि रहित प्रकार की थीं। इस प्रकार, प्रिय व्यक्तियों के विरुद्ध बाद में होने वाली मृत्यु की इच्छा, जो एक पहेली मालूम होती है, उनसे सम्बन्धित होने के आरम्भिक दिनों से जुड़ी होती है।

एक पिता को, जिसका स्वप्न यह सूचित करता है कि वह अपने सबसे बड़े और प्रिय संतान की मृत्यु चाहता था, इसी तरह यह याद करना पड़ता है कि एक समय था, जब वह अपनी इस इच्छा से अपरिचित नहीं था। वह पुरुष, जिसका विवाह निराशाजनक सिद्ध हुआ था, प्रायः सोचता था—उस समय यह बालक अभी शिशु ही था—कि यदि यह छोटा-सा प्राणी, जो उसके लिए कुछ भी अर्थ नहीं रखता था, मर जाए तो वह फिर आज़ाद हो जाएगा, और अपनी आज़ादी का अधिक अच्छा उपयोग कर सकेगा। घृणा के बहुत सारे इसी तरह के आवेगों का मूल इसी तरह का होता है। वे अतीत काल की किसी वस्तु की, जो कभी चेतना में थी और मानसिक जीवन में अपना स्थान रखती थी, स्मृतियां हैं। इससे आप यह निष्कर्ष निकालना चाहेंगे कि इस तरह के स्वप्न और इस तरह की इच्छाएं उन मामलों में नहीं होंगी जिनमें दो व्यक्तियों के सम्बन्धों में इस तरह के कोई परिवर्तन नहीं हुए। मैं आपको यह निष्कर्ष निकालने की अनुमति देने को तैयार हूं, पर यह चेतावनी दे देना चाहता हूं कि आपको स्वप्न के शाब्दिक अर्थ पर विचार नहीं करना है, बल्कि निर्वचन से प्रकट होने वाले तात्पर्य पर विचार करना है। हो सकता है कि किसी प्रिय व्यक्ति की मृत्यु का व्यक्त स्वप्न इसे भयंकर नक़ाब के रूप में काम ला रहा हो, और असल में उसका अर्थ बिलकुल दूसरा ही हो, या

सम्भव है कि प्रिय व्यक्ति किसी और का मिथ्या या मायात्मक[1] स्थानापन्न हो।

परन्तु इस स्थिति से आपके मन में एक और गम्भीर सवाल पैदा होगा। आप कहेंगे : "यद्यपि मृत्यु की यह इच्छा किसी समय सचमुच थी, और स्मृति से इसकी पुष्टि होती है, पर यह कोई सच्ची व्याख्या नहीं है; क्योंकि अब इस इच्छा को हुए बहुत समय हो चुका है,और इस समय यह निश्चित रूप से अचेतन में एक स्मृति के रूप में ही रह सकती है, जिसका भावात्मक मूल्य कुछ भी नहीं है, और एक शक्तिशाली उत्तेजक कारक के रूप में नहीं रह सकती। इस पिछली कल्पना के लिए हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है। स्वप्न में कोई इच्छा याद ही क्यों आती है?" यह प्रश्न पूछना सचमुच आपके लिए उचित है। इसका उत्तर देने की कोशिश करते हुए हम बहुत दूर पहुंच जाएंगे और हमें स्वप्न-सिद्धान्त के बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न के बारे में अपनी स्थिति प्रकट करनी होगी पर मुझे अपने विवेचन की सीमाओं में रहना है और इस प्रश्न पर अभी विचार करने का प्रलोभन छोड़ना होगा। इसलिए फिलहाल, आप इसे यहीं छोड़ने को तैयार हो जाएं। हमें इस वास्तविक प्रमाण से ही सन्तोष कर लेना चाहिए कि बहुत समय से दबी हुई इस इच्छा के कारण ही स्वप्न का पैदा होना सिद्ध किया जा सकता है, और हमें इस प्रश्न की जांच जारी रखनी चाहिए कि क्या अन्य दूषित इच्छाओं का मूल भी इसी तरह पीछे की घटनाओं में तलाश किया जा सकता है?

हम मृत्यु-इच्छाओं पर ही विचार करते हैं जो अधिकतर हमें स्वप्न-द्रष्टा के सीमाहीन अहंकार से ही उत्पन्न दिखाई देंगी। इस तरह की इच्छाएं बहुत बार स्वप्नों का आधारभूत कारण दिखाई देती हैं। जब कभी कोई जीवन में हमारे मार्ग में आता है--और हमारे पारस्परिक सम्बन्ध इतने उलझे हुए होने पर ऐसा कितनी ही बार होता है!--तब उस व्यक्ति को दूर करने के लिए तुरन्त एक स्वप्न तैयार हो जाता है, चाहे वह पिता हो, माता हो, भाई हो, बहिन हो, पति हो या पत्नी हो। हमें यह बात आश्चर्यजनक लगी थी कि यह दुष्टता मनुष्यमात्र में जन्मजात होती है, और बिना और प्रमाण के हम निश्चित रूप से यह मानने को तैयार नहीं कि हमारे स्वप्नों के निर्वचनों का यह प्रमाण सही है। पर जब एक बार हमने यह देख लिया कि इस तरह की इच्छाओं का मूल अतीत में खोजना चाहिए, तब हमें उस मनुष्य के अतीत में ऐसा समय ढूढ़ने में कुछ कठिनाई नहीं हुई थी, जिसमें ऐसे अहंकार और ऐसी इच्छाओं का होना कोई अजीब बात नहीं, चाहे वह इच्छा अपने इष्ट मित्रों के और प्रियजनों के विरुद्ध ही हो। अपने आरम्भिक वर्षों में (जो बाद में विस्मृति के पर्दे में छिप जाते हैं) बच्चा वही व्यक्ति है, जो ऐसे अहंकार को बड़े साफ़ रूप में बहुत बार प्रदर्शित करता है। इस तरह की सुनिश्चित प्रवृत्तियां, या ठीक-ठीक कहें तो उनके बचे हुए अवशेष, उसमें सदा स्पष्ट

१. Illusory.

रूप में दिखाई देते हैं; कारण यह कि बालक पहले अपने से प्यार करता है, और बाद में दूसरों को प्यार करना और अपने कुछ अहंकार को दूसरों पर कुर्बान करना सीखता है। जिन लोगों से वह शुरू से प्रेम करता मालूम होता है, उनसे भी वह इसीलिए प्रेम करता है क्योंकि उसे उनकी आवश्यकता है, और उनके बिना उसका काम नहीं चल सकता—अर्थात् यहां भी उसका प्रेरक भाव अहंकार ही होता है। बाद में जाकर ही प्रेम का आवेग अहंकार से अलग होता है; यह अक्षरशः सत्य है कि बच्चा अपने अहंकार के ज़रिए ही प्रेम करना सीखता है।

इस सिलसिले में बच्चे का अपने भाइयों और बहनों के प्रति जो रुख होता है और अपने माता-पिता के प्रति जो रुख होता है, उन दोनों की तुलना करना शिक्षा-प्रद होगा। आवश्यक नहीं कि छोटा बालक अपने भाइयों और बहनों को प्यार करता हो, और प्रायः वह यह बात साफ कह देता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि वह उन्हें अपना प्रतिद्वन्द्वी समझता है, और उनसे नफरत करता है, और सब लोग जानते हैं कि यह रुख आम तौर से लगातार वर्षों, अर्थात् बच्चे के बड़े हो जाने पर भी, बना रहता है। यह ठीक है कि प्रायः इसके स्थान पर एक अधिक कोमल भावना आ जाती है, या शायद यह कहना चाहिए कि कोमल भावना उस पहले वाली भावना के ऊपर आ जाती है, पर आम तौर से विरोधी भावना अधिक पहले की मालूम होती है। यह बात ढाई से चार साल तक के बच्चों में उस समय बहुत आसानी से देखी जा सकती है, जब कोई नया शिशु पदार्पण करता है। साधारणतया उसका बड़ी अनिच्छा से स्वागत किया जाता है; "मुझे यह पसन्द नहीं; चिड़िया इसे फिर ले जाएगी," इस तरह की बातें आम तौर से कही जाती हैं। बाद में नए शिशु के आने पर मौके-बेमौके नापसन्दगी प्रकट की जाती है। उसे चोट पहुंचाने और उसपर सचमुच आक्रमण करने की कोशिशें भी की जाती हैं। यदि आयु में अन्तर कम है तो जब तक बच्चे का मानसिक व्यापार अधिक अच्छी तरह परिवर्धित होता है, उससे पहले ही प्रतिद्वन्द्वी मौजूद मिलता है, और वह अपने आपको स्थिति के अनुकूल बना लेता है। दूसरी ओर, यदि आयु में अन्तर अधिक है तो नए शिशु को देखकर पहले बच्चे में कुछ प्रेमपूर्ण भावनाएं पैदा हो सकती हैं। वह उस शिशु को दिलचस्प चीज़ और एक तरह की जीवित गुड़िया समझता है, और जब आठ वर्ष या अधिक का अन्तर होता है, और विशेष रूप से यदि बड़ा बच्चा लड़की है, तो रक्षण करने का मातृत्वपूर्ण आवेग तुरन्त प्रवृत्त हो जाता है, पर सच-सच कहा जाए तो जब हम किसी स्वप्न में किसी भाई या बहन की मृत्यु-इच्छा छिपी हुई देखते हैं, तब हमें कभी भी उलझन पैदा नहीं होती, क्योंकि, बिना बहुत परेशानी के, इसका मूल बचपन में या बहुत बार बाद के वर्षों में, जबकि वे इकट्ठे रहते थे, मिल जाता है।

शायद कोई बाल-घर (नर्सरी) ऐसा नहीं होगा, जिसमें माता-पिता का प्रेम

प्राप्त करने के लिए होड़ न होती हो, उन सबकी सांझी सम्पत्ति के लिए मुकाबला न होता हो, और जिस कमरे में वे रहते हैं, उसमें जगह घेरने के लिए एक दूसरे से बढ़ने की कोशिश न होती हो, और इन्हींके परिणामस्वरूप मार-पीट के झगड़े न होते हों। यह विरोध-भाव छोटे भाइयों और बहनों की तरह बड़ों से भी होता है। मेरा ख्याल है कि बर्नार्ड शॉ ने ही यह लिखा है : "अंग्रेज युवती अपनी माता के बाद दूसरे नम्बर पर जिससे घृणा करती है वह उसकी बड़ी बहन है।" इस कथन में कुछ ऐसी बात है जो हमारे कानों को खटकती है। हमारे लिए बहनों और भाइयों की आपसी घृणा और मुकाबलेबाज़ी को समझना बड़ा ही कठिन है, पर घृणा की भावनाएं माता और पुत्री के तथा जनकों और सन्तानों के सम्बन्ध के बीच में कैसे घुस सकती हैं ?

यह सम्बन्ध बच्चों के दृष्टिकोण से भी निःसन्देह अधिक अनुकूल है, और इसी-की हम आशा भी करते हैं। भाइयों और बहनों में प्रेम न होने की अपेक्षा जनकों और सन्तानों में प्रेम न होना कहीं अधिक बुरा मालूम होता है। यह कहा जा सकता है कि दूसरे प्रकार के प्रेम को हमने पवित्र मान लिया है जब कि पहले प्रकार के प्रेम को अपवित्र हो जाने दिया है। तो भी, रोज के तजुरबे से हमें यह पता चल सकता है कि जनकों और बड़ी उम्र के बालकों में एक दूसरे के प्रति जो भावनाएं होती हैं, वे बहुधा समाज द्वारा स्थापित आदर्श से नीचे होती हैं और कितनी ही विरोध-भावना अन्दर ही अन्दर सुलगती रहती है, और यदि पितृभक्ति या मातृ-भक्ति या अन्य कोमल भावनाओं के विचार से उन्हें न दबाया जाए तो वे किसी समय ज्वाला के रूप में फूट निकलें। इस विरोध के प्रेरक कारण सुविदित हैं, और एक ही लिङ्ग के व्यक्तियों में परस्पर विरोध होने की, अर्थात् पुत्री का माता से, और पिता का पुत्र से विरोध होने की प्रवृत्ति हम देखते हैं। पुत्री को उसकी माता ऐसे हाकिम के रूप में दिखाई देती है जो उसकी इच्छाओं पर रुकावटें लगाती है, और जिसका काम यही है कि वह अपनी पुत्री से यौन आजादी का उतना त्याग कराए जितना समाज चाहता है। कुछ अवस्थाओं में माता भी प्रतिद्वन्द्वी होती है, जो उपेक्षित नहीं होना चाहती। यही बात पिता और पुत्र के बीच और भी उग्ररूप में होती है। पुत्र के लिए पिता उन सामाजिक बन्धनों का मूर्तरूप है जिन्हें वह बड़ी अनिच्छा से स्वीकार करता है। उसके लिए पिता ही वह व्यक्ति है जो बालकपन के यौन आनन्दों की और जब पारिवारिक सम्पत्ति हो तब उसका सुख भोगने की उसकी इच्छा पूरी करने के मार्ग में रुकावट बनता है। जब राज-सिंहासन का प्रश्न हो, तब यह अधीरता दुखदायी तीव्रता तक जा पहुंचती है। पिता और पुत्री या माता और पुत्र का सम्बन्ध कम विनाशकारी मालूम होता है। माता और पुत्र का सम्बन्ध अपरिवर्तित कोमलता का सबसे शुद्ध उदाहरण है, जिसमें अहंकार की किसी भावना से फर्क नहीं पड़ता।

आप पूछेंगे कि मैं ऐसी तुच्छ और हर किसीको ज्ञात बातों की चर्चा क्योंकर रहा हूं। इसका कारण यह है कि लोगों के मनों में यह असन्दिग्ध प्रवृत्ति मौजूद है कि वे वास्तविक जीवन में इन बातों के तात्पर्य का निषेध करते हैं और सामाजिक आदर्श जितना वास्तव में पूरा होता है, उससे अधिक पूरा होने की बात जाहिर करते हैं, पर अधिक अच्छा यह है कि मनोविज्ञान ही सचाई बताए और यह कार्य विश्वनिन्दक या 'सिनिक' लोगों के लिए न छोड़ दे। यह सच है कि यह सामान्य निषेध सिर्फ़ वास्तविक जीवन के बारे में किया जाता है; क्योंकि नाटक-उपन्यास में ऊपर बताए गए प्रेरक भावों का प्रयोग करने की आजादी है, जिससे इन आदर्शों को भारी चोट पहुंचती है।

इसलिए यदि अधिकतर लोगों के स्वप्नों से यह प्रकट होता है कि वे अपने जनकों की, विशेषरूप से उस जनक की, जो स्वप्न-द्रष्टा के समान लिंग वाला है, मृत्यु चाहते हैं तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। हम यह मान सकते हैं कि यह इच्छा जागृत जीवन में भी, कभी-कभी चेतना में भी रहती है, यदि वह किसी और प्रेरक भाव के पीछे अपने को छिपा सके, जैसे कि हमारे तीसरे उदाहरण में स्वप्न-द्रष्टा ने अपने पिता के बेकार कष्ट सहन पर दया के द्वारा अपने वास्तविक विचार को छिपा दिया। ऐसा बहुत कम होता है कि विरोध-भाव अकेला ही बना रहे—अधिकतर यह कोमल भावनाओं के सामने झुक जाता है, और वे अन्त में इसे अवरुद्ध कर देती ह, अर्थात् दबा देती हैं, और यह पड़ा रहता है, और अन्त में स्वप्न मानो इसे अकेले रूप में प्रदर्शित करता है। जिस चीज़ को स्वप्न इस अकेले-पन द्वारा बहुत बढ़ाए गए रूप में दिखाता है, वह तब अपना असली आकार ग्रहण कर लेती है, जब हमारा निर्वचन स्वप्न-द्रष्टा के शेष जीवन की दृष्टि से इसे इसका उचित स्थान दे दे (एच. सैक्स)। पर यह मृत्यु की इच्छा हमें वहां भी दिखाई देती है जहां वास्तविक जीवन में इसका कोई आधार नहीं होता, और जहां बड़ी उम्र वाले युवक को कभी भी यह स्वीकार नहीं करना पड़ेगा कि उसने जागृत जीवन में इसे अपनाया था। इसका कारण यह है कि विरोध का, विशेषरूप से एक ही लिंग वाले जनक और सन्तान में आपसी विरोध का, सबसे गहरा और सबसे आम प्रेरक कारण बालकपन के आरम्भिक वर्षों में क्रियाशील हुआ था।

मेरा संकेत अनुराग-भावनाओं की उस प्रतिद्वन्द्विता की ओर है जिसमें लिंग सम्बन्धी तत्वों पर स्पष्टतः बल होता है। पुत्र जब बहुत छोटा होता है, तभी उसमें अपनी माता के प्रति एक विशेष ममता पैदा होने लगती है—वह अपनी माता को अपनी निजी सम्पत्ति समझता है और पिता को ऐसे प्रतिद्वन्द्वी के रूप में देखता है जो उस अकेले की इस सम्पत्ति, उसके इस एकाकी स्वामित्व, का विरोधी है। इसी प्रकार, छोटी लड़की अपनी माता को ऐसे व्यक्ति के रूप में देखती है जो उसके पिता के साथ उसके अनुराग के सम्बन्ध में बाधा डालती है, और ऐसा स्थान घेरे

हुए है जिसकी, वह अनुभव करती है कि, मैं स्वयं अच्छी तरह पूर्ति कर सकती हूं। प्रेक्षण से पता चलता है कि इन भावनाओं का अस्तित्व कितना प्राचीन है। इन भावनाओं को हम **ओडिपस ग्रन्थि**[1] कहते हैं, क्योंकि ओडिपस की कहानी में पुत्र की स्थिति से पैदा होने वाली इच्छाओं के दो चरम रूप–पिता को मार डालने और माता से विवाह करने की इच्छा––सिर्फ़ थोड़े-से परिवर्तित रूप में पूरे हो जाते है। मैं इस बात पर बल नहीं देता कि जनकों और संतानों में जितने सम्बन्ध हो सकते हैं, वे सब ओडिपस ग्रंथि के अन्तर्गत ही आते हैं। यह सम्बन्ध और भी अधिक उलझन भरे हो सकते हैं। फिर यह ग्रंथि कम या अधिक परिवर्धित हो सकती है, या यह अपवर्तित हो सकती है, पर यह बालक के मानसिक जीवन में एक नियमित और बहुत महत्वपूर्ण कारक है। इसके प्रभाव और इससे पैदा होने वाली अन्य घटनाओं का महत्व जितना अधिक समझा जाए, उतना ही थोड़ा है। इसके अलावा जनक बहुत बार स्वयं बच्चों को ओडिपस ग्रंथि से प्रतिक्रिया करने के लिए उद्दीपित करते हैं, क्योंकि वे अपने बच्चों के लिंग-भेद के अनुसार प्रायः उन्हें पसन्द या नापसन्द करते हैं, अर्थात् पिता पुत्री को और माता पुत्र को पसन्द करती है, या जहां पति-पत्नी का प्रेम शिथिल हो गया है, वहां संतान को प्रेम के उस आलंबन का स्थानापन्न बना लिया जाता है, जिसका आकर्षण खत्म हो गया है।

यह नहीं कहा जा सकता कि ओडिपस ग्रंथि की खोज के लिए संसार ने मनोविश्लेषण सम्बन्धी गवेषणा के प्रति बहुत कृतज्ञता प्रकट की है। इसके विपरीत, इस विचार से बड़ी उम्र के लोगों में बड़ा उग्र विरोध पैदा हुआ है और जिन्होंने सब जगह निषिद्ध और घृणित माने जाने वाले भावों के अस्तित्व का खंडन करने में अपनी आवाज नहीं उठाई, उन्होंने बाद में ऐसे अप्रासंगिक निर्वचन पेश करके उसकी कमी पूरी कर दी जिनसे ओडिपस ग्रन्थि का महत्व खत्म हो जाय। मेरा अपना यह अटल विश्वास है कि इसमें न तो कोई खंडन करने योग्य बात है और न प्रसन्न होने की बात है–हमें उन तथ्यों से अपने मन की संगति बैठा लेनी चाहिए जिनमें यूनानी पौराणिक कथा को अटल नियति का हाथ दिखलाई देता था। फिर यह कितनी मनोरंजक बात है कि ओडिपस ग्रंथि, जिसको वास्तविक जीवन से दूरकर दिया गया है, और उपन्यासों में पहुंचा दिया गया है, उनमें अपने पूर्णरूप में परिवर्धित हो गई है। ओ० रैंक ने इस आधार पर सावधानी से अध्ययन करके यह दिखलाया है कि किस तरह इसी ग्रन्थि से नाटकीय काव्य को असंख्य रूपों, रूपभेदों और छिपे हुए रूपों में, संक्षेप में कहा जाए तो उसी तरह विपर्यस्त होकर जिस तरह स्वप्न-सेंसरशिप के कार्य में हम देख आए हैं, बड़ी मात्रा में प्रेरक भाव प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार हम उन स्वप्न-द्रष्टाओं में ओडिपस ग्रन्थि तलाश कर सकते हैं जो सौभाग्यवश बाद के जीवन में अपने माता-पिता के साथ संघर्ष से बचे रहे हैं;

१. Oedipus complex.

और इससे घनिष्ठ सम्बन्ध रखनेवाली वह ग्रन्थि दिखाई देती है जिसे **बधियाकरण ग्रन्थि** (कैस्ट्रेशन कंप्लेक्स) कहते हैं; अर्थात् मैथुन सम्बन्धी मामलों के क्षेत्र में डराए जाने की प्रतिक्रिया या शुरू की शैशवीय यौन चेष्टा की उस रुकावट की प्रतिक्रिया, जो पिता द्वारा लगाई गई, कही जाती है।

अब तक हमने जो बातें निश्चित रूप से जान ली हैं, उनसे बालक के मानसिक जीवन का अध्ययन करने में हमें मदद मिली है और अब हम इसी तरह स्वप्नों में दिखाई देने वाली दूसरे प्रकार की प्रतिषिद्धि इच्छाओं, अर्थात् बहुत अधिक कामुक इच्छाओं, के उद्भव की व्याख्या प्राप्त करने की आशा कर सकते हैं। इसलिए हमें बालक के यौन जीवन के परिवर्धन का अध्ययन करना पड़ता है, और इसमें हमें विभिन्न स्थानों से इन तथ्यों की जानकारी मिलती है। प्रथम तो, यह सब निराधार कल्पना है कि बालक का यौन जीवन नहीं होता और उसमें यौन भावना सबसे पहले तरुणावस्था में दिखाई देती है, जब उसकी जननेन्द्रियां परिपक्व अवस्था में आ जाती हैं। इसके विपरीत, उसका शुरू से एक यौन जीवन होता है जो वस्तु की दृष्टि से समृद्ध होता है, यद्यपि यह अनेक बातों में उस यौन जीवन से भिन्न होता है जो बाद में प्रकृत[1] या सामान्य माना जाता है। वयस्क जीवन में जिन्हें (काम) विकृतियां[2] कहते हैं, उनमें, और प्रकृत या सामान्य यौन जीवन में इन दृष्टियों से अन्तर होता है: (१) (काम) विकृति में स्पीशीज़ के भेद (अर्थात् मनुष्य और पशु के बीच के अन्तर) को भुला दिया जाता है, (२) इसमें विरक्ति द्वारा लगाई गई रुकावटों को महसूस नहीं किया जाता, (३) निषिद्ध संभोग की रुकावट (नजदीकी रक्त-सम्बन्धियों से यौन परितुष्टि करने का निषेध) को पार कर लिया जाता है, (४) सम मैथुन, अर्थात् समान लिंग वाले व्यक्ति से यौन परितुष्टि की जाती है और (५) जननेन्द्रियों द्वारा किया जाने वाला कार्य शरीर के अन्य अंगों और विभिन्न क्षेत्रों से कर दिया जाता है। ये सब रुकावटें शुरू से ही मौजूद नहीं होतीं, बल्कि परिवर्धन और शिक्षण के समय थोड़ी-थोड़ी करके बनती हैं। छोटे बच्चे में ये नहीं होतीं। उसे मनुष्य और पशु में बहुत भारी अन्तर नहीं दीखता। मनुष्य जिस दर्प से अपने आपको दूसरे पशुओं से अलग करता है, वह उसमें बाद में उदय होता है। उसे जीवन के आरम्भ में टट्टी या पाखाने से कोई विरक्ति नहीं होती। वह इसे शिक्षण के प्रभाव से धीरे-धीरे सीखता है; वह लिंगों के अन्तर को कोई खास महत्व नहीं देता, असल में तो वह यह समझता है कि दोनों में जननेन्द्रियों का निर्माण एक ही तरह होता है। वह अपनी आरम्भिक यौन इच्छाओं और अपनी उत्सुकता को अपने निकटतम लोगों या उन व्यक्तियों के प्रति ही प्रकट करता है जो अन्य कारणों से उसके विशेष प्रिय हों—उसके माता-पिता, भाई-बहिन, या धाय और अन्त में, हम उसमें वह विशेष बात देखते हैं जो बाद में किसी प्रेम-सम्बन्ध

१. Normal. २. Perversions.

के प्रबल होने पर उसमें फिर दिखाई देती है—अर्थात् वह अपनी परितुष्टि के लिए यौन अंगों तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि यह जान जाता है कि शरीर के बहुत-से अन्य भागों में भी कैसी संवेदकता है, और उनसे भी वैसा सुखदायक संवेदन मिल सकता है, और उनसे वह जननेन्द्रियों का कार्य लेता है। तो, यह कहा जा सकता है कि बालक में **बहुरूपी (काम) विकृति**[1] होती है, और यदि उसमें इन सब आवेगों के लेश ही मिलते हैं, तो भी, इसका एक ओर तो यह कारण है कि इस समय वे उस रूप से कम तीव्र रूप में होते हैं, जो वे बाद के जीवन में हासिल कर लेते हैं, और दूसरी ओर शिक्षा बालक की सब यौन अभिव्यक्तियों को तुरन्त और प्रबलता से अवरुद्ध कर देती है, अर्थात् दबा देती है। इस अवरोध को एक सिद्धान्त का रूप दे दिया जाता है; क्योंकि बड़ी आयु के लोग इनमें से कछ अभिव्यक्तियों को नजर-न्दाज् करने की कोशिश करते हैं, और कुछ का ग़लत अर्थ लगाकर वे उन्हें उनके यौन स्वरूप से वंचित करने की कोशिश करते हैं, यहां तक कि अन्त में सारी बात का पूरी तरह निषेध किया जा सकता है। ये प्रायः वही लोग होते हैं जो पहले छोटे बच्चों के यौन 'नटखटपन' की निन्दा करते हैं, और उसके बाद अपने घर बैठकर उन्हीं बच्चों की यौन शुद्धता का जोर-शोर से मंडन करते हैं। जब बच्चों को आजाद छोड़ दिया जाए या जब उन्हें इस ओर बहकाया जाए तब उनमें काफी मात्रा में विकृत यौन व्यापार दिखाई देते हैं। बड़े लोगों को इसे बहुत गम्भीरता से ग्रहण न करना और इसे 'बच्चों का खेल' समझना ठीक ही है, क्योंकि बच्चों को बड़ों और पूरी तरह जिम्मेदार लोगों के नैतिक नियमों से नहीं नापा जा सकता। तो भी ये चीजें होती अवश्य हैं, और इस रूप में उनका महत्व भी है कि उनसे जन्म-जात शारीरिक प्रवृत्तियों का पता चलता है, और उनसे बाद में होने वाले परिवर्धन उत्पन्न और पोषित होते हैं। उनसे हमें बच्चे के यौन जीवन का अन्तर्दर्शन होता है, और इस तरह सारी मानव जाति के यौन जीवन का अन्तर्दर्शन होता है। इस-लिए यदि हमें अपने स्वप्नों के विपर्यासों के पीछे ये सब विकृत इच्छाएं दिखाई देती हैं तो इसका यही अर्थ है कि इस बात में भी स्वप्न पूरी तरह प्रतिगामी होकर शैश-वीय अवस्था में आ गये हैं।

इन निषिद्ध इच्छाओं में भी विशेष महत्व निषिद्ध संभोग की इच्छाओं अर्थात् उन इच्छाओं को देना चाहिए जो माता-पिता या भाई-बहिनों के साथ मैथुन करने की दिशा में होती हैं। आप जानते हैं कि मनुष्य-समाज ऐसे मैथुन को कितनी घृणा की दृष्टि से देखता है, या कम से कम घृणा की दृष्टि से देखने का दिखावा करता है, और इसको रोकने पर कितना बल दिया जाता है। निषिद्ध सम्भोग की इस भयंकरता का कारण बताने के बड़े अजीबोगरीब यत्न किए गए। कुछ लोगों

---

१. Polymorphous perversion.

ने यह मान लिया है कि प्रकृति ने स्पीशीज को कायम रखने के लिए मन में स्वयं ये प्रतिषेध की भावनाएं पैदा करके एक व्यवस्था कर दी है क्योंकि अन्तरभिजनन,[1] अर्थात् निकट सम्बन्धियों में विवाह, से मूल वंश का ह्रास हो जाएगा। कुछ लोगों ने इस बात पर बल दिया है कि बिलकुल बचपन से बहुत अधिक निकटता के कारण उन व्यक्तियों के प्रति यौन इच्छा दूर हो गई है। परन्तु इन दोनों अवस्थाओं में निषिद्ध सम्भोग से आप ही आप रक्षा हो जाती है, और हमें सख्त निषेध लागू करने की आवश्यकता समझ में नहीं आती, जिनसे प्रबल इच्छा का-सा संकेत मिलता है। मनोविश्लेषण के अनुसंधानों ने बिलकुल निश्चित रूप से सिद्ध कर दिया है कि असल में **निषिद्ध प्रेम की इच्छा** सबसे पहले होती है, और यह इच्छा सदा होती है, और इसके प्रति विरोध बाद में ही दिखाई देता है, और इस विरोध का कारण उस व्यक्ति के मनोविज्ञान में ढूंढने की आवश्यकता नहीं। बाल मनोविज्ञान पर विचार करने से स्वप्नों को समझने के विषय में जो परिणाम निकले है, उनका सारांश यह है : हमें पता चला है कि भूले हुए बाल्यकाल के अनुभवों की सामग्री न केवल स्वप्न की पहुंच में होती है, बल्कि बालक का मानसिक जीवन उसकी सब विशेषताओं, उसके अहंकार, निषिद्ध सम्भोग के लिए उसके वस्तु-चुनाव को साथ लिए हुए उसमें बना रहता है, और इसलिए वह अचेतन में कायम रहता है, और कि हमारे स्वप्न हर रात हमें इस बचपन की अवस्था में लौटा ले जाते हैं। इस कथन से इस विश्वास की पुष्टि होती है कि **अचेतन शैशवीय मानसिक जीवन ही है,** और इससे यह आपत्तियोग्य भावना, कि मनुष्य की प्रकृति में इतनी दुष्टता और बुराई दिखाई देती है, कुछ कम हो जाती है; क्योंकि यह भयंकर दुष्टता और बुराई सिर्फ वही चीज़ है जो मानसिक जीवन में मूल आदिकालीन और बचपन का अंश है, जो हमें बच्चों में कार्य करता दिखाई देता है, जिसकी हम अंशतः इसलिए उपेक्षा कर देते है कि वह इतने छोटे पैमाने पर होता है, और अंशतः इसलिए उपेक्षा कर देते हैं कि हम बच्चों में आचार सम्बन्धी उंचे मानदण्ड की आशा नहीं करते। इस बचपन की अवस्था में लौटकर हमारे स्वप्न हमारी बुराई और दुष्टता को बाहर लाते हुए दिखलाई देते हैं, पर यह दिखलावा धोखे में डालने वाला है, हालांकि हम इससे भयभीत हो गए हैं; हम उतने बुरे नहीं हैं जितने स्वप्न के निर्वचन के कारण मालूम होने लगते हैं।

यदि हमारे स्वप्नों के दुष्ट आवेग सिर्फ बचपन के या शैशवीय हैं; यदि हमारे आचार सम्बन्धी परिवर्धन का शुरू का रूप हैं, यदि स्वप्न हमें विचार और भावना में बालक बनाने का कार्यमात्र करता है तो इन बुरे स्वप्नों पर शर्मिंदा होना तर्कसंगत नहीं। परन्तु तर्क करने की योग्यता हमारे मानसिक जीवन का सिर्फ़ एक अंश है।

---

१. In-breeding.

इसके अलावा, उसमें और बहुत कुछ है जो तर्कसंगत नहीं और होता यह है कि तर्कसंगत न होते हुए भी ऐसे स्वप्नों पर शर्मिन्दा होते हैं । हम इनपर स्वप्न-सेंसरशिप की क्रिया करते हैं और जब इनमें से कोई इच्छा अपवाद रूप से ऐसे स्पष्ट रूप से हमारी चेतना में घुस आती है कि हम इसे पहचान जाते हैं, तब हमें शर्म और गुस्सा महसूस होता है; हां, हम कभी-कभी किसी विपर्यस्त स्वप्न पर ठीक इस तरह शर्मिन्दा होते हैं जैसे हम इसे सचमुच का समझते थे। जरा उस सम्मानित बुजुर्ग महिला के 'प्रेम-सेवा' विषयक स्वप्न पर, उसकी परेशानी भरी बात पर, गौर कीजिए; यद्यपि उसका अर्थ उसके सामने कभी पेश नहीं किया गया। इस प्रकार, समस्या अभी हल नहीं हुई और अब भी यह सम्भव है कि यदि हम स्वप्नों में बुराई के इस प्रश्न पर और आगे विचार करें तो किसी और निष्कर्ष पर तथा मनुष्य-स्वभाव के किसी और अन्दाजे पर पहुंच जाएं।

अपनी सारी जांच-पड़ताल से हम दो परिणामों पर पहुंचे, पर इनसे नई समस्याओं और नए संदेहों के शुरू होने का ही संकेत मिलता है। प्रथम, स्वप्नों में प्रतिगमन सिर्फ रूप का नहीं होता, बल्कि अंतःसार का भी होता है। यह हमारे विचारों का अभिव्यक्ति के आदिम रूप में अनुवाद ही नहीं कर देता, बल्कि हमारे आदिम-कालीन मानसिक जीवन की विशेषताओं——अहंकार की पुरानी प्रधानता तथा हमारे यौन जीवन के आरम्भिक आवेगों——को भी फिर जगा देता है, और हमें हमारे बौद्धिक विचार भी प्राप्त करा देता है, बशर्ते कि हम प्रतीकात्मकता की इस प्रकार धारणा बना सकें। और दूसरे ये सब पुरानी शैशवीय विशेषताएं, जो कभी प्रधान और एकमात्र प्रधान थीं, आज अचेतन में चली गई माननी होंगी, और हमें इसके बारे में अपने विचारों को बदलना और बढ़ाना होगा। अब 'अचेतन' शब्द सिर्फ उसका वाचक नहीं जो अस्थायी रूप से अर्थात् कुछ समय के लिए गुप्त है : अचेतन एक विशेष प्रदेश है जिसकी अपनी अलग इच्छाएं और अभिव्यक्ति की अलग रीतियां हैं और विशेष मानसिक तंत्र और प्रक्रियाएं है जो और जगह कार्य नहीं करतीं। परन्तु हमारे निर्वचन से प्रकट होनेवाले गुप्त विचार इस प्रदेश के निवासी नहीं होते; वे तो उस तरह के विचारों जैसे होते हैं जो जागृत जीवन में भी हमारे अन्दर रहते हैं, और फिर भी वे अचेतन हैं : इस विरोधाभास का परिहार कैसे किया जाए ? हमें यह अनुभव होने लगता है कि यहां हमें विवेक से काम लेना होगा। एक चीज़ जो हमारे चेतन जीवन में उत्पन्न होती है और जिसमें इसकी विशेषताएं होती हैं——हम इसे पिछले दिन का 'अवशेष' कहते हैं—अचेतन प्रदेश की एक वस्तु से मिलकर स्वप्न का निर्माण करती है, और दो प्रदेशों के बीच में ही स्वप्न-तंत्र पूरा हो जाता है। इस अवशेष पर अचेतन के प्रभाव का आघात होना ही सम्भाव्यतः प्रतिगमन के लिए अनिवार्य शर्त है। मन के अन्य क्षेत्रों की खोज करने से पहले तक हमारे लिए स्वप्नों की प्रकृति के बारे में अधिक गहरी जा सकने वाली

अन्तर्दृष्टि यही है; पर शीघ्र ही गुप्त स्वप्न-विचारों के अचेतनस्वरूप को दूसरा नाम देना होगा, ताकि इसका उस अचेतन सामग्री से विभेद किया जा सके जो शैशवीय क्षेत्र में आती है।

हम निःसन्देह यह भी पूछ सकते हैं : सोते हुए हमारे मानसिक व्यापार को ऐसे प्रतिगमन पर जबर्दस्ती कौन पहुंचाता है ? नींद को बिगाड़ने वाले मानसिक उद्दीपनों पर बिना इसके क्यों विचार नहीं किया जा सकता और यदि स्वप्न-सेंसर-शिप के कारण मानसिक व्यापार को अपने आपको पुराने और अब समझ में न आने वाले अभिव्यक्ति-रूपों में छिपाना पड़ता है, तो उन पुराने आवेगों, इच्छाओं और विशेषताओं को, जो अब दबाई जा चुकी हैं, पुनः जिन्दा करने का उद्देश्य क्या है ? संक्षेप में, **रूप और अन्तःसार में** प्रतिगमन का क्या लाभ है ? इसका एकमात्र सन्तोषजनक उत्तर यह होगा कि स्वप्नों के बन सकने का यह एक संभव तरीका है कि, गतिकीय दृष्टि से विचार करें तो, स्वप्न को जन्म देने वाले उद्दीपन से और किसी तरह छुटकारा नहीं मिल सकता, पर यह ऐसा उत्तर है जिसे उचित सिद्ध करने के लिए इस समय हमारे पास कोई युक्ति नहीं है।

व्याख्यान | १४

इच्छा-पूर्ति

क्या मैं उन क्रमिक पड़ावों की आपको फिर याद दिलाऊं जिनसे हम अपनी वर्तमान अवस्था में पहुंचे हैं ? जब अपनी विधि का प्रयोग करते हुए हम स्वप्नों में होने वाले विपर्यास पर पहुंचे थे, तब हमने कुछ समय के लिए इस पर विचार छोड़ देने का निश्चय किया था और स्वप्नों की प्रकृति के बारे में कोई निश्चित जानकारी हासिल करने के लिए बचपन के स्वप्नों पर विचार किया था। इसके बाद इस जांच के परिणाम प्राप्त करके हमने सीधे ही स्वप्न-विपर्यास की समस्या पर विचार किया और मुझे आशा है कि थोड़ा-थोड़ा करके हमने इसे अच्छी तरह समझ लिया है ! परन्तु अब हमें यह मानना पड़ेगा कि इन दो दिशाओं में हम जिन परिणामों पर पहुंचे हैं, वे पूरे-पूरे मेल नहीं खाते और यही उचित होगा कि हम अपने परिणामों में मेल बैठाएं।

दोनों जांच-पड़तालों से यह स्पष्ट हो गया है कि स्वप्न-तंत्र की सारभूत विशेषता यह है कि विचारों का मतिभ्रमात्मक अनुभव में रूपान्तर हो जाता है। यह देखकर चकित रह जाना पड़ता है कि यह प्रक्रम कैसे हो जाता है, परन्तु यह सामान्य मनोविज्ञान के विचार करने की समस्या है, और हमें यहां इस पर बिचार नहीं करना है। बालकों के स्वप्नों से हमें यह पता चला है कि स्वप्न-तंत्र का उद्देश्य किसी इच्छा की पूर्ति द्वारा ऐसे मानसिक उद्दीपन को दूर कर देना है जो नींद में बाधा डाल रहा है। विपर्यस्त स्वप्नों के बारे में हम कोई ऐसी ही बात तब तक नहीं कह सकते थे, जब तक हम उनके अर्थ लगाने का तरीका न समझ लें, पर शुरू से ही हमें यह आशा थी कि हम उनके विषय में अपने विचारों का अपने शैशवीय स्वप्न विषयक विचारों से मेल बैठा सकेंगे। यह आशा पहली बार तब पूरी हुई जब हमने यह देखा कि सब स्वप्न असल में शैशवीय स्वप्न हैं, कि उनमें बचपन की सामग्री का प्रयोग होता है, और बच्चों के मन में रहने वाले आवेग और तंत्र उनमें स्पष्ट रूप से होते हैं। जब यह महसूस करते हैं कि स्वप्नों में होनेवाले विपर्यास को हमने अच्छी तरह समझ लिया है, तब हमें यह

पता लगाना चाहिए कि यह धारणा विपर्यस्त स्वप्नों के बारे में भी सही है या नहीं, कि स्वप्न इच्छा-पूर्ति होते हैं।

अभी हमने कई स्वप्न का अर्थ लगाया था, पर उनमें इच्छा-पूर्ति के प्रश्न पर बिलकुल विचार नहीं किया था। मैं निश्चित रूप से समझता हूं कि उनपर विचार करते हुए यह प्रश्न बार-बार आपके मन में उठता रहा : "उस इच्छा-पूर्ति का क्या हुआ जिसे स्वप्न-तंत्र का उद्देश्य माना जाता है ?" यह प्रश्न अवश्य महत्वपूर्ण है, क्योंकि सामान्य लोगों में से हमारे आलोचक निरन्तर यह प्रश्न पूछते हैं। आप जानते ही हैं कि मनुष्य जाति में बौद्धिक नवीनताओं के प्रति सहज उदासीनता है। इसके प्रकट होने का एक तरीका यह है कि ऐसी किसी भी नवीनता को तुरन्त उसके छोटे से छोटे रूप में ले आया जाता है और यदि सम्भव हो तो उसे किसी रूढ़ोक्ति का रूप दे दिया जाता है। 'इच्छा-पूर्ति' स्वप्नों के नए सिद्धांत के लिए एक रूढ़ि बात हो गई है। लोग सुनते हैं कि स्वप्नों को इच्छा-पूर्ति बताया जाता है। तब वे पूछते हैं : "इच्छापूर्ति कहां से पैदा होती है ?" और उनके यह प्रश्न पूछने का अर्थ यह है कि वे उस विचार को ही अस्वीकार करते हैं। उन्हें तुरन्त अपने ऐसे असंख्य स्वप्न याद आ जाते हैं जिनमें बड़ी अप्रिय भावना अनुभव हुई थी, और कभी-कभी तो बड़ा पीड़ाकारक भय तक अनुभव हुआ था, और इस प्रकार स्वप्नों के विषय में मनोविश्लेषण के सिद्धान्त का यह कथन उन्हें बहुत असम्भाव्य मालूम होता है। इसका आसानी से यह जवाब दिया जा सकता है कि विपर्यस्त स्वप्नों में इच्छा-पूर्ति खुले रूप में प्रकट नहीं होती, बल्कि उसे खोजना पड़ता है। इसलिए यह तब तक प्रदर्शित नहीं की जा सकती जब तक स्वप्नों का अर्थ न लगाया गया हो। आप यह भी जानते हैं कि इन विपर्यस्त स्वप्नों की तह में कार्य कर रही इच्छाएं वे होती हैं जिन्हें सेंसरशिप ने निषिद्ध और अस्वीकृत कर दिया है, और कि उनके होने के कारण ही विपर्यास पैदा होता है, और सेंसरशिप का हस्तक्षेप होता है। परन्तु सामान्य व्यक्ति को यह समझना कठिन है कि हमें स्वप्न का अर्थ लगाने से पहले उसमें इच्छा-पूर्ति होने के विषय में प्रश्न नहीं उठाना चाहिए। वह सदा इस बात को भूल जाता है। उसकी इच्छा-पूर्ति के सिद्धान्त को मानने की इच्छा असल में स्वप्न-सेंसरशिप का ही परिणाम है, जो उसे वास्तविक विचार के स्थान पर एक स्थानापन्न लाने को प्रेरित करती है, और इन काट-छांट की हुई स्वप्न-इच्छाओं को उसके अस्वीकार कर देने से ही पैदा होती है।

निःसन्देह, हमें खुद यह आवश्यकता महसूस होनी चाहिए कि इतने सारे स्वप्नों की वस्तु कष्टकारक होने का स्पष्टीकरण करें, पर विशेष रूप से हम यह जानना चाहेंगे कि हमें चिन्ता-स्वप्न क्यों आते है। यहां पहली बार, हमारे सामने स्वप्नों में भावों या मनोविकारों की समस्या आती है। इस समस्या पर विशेष विचार करने की आवश्यकता है, पर बदकिस्मती से हम इसपर इस समय विचार नहीं कर

सकते। यदि स्वप्न इच्छा-पूर्ति है तो कोई कष्टदायक भाव कभी भी इसमें नहीं आने चाहिएं : इस बारे में सामान्य आदमी का कहना ठीक मालूम होता है, पर इस मामले में तीन बातें उलझनें पैदा करती हैं, जिन्हें सामान्य लोग नजरंदाज़ कर देते हैं।

पहली : हो सकता है कि स्वप्न-तंत्र इच्छा-पूर्ति की सृष्टि करने में पूरी तरह सफल न हुआ हो, और इस कारण गुप्त विचारों की कष्टकारी भावना का कुछ अंश व्यक्त स्वप्न में भी आ गया हो। तब मनोविश्लेषण को यह दिखाना होगा कि ये विचार उस स्वप्न की अपेक्षा बहुत अधिक कष्टकारी थे, जो इनसे बना है। इतनी बात हर उदाहरण में सिद्ध की जा सकती है। तो हम स्वीकार करते हैं कि स्वप्न-तंत्र का प्रयोजन सफल नहीं हुआ क्योंकि प्यास के उद्दीपन से उत्पन्न पीने के स्वप्न से वह प्यास नहीं बुझती। इसके बाद भी आदमी प्यासा रहता है और उसे जागकर पानी पीना पड़ता है। तो भी, यह एक ठीक स्वप्न है; इसमें इसके सारभूत स्वरूप की किसी बात का अभाव नहीं है। हर सूरत में स्पष्ट रूप से पहचाना जा सकने वाला आशय तो प्रशंसनीय है ही। स्वप्न-तंत्र में विफलता होने के ये उदाहरण बहुत काफ़ी मिलते हैं, और इसका एक कारण यह है कि स्वप्न-तंत्र के लिए वस्तु का रूप-भेद करने की अपेक्षा भाव के स्वरूप में अभीष्ट परिवर्तन लाना बहुत कठिन होता है। भाव प्रायः वश में नहीं आते, इसलिए यह होता है कि स्वप्न-तंत्र के प्रक्रम में स्वप्न-विचारों की कष्टकारक **वस्तु** इच्छा-पूर्ति का रूप ले लेती है, पर कष्टकारक **भाव** जैसे का तैसा कायम रहता है। जब यह होता है तब भाव और वस्तु में कोई मेल नहीं होता, जिससे आलोचकों को यह कहने का अवसर मिलता है कि स्वप्न इच्छा-पूर्ति से बिलकुल भिन्न चीज है क्योंकि हानिरहित वस्तु के साथ भी स्वप्न में कष्टकारक भावनाएं जुड़ी होती हैं। इस नासमझी की-सी बात का हम यह उत्तर देंगे कि इस तरह के स्वप्नों में ही स्वप्न-तंत्र की इच्छा-पूर्ति की प्रकृति सबसे अधिक दिखाई देती है, क्योंकि यह वहां सबसे अलग अकेली नज़र आती है। इस आलोचना में भूल इसलिए होती है कि जो लोग स्नायु-रोगों से परिचित नहीं हैं, वे वस्तु और भाव में वस्तुतः जितना सम्बन्ध है, उससे अधिक नज़दीकी संबंध की कल्पना करते हैं, और इसलिए यह नहीं समझ सकते कि वस्तु में परिवर्तन होते हुए भी उसके साथ वाला भाव अपरिवर्तित रह सकता है।

दूसरी बात, जो इससे भी अधिक महत्व की है पर साधारण लोगों द्वारा इसी तरह उपेक्षित कर दी जाती है, यह है : इच्छापूर्ति से निश्चित रूप से कुछ सुख मिलना चाहिए, पर वे पूछते हैं : "किसे ?" निःसन्देह उस व्यक्ति को जिसमें वह इच्छा है, पर हम जानते हैं कि स्वप्न-द्रष्टा का अपनी इच्छाओं के प्रति एक विचित्र रुख होता है; वह उन्हें अस्वीकार करता है, उनमें काट-छांट करता है; संक्षेप में, वह उनसे कोई वास्ता नहीं रखना चाहता। इसलिए उनकी पूर्ति उसे कोई सुख

नहीं दे सकती, बल्कि इससे उल्टी अनुभूति देगी और यहां अनुभव से पता चलता है कि यह 'विपरीत या उलटी' अनुभूति जिसकी अभी व्याख्या करनी है, चिन्ता का रूप ग्रहण करती है। जहां तक स्वप्न-द्रष्टा की इच्छाओं का प्रश्न है, वे ऐसे दो पृथक् व्यक्तियों के समान हैं जो किसी महत्वपूर्ण सांझी बात द्वारा घनिष्ट रूप से जुड़े हुए हैं। इसके विस्तार में जाने के बजाय मैं आपको वह प्रसिद्ध 'परी की कहानी' याद दिलाऊंगा, जिसमें आप इन सम्बन्धों की आवृत्ति होती देखेंगे। एक भली परी ने किसी ग़रीब आदमी और उसकी स्त्री से उनकी किन्हीं तीन इच्छाएं पूरी करने का वायदा किया। वे खुश हो गए और उन्होंने अपनी इच्छाएं सावधानी से चुनने का निश्चय किया। परन्तु स्त्री अगली झोंपड़ी में पकाए जा रहे कोफ्ते की गन्ध से आकृष्ट हो गई, और उसने उस जैसे दो कोफ्ते अपने लिए प्राप्त करने की इच्छा की, और वे फौरन हाजिर हो गए--इस तरह पहली इच्छा पूरी हो गई। इसपर पुरुष आपे से बाहर हो गया और गुस्से में उसने यह इच्छा की कि वे दोनों कोफ्ते उसकी पत्नी की नाक की नोक पर लटक जाएं। यह भी हो गया। वे कोफ्ते अपने स्थान से नहीं हटाए जा सके। इस तरह दूसरी इच्छा भी पूरी हो गई। पर यह पुरुष की इच्छा थी और इसकी पूर्ति स्त्री के लिए बहुत अप्रिय थी। बाकी कहानी आप जानते हैं : क्योंकि आख़िरकार वे पति-पत्नी थे, इसलिए उसे तीसरी इच्छा यह करनी पड़ी कि कोफ्ते स्त्री की नाक की नोक पर से हट आवें। हम इस परी की कहानी का दूसरे प्रसंगों में बहुत बार प्रयोग कर सकते हैं, पर यहां मैं इससे सिर्फ यह तथ्य स्पष्ट करना चाहता हूं कि हो सकता है कि एक व्यक्ति की इच्छा की पूर्ति किसी दूसरे के लिए बड़ी अरुचिकर हो, जब तक कि वे दोनों व्यक्ति पूरी तरह एक रूप और एकात्म न हों।

अब 'चिन्ता-स्वप्नों' को और भी अधिक अच्छी तरह समझना कठिन नहीं रहेगा। एक प्रेक्षण का उपयोग और करना है, और इसके बाद हम ऐसी परिकल्पना बना सकते हैं जिसका कई बातों से समर्थन होता हो। वह प्रेक्षण यह है कि चिन्ता-स्वप्नों में प्रायः ऐसी वस्तु होती है जिसमें कोई विपर्यास नहीं होता। ऐसा लगता है, मानो वह सेन्सरशिप से बच निकली है। इस तरह का स्वप्न एक अप्रच्छन्न, अर्थात् अपने स्पष्ट रूप में दिखाई देने वाली, इच्छा-पूर्ति होता है, और इसमें इच्छा वह नहीं होती जिसे स्वप्न-द्रष्टा स्वीकार करना चाहता है, बल्कि वह होती है जिसे उसने अस्वीकार कर दिया है। सेन्सरशिप की क्रिया होने के स्थान पर चिन्ता पैदा हो गई है। शैशवीय स्वप्न तो स्वप्न-द्रष्टा द्वारा स्वीकृत इच्छा की खुलेआम पूर्ति होता है, और साधारण विपर्यस्त स्वप्न दमित[1] अर्थात् अधिक दबाई गई, इच्छा की प्रच्छन्न अर्थात् अस्पष्ट या छिपी हुई पूर्ति होता है। परन्तु

---

१. Repressed.

चिन्ता-स्वप्न का सूत्र यह है कि यह दमित इच्छा की खुले आम पूर्ति होता है। चिन्ता इस बात का संकेत है कि दमित इच्छा सेन्सरशिप की अपेक्षा अधिक प्रबल सिद्ध हुई है, और उसके बावजूद अपनी पूर्ति कर चुकी है, या करने वाली थी। हम यह बात समझ सकते हैं कि हमारे लिए, जो सेन्सरशिप के पक्ष में हैं, दमित इच्छा की पूर्ति दु:खदायी भाव पैदा करने और कोई सफाई पेश करने की बात ही हो सकती है तो यदि आप चाहें तो इस तरह कह सकते हैं कि हमारे स्वप्नों में व्यक्त चिन्ता वह चिन्ता है जो उन इच्छाओं की प्रबलता के कारण अनुभव होती है जिन्हें और मौकों पर हम दबा दिया करते हैं। सिर्फ़ स्वप्नों के अध्ययन से हमें पता नहीं चलता कि यह सफाई चिन्ता का रूप क्यों ले लेती है। स्पष्ट है कि हमें चिन्ता पर दूसरे प्रसंगों में विचार करना चाहिए।

जो परिकल्पना बिना किसी विपर्यास वाले चिन्ता-स्वप्नों के लिए ठीक है, वह उन स्वप्नों के लिए भी जिनमें कुछ विपर्यास हो गया है, और दूसरी प्रकार के अप्रिय स्वप्नों के लिए भी, जिनमें उससे उत्पन्न अप्रिय भावनाएं सम्भवत: चिन्ता के पास तक जा पहुंचती हैं, मानी जा सकती है। साधारणतया चिन्ता-स्वप्न हमें जगा देते हैं। प्राय: हम अपनी नींद उस समय पहले ही तोड़ देते हैं, जब स्वप्न की तह में मौजूद, दमित इच्छा सेन्सरशिप को हराकर पूर्ण पूर्ति पर पहुंचती है। ऐसी अवस्था में स्वप्न अपना प्रयोजन पूरा नहीं कर सका, पर इससे इसकी सारभूत विशेषता नहीं बदल गई। हमने स्वप्न की तुलना रात के चौकीदार से की है। वह नींद का पहरेदार है और उसका प्रयोजन नींद में रुकावट को रोकना है। रात के चौकीदारों को भी उस समय स्वप्नों की ही तरह सोने वालों को जगाना पड़ता है जब वे गड़बड़ी या संकट के कारण को दूर करने में अकेले समर्थ नही होते। तो भी, कभी-कभी हमें तब भी नींद जारी रखने में सफलता हो जाती है जब हमारे स्वप्न हमें कुछ बेचैन करने लगते हैं, और चिन्ता पैदा करने लगते हैं। हम नींद में अपने आपसे कहते हैं : "आखिर यह स्वप्न ही तो है", और सोते रहते है।

आप पूछेंगे कि ऐसा कब होता है कि स्वप्न की इच्छा सेन्सरशिप को हराने में समर्थ हो जाती है ? यह इच्छा पर या सेन्सरशिप पर निर्भर है। हो सकता है कि कभी-कभी अज्ञात कारणों से इच्छा की प्रबलता बहुत अधिक हो जाती हो, पर हमारी धारणा यह है कि शक्ति-संतुलन में यह परिवर्तन होने का कारण प्राय: सेन्सरशिप का रुख ही होता है। हम पहले जान चुके हैं कि सेन्सरशिप की तीव्रता प्रत्येक उदाहरण में अलग-अलग होती है और वह विभिन्न अवयवों से विभिन्न प्रकार की सख्ती बरतती है। अब हम इतनी बात और कहना चाहते है कि इसका साधारण व्यवहार भी बहुत बदलने वाला होता है, और यह उसी अवयव के प्रति भी सदा एक समान कठोर नहीं दिखाई देती। तब यदि ऐसा हो कि सेन्सरशिप किसी स्वप्न-इच्छा के विरुद्ध, जो इसे उखाड़ फेंकने को तैयार है, अपने आपको

शक्तिहीन अनुभव करती है तो वह विपर्यास का उपयोग करने के बजाय अपना आखिरी हथियार काम में लाती है, और चिन्ता पैदा करके नींद को नष्ट कर देती है।

यहां आकर हमें यह महसूस होता है कि अब भी हमारे पास इस विषय में कोई धारणा नहीं कि ये दृष्ट, अस्वीकृत इच्छाएं रात के समय ही क्यों उभर आती हैं, और हमें नीद में परेशान करती हैं। इसका उत्तर एक और परिकल्पना द्वारा ही दिया जा सकता है, जो नींद के स्वरूप पर प्रकाश डालती है। दिन के समय इन इच्छाओं पर सेन्सरशिप का भारी बोझ पड़ता है और साधारणतया यह असम्भव होता है कि वे अपने आपको ज़रा भी अनुभव करा सकें। पर रात में यह सम्भावना है कि मानसिक जीवन की और सब चेष्टाओं की तरह यह सेन्सरशिप निलम्बित[1] अर्थात् क्रियाहीन, या बहुत ही कमज़ोर हो जाती हो और नींद की एकमात्र इच्छा ही व्यापक हो जाती हो। इस प्रकार, रात के समय सेन्सरशिप की इस आंशिक निष्क्रियता के कारण ही निषिद्ध इच्छाएं फिर सक्रिय हो सकती हैं। इनसोमनिया, अर्थात् निद्राहीनता रोग, से पीड़ित दुर्बल स्नायु वाले लोग यह स्वीकार करते हैं कि शुरू में उनकी निद्राहीनता अपनी इच्छा के अधीन थी; कारण यह कि उन्हें सोने की हिम्मत नहीं पड़ती थी क्योंकि वे अपने स्वप्नों से डरते थे—आशय यह हुआ कि वे सेन्सरशिप की कम जागरूकता के परिणामों से डरते थे। आपको यह समझने में कोई कठिनाई नहीं होगी कि सेन्सरशिप की यह कमी घोर असावधानी का पक्ष पोषण नहीं करती। नींद हमारे मोटर-कार्यों[2] को कमज़ोर कर देती है। यदि हमारे दुष्ट आशय हमारे भीतर हलचल शुरू कर दें, तो भी वे अधिक से अधिक इतना ही कर सकते हैं कि एक स्वप्न पैदा कर दें जो सब व्यावहारिक प्रयोजनों की दृष्टि से हानिरहित होता है, और इस आराम देने वाली परिस्थिति के कारण ही सोने वाला यह कह दिया करता है—यह तो सच है कि वह रात में यह बात कहता है पर यह उसके स्वप्न-जीवन का हिस्सा नहीं होती—"यह तो सिर्फ स्वप्न है।" इस प्रकार हम इसे चलने देते हैं और सोना जारी रखते हैं।

तीसरी बात यह है कि यदि आप हमारे इस विचार को याद करें कि अपनी इच्छा के विरुद्ध यत्न करता हुआ स्वप्न-द्रष्टा दो पृथक, परन्तु फिर भी घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए व्यक्तियों का मिला-जुला रूप है तो आप इस बात का एक और सम्भव तरीका समझ सकेंगे कि इच्छा-पूर्ति के द्वारा कोई बहुत अप्रिय बात कैसे पैदा की जा सकती है। मेरा संकेत सज़ा की ओर है। यहां भी तीन इच्छाओं वाली परी की कहानी से बात स्पष्ट होने में मदद मिलेगी। तश्तरी में रखे हुए कोफ्ते पहले व्यक्ति (स्त्री)

---

१. Suspended २. Motor-functions.

की इच्छा की प्रत्यक्ष पूर्ति थे। उसकी नाक की नोक पर लगे हुए कोफ्ते दूसरे व्यक्ति (पति) की इच्छा की पूर्ति हैं, पर साथ ही वे पत्नी की मूर्खतापूर्ण इच्छा की सजा भी हैं। स्नायु-रोगों में हमें ऐसी इच्छाएं मिलेंगी जो परी की कहानी की तीसरी अर्थात् एकमात्र शेष इच्छा से प्रयोजन की दृष्टि से मिलती-जुलती होंगी। मनुष्य के मानसिक जीवन में ऐसी बहुत सारी सजा की प्रवृत्तियां हैं। वे बड़ी प्रबल होती हैं, और उन्हें हम अपने कुछ कष्टकारक स्वप्नों का कारण मान सकते हैं। अब शायद आप यह सोचेंगे कि इस सबके बाद प्रसिद्ध इच्छा-पूर्ति की कोई खास चीज नहीं बची, पर बारीकी से विचार करने पर आप यह स्वीकार करेंगे कि आपका कहना ग़लत है। स्वप्नों के सम्भावित स्वरूप के बारे में, कुछ लेखकों के अनुसार उनके असली स्वरूप के बारे में, जो बहुत सारी सम्भावनाएं हो सकती हैं, (इनपर बाद में विचार किया जाएगा), उनकी तुलना में हल, अर्थात् इच्छा-पूर्ति चिन्ता-पूर्ति और सजा-पूर्ति, निश्चित ही नगण्य है। इसके साथ इतनी बात और जोड़ दीजिए कि चिन्ता इच्छा से ठीक उलटी या विरोधी चीज़ है, और विरोधी चीजें साहचर्य में एक दूसरे के बहुत निकट रहती हैं और जैसा कि हम बता चुके हैं, वे अचेतन में वस्तुतः एक दूसरे के ऊपर पड़ी होती हैं। इसके अलावा सजा भी एक इच्छा की पूर्ति है—यह दूसरे अर्थात् सेंसर करने वाले व्यक्ति की इच्छा-पूर्ति है।

तो कुल मिलाकर मैंने इच्छा-पूर्ति के सिद्धांत पर आपके आक्षेपों को स्वीकार नहीं किया, पर हमें प्रत्येक विपर्यस्त स्वप्न में इसकी उपस्थिति दिखानी होगी, और निश्चित समझिए कि हम इस जिम्मेदारी से ज़रा भी बचना नहीं चाहते। हम डेढ़ फ़्लोरिन में तीन बेकार थियेटर-टिकटोंवाले स्वप्न पर, जिसका हम पहले निर्वचन कर चुके हैं, विचार करेंगे; जिससे हम पहले बहुत कुछ सीख चुके हैं। मुझे आशा है कि वे बातें आपको याद होंगी। एक महिला ने, जिसके पति ने उसे उसकी (उससे सिर्फ तीन महीने छोटी) सहेली एलिस की सगाई की बात बताई थी, अगली रात स्वप्न में देखा कि मैं और मेरा पति थियेटर में हैं और बैठने के स्थानों का एक हिस्सा प्रायः खाली है। उसके पति ने उससे कहा था कि एलिस और उसका भावी पति भी थियेटर आना चाहते थे पर वे नहीं आ सके क्योंकि उन्हें बहुत रद्दी स्थान, अर्थात् डेढ़ फ़्लोरिन में तीन टिकट वाले स्थान मिल सके। उसकी पत्नी ने कहा कि उन्हें इससे बहुत हानि नहीं हुई। हमने देखा था कि स्वप्न-विचारों का सम्बन्ध उसके जल्दी विवाह करने और अपने पति से असन्तुष्ट रहने के कारण उत्पन्न परेशानी से था। हमें यह जानने की उत्सुकता होगी कि ये निराशाभरे विचार इच्छा-पूर्ति के रूप में कैसे बदले, और व्यक्त वस्तु में इच्छा-पूर्ति का कौन-सा चिह्न देखा जा सकता है। यह तो हम पहले ही जानते हैं कि 'बहुत जल्दी, बहुत जल्दबाज़ी-वाले अवयव' को सेंसरशिप ने पहले ही लुप्त कर दिया है। खाली स्थान इस अवयव का निर्देश

करते हैं। **'डेढ़ में तीन'** वाक्यांश अब हमें पहले की अपेक्षा अधिक समझ में आने लगा है क्योंकि उसके बाद हम प्रतीकों की जानकारी हासिल कर चुके हैं।[1] संख्या **तीन** असल में एक पुरुष की प्रतीक है और हम व्यक्त अवयव का आसानी से यह अर्थ कर सकते हैं: "दहेज द्वारा एक आदमी (पति) खरीदना" ("मैं अपने दहेज द्वारा दस गुना अच्छा आदमी खरीद सकती थी")। **थियेटर जाना** स्पष्टतः विवाह का प्रतीक है, **टिकट जल्दी हासिल करना** 'विवाह जल्दी करने' का सीधा स्थानापन्न है। यह स्थानापन्नता इच्छा-पूर्ति का कार्य है। स्वप्न-द्रष्टा ने अपने शीघ्र विवाह पर हमेशा उतना असन्तोष अनुभव नहीं किया था। जिस दिन उसने अपनी सहेली की सगाई की बात सुनी उस समय तक उसे अपने विवाह का अभिमान था और वह अपनी सहेली की अपेक्षा अपने को अधिक सौभाग्यवती मानती थी। आमतौर से सुनने में आता है कि निष्कपट लड़कियां सगाई हो जाने पर प्रायः इस बात पर खुशी जाहिर करती हैं कि अब वे शीघ्र ही सब नाटकों में जा सकेंगी। और अब तक निषिद्ध सब चीजें देख सकेंगी।

यहां कुतूहल का संकेत और 'ताकने' की जो इच्छा प्रदर्शित की गई, वह निःसन्देह शुरू में, विशेष रूप से माता-पिता के बारे में, यौन **'ताकने के आवेग'** से पैदा हुई, और लड़की को जल्दी विवाह करने के लिए प्रेरित करने में यह प्रबल प्रेरक कारण बना। इस प्रकार, थियेटर जाना विवाहित होने का स्पष्ट रूप से सूचक स्थानापन्न बन गया। इस समय अपने शीघ्र विवाह के कारण परेशान होने पर वह उस समय में जा पहुंची जब इसी विवाह ने उसकी **दर्शनेच्छा**[2] (ताकने की इच्छा) को पूरा किया था, और इस प्रकार उसने इस पुराने इच्छा-आवेग से प्रेरित होकर विवाह के विचार के स्थान पर थियेटर जाने की बात स्थापित कर दी।

हम कह सकते हैं कि छिपी हुई इच्छा-पूर्ति प्रदर्शित करने के लिए हमने जो उदाहरण चुना है, वह सबसे अधिक सुविधाजनक उदाहरण नहीं है, पर और सब विपर्यस्त स्वप्नों में ऊपर प्रयुक्त रीति के सदृश रीति से ही चलना होगा। इस समय यहां ऐसा करना मेरे लिए सम्भव नहीं। इसलिए मैं सिर्फ़ अपना यह विश्वास प्रकट करूंगा कि ऐसी प्रक्रिया सदा सफल सिद्ध होगी। पर मैं अपने सिद्धान्त के इस पहलू पर कुछ अधिक कहना चाहता हूं। अनुभव से मुझे मालूम हुआ है कि स्वप्न के सारे सिद्धान्त में सबसे अधिक संकट वाली चीज़ यही है, जिसमें बहुत-से खंडनों और ग़लतफ़हमियों की गुंजायश होती है। इसके अतिरिक्त, आप शायद यह समझ

---

१. इस सन्तानहीन स्त्री के स्वप्न में आने वाली संख्या तीन का एक और निर्वचन भी आसानी से हो सकता है पर मैं यहां उसका उल्लेख नहीं करूंगा क्योंकि इस विश्लेषण से उसे निर्दिष्ट करने वाली कोई सामग्री नहीं मिली।

२. Skoptophilia.

रहे हैं कि मैंने अपने कथन का कुछ अंश पहले ही वापस ले लिया है, क्योंकि मैंने यह कहा है कि स्वप्न, इच्छा-पूर्ति या इसकी विरोधी चीज़ अर्थात् चिन्ता या सज़ा है जो वास्तविक रूप में आ गई है, और आप समझेंगे कि यह बहुत अच्छा मौका है जबकि मुझे अपने कथन को और सीमित करने के लिए मजबूर किया जा सकता है। मुझे इस कारण भी बुरा-भला कहा गया है कि मैं अपने को सुबोध लगने वाले तथ्यों को इतने संक्षिप्त रूप में पेश करता हूं कि वे सुनने वालों को कायल नहीं कर पाते।

जब कोई व्यक्ति स्वप्न-निर्वचन में इतनी दूर तक जा चुका, और यहां तक हमारे सब निष्कर्षों को स्वीकार कर चुका है, तब प्रायः इच्छा-पूर्ति के इस प्रश्न पर आकर वह रुक जाया करता है, और पूछता है : "मैं मानता हूं कि प्रत्येक स्वप्न का कुछ अर्थ है, और मनोविश्लेषण की विधि का प्रयोग करके यह अर्थ पता लगाया जा सकता है, पर विरोधी बातें सामने देखते हुए भी उसे सदा इच्छा-पूर्ति के फार्मूले में ही क्यों फिट करना चाहिए। जैसे दिन में हमारे विचार कई पहलुओं वाले होते हैं, वैसे ही हमारे रात के विचार भी क्यों नहीं होने चाहिएं, अर्थात् कभी कोई स्वप्न इच्छा-पूर्ति भी हो सकता है; पर कभी, जैसा कि आप स्वयं मानते हैं, वह इसका विपरीत या उल्टा, अर्थात् भय का वास्तविक रूप भी हो सकता है, या इसी तरह किसी संकल्प की अभिव्यक्ति, कोई चेतावनी, किसी समस्या के पक्ष और विपक्ष में विचार, या कोई भर्त्सना या अन्तःकरण की कोई कचोट हो सकता है या जो काम करना है उसके लिए अपने आप को तैयार करने की कोशिश हो सकता है, इत्यादि। किसी इच्छा या अधिक से अधिक इसकी विपरीत बात पर ही सदा आग्रह क्यों हो ?"

यह माना जा सकता है कि यदि और सब बातों पर हम एक मत हों तो इस प्रश्न पर मतभेद का कोई बड़ा महत्व नहीं ? क्या हम इतने से सन्तोष नहीं कर सकते कि हमने स्वप्नों का अर्थ पता लगा लिया है, और वे तरीके जान लिए हैं जिनसे हम उनका अर्थ पता लगा सकते हैं ? यदि हम इस अर्थ को बहुत सख्ती से सीमित करने की कोशिश करते हैं तो निश्चित रूप से हम बहुत पीछे लौट आते हैं, पर यह बात नहीं। इस विषय पर ग़लतफ़हमी हमारे स्वप्न सम्बन्धी ज्ञान की सारभूत और आवश्यक बातों पर पहुंच जाती है, और स्नायु-रोगों को समझने के कार्य में इसके महत्व को कम कर देती है। इसके अलावा, 'दूसरे पक्ष पर अनुग्रह करने के लिए', जिसका व्यवसाय-जीवन में कुछ महत्व है, तैयार रहने की तत्परता यहां न केवल अप्रासंगिक है, बल्कि वैज्ञानिक मामलों में वस्तुतः हानिकारक है। इस प्रश्न पर कि स्वप्नों का अर्थ कई तरफा या अनेक पहलुओं वाला क्यों नहीं होना चाहिए, मेरा उत्तर वही है, जो ऐसे मामले में प्रायः होता है : मैं नहीं जानता कि वैसा क्यों नहीं होना चाहिए। यदि वे वैसे होते तो मुझे कोई ऐतराज न होता। जहां तक मेरा सम्बन्ध है वे वैसे हो सकते हैं ! पर स्वप्नों के इस अधिक विस्तृत

और अधिक सुविधाजनक अवधारण के मार्ग में सिर्फ़ एक छोटी-सी बाधा है—कि तथ्यत: वे वैसे नहीं होते ! मेरा दूसरा उत्तर इस बात पर बल देगा कि यह भावना कि स्वप्न विचारों की और बौद्धिक कार्यों की बहुत तरह की रीतियों के निरूपक होते हैं, मेरे लिए कोई नई चीज़ नहीं है। एक बार एक रोगी के रोगवृत्त (हिस्ट्री) में मैंने एक ऐसा स्वप्न दर्ज किया जो लगातार तीन रातों तक आया और फिर कभी नहीं आया; मैंने उसकी यह व्याख्या की कि यह स्वप्न किसी संकल्प का प्रतिरूप था, और उस संकल्प के पूरा होते ही इसके फिर दीखने की आवश्यकता नहीं रही। बाद में मैंने एक स्वप्न प्रकाशित किया जो एक अपराध-स्वीकृति को निरूपित करता था। इसलिए यह कैसे हो सकता है कि मैं स्वयं अपना खंडन करूं और बलपूर्वक कहूं कि स्वप्न सदा और एकमात्र इच्छा-पूर्ति होते हैं ?

मैं कोई ऐसी मूर्खतापूर्ण ग़लतफ़हमी चलने देने के बजाय, जिससे स्वप्नों के विषय में हमारी सारी मेहनत अकारथ हो जाए, इस बात पर बल देना ज्यादा अच्छा समझता हूं। उस ग़लतफ़हमी के कारण लोग **स्वप्न को गुप्त स्वप्न-विचार समझ लेते हैं**, और स्वप्न के बारे में वे बातें कह देते हैं **जो गुप्त स्वप्न-विचारों पर और सिर्फ उन्हीं पर** लागू होती हैं। कारण कि यह बिलकुल सच है कि स्वप्न अभी बताए गए सब तरह के विचारों, अर्थात् संकल्प, चेतावनी, चिन्तन, आचार सम्बन्धी किसी समस्या को हल करने की तैयारी या कोशिश इत्यादि को निरूपित भी कर सकते हैं, और ये बातें स्वप्नों के स्थान पर भी आ सकती हैं, पर जब आप बारीकी से देखेंगे तो आपको पता चलेगा कि यह बात सिर्फ उन गुप्त विचारों के बारे में सही है जो स्वप्न के रूप में बदल गए हैं। स्वप्नों के निर्वचनों से आपको मालूम हुआ था कि मनुष्य के अचेतन विचार-प्रक्रमों में ऐसे संकल्प, तैयारियां और चिन्तन भरे पड़े हैं जिनमें से स्वप्न-तंत्र के द्वारा स्वप्न बनते हैं। यदि किसी समय आपकी दिलचस्पी स्वप्न-तंत्र में उतनी नहीं है, बल्कि लोगों के अचेतन विचार-प्रक्रमों पर केन्द्रित है, तो तब आप स्वप्न-निर्माण को छोड़ देंगे, और स्वप्नों के बारे में यह कहने लगेंगे कि वे किसी चेतावनी, संकल्प आदि को निरूपित करते हैं, और यह बात व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए सही है। मनोविश्लेषण-कार्यों में प्राय: यह किया जाता है : साधारणतया हम स्वप्नों के व्यक्त रूप को हटाने की कोशिश करते हैं, और उसके स्थान पर उन सम्बन्धित गुप्त विचारों को लाने का यत्न करते हैं जिनमें स्वप्न पैदा होते हैं।

इस प्रकार हमें गुप्त स्वप्न-विचारों का मूल्यांकन करने की कोशिश से बिलकुल प्रासंगिक रूप से यह पता चलता है कि ऊपर गिनाए गए सब अति जटिल मानसिक कार्य अचेतन रूप से किए जा सकते हैं—यह निष्कर्ष जितना विस्मयकारक है, निश्चित रूप से उतना ही महत्वपूर्ण है।

पर थोड़ा-सा पीछे लौटिए। आपका यह कहना बिलकुल सही है कि स्वप्न इन

अनेक विचार-रीतियों को निरूपित करते हैं, परन्तु यह तभी सही है जब आपके मन में बिलकुल स्पष्ट हो कि यह बात को संक्षिप्त रूप में कहने का तरीका है, और आप यह कल्पना न करें कि आप जिस अनेकरूपता की बात कर रहे हैं, वह स्वयं ही **स्वप्नों** के सारभूत स्वरूप का हिस्सा है। जब आप किसी 'स्वप्न' की चर्चा करते हैं, तब आपका आशय या तो व्यक्त स्वप्न अर्थात् स्वप्न-तंत्र से उत्पन्न वस्तु होगा, अथवा अधिक से अधिक वह स्वप्न-तंत्र अर्थात् मानसिक प्रक्रम होगा, जो गुप्त स्वप्न-विचारों को व्यक्त स्वप्नों के रूप में लाता है। इस शब्द का किसी और अर्थ में प्रयोग विचार-विभ्रम है, जिससे अवश्य बड़ी गड़बड़ पैदा हो जाएगी। यदि कुछ भी आप स्वप्न के पीछे मौजूद गुप्त विचारों के बारे में कहना चाहते हैं तो स्पष्ट रूप से वैसा कहिए, और अपनी शिथिल अभिव्यक्ति से समस्या को और अस्पष्ट मत बनाइए। गुप्त स्वप्न-विचार वह सामग्री है जिसे स्वप्न-तंत्र व्यक्त स्वप्न में बदल देता है। आप सामग्री को, और सामग्री पर होने वाले प्रक्रम को अलग-अलग पहचानने के समय क्यों लगातार भ्रम में पड़ते जाते हैं? यदि आप ऐसे भ्रम में पड़ते हैं तो उन लोगों से आप किस तरह श्रेष्ठ हैं जिन्हें सिर्फ़ अन्तिम उत्पन्न वस्तु का ही पता होता है और जो यह नहीं बता सकते कि वह कहां से आती है, या कैसे बनती है?

स्वयं स्वप्न के लिए एकमात्र आवश्यक चीज़ वह स्वप्न-तंत्र है जिसने विचार-सामग्री पर क्रिया की है, और जब हम सिद्धांत-विवेचन पर आते हैं, तब हमें इसका तिरस्कार करने का कोई अधिकार नहीं, चाहे कुछ क्रियात्मक स्थितियों में इसकी उपेक्षा की जा सकती हो। दूसरी बात यह है कि विश्लेषण सम्बन्धी प्रेक्षण से प्रकट होता है कि स्वप्न-तंत्र में सिर्फ गुप्त विचारों को ऊपर वर्णित आद्य या प्रतिगामी अभिव्यक्ति-रूपों में बदल देना ही नहीं है; इसके विपरीत, कुछ ऐसी चीज़ इसमें सदा जोड़ी भी जाती है जो दिन के समय के गुप्त विचारों में नहीं होती, पर जो स्वप्न-निर्माण में वास्तविक प्रेरक बल होती है। यह अनिवार्य अवयव उसी तरह अचेतन **इच्छा** होती है, जिसकी पूर्ति के लिए स्वप्न की वस्तु रूपान्तरित होती है। तो, जहां तक हम स्वप्न में निरूपित विचारमात्र पर गौर कर रहे हैं, वहां तक स्वप्न ऐसी कोई भी चीज़, जैसे चेतावनी, संकल्प, तैयारी आदि हो सकता है, पर इसके अलावा, यह स्वयं सदा एक अचेतन इच्छा की पूर्ति होता है, और जब आप इसे स्वप्न-तंत्र का परिणाममात्र मानते हैं, तब यह सिर्फ इच्छा-पूर्ति होता है। तो, स्वप्न कभी भी संकल्प या चेतावनी की अभिव्यक्तिमात्र नहीं होता, और इससे अधिक भी नहीं होता। इसमें संकल्प या और जो भी कुछ हो, वह एक अचेतन इच्छा की मदद से आद्य रूप में बदल जाता है, और इस तरह रूपान्तरित हो जाता है या रचनान्तरित[1] हो जाता है कि वह इच्छा-पूर्ति हो जाता है। यह एक ही विशेषता,

१. Metamorphosed.

अर्थात् इच्छा की पूर्ति सदा रहती है, और दूसरे अवयव बदलते रहते हैं। असल में स्वप्न स्वयं कोई इच्छा हो सकता है; उस अवस्था में स्वप्न अचेतन इच्छा की सहायता से हमारे जागते समय की गुप्त इच्छा की पूर्ति को निरूपित करता है।

यह सब बात मेरे अपने मन में बिलकुल स्पष्ट है, पर मैं नहीं जानता कि आपको भी यह इतने ही स्पष्ट रूप में समझाने में मैं सफल हुआ हूं या नहीं; और इसे आपके सामने सिद्ध करना कठिन है क्योंकि एक ओर तो प्रमाण के लिए बहुत सारे स्वप्नों के सावधान विश्लेषण द्वारा प्रस्तुत गवाही की आवश्यकता है, और दूसरी ओर, हमारी स्वप्न विषयक अवधारणा का यह कठिन और सबसे महत्वपूर्ण अंश, कुछ ऐसी बातों का उल्लेख किए बिना, जिनकी अभी हमने चर्चा नहीं की, निश्चायक रूप से पेश नहीं किया जा सकता। यह देखने के बाद कि ये सब घटनाएं कितनी घनिष्ठता से जुड़ी हुई हैं, आप यह कल्पना नहीं कर सकते कि हम किसी एक घटना के स्वरूप पर, उसी तरह की और घटनाओं को बिना छुए, दूर तक विचार कर सकते हैं। क्योंकि अब तक हमें उन घटनाओं के बारे में कुछ मालूम नहीं है जो स्वप्नों के इतने नजदीक नहीं है, अर्थात् स्नायु-रोग-लक्षण; इसलिए हमें एक बार फिर उतने से ही सन्तुष्ट हो जाना चाहिए जितना सचमुच हमने हासिल कर लिया है। अब मैं आपको सिर्फ एक और उदाहरण की व्याख्या बताऊंगा, और एक नया विचार बीच में लाऊंगा।

एक बार फिर उस स्वप्न पर विचार कीजिए जिसपर हम कई बार पहले विचार कर चुके है, अर्थात् डेढ़ फ्लोरिन में थियेटर के तीन टिकटों वाला स्वप्न। मै आपको विश्वास दिलाता हूं कि इसे उदाहरण के रूप में रखने में मेरा कोई गुप्त उद्देश्य नहीं था। आप जानते हैं कि गुप्त विचार क्या थे : यह सुनने के बाद कि उसकी सहेली की सगाई अभी हुई है, यह परेशानी कि मैंने शादी करने में इतनी जल्दी क्यों की; अपने पति के प्रति आदर में कमी, और यह विचार कि यदि मैंने भी प्रतिज्ञा की होती तो मुझे अधिक अच्छा पति मिल सकता था। हम यह भी जान चुके है कि जिस इच्छा ने इन विचारों में से स्वप्न बनाया वह 'देखने या ताकने' की इच्छा थी, अर्थात् थियेटर जा सकने की इच्छा थी—बहुत सम्भवतः इस पुरानी उत्सुकता की एक शाखा थी कि विवाह के बाद वास्तव में क्या होता है। यह सुविदित है कि बच्चों में यह कुतूहल माता-पिता के यौन जीवन की दिशा में होता है। कहने का आशय यह है कि यह एक शैशवीय आवेग है, और बाद के जीवन में यह जहां कहीं कायम रहता है, वहां इसकी जड़ शैशवकाल में ही होती है, पर स्वप्न से पिछले दिन प्राप्त समाचार से यह दर्शनेच्छा जाग उठने का कोई कारण नहीं था। इससे सिर्फ परेशानी और अफसोस हुआ। (दर्शनेच्छा का) यह आवेग पहले स्वप्न-विचारों मे जुड़ा हुआ नहीं था, और मनोविश्लेषण इसको अपने विचार के अन्तर्गत लिए बिना, स्वप्न-निर्वचनों के परिणामों का उपयोग कर सकता था,

पर यहां भी परेशानी स्वयं स्वप्न पैदा नहीं कर सकती। इस विचार में से, कि 'विवाह करने में इतनी जल्दी करना मूर्खता थी', तब तक स्वप्न नहीं बन सकता था, जब तक उस विचार ने बचपन की यह देखने की इच्छा को कि विवाह के बाद क्या होता है, न जगा दिया हो। इस प्रकार इस इच्छा ने स्वप्न-वस्तु बनाई और उसमें विवाह के स्थान पर 'थियेटर जाना' ला दिया, और उसका रूप विवाह से पहले की इस इच्छा-पूर्ति का रूप था कि 'मैं अब थियेटर जा सकती हूं, और वे सब चीजें देख सकती हूं जो हमें कभी देखने नहीं दी गई; और तुम नहीं देख सकतीं; मेरा विवाह हो चुका है और तुम्हें प्रतिज्ञा करनी है।' इस प्रकार वास्तविक स्थिति विपरीत स्थिति में बदल गई, और पहले की जीत के स्थान पर हार की बेचैनी आ गई; और प्रसंगतः 'ताकने या देखने' के आवेग और अहंकारपूर्ण प्रतिद्वन्द्विता के आवेग, दोनों की सन्तुष्टि हो गई। यह पीछे वाला सन्तोष ही स्वप्न की व्यक्त वस्तु नियत या निर्धारित करता है, क्योंकि इसमें वह सचमुच थियेटर में बैठी है जबकि उसकी सहेली अन्दर नहीं आ सकती। स्वप्न-वस्तु के वे अंश, जिनके पीछे गुप्त विचार अब भी अपने आप को छिपाए हुए हैं, सन्तुष्टिकारक स्थिति के अनुचित और समझ में न आने वाले रूप-भेदों के रूप में प्राप्त होंगे। **निर्वचन** का काम यह है कि उन सारी बातों को अलग कर दे जो इच्छा-पूर्ति को निरूपित करती हैं, और इन संकेतों से कष्टकारक गुप्त विचारों की पुनः रचना करे।

मैंने आपके ध्यान में जो नई बात लाने के लिए कहा था वह यही थी कि आप इन गुप्त स्वप्न-विचारों पर, जो अब प्रमुख रूप से सामने आए हैं, ध्यान दें। मेरी यह प्रार्थना है कि आप ये बातें न भूलें : (एक) स्वप्न-द्रष्टा को इनका ज्ञान या चेतना नहीं है; (दो) वे बिलकुल तर्कसंगत और सुसम्बद्ध हैं और इसलिए हम उन्हें इस रूप में समझ सकते हैं कि वे उसी उद्दीपन्न की सुबोध प्रतिक्रिया है जिसने स्वप्न को जन्म दिया; और (तीन) उनका मूल्य किसी मानसिक आवेग या बौद्धिक व्यापार के मूल्य जितना हो सकता है। अब मैं इन विचारों को और भी दृढ़ता से **पिछले दिन के अवशेष** कहूंगा; स्वप्न-द्रष्टा उन्हें माने या न माने। इसके बाद मैं इस 'अवशेष' और 'गुप्त स्वप्न-विचारों' में अन्तर करूंगा, और इस तरह, जैसे कि हम करते रहे हैं, स्वप्न के निर्वचन से ज्ञात हर बातको 'गुप्त स्वप्न' कहूंगा, जब कि 'पिछले दिन का अवशेष' गुप्त स्वप्न विचारों का सिर्फ एक अंश है। तो, जो कुछ होता है उसके विषय में हमारा अवधारण यह है : पिछले दिन के अवशेष में कोई चीज़ और जुड़ गई है। यह चीज़ भी अचेतन से संबंध रखती है। यह एक प्रबल पर दमित, अर्थात् दबाया गया, इच्छा-आवेग है, और इसके होनेपर ही स्वप्न का निर्माण हो सकता है। इच्छा-आवेग अवशेष पर क्रिया करके गुप्त स्वप्न-विचारों के उस दूसरे भाग की सृष्टि करता है जिसका हमारे जागृत जीवन के दृष्टिकोण

से अब बुद्धिसंगत या सुबोध दिखाई देना आवश्यक नहीं रहता।

अवशेष और अचेतन इच्छा के आपसी सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए मैंने कहीं एक दृष्टान्त दिया है, और उसीको मैं यहां दोहराना चाहता हूं। प्रत्येक कारबार के लिए उसके खर्चे उठाने वाले पूंजीपति की और एक ऐसे मालिक-प्रबन्धक की आवश्यकता होती है जिसे उस कारबार की जानकारी हो और उसे चलाना आता हो। स्वप्न-निर्माण में पूंजीपति वाला कार्य सदा अचेतन इच्छा द्वारा, और इस इच्छा द्वारा ही, किया जाता है। यह ही इसके लिए आवश्यक मानसिक ऊर्जा रूपी धन देती है; मालिक-प्रबन्धक पिछले दिन का अवशेष है जो खर्च करने का तरीका निश्चित करता है। निःसन्देह ऐसा हो सकता है कि स्वयं पूंजीपति को कारबार की सामान्य या विशेष जानकारी हो, या मालिक-प्रबन्धक के पास ही पूंजी हो। इससे व्यावहारिक स्थिति बड़ी सरल हो जाती है, पर उसका सिद्धान्त-पक्ष अधिक कठिन हो जाता है। अर्थशास्त्र में हम पूंजीपति का कार्य करने वाले मनुष्य में और उसी मनुष्य की मालिक-प्रबन्धक की हैसियत में विभेद करते हैं, और इस विभेद से वह मूल स्थिति आ जाती है जिसके आधार पर हमारा दृष्टांत खड़ा है। स्वप्न के निर्माण में भी वे परिणामन या विविध रूप पाए जाते हैं—ये मैं आपके ढूंढ़ने के लिए छोड़ देता हूं।

इस प्रश्न पर अब हम और विचार नहीं करेंगे क्योंकि मुझे लगता है कि आपके मन में एक बाधक ख़याल बहुत समय से आया हुआ होगा, और वह विचारने योग्य है। आप पूछ सकते हैं : "क्या तथाकथित 'अवशेष' उस अर्थ में वास्तव में अचेतन है जिसमें स्वप्न के निर्माण के लिए आवश्यक इच्छा अचेतन है?" आपकी शंका उचित है। यह सारे विषय की मुख्य समस्या है। वे दोनों एक ही अर्थ में अचेतन नहीं है। स्वप्न-इच्छा एक दूसरे प्रकार के **अचेतन** से सम्बन्ध रखती है। इस अचेतन की जड़ें, जैसा कि हम देख चुके हैं, शैशवकाल में होती हैं, और इसमें विशेष तन्त्र होते हैं। इन दोनों प्रकार के 'अचेतनों' में फर्क करने के लिए इन्हें अलग-अलग नाम देना सबसे अच्छा रहेगा। पर फिर भी हम तब तक इस मामले में रुके रहेंगे, जबतक कि हम स्नायु-रोगों की घटनाओं से परिचित न हो जाएं। यदि किसी प्रकार के अचेतन के अस्तित्व की हमारी अवधारणा को पहले ही कल्पना-प्रसूत मान लिया जाए, तो हमारे यह कहने पर कि अपने उद्देश्य पर पहुंचने के लिए हमें दो प्रकार के अचेतन मानने पड़े हैं, लोगों पर क्या असर पड़ेगा?

यह बात हम यहीं छोड़ते हैं। यहां फिर आपने अधूरी बात सुनी, परन्तु क्या यह विचार आशाजनक नहीं कि हमारी इस जानकारी को हम स्वयं या हमारे पीछे आनेवाले आगे बढ़ाएंगे और क्या स्वयं हमने काफ़ी नई और काफ़ी चौंकाने बाली बातें नहीं जानी हैं?

संदिग्ध पहलू और समीक्षात्मक विचार

स्वप्नों के विषय को छोड़ने से पहले हम उन आम प्रचलित संदेहों और अनिश्चितताओं पर विचार करना चाहते हैं, जो ऊपर पेश किए गए नए विचारों और अवधारणाओं के सिलसिले में पैदा होती हैं। आपमें से जो लोग इन व्याख्यानों को ध्यान से सुनते रहे हैं, उनके मन में इस तरह की कुछ सामग्री जमा हो गई होगी।

१. आप पर यह असर पड़ा होगा कि मनोविश्लेषण की विधि का पूरी तरह अनुसरण करने पर भी हमारे स्वप्न-निर्वचन के कार्य में अनिश्चितता के लिए इतनी गुंजाइश रह जाती है कि व्यक्त स्वप्नों का उनके गुप्त स्वप्न-विचारों में विश्वसनीय अनुवाद उसके द्वारा नहीं किया जा सकता। सबसे पहले आप यह कहेंगे कि हमें कभी भी यह पता नहीं चलता कि स्वप्न के किसी अवयव विशेष को उसके साक्षात् रूप में माना जाए, या उसे प्रतीक माना जाए, क्योंकि प्रतीकों के रूप में प्रयुक्त वस्तुओं का अपना स्वरूप, प्रतीक बन जाने के कारण, समाप्त नहीं हो जाता। जब इस प्रश्न का फैसला करने के लिए कोई बाहरी साक्ष्य नहीं है, तब उस खास चीज़ का निर्वचन निर्वचनकर्ता की मनमानी इच्छा पर छोड़ देना होगा। दूसरी बात यह कि क्योंकि स्वप्न-तंत्र में विरोधी या विपरीत वस्तुएं एक दूसरे के ऊपर होती हैं, इसलिए यह प्रत्येक उदाहरण में अनिश्चित होता है कि कोई विशिष्ट स्वप्न-अवयव अपने दीखने वाले स्वरूप में ग्रहण किया जाए, या अपने विपरीत अर्थ में ग्रहण किया जाए—यह निर्वचनकर्ता को अपनी मनमानी करने का एक और मौका मिला। तीसरी, स्वप्नों में प्रत्येक प्रकार के, अपवर्तन का प्रयोग बहुत अधिक बार होने के कारण वह जब चाहे यह कल्पना कर सकता है कि ऐसा अपवर्तन हुआ है। अन्त में, आप इस बात की ओर मेरा ध्यान खींचेंगे कि यह निश्चय नहीं हो पाता कि जो निर्वचन किया गया है, सिर्फ़ वही हो सकता था, और यह खतरा हमेशा रहता है कि उसी स्वप्न का सर्वथा उचित दूसरा निर्वचन उपेक्षित रह जाए। आप इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि इन अवस्थाओं में निर्वचनकर्ता के विवेक को बहुत छूट

मिल जाती है जिसके कारण परिणाम में वैज्ञानिक निश्चितता आनी कठिन है; अथवा आप यह भी मान सकते हैं कि स्वप्नों में कोई दोष नहीं है, बल्कि हमारी अवधारणाओं और साध्यावयवों[1] में ही कोई ग़लती है, जिसके कारण हमारे निर्वचन सन्तोषजनक नहीं हो पाते।

आप जो कुछ कहते हैं, वह ठीक है, पर तो भी, मैं नहीं समझता कि इससे आपके इन निष्कर्षों का औचित्य सिद्ध होता है कि हम जिस तरह का स्वप्न-निर्वचन करते हैं वह निर्वचनकर्ता के मन की मौज पर निर्भर है, और प्राप्त परिणामों के अधूरेपन से हमारी प्रक्रिया की शुद्धता पर आक्षेप आता है। यदि आप निर्वचनकर्ता की 'मन की मौज' के स्थान पर उसके कौशल, उसके अनुभव और उसकी समझ की बात कहें तो मैं आपसे सहमत हूं। इस तरह के व्यक्तिगत अंश के बिना, विशेष रूप से निर्वचन कठिन होने पर, कभी भी काम नहीं चल सकता, पर यही बात दूसरे वैज्ञानिक कार्य में भी होती है। मैं यह नहीं मान सकता कि किसी निश्चित विधि का प्रयोग एक आदमी दूसरे की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह या अधिक बुरी तरह करेगा; उदाहरण के लिए, प्रतीकों के निर्वचन से आपमें मनमानी की जो भावना पैदा हुई है, वह इस बात पर विचार करने से दूर हो सकती है कि साधारणतया स्वप्न-विचारों का एक दूसरे से जुड़ा हुआ सिलसिला और स्वप्न के समय स्वप्न का स्वप्न-द्रष्टा के जीवन और सारी मानसिक स्थिति से जुड़ा हुआ सिलसिला, सब सम्भव निर्वचनों में से एक की ओर सीधा संकेत करता है, और शेष सबको बेकार कर देता है। यह निष्कर्ष कि निर्वचनों में अधूरापन परिकल्पनाओं के युक्तिसंगत न होने के कारण है, यह सोचने पर ग़लत सिद्ध हो जाता है कि इसके विपरीत, स्वप्नों की अस्पष्टार्थता या अनिश्चितता ऐसा गुण है जिसके होने की हमें अवश्य आशा करनी चाहिए।

हमारे उस कथन को स्मरण कीजिए कि स्वप्न-तंत्र स्वप्न-विचारों का चित्रलिपि से मिलती-जुलती अभिव्यक्ति की आदिम रीति में अनुवाद कर दिया करता है। इस तरह की सब आदिम अभिव्यक्ति-प्रणालियों में अस्पष्टार्थता और अनिश्चितता अवश्य हुआ करती है, पर इस कारण हमारा उनके व्यवहारोपयोगी होने पर शक करना उचित नहीं। आप जानते हैं कि स्वप्न-तंत्र में विरोधियों का सम्पात, अर्थात् एक दूसरे के ऊपर आ जाना वैसा ही है, जैसे कि प्राचीनतम भाषाओं में आदिम शब्दों के परस्पर विरोधी अर्थ। भाषा-तत्व-शास्त्री आर० एबल ने, जिससे हमें यह जानकारी मिली है, १८८४ में लिखा था कि आप बिलकुल कल्पना न करें कि इस तरह के परस्पर विरोधी दो अर्थों वाले शब्दों से एक व्यक्ति दूसरे से जो कुछ कहता है, उसमें कोई अस्पष्टता रहती है। इसके विपरीत, लहजे या सुर, हाव-भाव और

---

१. Premises.

सारे प्रसंग से इस बात में कोई संशय नहीं रह जाता कि बोलने वाला दोनों विरोधी अर्थों में से कौन-सा अर्थ सूचित करना चाहता है। लिखने में, जिसमें हाव-भाव नहीं रहते, उनके स्थान पर छोटे-छोटे चित्र जोड़ दिए जाते थे, जो पृथक् अर्थ के वाचक नहीं होते थे। उदाहरण के लिए, यदि अस्पष्ट अर्थ वाले **केन** शब्द का चित्र-लिपि में प्रयोग करना है, जिसका अर्थ 'कमज़ोर' और 'मज़बूत' दोनों है तो क्रमशः झुके हुए या सीधे खड़े हुए छोटे आदमी का चित्र बना दिया जाता था। इस तरह ध्वनियों और चिह्नों के अस्पष्टार्थक होने पर भी ग़लतफ़हमी का मौका नहीं था।

अभिव्यक्ति की प्राचीन प्रणालियों में उदाहरण के लिए, प्राचीनतम भाषाओं की लिपियों में अनेक प्रकार की अनिश्चितता इतनी अधिक पाई जाती है कि उसे हम अपने आज के लेखन में सहन नहीं कर सकते। इस प्रकार, बहुत-से सेमिटिक या सामी लेखों में शब्दों के व्यंजन ही दिखाई देते हैं: दिखाई न देने वाले स्वर पाठक को अपनी जानकारी और प्रसंग से लगाने पड़ते हैं। चित्र-लिपि में भी ऐसा ही सिद्धान्त चलता है, यद्यपि वह बिलकुल यही नहीं होता, और इसी कारण प्राचीन मिस्री भाषा के उच्चारण का कुछ भी पता नहीं चलता। इसके अतिरिक्त, मिस्रियों के धार्मिक लेखों में अन्य प्रकार की अनिश्चितता भी है; उदाहरण के लिए, यह लेखक की इच्छा पर है कि वह दाएं से बाएं को चित्र बनाए या बाएं से दाएं को। उन्हें पढ़ते हुए हमें यह याद रखना चाहिए कि आकृतियों, पक्षियों आदि के चेहरों की दिशा में हमें चलना होगा। पर लेखक चाहता तो चित्रों को ऊपर से नीचे भी बना सकता था, और बहुत छोटी वस्तुओं पर चित्र बनाते हुए वह यह सोचकर कि कैसा करने से आंख को अच्छा लगेगा, और मेरे पास कितना स्थान है, चिन्हों के विकास में और भी हेर-फेर कर सकता था। चित्र-लिपि में सबसे अधिक विभ्रम में डालने वाली बात यह है कि शब्दों के बीच में जगह नहीं छोड़ी जाती। सब चित्र पृष्ठ पर समान अन्तरों पर बनाए जाते हैं और आमतौर से यह जानना असम्भव होता है कि कोई दिया हुआ चिन्ह पूर्ववर्ती शब्द से जुड़ता है या किसी नए शब्द का आरम्भिक हिस्सा है, पर ईरानी कीलकाक्षर-लेखों[1] में शब्दों को अगल करने के लिए एक तिरछे चिह्न का प्रयोग होता है।

बोलने और लिखने, दोनों में काम आनेवाली चीनी भाषा बहुत पुरानी है, पर इसका प्रयोग अब भी चालीस करोड़ से अधिक लोग करते हैं। यह न समझिए कि मुझे यह भाषा ज़रा भी आती है। मैंने तो इसके बारे में कुछ जानकारी इसलिए प्राप्त की है क्योंकि मुझे आशा थी कि इसमें स्वप्नों में होने वाली अनेक प्रकार की अनिश्चितता से मिलती-जुलती चीजें प्राप्त होंगी। मेरी आशा व्यर्थ भी नहीं हुई क्योंकि

---

१. Cuneiform writing.

चीनी भाषा में इतनी अनिश्चितताएं भरी पड़ी हैं कि मनुष्य निश्चित ही डर जाए। जैसा कि प्रसिद्ध है, इसमें कुछ आक्षरिक ध्वनियां[1] हैं जिसका उच्चारण अलग-अलग किया जाता है, या मिलाकर किया जाता है। एक मुख्य विभाषा में इस तरह की लगभग चार सौ ध्वनियां हैं, और क्योंकि इस विभाषा का शब्द-समूह लगभग चार हज़ार शब्दों का है, इसलिए स्पष्ट है कि औसतन हर ध्वनि के दस अर्थ हैं—कुछ के कम हैं, पर कुछ के और भी अधिक हैं। इस कारण अर्थ की अस्पष्टता से बचने के लिए बहुत सारी युक्तियां अपनाई जाती हैं, क्योंकि सिर्फ प्रसंग से यह पता नहीं चलेगा कि वक्ता उस अक्षर के दस सम्भव अर्थों में से कौन-सा श्रोता को जतलाना चाहता है। इन युक्तियों में दो ध्वनियों को मिलाकर एक शब्द बना देना और इन अक्षरों को बोलने की चार भिन्न-भिन्न 'टोनों' का प्रयोग भी हैं। हमारी तुलना के प्रयोजन के लिए एक और भी मनोरंजक तथ्य यह है कि यह भाषा प्रायः व्याकरण से रहित है : किसी एकाक्षर शब्द के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वह संज्ञा है, क्रिया है या विशेषण है, और फिर लिंग, वचन, कारक, काल, या क्रिया-रूप बताने वाली प्रत्यय-ध्वनियां नहीं होतीं। भाषा में सिर्फ प्रकृति या प्रातिपदिक होता है; जैसे हमारी विचार-भाषा स्वप्न-तंत्र के द्वारा अपने कच्चे सामान के रूप में आ जाती है, और इसमें मौजूद सम्बन्धों को प्रकट नहीं करती। चीनी भाषा में जहां कहीं अनिश्चितता होती है,वहां उसका निर्णय सुनने वाले की समझ पर छोड़ दिया जाता है, जो प्रसंग के अनुसार निश्चय करता है। मैंने एक चीनी कहावत नोट की थी, जिसका शाब्दिक अनुवाद इस प्रकार होगा : "थोड़ा जो देखो, बहुत जो आश्चर्यजनक।" इसे समझना बहुत आसान है। इसका अर्थ यह हो सकता है : "जिस आदमी ने जितना कम देखा है, उसे उतनी ही आश्चर्यजनक चीज़ें दिखाई देती हैं", या "जिस आदमी ने थोड़ा देखा है उसके लिए बहुत कुछ आश्चर्यजनक है।" स्वभावतः इन दोनों अनुवादों में अर्थ की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं। हमें निश्चित-रूप से बताया जाता है कि इन अनिश्चितताओं के होते हुए भी चीनी भाषा अभिव्यक्ति का बहुत ही अच्छा माध्यम है। इसलिए यह स्पष्ट है कि अनिश्चितता से अस्पष्टार्थता होना आवश्यक नहीं।

अब हमें निश्चित रूप से मानना चाहिए कि स्वप्नों में जो अभिव्यक्ति की रीति होती है उसमें प्राचीन भाषाओं की लिपियों की अपेक्षा स्थिति बहुत कम अनुकूल है। कारण यह कि भाषाएं और लिपियां सम्प्रेषण[2] अर्थात् अपने मन की बात दूसरे तक पहुंचाने के साधनरूप में ही शुरू में बनाई गई थीं, अर्थात् वे समझ में आने के लिए ही थीं, चाहे उन्हें किसी भी तरीके या साधन का उपयोग करना पड़े। पर स्वप्न में इसी बात का अभाव है। उनका उद्देश्य किसीसे कोई बात कहना

---

१. Syllabic sounds. २. Communication.

नहीं है। वे सम्प्रेषण के साधन नहीं हैं। इसके विपरीत, उनका समझ में न आना ही महत्व की बात है। इसलिए यदि यह परिणाम निकले कि स्वप्नों की कुछ अस्पष्ट अर्थ वाली और अनिश्चित बातें स्पष्टरूप से तय न की जा सकें तो हमें आश्चर्य नहीं करना चाहिए, या किसी भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। हमारी तुलना से, जो एकमात्र निश्चित जानकारी प्राप्त होती है, वह यह है कि इस अनिश्चितता को (जिसे लोग हमारे स्वप्न-निर्वचनों की यथार्थता के विरुद्ध दलील बनाना चाहते हैं।) अभिव्यक्ति की सभी आदिम प्रणालियों की सामान्य विशेषता मानना चाहिए।

अभ्यास और अनुभव से ही यह तय हो सकता है कि स्वप्न असल में कहां तक समझ में आ सकते हैं। मेरी अपनी राय यह है कि वे बहुत दूर तक समझ में आ सकते हैं, और उचित रीति से शिक्षा पाए हुए विश्लेषकों ने जो परिणाम निकाले हैं, उनकी तुलना से मेरे विचार की पुष्टि होती है। आम जनता वैज्ञानिक कार्यों में भी, वैज्ञानिक सफलता के मार्ग की कठिनाइयों और अनिश्चितताओं के मुकाबले में अपनी प्रबल सन्देहशीलता का प्रदर्शन करके खुश हुआ करती है। मैं समझता हूं कि उनका ऐसा करना ग़लत है। सम्भवतः आप सबको यह पता नहीं होगा कि यही बात तब हुई थी जब बाबुल और असीरिया में मिले लेखों को पढ़ने की कोशिश की जा रही थी। एक ऐसा समय आया, जब लोकमत जोर-शोर से यह घोषणा कर रहा था कि कीलकाक्षर-लेखों को पढ़ने में लगे हुए लोग झूठी कल्पना के शिकार हो गए हैं और यह जांच-पड़ताल का सारा काम एक धोखा और ठगी है। पर १८५७में रायल एशियाटिक सोसायटी ने एक निश्चायक परीक्षा की। उसने इस गवेषण-कार्य में लगे हुए चार सबसे प्रमुख व्यक्तियों रालिन्सन, हिंक्स, फौक्स टैलबाट और ओपर्ट से यह कहा कि वे मुहरबन्द लिफाफों में एक नए खोजे गए लेख के स्वतन्त्र अनुवाद सोसायटी को भेजें, और उन चारों की तुलना करने के बाद सोसायटी ने यह एलान किया कि उन चारों में काफी समानता है, जिससे अब तक प्राप्त परिणामों पर विश्वास किया जा सकता है, और आगे प्रगति की आशा की जा सकती है। तब पढ़े-लिखे सामान्य लोगों का हंसी उड़ाना धीरे-धीरे खत्म हो गया और उसके बाद से कीलकाक्षर-लेखों के पढ़ने में बहुत अधिक निश्चितता आ गई।

२. दूसरी तरह के ऐतराजों का ऐसी भावनाओं से निकट सम्बन्ध है जिनसे शायद आप भी नहीं बचे हैं, और वे ये है कि हमारे स्वप्न-निर्वचन की रीति से प्राप्त कई परिणाम खींच-तान या जबर्दस्ती लाए गए या मजाक-से लगते हैं। यह आलोचना इतनी अधिक होती है कि मैं उस आलोचना पर विचार करूंगा जो मेरे काम में सबसे पीछे हुई थी। अब सुनिए : आजाद देश स्विटजरलैंड में हाल में ही एक हेडमास्टर से इस कारण अपने पद से त्यागपत्र देने को कहा गया कि वह मनोविश्लेषण में दिलचस्पी रखता था। उसने विरोध किया, और बर्न के एक अखबार मे उसके मामले पर स्कूल-अधिकारियों का फैसला प्रकाशित किया गया। उस लेख से मैं

मनोविश्लेषण सम्बन्धी कुछ वाक्य उद्धृत करूंगा : "इसके अलावा, उक्त पुस्तक में ज्यूरिच के डा० फिस्टर द्वारा दिए गए उदाहरण में कितनी खींच-तान की गई है, यह देखकर हम चकित रह गए। यह सचमुच आश्चर्य की बात है कि एक ट्रेनिंग कालेज के हेडमास्टर ने इस तरह के वचनों और सिर्फ ऊपर से ठीक दीखने वाली गवाहियों को इतने अंधविश्वास के साथ स्वीकार कर लिया।" ये वाक्य 'एक शान्त मन से फैसला करनेवाले' की अन्तिम राय बताए गए हैं। मुझे यह शान्त मनवाली बात झूठी मालूम होती है। इन वचनों पर इस आशा से जरा बारीकी से विचार कीजिए कि इस विषय पर थोड़े विचार और जानकारी से 'शान्तमन के फैसले' को भी कोई हानि नहीं होगी।

यह देखकर सचमुच बड़ा आश्चर्य होता है कि कोई आदमी सिर्फ अपने ऊपर पड़े पहले प्रभाव के आधार पर इतनी जल्दी और निर्भ्रांत रूप से मनोविज्ञान के किसी कठिन प्रश्न पर मत स्थिर कर सकता है। उसे निर्वचन खींच-तान से किए गए मालूम होते हैं, और उसे वे नहीं जंचते इसलिए वे ग़लत हैं, और यह सारा काम बिलकुल कूड़ा है। ऐसे आलोचक इस सम्भावना को अपने पास भी नहीं फटकने देते कि निर्वचनों के ऐसे ही होने के लिए काफी अच्छी युक्तियां हो सकती हैं। यदि वे इस सम्भावना को समझते हैं तो अगला प्रश्न यह होगा कि वे प्रबल युक्तियां क्या हैं।

इस आलोचना का अधार वह परिस्थिति है जिसका विस्थापन के प्रभाव से आवश्यक संबंध है, और विस्थापन स्वप्न-सेंसरशिप का सबसे प्रबल हथियार बताया गया है। इसकी सहायता से स्थानापन्न रचनाएं बनती हैं, जिन्हें हम अस्पष्ट निर्देश कहते हैं। पर ये अस्पष्ट निर्देश ऐसे होते हैं, जिन्हें इस रूप में पहचानना तथा उनके पीछे की ओर चलकर असली विचार को खोजना भी आसान नहीं होता, क्योंकि वे इसके साथ बड़े असाधारण और कभी-कभी होने वाले बाहरी साहचर्यों द्वारा जुड़े रहते हैं। पर इस सबका सम्बन्ध ऐसी वस्तुओं से होता है जिन्हें छिपाना इष्ट होता है। स्वप्न-सेंसरशिप का ठीक यही उद्देश्य है। पर हमें छिपाई गई वस्तु उसी स्थान पर देखने से मिल जाने की आशा न करनी चाहिए जहां यह सामान्यतया होती है। आजकल इस विषय में सीमान्त-निरीक्षण अधिकारी स्कूल अधिकारियों की अपेक्षा कहीं अधिक होशियार हैं, क्योंकि वे निश्चित काग़ज़ात खोजते हुए सिर्फ पोर्टफोलिओ और चिट्ठियों के थैलों की तलाशी लेकर ही सन्तुष्ट नहीं हो जाते, बल्कि उन्हें यह सम्भावना भी रहती है कि जासूस और तस्कर कोई आपत्तिजनक चीज अपने शरीर में ऐसे स्थान पर छिपाकर न ले जाएं जहां उन्हें देखना बहुत मुश्किल है, या जहां रखने योग्य वे वस्तुएं नहीं होतीं; उदाहरण के लिए, अपने बूटों की दोहरी तलियों में। यदि छिपाई हुई वस्तुएं वहां मिल जाए तो निश्चित ही यह कहना सच है कि उन्हें 'घसीटकर रोशनी में लाया गया', पर फिर भी वे एक बहुत

अच्छी 'खोज' है।

हम यह मानते हैं कि गुप्त स्वप्न-अवयव और इसके व्यक्त स्थानापन्न का सम्बन्ध कभी-कभी बहुत असामान्य और बहुत दूर का प्रतीत होता है, यहां तक कि कभी-कभी वह उपहासयोग्य-सा मालूम होता है, और इसका कारण यह है कि हमें ऐसे बहुत सारे उदाहरणों का अनुभव है जिनमें हम स्वयं अर्थ नहीं खोज सके। सिर्फ हमारे प्रयत्नों से इन निर्वचनों पर पहुंचना प्रायः असम्भव होता है। कोई भी समझदार आदमी उन दोनों को जोड़ने वाले सम्बन्ध का अन्दाजा नहीं कर सकता। या तो स्वप्न-द्रष्टा किसी प्रत्यक्ष साहचर्य के द्वारा सीधे ही पहेली सुलझा देता है (**वही** इसे सुलझा सकता है क्योंकि स्थानापन्न रचना उसके ही मन में पैदा हुई है), अथवा वह इतनी अधिक सामग्री दे देता है कि उसे हल करने के लिए विशेष जांच-पड़ताल की जरूरत नहीं पड़ती—हल आप से आप हमारे ऊपर आ पड़ता है। यदि स्वप्न-द्रष्टा इनमें से किसी भी तरीके से हमारी मदद नहीं करता तो वह व्यक्त अवयव सदा के लिए हमारी समझ से बाहर रहेगा। इस तरह का एक और उदाहरण देखिए जो हाल में ही हुआ था। मेरी एक रोगिणी का पिता उसके इलाज को दिनों में गुजर गया और इसके बाद वह अपने स्वप्नों में हर मौके पर उसे जीवित देखा करती थी। इनमें से एक स्वप्न में उसका पिता एक ऐसे सिलसिले में दिखाई दिया जो वैसे लागू नहीं हो सकता था, और बोला : "**अब सवा ग्यारह बजे हैं, अब साढ़े ग्यारह बजे हैं, अब पौने बारह बजे हैं।**" इस अजीब-सी बात के अर्थ के बारे में वह इतना ही साहचर्य बता सकी कि उसका पिता उस समय बड़ा प्रसन्न होता था जब उसके बड़े बालक दोपहर के भोजन में ठीक समय पर पहुंचते थे। यह बात स्वप्न-अवयव के साथ निश्चित रूप से जंचती थी, पर इससे इसके पैदा होने के कारण पर कोई रोशनी नहीं पड़ती थी। इलाज में हम स्थिति पर पहुंच गए थे, उसके कारण इस संदेह के लिए काफी आधार मालूम होता था कि इसके स्वप्न में अपने प्रिय और सम्मानित पिता के प्रति किसी विरोध का हाथ है, पर उस विरोध को सावधानी से दबा दिया गया है। अपने और साहचर्य बताते हुए, जो इस स्वप्न से बिलकुल दूर मालूम होते थे, उसने बताया कि मैंने पिछले दिन मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर एक लम्बा विवेचन सुना था, और एक रिश्तेदार ने मुझसे कहा था : "उरमेन्श (Urmensch) (आदिम मानव) हम सबके अन्दर जीवित है।" अब हमें नई रोशनी दिखाई दी। अब इसे भी यह कल्पना करने का बहुत अच्छा मौका मिल गया है कि उसका मृत पिता जीवित है और उसने स्वप्न में उसे 'उहरमेन्श' (Uhrmensch) (समय बताने वाला) बना दिया जो दोपहर के भोजन के समय तक हर पन्द्रह मिनट का समय बताता था।

इसमें एक श्लेष जैसी चीज स्पष्ट दिखाई देती है, और सचाई तो यह है कि बहुत बार स्वप्न देखने वाले का श्लेष निर्वचनकर्ता के जिम्मे डाल दिया जाता है।

और भी ऐसे उदाहरण हैं जिनमें यह फैसला करना आसान नहीं है कि हम जिस चीज़ पर विचार कर रहे हैं, वह मजाक है या स्वप्न। पर आपको याद होगा कि बोलने की कुछ ग़लतियों में भी यही सन्देह पैदा हुआ था। एक आदमी ने यह स्वप्न सुनाया कि मैं अपने चाचा के साथ उसकी **आटो** (मोटर) में बैठा था और मेरे चाचा ने मुझे चूम लिया। स्वप्न-द्रष्टा ने स्वयं फौरन ही यह निर्वचन पेश किया : इसका अर्थ था **'आटो-एरोटिज्म'** (अर्थात् आत्मरति) (यह शब्द हमारे लिबिडो अर्थात् रागवृत्ति के सिद्धान्त में प्रयुक्त होता है और इसका अर्थ है प्रेम के किसी बाहरी आलंबन के बिना प्राप्त परितुष्टि)। अब प्रश्न यह है कि क्या यह आदमी हमारा मजाक उड़ाकर खुश होरहा था और यह दिखा रहा था कि उसके मन में आया हुआ श्लेष या व्यंग्य एक स्वप्न का हिस्सा था। मैं ऐसा नहीं समझता : उसे सच-मुच ही यह स्वप्न आया था। पर स्वप्नों और मजाकों में यह अजीब समानता कहां से हो जाती है? एक बार इस प्रश्न ने मुझे मेरे रास्ते से कुछ दूर कर दिया था क्यों कि इसके कारण मेरे लिए व्यंग्य-परिहास के प्रश्न पर बारीकी से जांच करना आवश्यक हो गया। इससे मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि व्यंग-परिहास का जन्म इस तरह होता है : एक पूर्व चेतन[1] विचार-शृंखला कुछ क्षण के लिए अचेतन विशदन के प्रक्रम से प्रभावित होती है जिससे वह एक व्यंग्योक्ति के रूप में पैदा होती है। अचेतन के प्रभाव में रहते हुए यह वहां क्रियाशील तन्त्रों, संघनन और विस्थापन से प्रभावित होती है, अर्थात् उन्हीं प्रक्रमों से प्रभावित होती है जो हमें स्वप्न-तन्त्र में कार्य करते दिखाई दिए थे, और स्वप्न तथा व्यंग्य-परिहास में कभी-कभी जो समानता दिखाई देती है, उसका कारण दोनों का यह सामान्य गुण ही है। पर बिना किसी भीतरी मतलब वाला 'स्वप्न-मजाक' हमें उतना मनोरंजक नहीं लगता, जितनी कोई सामान्य व्यंग्योक्ति लगती है। व्यंग्य-परिहास के अधिक गहरे अध्ययन से आपको इसका कारण पता चला जाएगा। 'स्वप्न-मजाक' बहुत घटिया दर्जे का मजाक मालूम होता है, यह हमें हंसाता नहीं, बल्कि उदासीन कर देता है।

इस मामले में हम स्वप्न-निर्वचन के प्राचीन तरीके के रास्ते पर चल रहे हैं जिसने हमें बहुत-सी बेकार बातों के अलावा निर्वचन के बहुत-से ऐसे मूल्यवान् उदाहरण भी दिए हैं, जिनसे अच्छे उदाहरण हमें नहीं मिल सकते। मैं आपको एक ऐसा स्वप्न सुनाऊंगा जिसका महत्व इतिहास-प्रसिद्ध है, और जो मामूली फ़र्क के साथ प्लूटार्क तथा डैल्डिस के आर्टेमीडोरस ने बयान किया है—यह स्वप्न सिकन्दर महान ने देखा था। जब वह टायर नगर का घेरा डाले पड़ा था, और टायर नगर डटकर मुकाबला कर रहा था (ई० पू० ३२२)। तब उसने एक रात को स्वप्न में एक नाचता हुआ सैटायर (एक यूनानी देवता) देखा। स्वप्न-निर्वचक ऐरिस्टैंडरौस ने, जो सेना के अभियानों में साथ-साथ चलता था, इस स्वप्न का अर्थ

१. Preconscious.

'सैटायरौस' शब्द को 'सै' तथा 'टायरौस' ('टायर तेरा है') में बांटकर लगाया और इससे उस नगर पर सिकन्दर की विजय की भविष्यवाणी की। इस निर्वचन के कारण सिकन्दर ने घेरा जारी रखा, और अंत में नगर का पतन हो गया। वह निर्वचन कितना झूठा या कृत्रिम मालूम होता है, पर निःसंदेह वह सही था।

३. मैं आसानी से कल्पना कर सकता हूं कि यह बात सुनकर आप विशेष प्रभावित होंगे कि जिन लोगों ने मनोविश्लेषक के रूप में बहुत समय तक स्वप्नों के निर्वचन का अध्ययन किया है, उन्होंने भी हमारी स्वप्नों की अवधारणा पर आक्षेप किए हैं। नई ग़लतियों के ऐसे अच्छे मौके को कैसे छोड़ दिया जाता? इसलिए विचारों में विभ्रम के कारण और अनुचित सामान्यकरण के आधार पर ऐसी बातें कही गई हैं, जो स्वप्नों की डाक्टरी अवधारणा से कम ग़लत नहीं हैं। इनमें से एक बात आप पहले सुन चुके हैं कि स्वप्न उस समय की परिस्थिति के अनुकूल बनने की कोशिशों और भविष्य की समस्याओं के हल को प्रकट करते हैं। दूसरे शब्दों में, वे 'भविष्यलक्षी प्रवृत्ति' या लक्ष्य की ओर चलते हैं (ए० मीडर)। हम पहले यह दिखा चुके हैं कि इस कथन का आधार स्वप्न तथा गुप्त स्वप्न-विचार को ठीक-ठीक अलग न कर सकना है और इसमें स्वप्न-तन्त्र को नजरंदाज कर दिया गया है। जो लोग इस 'भविष्यलक्षी प्रवृत्ति' की बात कहते हैं, यदि उससे उनका आशय उस अचेतन मानसिक व्यापार से है जिसमें गुप्त विचार होते हैं, तो एक ओर तो इसमें कोई नई बात नहीं है, और दूसरी ओर, यह पूरा वर्णन नहीं है, क्योंकि अचेतन मानसिक व्यापार भविष्य के लिए तैयारी करने के आलावा और बहुत-से कामों में लगा रहता है। इस कथन में तो और भी विभ्रम दिखाई देता है कि प्रत्येक स्वप्न की तह में 'मृत्यु-संकेत' देखा जा सकता है। मुझे यह बात अच्छी तरह समझ में नहीं आई कि इस कथन का क्या आशय है, पर यह संदेह होता है कि इसकी आड़ में स्वप्न तथा स्वप्न-द्रष्टा के सारे व्यक्तित्व को एक जगह मिलाकर घुटाला कर दिया गया है।

थोड़े-से प्रभावोत्पादक उदाहरणों के आधार पर किया गया एक अनुचित सामान्यकरण इस कथन में मौजूद है कि प्रत्येक स्वप्न के दो तरह के निर्वचन हो सकते हैं—एक उस तरह का जिस तरह का हमने बताया है, अर्थात् तथाकथित 'मनोविश्लेषणात्मक' निर्वचन, और दूसरा तथाकथित 'रहस्यवादी'[1] निर्वचन जो नैसर्गिक प्रवृत्तियों की उपेक्षा करता है और ऊंचे मानसिक कार्यों के निरूपण का लक्ष्य रखता है (एच० सिल्बरर)। इस तरह के कुछ स्वप्न होते हैं, पर इस अवधारणा में बहुसंख्यक स्वप्न भी नहीं आ सकते। जो कुछ आप सुन चुके हैं, उसके बाद यह कथन कि सब स्वप्नों का निर्वचन द्विलिंगित:[2] अर्थात् दो प्रवृत्तियों के—जिनमें से एक पुरुष और दूसरी स्त्री है—मेल के रूप में किया जा सकता है, (ए०

१. Anagogic. २. Bisexually.

एडलर) आपको बिलकुल बेतुका जंचेगा। इस तरह के स्वप्न होते अवश्य हैं। और आगे चलकर आपको पता चलेगा कि उनका ढांचा कुछ हिस्टीरिया के लक्षणों वाले ढांचे जैसा ही है। स्वप्नों की नई सामान्य विशेषताओं की इन सब खोजों की चर्चा करके मैं आपको उनके विरुद्ध चेतावनी देना चाहता हूं या कम से कम उनके विषय में अपनी राय आपके सामने स्पष्ट कर देना चाहता हूं।

४. एक समय था जब कि स्वप्नविषयक गवेषणाओं का वैज्ञानिक महत्व नष्ट-प्रायः प्रतीत होता था, क्योंकि जिन रोगियों का विश्लेषण द्वारा इलाज होता था, वे अपने स्वप्नों की वस्तु को अपने डाक्टरों के प्रिय सिद्धान्तों के अनुकूल बनाते दिखाई देते थे। कुछ लोगों को मुख्यतः यौन या मैथुन सम्बन्धी आवेगों का ही, दूसरों को सत्ता या आधिपत्य के आवेगों का ही, और कुछ को पुनर्जन्म का ही स्वप्न आता था (डबल्यू० स्टीकल)। इस बात का महत्व यह सोचने पर बहुत कम हो जाता है कि लोगों ने, स्वप्नों पर प्रभाव डालने के लिए मनोविश्लेषण के इलाज जैसी कोई चीज़ होने से पहले ही, स्वप्न देखे थे और आजकल इलाज कराने वाले रोगी इलाज शुरू करने से पहले भी स्वप्न देखा करते थे। इस बात में, जिसे नई समझा जा रहा है, जो असली तथ्य है वह तुरन्त आपसे आप स्पष्ट दिखाई देता है, और स्वप्नों के सिद्धान्त के लिए महत्वहीन है। पिछले दिन का अवशेष, जिससे स्वप्न पैदा होते हैं, जागृत जीवन की बड़ी दिलचस्पियों से बचा हुआ अवशेष है। यदि डाक्टर के शब्द और उसके दिए हुए उद्दीपन रोगी के लिए महत्वपूर्ण बन गए हैं तो वे, जो कुछ भी अवशेष है, उसमें प्रविष्ट हो जाते हैं और स्वप्न-निर्माण के लिए ठीक उसी तरह मानसिक उद्दीपन बन जाते है जैसे पिछले दिन की भावुकतापूर्ण अन्य दिलचस्पियां, जो अभी कम नहीं हुई हैं। वे उन शारीरिक उद्दीपनों की तरह ही क्रिया करते हैं जो सोते हुए आदमी पर सोते समय प्रभाव डालते हैं। स्वप्न पैदा करने वाले इन दूसरे कारकों की तरह डाक्टर द्वारा पैदा की गई विचार-शृंखला भी प्रत्यक्ष स्वप्न-वस्तु में दिखाई दे सकती है, या गुप्त विचारों में उसके अस्तित्व का पता चल सकता है। हम सचमुच यह बात जानते ह कि परीक्षणों द्वारा स्वप्न पैदा किए जा सकते हैं, या अधिक ठीक-ठीक कहा जाए तो स्वप्न-सामग्री का कुछ हिस्सा इस प्रकार स्वप्न में प्रविष्ट कराया जा सकता है। इस प्रकार, अपने रोगियों पर प्रभाव डालने वाला विश्लेषक वैसा ही कार्य करता है जैसा मोर्ली वोल्ड करता था—वह जिस व्यक्ति पर परीक्षण करता था उसके अंग को खास स्थितियों में रख देता था।

हम प्रभाव डालकर प्रायः यह निश्चित कर सकते हैं कि कोई मनुष्य **किस विषय** में स्वप्न देखे, पर यह कभी नहीं कर सकते कि वह **क्या** स्वप्न देखे; क्योंकि स्वप्न-तन्त्र की प्रक्रिया और अचेतन स्वप्न-इच्छा किसी भी तरह के बाहरी प्रभाव की पहुंच से बाहर है। जब हम शारीरिक उद्दीपनों से पैदा होने वाले स्वप्नों पर

विचार कर रहे थे, तब हमने यह स्पष्ट समझ लिया था कि स्वप्न-द्रष्टा पर शारीरिक या मानसिक उद्दीपनों के क्रिया करने की जो प्रतिक्रिया होती है, उससे स्वप्न जीवन की विशेषता और स्वतन्त्रता स्पष्ट दिखाई देती है। ऊपर मैंने जिस आलोचना की चर्चा की है, जो कि स्वप्न सम्बन्धी जांच-पड़ताल की वैज्ञानिकता पर संदेह करती है, वह भी ऐसा कथनमात्र है जो स्वप्न तथा स्वप्न-सामग्री में विभेद न करने के आधार पर खड़ा है।

मैं स्वप्नों की समस्याओं के बारे में आपको इतना ही बताना चाहता था। आप समझ रहे होंगे कि मैंने बहुत बड़े क्षेत्र को पार किया है, और यह भी देख लिया होगा कि प्रायः प्रत्येक बात पर मेरा विवेचन अधूरा रहा है, जैसा कि आवश्यक ही था। पर इसका कारण यह है कि स्वप्नों की घटनाएं स्नायु-रोगों की घटनाओं से बहुत नजदीकी सम्बन्ध रखती हैं। हमारी योजना यह थी कि स्नायु-रोगों के अध्ययन की भूमिका के रूप में स्वप्नों का अध्ययन किया जाए, और स्नायु-रोगों पर विचार करने के बाद स्वप्नों पर विचार करने की अपेक्षा यह तरीका निश्चित रूप से अच्छा था। परन्तु क्योंकि स्वप्न हमें स्नायु रोगों को समझने के लिए तैयार करते हैं, इसलिए स्वप्नों के बारे में सही धारणा भी तभी हो सकती है, जब स्नायु-रोगों के रूपों का कुछ ज्ञान हमें हो।

मैं नहीं जानता कि आप इसके बारे में क्या सोचेंगे पर मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि आपकी इतनी दिलचस्पी और समय स्वप्न संबन्धी समस्याओं पर लगा देने का मुझे कुछ भी अफसोस नहीं। उन कथनों की, जो मनोविश्लेषण के आधारभूत सिद्धान्त हैं, सचाई का इतनी जल्दी निश्चय कराने का कोई और तरीका मुझे नहीं आता। यह स्पष्ट करने के लिए कि स्नायु-रोगी के लक्षणों का कुछ अर्थ होता है, वे कोई प्रयोजन सिद्ध करते है, और रोगी के जीवन सम्बन्धी अनुभवों से पैदा होते है, महीनों, बल्कि वर्षों, कठिन परिश्रम की आवश्यकता है। दूसरी ओर ये चीज़ें किसी स्वप्न में,जो पहले बिलकुल गड़बड़ और समझ में न आने वाला दिखाई देता था, दिखाने के लिए कुछ ही घंटों की मेहनत काफ़ी है, और इस तरह उन सब आधारों की पुष्टि हो जाती है जिन पर मनोविश्लेषण खड़ा है—अर्थात् अचेतन मानसिक प्रक्रमों का अस्तित्व, उनको चलाने वाले विशेषतंत्र, और उनसे अभिव्यक्त होने वाले निसर्ग वृत्तियों के प्रेरक बल। और जब हम देखते हैं कि स्वप्नों के ढांचे और स्नायु-रोगों के ढांचे में कितना सादृश्य है, तथा सोचते है कि स्वप्न-द्रष्टा कितनी जल्दी अच्छी तरह सजग और तर्कसंगत मनुष्य बन जाता है, तब हमें यह निश्चय हो जाता है कि स्नायु-रोग भी मानसिक जीवन में क्रियाशील बलों के संतुलन में होने वाले परिवर्तन पर ही निर्भर हैं।

तीसरा भाग

स्नायु-रोगों का सामान्य सिद्धान्त

व्याख्यान | १६

मनोविश्लेषण और मनश्चिकित्सा

एक साल के बाद फिर अपने विषय पर विचार करने के लिए आपको यहां देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। पिछले साल मेरे व्याख्यानों का विषय 'ग़लतियों और स्वप्नों पर मनोविश्लेषण का प्रयोग' था। इस वर्ष मैं आपको स्नायु-रोग विषयक घटनाओं के बारे में कुछ ज्ञान प्राप्त कराना चाहता हूं—ये घटनाएं, जैसा कि आप शीघ्र ही देख लेंगे, हमारे पहले वाले विषय से बहुत-सी बातों में मिलती-जुलती हैं, पर शुरू करने से पहले मैं आपसे यह बात कह देना चाहता हूं कि इस बार मैं आपको अपने प्रति पिछले साल वाला रुख नहीं रखने दूंगा। पिछले साल मैंने आपके निर्णय से सहमत हुए बिना क़दम आगे बढ़ाने की कोशिश नहीं की थी। मैंने आपके साथ बहुत बहस की थी, आपके आक्षेपों को स्वीकार किया था, और आपको तथा आपकी 'स्वस्थ समझदारी' को निर्णायक माना था। अब ऐसा करना सम्भव नहीं और इसका कारण बिलकुल सीधा है। ग़लतियां और स्वप्न आपकी परिचित घटनाएं थीं। यह कहा जा सकता है कि उनका आपको उतना ही अनुभव था जितना कि मुझे, अथवा आप आसानी से उतना अनुभव हासिल कर सकते थे। परन्तु स्नायु-रोगों का व्यक्त रूप आपके लिए अज्ञात क्षेत्र है। आप में से जो लोग स्वयं डाक्टर नहीं हैं, वे मेरे दिए हुए विवरण से जो कुछ जान सकते हैं उसके अलावा उनके पास वहां पहुंचने का कोई तरीका नहीं, और जहां विवाद के विषय का ज्ञान न हो वहां बढ़िया से बढ़िया निर्णय-बुद्धि भी किस काम की ?

परन्तु मेरे इस कथन का यह मतलब मत समझिए कि मैं यह व्याख्यान 'बाबा वाक्यम् प्रमाणम्' की तरह आपके सामने दूंगा, या आपसे इसे बिना शर्त मानने को कहूंगा। ऐसी ग़लत धारणा से आप मेरे साथ घोर अन्याय करेंगे। मेरा लक्ष्य निश्चयात्मक विश्वास पैदा करना नहीं है। मेरा लक्ष्य तो जांच-पड़ताल के लिए प्रेरित करना और पूर्वग्रहों,अर्थात् पहले से बने-बनाए संस्कारों को नष्ट करना है। यदि विषय की जानकारी न होने के कारण आप फैसला करने की स्थिति में नहीं

हैं, तो न तो विश्वास करना चाहिए और न अविश्वास; सिर्फ ध्यान से सुनना चाहिए, और जो कुछ मैं कहता हूं, उसका असर अपने ऊपर पड़ने देना चाहिए। निश्चयात्मक विश्वास या आस्था इतनी आसानी से नहीं पैदा की जा सकती, और जब यह आसानी से पैदा की जाती है, तो वह शीघ्र ही बेकार और अस्थिर सिद्ध हो जाती है। इन मामलों पर ऐसे आदमी को विश्वास करने का हक नहीं है जिसने मेरी तरह वर्षों इस विषय का अध्ययन न किया हो और न ही नए और आश्चर्य-जनक रहस्यों का उद्घाटन स्वयं अनुभव किया हो। तो, बौद्धिक मामलों में एका-एक विश्वास, बिजली की तरह कायापलट, और क्षण भर में मत-त्याग क्यों होते हैं। क्या आप यह नहीं देखते कि 'प्रथम दृष्टि का प्रेम' भाव-क्षेत्र से बहुत भिन्न मानसिक क्षेत्र से पैदा होता है। हम अपने मरीजों का मनोविश्लेषण के विश्वासी होना या इसके प्रति भक्ति रखना आवश्यक नहीं समझते। इससे हमें उनपर संदेह होने लगेगा।

हम सबसे अच्छी बात यह समझते हैं कि उनमें हितैषी सन्देह वृत्ति का रुख बना रहे। इसलिए आपको प्रचलित मनश्चिकित्सा सम्बन्धी विचार के साथ-साथ मनोविश्लेषण की अवधारणाओं को भी अपने मनों में चुपचाप बढ़ते रहने का अवसर देना चाहिए,जिससे अन्त में ऐसा मौका आ सकता है कि वे एक दूसरे पर असर डालें और मिलकर एक निश्चित राय का रूप ग्रहण कर लें।

दूसरी ओर आप यह कल्पना जरा भी न करें कि मैं आपके सामने जो मनो-विश्लेषण का दृष्टिकोण पेश करूंगा वह कोई अटकल या कल्पनावासी विचार-प्रणाली है। इसके विपरीत, यह उन अनुभवों का परिणाम है जो या तो प्रत्यक्ष प्रेक्षणों पर या प्रेक्षण से निकाले गए निष्कर्षों पर आधारित है। ये निष्कर्ष पर्याप्त या उचित रीति से निकाले गए ह या नहीं, इसका फैसला विज्ञान की भविष्य में होने वाली उन्नति से होगा। लगभग ढ़ाई दशाब्दी के बाद और इतनी आयु हो जाने के बाद मैं बिना आत्मप्रशंसा की भावना के यह कह सकता हूं कि इन प्रेक्षणों में जो कार्य करना पड़ा, वह विशेष रूप से कठिन, गहन और सारा ध्यान लगाने से होने वाला काम था। प्रायः मेरी यह धारणा बनी है कि हमारे विरोधी हमारे कथनों के इस मूलस्रोत पर विचार करने को तैयार नहीं थे, मानो वे उन विचारों को आत्मनिष्ठ, अर्थात् विचारक की अपनी भावना का परिणाम, मानते थे जिन-पर कोई भी आदमी जब चाहे आपत्ति उठा सकता है। अपने विरोधियों की यह बात मुझे बिलकुल समझ में नहीं आती—शायद इसका कारण यह है कि डाक्टर लोग स्नायु-रोगियों की ओर इतना कम ध्यान देते हैं, और उनकी बातों को इतनी असावधानी से सुनते हैं कि उनके लिए रोगियों के वचनों में कोई विशेष बात देख सकना या उनसे विस्तृत प्रेक्षण करना असम्भव हो गया है। मैं यहां आपको यह आश्वासन देना चाहता हूं कि मैं इन व्याख्यानों में विवादास्पद बातों का,

विशेष रूप से व्यक्तियों का कोई उल्लेख नहीं करूंगा। इस कथन की सचाई मैं कभी अपने मन में नहीं बिठा सका कि 'द्वन्द्व या संघर्ष सब वस्तुओं का जनक है।' मेरा ख्याल है कि यह कथन यूनानी सोफिस्टों के दर्शन से पैदा हुआ है और उस दर्शन की तरह इसमें भी यह त्रुटि है कि इसमें द्वन्द्वात्मकता[1] (या तर्क-पद्धति) को बहुत अधिक महत्व दे दिया गया है। इसके विपरीत, मुझे ऐसा लगता है कि तथाकथित वैज्ञानिक विवाद, कुल मिलाकर बिलकुल व्यर्थ है। और यह बात तो है ही कि यह प्रायः सदा बड़ी व्यक्तिगत रीति से किया जाता है। कुछ वर्ष पहले तक मैं गर्व से यह कह सकता था कि मैं वैज्ञानिक झगड़े में सिर्फ एक बार बाकायदा उलझा हूं और वह भी सिर्फ एक वैज्ञानिक लोवनफैल्ड (म्यूनिखवाले) के साथ। इस झगड़े का अन्त यह हुआ कि हम दोनों मित्र बन गए और आज तक मित्र हैं, पर मैंने बहुत समय तक यह परीक्षण फिर नहीं किया, क्योंकि मुझे यह निश्चय नहीं था कि इसका परिणाम यही होगा।

इससे आप निश्चित रूप से यही समझेंगे कि इस तरह खुलेआम इन प्रश्नों पर विचार करने से इन्कार से यही पता चलता है कि आप आलोचना से बहुत डरते हैं या हठी, या वैज्ञानिक जगत में प्रचलित मुहावरे में कहा जाए तो, दुराग्रही हैं। इसपर मेरा यह उत्तर है कि यदि आप इतने कठोर परिश्रम के बाद किसी निश्चय पर पहुंचे हों तो उससे आपको कुछ दृढ़ता के साथ उसपर डटे रहने का अधिकार होना चाहिए। इसके अलावा मैं यह कह सकता हूं कि अपने गवेषणा-कार्य के बीच में मैंने स्वयं महत्वपूर्ण प्रश्नों पर अपने विचार बदले हैं, और सदा इस तथ्य को प्रकाशित कर दिया है। इस स्पष्टवादिता या साफ-गोई का क्या परिणाम हुआ? कुछ लोगों ने मेरे विचारों में स्वयं मुझ द्वारा किए गए संशोधनों को बिलकुल नज़रन्दाज़ कर दिया, और वे आज भी उन विचारों के लिए मेरी आलोचना करते हैं जिनका अब मेरे लिए वह अर्थ नहीं रहा। कुछ लोग यह परिवर्तन करने के कारण मेरी निन्दा करते है और इसलिए मुझे भरोसा करने के अयोग्य बताते है। जो आदमी एक या दो बार विचार बदल ले वह विश्वास का पात्र कैसे हो सकता है, क्योंकि उसका इस बार का कथन भी ग़लत हो सकता है; पर जो आदमी अपनी एक बार कही हुई बात पर अड़ा रहे या उसमें आसानी से हेर-फेर करने से इन्कार कर दे, वह हठी या दुराग्रही है। ठीक है न? ऐसी परस्पर विरोधी आलोचनाओं को देखते हुए सिवाय इसके क्या रास्ता है कि आदमी जैसा है वैसा कहे, और उसे जैसा जंचे वैसा करे: मैंने ऐसा ही करने का फैसला किया, और मैं बाद के अनुभव के अनुसार अपने सिद्धान्तों में परिवर्तन या संशोधन करने में संकोच नहीं करता। अब तक मुझे अपने मूल दृष्टिकोण को बदलने के लिए

---

१. Dialectics.

कोई उचित कारण नहीं मिला और मुझे आशा है कि इसकी कभी भी आवश्यकता नहीं होगी।

तो, अब मुझे आपके सामने स्नायु-रोगों के प्रकटनों, अर्थात् प्रकट रूपों के बारे में मनोविश्लेषण का सिद्धांत पेश करना है। इस प्रयोजन के लिए सादृश्य और वैषम्य दोनों ही के कारण सबसे अधिक आसानी इस तरह होगी कि ऐसा उदाहरण लिया जाए जो हमारी पहले विचारित घटनाओं के सिलसिले से जुड़ा हुआ है। मैं एक लाक्षणिक कार्य[1] का उदाहरण दूंगा जो बहुत-से लोगों में मैं अपने परामर्श-कक्ष में देखता हूं। विश्लेषक उन लोगों की कोई मदद नहीं कर सकता, जो आध घंटे के लिए अपनी जीवन भर की कष्ट-कथा सुनाने उसके पास आते हैं। वह अपनी गहरी जानकारी के कारण दूसरों की तरह उसे यह राय नहीं दे सकता कि उनमें कोई खराबी नहीं है और उन्हें थोड़ी-सी जल-चिकित्सा करा लेनी चाहिए। हमारे एक साथी ने एक बार सलाह मांगने वाले रोगियों के बारे में पूछे जाने पर बहुत खुश होते हुए कहा था कि मैं 'उनपर—अदालत का इतना समय बर्बाद करने के लिए—इतने क्राउन जुर्माना कर देता हूं।' इसलिए आपको यह सुनकर चकित न होना चाहिए कि अधिक से अधिक व्यस्त मनोविश्लेषकों के पास भी सलाह मांगने वाले मरीजों की भीड़ नहीं लगी रहती। मैंने प्रतीक्षा के स्थान और अपने परामर्श-कक्ष के बीच वाले साधारण दरवाजे के अलावा बीच में एक और दरवाजा लगवा लिया है, और उसे नमदे से मढ़वा दिया है। इसका कारण स्पष्ट है। होता सदा यह है कि जब मैं लोगों को प्रतीक्षा-स्थान से अन्दर बुलाता हूं तब वे इन दरवाजों को बन्द नहीं करते और अपने पीछे दरवाजों को खुला छोड़ देते हैं। जब मैं ऐसा देखता हूं, तब कुछ कड़ाई से तुरन्त उस रोगी से प्रार्थना करता हूं कि वह लौटकर पहले दरवाजे बन्द करे, चाहे वह कितना ही सजा-धजा आदमी हो, या साज-सिंगार पर कितने ही घंटे खर्च करने वाली स्त्री हो। मेरे इस कार्य को अकारण और रौब दिखाने वाला समझा जाता है। कभी-कभी मेरा कहना अनुचित भी हुआ है क्योंकि वह व्यक्ति ऐसा निकला जो स्वयं किवाड़ की हत्थी नहीं पकड़ सकता था, पर अधिकतर मामलों में मेरा कार्य उचित था, क्योंकि जो आदमी इस तरह का आचरण करता है और किसी डाक्टर के परामर्श-कक्ष का दरवाजा प्रतीक्षा-कक्ष की ओर खुला छोड़ देता है, वह अशिष्ट आदमी है, और उससे उदासीनता का व्यवहार करना ही उचित है। आप बाकी बात सुनने से पहले ही किसी पक्ष में कोई धारणा मत बना लीजिए। रोगी दरवाजा केवल तभी बन्द नहीं करता जब वह बाहर के कमरे में अकेला इन्तजार कर रहा है, पर जब दूसरे उससे अपरिचित लोग वहां प्रतीक्षा कर रहे हों तब वह कभी भी दरवाजा खुला नहीं छोड़ता। इस दूसरी

---

१. Symptomatic act.

स्थिति में वह बहुत अच्छी तरह जानता है कि डाक्टर से बातचीत के समय उसकी बात किसी और के कान में न पड़ना उसके अपने लिए ही हितकर है और वह दोनों दरवाजों को सावधानी से बन्द करना कभी नहीं भूलता।

इस तरह रोगी की यह भूल न तो आकस्मिक है, न अर्थहीन और न महत्व-हीन ही, क्योंकि इससे डाक्टर के प्रति रोगी के रुख का पता चलता है। वह उस बड़े वर्ग का व्यक्ति है जो ऊंची स्थिति के लोगों के पीछे फिरते हैं और उनसे आतंकित रहना चाहते हैं। शायद उसने टेलीफोन से यह पूछताछ की थी कि उसे किस समय मिलने का मौका प्राप्त होने की सम्भावना है, और वह यह आशा कर रहा था कि उम्मीदवारों की वैसी ही भीड़ लगी होगी जैसी युद्ध के दिनों में पंसारियों के यहां लगी रहती थी। वहां पहुंचने पर उसे खाली कमरा दिखाई देता है जिसमें बहुत मामूली ढंग की कुर्सियां पड़ी हैं, और वह स्तब्ध हो जाता है। वह डाक्टर के प्रति जो अनावश्यक आदर दिखाने की तैयारी करके आया था, उसे किसी तरह झाड़ फेंकना चाहता है और डाक्टर को सामान्य आदमी मानना चाहता है, और इसलिए वह प्रतीक्षा-कक्ष और परामर्श-कक्ष के बीच के दरवाजे को बंद करना भूल जाता है। वह यह जतलाना चाहता है : "अरे, यहां तो कोई भी नहीं, और न कोई होगा, चाहे मैं कितनी ही देर बैठा रहूं !" वह मिलने के समय अशिष्ट और गर्वपूर्ण ढंग से व्यवहार करेगा, यदि उसे तेज झटका देकर शुरू में ही उसकी पूर्व धारणा को न रोक दिया जाए।

इस छोटे-से लाक्षणिक कार्य के विश्लेषण में ऐसी कोई बात नहीं है जो आप पहले से नहीं जानते, अर्थात् यह निष्कर्ष कि यह आकस्मिक घटना नहीं है, बल्कि इसमें कुछ प्रेरक कारण, अर्थ और आशय है, कि इसका सम्बन्ध एक मानसिक प्रसंग से है जो स्पष्ट रूप से बताया जा सकता है, और कि इससे एक और भी महत्वपूर्ण मानसिक प्रक्रम का हलका-सा संकेत मिलता है; पर सबसे बड़ी बात यह है कि इससे यह बात सूचित होती है कि इस प्रकार निर्दिष्ट प्रक्रम का इसे वहन करने वाले व्यक्ति की चेतना को ज्ञान नहीं है, क्योंकि जिन रोगियों ने दोनों दरवाजे खुले छोड़े उनमें से एक भी यह मानने को तैयार न होता कि वह अपनी उपेक्षा द्वारा मुझे हीन जतलाना चाहता था। शायद उनमें से बहुतों को खाली प्रतीक्षा-कक्ष में घुसने पर निराशा की भावना का ध्यान आया होगा, पर इस भावना और इसके बाद वाले लाक्षणिक कार्य का सम्बन्ध निश्चित रूप में उनकी चेतना के बाहर रहा।

अब एक लाक्षणिक कार्य के इस छोटे-से विश्लेषण को एक रोगी पर किए गए प्रेक्षण के साथ रखा जाए। मैं ऐसा उदाहरण दूंगा जो मुझे अच्छी तरह याद है, और वह थोड़े-से शब्दों में रखा भी जा सकता है। किसी वृत्तान्त के लिए थोड़े विस्तार से कहना आवश्यक है।

एक युवा अफसर ने, जो कुछ दिनों की छुट्टी लेकर घर आया था, मुझसे अपनी सास का इलाज करने के लिए कहा । उसकी सास बड़ी सुखदायक परिस्थितियों में रह रही थी, पर फिर भी अपने और अपने परिवार के जीवन में एक निरर्थक विचार द्वारा कड़वाहट भर रही थी । मैंने देखा कि वह ५३ वर्ष की मधुर और सरलस्वभाव वाली महिला थी, और उसने बिना संकोच के अपने बारे में निम्नलिखित वृत्तान्त बताया : वह अपने विवाह से बड़ी सुखी है और अपने पति के साथ जो एक बड़ी फैक्टरी का मैनेजर है, देहात में रहती है । उसका पति हद से ज्यादा दयालु है। उन्होंने ३० वर्ष पहले प्रेम-विवाह किया था और तब से उनमें कभी मनमुटाव, झगड़ा या क्षण भर की भी ईर्ष्या नहीं पैदा हुई थी। उसके दोनों बच्चों का विवाह बहुत अच्छी जगह हुआ, पर उसका पति अपनी कर्तव्य-भावना के कारण अब भी कार्य में जुटा हुआ है । एक वर्ष पहले एक अविश्वसनीय और उसकी समझ में न आने वाली बात हुई । उसे किसीने बिना नाम के पत्र लिखकर यह सूचित किया कि उसका गुणी पति एक नौजवान लड़की से सांठ-गांठ कर रहा है और उसने तुरन्त इस बात पर विश्वास कर लिया—तब से उसका सुख नष्ट हो गया है। विस्तृत विवरण कुछ-कुछ इस प्रकार था : उसके यहां एक नौकरानी थी, जिसके साथ वह अपनी निजी बातचीत काफी खुलकर किया करती थी। इस नौजवान औरत के मन में एक और लड़की के प्रति बड़ी तीव्र घृणा थी, जो खास अच्छे घर की न होते हुए भी जीवन में उसकी अपेक्षा अधिक सफल हुई थी । दूसरी नवयुवती ने नौकरी करने के बजाय व्यापार-कार्य की शिक्षा हासिल की थी, और वह फैक्टरी में नौकर हो गई थी, जहां कुछ कर्मचारियों को बाहर का काम करने के लिए भेजने के कारण कुछ स्थान खाली हो गए थे, और इस तरह वह अच्छे पद पर पहुंच गई थी । वह फैक्टरी में रहती थी, सब भलेमानसों को जानती थी और उसे लोग 'मिस' कह कर भी पुकारते थे । जो औरत ज़िंदगी में पिछड़ गई थी, वह अपनी उस सहपाठिन पर तरह-तरह के दोष लगाया करती थी । एक दिन हमारी रोगिणी और उसकी नौकरानी एक बड़ी उम्र के आदमी के बारे में बातचीत कर रही थीं, जो उनके घर आया था, और जिसके बारे में यह कहा जाता था कि वह अपनी पत्नी के साथ नहीं रहता है और उसने एक रखैल रखी हुई है । क्यों रखी हुई है, यह वह नहीं जानती थी, पर उसने एकाएक कहा : "इससे भयंकर किसी बात की मैं कल्पना भी नहीं कर सकती कि मेरा पति रखैल रखता है" अगले दिन डाक से उसे बनावटी लिखावट में लिखा हुआ प्रेषक के नाम से रहित एक पत्र मिला, जिसमें वही सूचना दी गई थी जिसकी उसने अभी कल्पना की थी। उसने,शायद ठीक ही,यह निष्कर्ष निकाला कि वह पत्र लिखना उस जलनखोर नौकरानी का काम था, क्योंकि जिस स्त्री को उसके पति की रखैल बताया गया था, वह वही लड़की थी जिससे यह नौकरानी बड़ी घृणा करती थी। यद्यपि उसे तुरन्त

यह षड्यंत्र समझ में आ गया और वह अपने चारों ओर ऐसे कायरतापूर्ण दोषारोपण इतने अधिक देख चुकी थी कि उनपर बिलकुल विश्वास नहीं करती थी, पर तो भी इस पत्र से हमारी रोगिणी बहुत उत्तेजित हो गई और उसने बुरा-भला कहने के लिए अपने पति को तुरन्त बुलवाया। पति ने हंसते हुए इस दोषारोपण का खण्डन किया, और अपने पारिवारिक चिकित्सक को (जो फैक्टरी का डाक्टर भी था) बुलवा भेजा और उसने इस दुखी महिला को शांत करने की कोशिश की। उन्होंने जो अगला कदम उठाया, वह भी बहुत तर्कसंगत था। नौकरानी को बर्खास्त कर दिया गया, पर जिसे रखैल बताया गया था उसे कुछ नहीं कहा गया। रोगिणी का कहना है कि तब से मैंने इस मामले पर शांति से विचार करने की कोशिश की है, और मैं उस पत्र की बातों पर विश्वास नहीं करती, पर यह धारणा कभी बहुत गहरी नहीं गई, और न कभी बहुत दिन कायम रही। उस नवयुवती का नाम सुनकर या सड़क पर उसे देखकर ही संदेह, पीड़ा और निंदा का नया दौरा शुरू हो जाता है।

इस गुणवती स्त्री के 'केस' का रोग-चित्र यह है। मनश्चिकित्सा का बहुत अनुभव न रखने वाले को भी यह समझ में आ जाएगा कि दूसरे स्नायु-रोगियों से इस केस में यह भेद है कि यह रोगिणी अपने लक्षणों को बहुत हल्के रूप में पेश करती थी, उन्हें प्रच्छन्न[1] करती थी, अर्थात् छिपाती थी, और असल में उस गुमनाम पत्र से उसका विश्वास कभी नहीं हट सका।

अब प्रश्न यह है कि ऐसे केस में मनश्चिकित्सक का क्या रुख होता है। यह तो हम पहले ही जानते हैं कि जो रोगी प्रतीक्षा-कक्ष के किवाड़ बन्द नहीं करता, उसके लाक्षणिक कार्य के बारे में वह क्या कहेगा। वह इसे एक आकस्मिक घटना बताता है जिसमें मनोवैज्ञानिक दिलचस्पी की कोई बात नही है, और इसलिए उसके सोचने की कोई चीज़ नहीं है। पर इस ईर्ष्यालु महिला के केस में वह वही रवैया नहीं रख सकता। लाक्षणिक कार्य तो महत्वहीन दिखाई देता है, पर लक्षण इसे गम्भीर मामला बताता है। रोगिणी को इससे घोर कष्ट हो रहा है, और एक परिवार के टूटने का भय है। इसलिए इसमें मनश्चिकित्सक की दिलचस्पी तो निर्विवाद रूप से होनी ही चाहिए। प्रथम तो, मनश्चिकित्सक लक्षण को किसी विशेष गुण से नामांकित करने की कोशिश करता है। यह महिला जिस मनोबिंब या विचार से अपने को पीड़ा दे रही है, उसे अर्थहीन नहीं कहा जा सकता। ऐसा सचमुच होता है कि बड़ी उमर के पति नौजवान स्त्रियों से सम्बन्ध कायम कर लेते हैं, पर इसमें कुछ और चीज़ है जो अर्थहीन और समझ में न आने वाली है। रोगिणी के पास यह कल्पना करने के लिए उस गुमनाम चिट्ठी के अलावा रत्ती भर भी आधार नहीं है कि उसका प्रेमी और विश्वासपात्र पति भी उसी वर्ग का आदमी है जैसे समाज में

१. Dissimulated.

आमतौर से पाए जाते हैं। वह जानती है कि इस पत्र में कोई प्रमाण नहीं दिया गया। वह इस पत्र के लिखे जाने का कारण सन्तोषजनक रीति से बता सकती है। इसलिए उसे अपने आप से कह सकना चाहिए कि मेरी ईर्ष्या बिलकुल निराधार है, और वह ऐसा कहती भी है, पर वह कष्ट इस तरह पा रही है, मानो वह अपनी ईर्ष्या को बिलकुल साधार मानती है। इस तरह के विचार, जिनपर यथार्थता का तर्क और दलीलें प्रभाव नहीं डाल सकतीं सर्वसम्मति से **भ्रम**[1] कहलाते हैं। इसलिए यह भली महिला **ईर्ष्या के भ्रम** से कष्ट पा रही है। स्पष्टतः इस केस की सारभूत विशेषता यही है।

यह पहली बात तय हो जाने के बाद हमारी मनश्चिकित्सा विषयक दिलचस्पी बढ़ जाती है। अगर कोई भ्रम यथार्थता के तथ्यों से दूर नहीं किया जा सकता, तो शायद वह यथार्थता से पैदा ही नहीं हुआ। तो फिर यह कहां से पैदा हुआ? भ्रम विविध प्रकार के हो सकते हैं। तो, इस केस में भ्रम की वस्तु ईर्ष्या ही क्यों है? किस तरह के लोगों को भ्रम, विशेष रूप से ईर्ष्या के भ्रम, होते हैं? अब हम मनश्चिकित्सक से इन प्रश्नों का उत्तर सुनना चाहते हैं, पर यहां वह हमें धक्का दे जाता है। वह हमारे सिर्फ एक प्रश्न पर विचार करता है। वह इस स्त्री के पारिवारिक रोगवृत्त (हिस्ट्री) जांच करेगा और **शायद** हमें यह जवाब देगा कि जो लोग इस तरह के भ्रमों से पीड़ित होते हैं, उनके परिवारों में ऐसे या दूसरी तरह के रोग या विकार बार-बार हुए होते हैं। दूसरे शब्दों में, इस महिला में यह भ्रम इस कारण पैदा हुआ कि उसमें इसके लिए आनुवंशिक पूर्वप्रवृत्ति[2] विद्यमान थी। यह बात कुछ ठीक है, पर क्या हम इतना ही जानना चाहते हैं? क्या उसकी बीमारी का सिर्फ यही कारण है? क्या यह मान लेने से हमें सन्तोष हो जाता है कि इसी तरह का भ्रम पैदा होना, और कोई भ्रम न पैदा होना, महत्वहीन, मनमाना और व्याख्या के अयोग्य है, और क्या हम मान लें कि यह कथन—कि आनुवंशिक पूर्वप्रवृत्ति निश्चायक होती है—नकारात्मक अर्थ में भी सच है, अर्थात् जीवन में उसे चाहे जो अनुभव और भावनाएं पैदा हुई होतीं, पर उसमें यह भ्रम किसी समय पैदा होना अनिवार्य था? आप यह जानना चाहेंगे कि क्या वैज्ञानिक मनश्चिकित्सा इसकी आगे कोई व्याख्या नहीं करती? मेरा उत्तर है: "कोई बेईमान ही इससे अधिक व्याख्या करता है।" मनश्चिकित्सक इस तरह के केस में कोई और व्याख्या कर सकने का रास्ता नहीं जानता। वह रोग-निर्णय[3] से, और विस्तृत अनुभव होते हुए भी इसके भावी मार्ग के बड़े अनिश्चित फलानुमान[4] से ही सन्तुष्ट हो जाता है।

प्रश्न यह है कि क्या मनोविश्लेषण इससे अच्छा नतीजा दिखा सकता है? हां;

---

१. Delusions. २. Hereditary predisposition. ३. Diagnosis. ४. Prognosis.

मुझे निश्चित आशा है कि इस जैसे अस्पष्ट केस में भी कुछ ऐसी चीज़ ढूंढ़ी जा सकती है जिससे बात अधिक अच्छी तरह समझ में आ जाए। पहले आप इस छोटी-सी बात पर विचार कीजिए; कि जिस गुमनाम पत्र के आधार पर उसका भ्रम मौजूद है, उसकी प्रेरणा स्वयं रोगिणी ने ही यह कहकर दी थी कि मेरे लिए इस बात से भयंकर और कोई बात नहीं है कि मेरे पति की किसी नौजवान स्त्री से सांठ-गांठ है। उसने ऐसा कहकर नौकरानी के मन में पत्र भेजने का विचार पैदा किया। इस प्रकार भ्रम उस पत्र से कुछ स्वतंत्र स्थिति रखता है,यह उसके मन में भय के रूप में—या, इच्छा के रूप में ?—पहले ही से मौजूद था। इसके अतिरिक्त, विश्लेषण के सिर्फ़ दो घंटों में जो और छोटे-छोटे संकेत प्रकट हुए, वे अधिक ध्यान देने योग्य हैं। जब रोगिणी ने अपनी कहानी ख़त्म कर दी,तब मेरी इस प्रार्थना पर कि वह मुझे अपने दूसरे विचार, मनोबिंब और स्मृति में आने वाली बातें बताए, उसने बड़ी उदासीनता से इसका उत्तर दिया। उसने कहा कि मेरे मन में कुछ नहीं आता और वह मुझे सब बात बता चुकी है। और दो घंटे बाद आगे कोशिश छोड़ देनी पड़ी, क्योंकि उसने कह दिया कि मैं अब बिलकुल स्वस्थ अनुभव कर रही हूं, और मुझे निश्चय है कि यह अस्वस्थ विचार मुझमें अब नहीं आएगा। उसने यह बात स्वभावतः प्रतिरोध के कारण और आगे विश्लेषण के भय के कारण कही थी। फिर भी, इन दो घंटों में उसके मुंह से कुछ ऐसी बातें निकल गईं जिनसे एक विशेष निर्वचन न केवल किया जा सकता था, बल्कि अनिवार्यतः होता था, और इस निर्वचन से ईर्ष्या के भ्रम की उत्पत्ति पर स्पष्ट प्रकाश पड़ता था। असल में, उसमें एक नौजवान के लिए, उसी जमाई के लिए मोहासक्ति[1] विद्यमान थी,जिसने उससे मेरी सहायता लेने को कहा था। इस मोहासक्ति के बारे में वह कुछ नहीं, या शायद बहुत ही थोड़ा, जानती थी। उनके सम्बन्ध की परिस्थितियों में यह मोहासक्ति उसके हानिरहित वात्सल्य के रूप में अपने आप को छिपा सकती थी। जो कुछ हम अब तक जान चुके हैं, उसके बाद इस अच्छी स्त्री और श्रेष्ठ माता के मन की बात समझ लेना कुछ कठिन नहीं। ऐसी मोहासक्ति, ऐसी भयंकर असम्भव बात, उसके चेतन मन में नहीं आ सकती थी; तो भी यह बनी रही, और अचेतन रूप से इसने भारी दबाव डाला। अब कुछ न कुछ तो होता ही—किसी न किसी तरह का आराम पाने का तरीका ढूंढ़ना ही पड़ता, और इसे कम करने का सबसे सरल तरीका विस्थापन का तंत्र था जो भ्रमात्मक ईर्ष्या पैदा होने में सदा मदद करता है। यदि वह बुढ़िया स्त्री अकेली ही उस नौजवान से प्रेम न करती होती, बल्कि यदि उसका बूढ़ा पति भी किसी नौजवान औरत से प्रेम करता होता तो उसका अन्तःकरण इस विश्वासघात के कष्ट से मुक्त हो जाता। इस प्रकार उसके

---

१. Infatuation.

पति की अपत्नीव्रतता या विश्वासघात की कल्पना उसके जलते हुए घाव पर शीतल मरहम का काम करती थी। उसे अपने प्रेम का कभी भी ज्ञान नहीं हुआ, पर भ्रम में, जिससे इतना लाभ होता था, इसे सोचते रहना अनिवार्य, भ्रमात्मक और चेतन हो जाता था। इसके विरुद्ध पेश की गई सब दलीलों का स्वभावतः कोई लाभ नहीं हो सकता था, क्योंकि वे इस सोचने के विरुद्ध होती थीं, उस मूल बात के विरुद्ध नहीं; जिसके कारण इस चिंतन में शक्ति थी और जो पहुंच से बाहर अचेतन में गड़ी हुई थी।

अब इस छोटे अधूरे मनोविश्लेषण के प्रयत्न के परिणामों को इकट्ठा जोड़कर इस केस को समझने की कोशिश की जाए। यह मान लिया गया है कि प्राप्त जानकारी सही थी, और इस प्रश्न पर मैं आपका फैसला नहीं चाहता। पहली बात तो यह कि वह भ्रम अब अर्थहीन और अबोध्य नहीं रहा। यह समझ में आने योग्य है, और इसके तर्कसंगत प्रेरक कारण हैं, और यह रोगिणी के भाव सम्बन्धी अनुभव से एक सिलसिले में जुड़ा हुआ है। दूसरे, यह एक और मानसिक प्रक्रम की, जो स्वयं दूसरे संकेतों से प्रकट हो गया है, आवश्यक प्रतिक्रिया के रूप में पैदा हुआ है, और इसका भ्रमात्मक स्वरूप, इसका यथार्थ और तर्कसंगत आक्षेपों का विरोध करने का गुण इस दूसरे मानसिक प्रक्रम के साथ यह सम्बन्ध होने के कारण ही है। यह एक अभीष्ट वस्तु, एक तरह की सांत्वना है। तीसरे रोग के मूल में जो अनुभव है, वह ही यह तथ्य असंदिग्ध रूप से निश्चित कर देता है कि भ्रम ईर्ष्या का होगा, और किसी चीज का नहीं। हमने जिस लाक्षणिक कार्य का विश्लेषण किया था, उससे दो महत्वपूर्ण सादृश्य भी आपकी समझ में आ गए होंगे, अर्थात् लक्षण के पीछे भावार्थ और आशय की खोज, और दी गई स्थिति की किसी बात से, जो अचेतन, अर्थात् अज्ञात है, इसका सम्बन्ध।

इतने से निःसंदेह इस केस में पैदा होने वाले सब प्रश्नों का उत्तर नहीं मिल जाता। इसके विपरीत, इसमें और भी समस्याएं मालूम होती हैं, जिनमें से कुछ अब तक जरा भी समाधानयोग्य नहीं सिद्ध हुई, और कुछ इस केस की प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण हल नहीं की जा सकतीं। उदाहरण के लिए, यह सुखी विवाह वाली महिला अपने जमाई के प्रेम में क्यों पड़ गई, और उसे इस तरह के चिन्तन के रूप में अपने मन की अवस्था अपने पति पर आरोपित करके क्यों आराम मिलता है, जब कि आराम पाने के और भी तरीके हो सकते थे। यह न समझिए कि यह प्रश्न उठाना बेकार और अकारण है। इसका सम्भव उत्तर पेश करने के लिए हमारे पास पहले ही काफ़ी सामग्री है। रोगिणी जीवन के उस संकट वाले समय में पहुंच गई थी जिसमें स्त्री में मैथुनेच्छा एकाएक और अनचाहे बढ़ जाती है। अकेला यह कारण ही काफी हो सकता था, या एक और यह कारण हो सकता था कि कुछ वर्षों से उसके श्रेष्ठ और पत्नीनिष्ठ पति का मैथुन-सामर्थ्य इस, अब

भी प्रबल सामर्थ्य वाली, स्त्री की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए काफी न रहा हो। प्रेक्षण से हमें पता चला है कि ऐसे ही लोग, जिनकी निष्ठा और विश्वस्तता इस प्रकार सामान्य बात होती है, अपनी पत्नियों से विशेष प्रेम से व्यवहार करते ह, और उनके स्नायु-रोगों का विशेष रूप से ख्याल करते हैं। इसके अतिरिक्त, यह बात भी महत्वहीन नहीं है कि इस अप्रकृत[1] मोहासक्ति का आलंबन उसकी पुत्री का नौजवान पति था। पुत्री के प्रति प्रबल कामासक्ति, जिसका मूल माता की अपनी यौन रचना में होता है, प्रायः इस तरह रूपान्तरित होकर काय्म रहती है। इस सिलसिले में मैं आपको यह याद दिला दूं कि सास और जमाई का सम्बन्ध, स्मरणातीत काल से, मनुष्य जाति द्वारा विशेष रूप से नाजुक माना जाता रहा है, और आदिम मूल वंशों में इसके विषय में बड़े प्रबल टैबू[2] या निषेध और सावधानियां रखी गई हैं। विधि और निषेध,दोनों पक्षों में यह प्रायः उन सीमाओं को लांघ जाता है जो सभ्य समाज में वांछनीय समझे जाते हैं। इन तीन सम्भव बातों में से इस केस में एक बात क्रियाशील रही, या दो बातें रहीं, या तीनों की तीनों रहीं, यह मैं आपको नहीं बता सकता; यद्यपि इसका कारण सिर्फ़ यह है कि इस केस का विश्लेषण दो घंटे से अधिक नहीं हो सका।

अब मैं समझ रहा हूं कि मैं अब तक सब ऐसी बातें कहता रहा, जिन्हें समझने के लिए अभी आप तैयार नहीं थे। मनश्चिकित्सा और मनोविश्लेषण की तुलना पेश करने के लिए ही मैंने ऐसा किया, पर मैं यहां आपसे एक बात कहना चाहता हूं। क्या आपको इन दोनों में कोई परस्पर विरोध जैसी चीज़ दिखाई दी? मनश्चिकित्सा मनोविश्लेषण के प्राविधिक या टेक्नीकल तरीके प्रयोग में नहीं लाती, भ्रम की वस्तु पर बिलकुल विचार नहीं करती, और आनुवंशिकता की बात कहकर हमें सिर्फ एक साधारण और दूरवर्ती कारण बताती है; और पहले, अधिक वैज्ञानिक, और निकटतम कारण नहीं बताती। पर क्या इसमें कोई परस्पर विरोध है? क्या एक चीज़ दूसरी की पूरक ही नहीं है? क्या आनुवंशिकता वाली बात अनुभव के महत्व से मेल नहीं खाती और क्या वे दोनों मिलकर बहुत प्रभावकारी नहीं बन जातीं? आप स्वीकार करेंगे कि मनश्चिकित्सा के कार्य में कोई ऐसी सारभूत बात नहीं है जो मनोविश्लेषण सम्बन्धी गवेषणाओं के विरुद्ध हो सके। इसलिए इसका विरोध करने वाले मनश्चिकित्सक हैं, मनश्चिकित्सा नहीं। मनोविश्लेषण और मनश्चिकित्सा का बहुत कुछ वैसा ही सम्बन्ध है जैसा औतिकी[3] तथा शरीर का--एक में अंगों के बाहरी रूपों का अध्ययन होता है और दूसरे में ऊतकों[4] का और घटक तत्वों से इनके निर्माण का। इन दोनों अध्ययन-क्षेत्रों में,जिनमें एक का काम दूसरे में चालू रखा जाता है, कोई परस्पर विरोध आसानी से नहीं

१. Abnormal. २. देखिए Totem und Tabu. ३. Histology; ४. Tissues.

सोचा जा सकता। आप जानते हैं कि आजकल चिकित्सा के वैज्ञानिक अध्ययन का आधार शरीर है, पर किसी समय शरीर की भीतरी संरचना[1] देखने के लिए मनुष्य के शवों की चीर-फाड़ करना उतना ही बुरा और निषिद्ध माना जाता था, जितना आजकल मनुष्य के मन की भीतरी कार्य-पद्धति देखने के लिए मनोविश्लेषण को माना जाता है। और शायद कुछ ही समय बाद हम यह देख लेंगे कि वैज्ञानिक आधार पर मनश्चिकित्सा तब तक न हो सकेगी, जब तक मानसिक जीवन की गहराई में हो रहे अचेतन प्रक्रमों का पूरा-पूरा ज्ञान न हो।

आपमें से कुछ लोग ऐसे हो सकते हैं जो मनोविश्लेषण से काफी प्रीति रखते हों, हालांकि प्रायः इसकी आलोचना की जाती है; और यह कामना रखते हों कि यह अपने आपको एक और दिशा में, अर्थात् चिकित्सा के क्षेत्र में भी उचित सिद्ध कर देगा। आप जानते हैं कि मनश्चिकित्सा-पद्धति अब तक भ्रमों पर असर डालने में असमर्थ रही है। क्या मनोविश्लेषण, शायद इन लक्षणों के तंत्र के भीतरी रूप को जानने के कारण, उनपर असर डाल सकता है? नहीं; मुझे आपसे यही कहना है कि यह उनपर असर नहीं डाल सकता, क्योंकि कम से कम इस समय तो यह इन रोगियों के इलाज में बिलकुल उतना ही असमर्थ है जितनी और कोई चिकित्सा-शैली। यह सच है कि हम यह समझ सकते हैं कि मरीज़ को क्या हुआ है, पर हमारे पास ऐसा कोई साधन नहीं जिससे हम खुद मरीज़ को यह बात समझा सकें। आप सुन चुके हैं कि इस भ्रम का विश्लेषण मैं आरम्भिक बातों से आगे न कर सका। तब क्या आप यह कहेंगे कि ऐसे केसों का विश्लेषण अवांछनीय होता है, क्योंकि वह निष्फल रहता है? हमारा यह कर्तव्य और अधिकार है कि हम तात्कालिक लाभ पर बिना ध्यान दिए अपनी गवेषणाएं करते जाएं। कोई दिन आएगा—कहां और कब, यह हम नहीं जानते—जब हर छोटे से छोटा ज्ञान-खण्ड क्षमता में और चिकित्सा की क्षमता में परिवर्तित हो जाएगा। यदि मनोविश्लेषण भ्रमों की तरह और सब तरह के स्नायु-रोगों और मानसिक रोगों में विफल सिद्ध हो, तो भी यह वैज्ञानिक गवेषणा के अनुपम साधन के रूप में उपयुक्त ही होगा। यह सच है कि हम इसका व्यवसाय करने की स्थिति में नहीं हो सकते। जिस मनुष्यरूप सामग्री से हमें सीखना है, वह जीवित है और उसमें अपनी इच्छा होती है, और इस कार्य में हिस्सा लेने के लिए उसके पास कोई व्यक्तिगत प्रेरक कारण होने चाहिएं; और फिर यह इसमें हिस्सा लेने से इन्कार भी कर देती है। इसलिए आज का व्याख्यान खत्म करते हुए मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि ऐसे बहुत सारे स्नायु-रोग हैं, जिनके लिए हमारा यह ज्ञान सचमुच चिकित्सा-क्षमता में बदल चुका है, और इन रोगों में, जो वैसे असाध्य मालूम होते हैं, हमारी विधियों से कुछ अवस्थाओं में ऐसे परिणाम निकलते हैं जो चिकित्सा के क्षेत्र में अनुपम हैं।

१. Structure.

लक्षणों का अर्थ

पिछले व्याख्यान में मने आपको बताया था कि क्रियात्मक मनश्चिकित्सा किसी एक लक्षण के वास्तविक रूप या उसकी वस्तु के बारे में बिलकुल नहीं सोचती, पर मनोविश्लेषण अपनी बात यहां से ही शुरू करता है, और उसे यह निश्चय हो चुका है कि स्वयं लक्षण का कोई अर्थ होता है, और वह रोगी के जीवन के अनुभवों से सम्बन्धित है। स्नायु-रोगों के लक्षणों का अर्थ सबसे पहले जे० ब्रायर ने हिस्टीरिया के एक रोगी का अध्ययन और सफल इलाज करते हुए (१८८०-८२) खोजा था, और तब से वह केस प्रसिद्ध हो गया है। यह सही है कि पी० जेनेट स्वतंत्र रूप से उसी परिणाम पर पहुंचा था। सच तो यह है कि प्रकाशन पहले फ्रांसीसी अनुसंधानकर्ता (जेनेट) के ही परिणामों का हुआ, क्योंकि ब्रायर ने अपने प्रेक्षण दस-ग्यारह वर्ष बाद में (१८९३-९५) प्रकाशित किए, जब हम दोनों इकट्ठे कार्य करते थे। प्रसंगतः, हमारे लिए यह कोई बड़े महत्व की बात नहीं कि यह खोज किसने की; क्योंकि आप जानते हैं कि प्रत्येक खोज एक से अधिक बार की जाती है, और कोई खोज एक ही बार में पूरी नहीं हो जाती, और न पात्रता के अनुसार सफलता मिलती है। अमेरिका का नाम कोलम्बस के नाम पर नहीं पड़ा। ब्रायर और जेनेट से पहले महान् मनश्चिकित्सक लारेट ने यह विचार प्रकट किया था कि पागलों के भ्रमों का भी कुछ अर्थ निकल सकता है, यदि हम उनका अर्थ लगाना जानते हों। मैं मानता हूं कि मैं स्नायविक लक्षणों की व्याख्या करने के कारण जेनेट को बहुत ऊंचा मान देने को उत्सुक था, क्योंकि वह उन्हें रोगी के मन पर छाए हुए 'अचेतन मनोबिम्बों' की अभिव्यक्तियां मानता था, पर तबसे जेनेट ने अनुचित चुप्पी साध ली है, मानो उसके लिए अचेतन कहने का एक तरीका मात्र था, और उसके मन में कोई 'वास्तविक' या 'यथार्थ' बात नहीं थी। तब से जेनेट के विचार मेरी समझ में नहीं आते, पर मैं समझता हूं कि उसने मुफ्त में ही बहुत बड़ा श्रेय छोड़ दिया है।

तो ग़लतियों और स्वप्नों की तरह स्नायविक लक्षणों का भी अर्थ होता है, और

उनकी तरह ये भी जिस व्यक्ति में दिखाई देते हैं, उसके जीवन से सम्बन्धित होते हैं। यह एक महत्वपूर्ण बात है, जो मैं कुछ उदाहरणों से आपके सामने स्पष्ट करना चाहता हूं। मैं ज़ोर देकर कह ही सकता हूं, सिद्ध नहीं कर सकता, कि प्रत्येक केस में यही बात होती है। स्वयं प्रेक्षण करनेवाले किसी भी आदमी को इसका निश्चय हो जाएगा। कुछ कारणों से मैं यह उदाहरण हिस्टीरिया के केसों में से नहीं लूगा, बल्कि एक और प्रकार के स्नायु-रोग में से लूंगा जो इससे उत्पत्ति की दृष्टि से नज़दीकी सम्बन्ध रखते हैं, और उसके बारे में मैं कुछ आरम्भिक शब्द कहना चाहता हूं। यह चीज़, जिसे हम मनोग्रस्तता-रोग[1] कहते हैं, हिस्टीरिया की तरह आम नहीं है। यह उतना शोर मचाकर सामने नहीं आता, बल्कि इस तरह व्यवहार करता है कि जैसे यह रोगियों का निजी मामला है। इसमें प्रायः कोई शारीरिक लक्षण नहीं दिखाई देते और इसके सब लक्षण मानसिक क्षेत्र में पैदा होते हैं। मनोग्रस्तता रोग और हिस्टीरिया उस स्नायविक रोग के दो रूप हैं जिसके अध्ययन पर मनोविश्लेषण का पहले निर्माण हुआ, और जिसके इलाज को हमारी चिकित्सा शैली अपनी विजय समझती है। पर मनोग्रस्तता-रोग में मानसिक से शारीरिक पर रहस्यमय छलांग नहीं होती, और मनोविश्लेषण की गवेषणाओं से हिस्टीरिया की अपेक्षा यह कहीं अधिक अच्छी तरह स्पष्ट हो गया है। हम यह समझने लगे हैं कि स्नायविक रचना की कुछ प्रमुख बातें इसमें अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं।

मनोग्रस्तता-रोग[2] इस रूप में होता है; रोगी के मन में ऐसे विचार भरे रहते हैं, जिनमें उसकी वास्तव में दिलचस्पी नहीं होती, वह ऐसे आवेग अनुभव करता है जो उसे अपरिचित मालूम होते हैं, और ऐसी क्रियाएं करने को प्रेरित होता है जिनसे उसे आनन्द नहीं मिलता, पर जिनसे हटने का सामर्थ्य भी उसमें नहीं है। विचार (मनोग्रस्तियां या आबसेशन) अपने आप में अर्थहीन या रोगी के लिए बिना दिलचस्पी के हो सकते हैं; वे प्रायः बिलकुल मूर्खता भरे होते हैं। उनसे विचार का तनावपूर्ण सकेन्द्रण शुरू होता है, और वह विचार रोगी को थका देता है, और रोगी बड़ी अनिच्छा से इसके अधीन होता है। उसे अपनी इच्छा के विरोध में चिन्ता और कल्पना करनी पड़ती है, मानो वह उसके लिए जिन्दगी या मौत का सवाल है। वह अपने अन्दर जो आवेग देखता है, वे भी वैसे ही मूर्खतापूर्ण और निरर्थक प्रतीत हो सकते हैं, परन्तु अधिकतर उनमें कोई भयानक चीज़ होती है जैसे भयंकर अपराध करने के लिए फुसलाहट, और इसलिए रोगी उन्हें न केवल अपरिचित की तरह अस्वीकार करता है, बल्कि डरकर उनसे दूर भागता है, और

---

१. Obsessional neurosis. २. इसे अंग्रेजी में Compulsion-neurosis भी कहते हैं।

प्रतिषेधों, सावधानियों और रुकावटों द्वारा उनपर अमल करने की सम्भावना से अपनी रक्षा करता है। सचाई तो यह है कि वह एक बार भी इन आवेगों को कार्य रूप में परिणत नहीं करता। पलायन और सतर्कता सदा विजयी होती है। जो कार्य वह वास्तव में करता है वह बड़े हानिरहित और निश्चित रूप से तुच्छ कार्य होते ह--जिन्हें मनोग्रस्तीय कार्य कहा जाता है--जो अधिकतर रोज के सामान्य कामों की आवृत्ति और जरा धूमधाम से किए गए कार्य ही होते हैं और इस तरह इन सामान्य आवश्यक क्रियाओं--सोना, नहाना-धोना, कपड़े पहनना, घूमने जाना आदि--को बड़े श्रमसाध्य और कठिन कार्य बना देता है। अस्वस्थ विचार, आवेग और क्रियाएं मनोग्रस्तता-रोग के अलग-अलग प्ररूपों और उदाहरणों में एक ही अनुपात में नहीं मिले होते। इसके विपरीत, नियम यह है कि इन अभिव्यक्त रूपों में से एक प्रधान होता है, और उसके नाम पर रोग का नाम पड़ता है; पर इसके सब रूपों में जो सामान्य अंश है वह काफी असंदिग्ध है।

निश्चित रूप से यह पागलपन का रोग है। मैं समझता हूं कि मनश्चिकित्सा की अजीब से अजीब कल्पना भी इस जैसी कोई चीज़ नहीं बना सकती थी, और यदि हम इसे रोज आंखों से न देखते होते तो हमारे लिए इसपर विश्वास करना भी बड़ा कठिन था। पर आप यह न समझिए कि ऐसे रोगी को यह सलाह देकर, कि अपना ध्यान इधर-उधर न होने दो, इन मूर्खतापूर्ण मनोबिम्बों की ओर कोई ध्यान न दो, और इन अर्थहीन कार्यों के बजाय कोई काम की बात करो, आप उसे कुछ लाभ पहुंचा सकते हैं। यह तो वह स्वयं ही करना चाहता है, क्योंकि उसे अपनी दशा का पूरी तरह पता है। अपने मनोग्रस्तता-लक्षणों के बारे में वह आपकी राय से सहमत है और वह बड़ी खुशी से अपनी राय देता भी है; बात सिर्फ इतनी है कि उसका अपने ऊपर वश नहीं है। मनोग्रस्तता की अवस्था में की जानेवाली क्रियाओं को एक इस तरह की ऊर्जा से पोषण मिलता है जिसकी समकक्ष चीज़ प्रकृत मानसिक जीवन में सम्भवतः कोई भी नहीं है। उसके सामने सिर्फ एक रास्ता है—वह विस्थापन कर सकता है और विनिमय यानी अदल-बदल कर सकता है; एक मूर्खतापूर्ण मनोबिम्ब के स्थान पर वह दूसरा, कुछ हलके प्रकार का मनोबिम्ब ला सकता है, एक सतर्कता या प्रतिषेध से वह दूसरे पर जा सकता है। धूमधाम से किए जाने वाले एक कार्य के स्थान पर वह दूसरा कार्य कर सकता है। वह अपनी अनिवार्यता या बाध्यता की भावना को विस्थापित कर सकता है, पर वह इसे दूर नहीं कर सकता। यह सारे लक्षणों को विस्थापित करने का सामर्थ्य, जिसमें उनके मूल रूप जड़ से बदल जाते हैं, इस रोग की मुख्य विशेषता है। इसके अलावा, यह बात भी खास है कि इस अवस्था में मानसिक जीवन में व्याप्त 'विरोधी भाव' (ध्रुवत्व)[1] में खास तौर से तीव्र भिन्नता दिखाई देती है, विध्यात्मक और निषे-

१. Opposite-Values (Polarities).

धात्मक दोनों प्रकार की बाध्यताओं के साथ-साथ बुद्धि के क्षेत्र में संशय दिखाई देता है, जो क्रमशः फैलता जाता है और अन्त में वह उस बात में भी होने लगता है जो प्रायः निश्चित मानी जाती है। ये सब बातें मिलकर ऐसी स्थिति बना देती हैं जिसमें निर्णय-बुद्धि घटती जाती है, ऊर्जा का नाश होता है, और आजादी कम होती है, और यद्यपि मनोग्रस्तता का रोगी भी हमेशा शुरू में ऊर्जस्वित स्वभाव का होता है, प्रायः बहुत-सी रायें रखता है, और आम तौर से औसत से अधिक बुद्धि वाला होता है, पर उसका आचार सम्बन्धी परिवर्धन काफी अधिक हुआ होता है; वह बहुत धर्मभीरु और अधिकतर सही होता है। आप कल्पना कर सकते हैं कि परस्पर विरोधी गुणों और अस्वस्थ व्यक्त रूपों के इस गोरखधन्धे में अपने पांव जमाए रखना काफी श्रमसाध्य काम है। इस समय हमारा ध्येय इस रोग के कुछ लक्षणों का अर्थ लगाना मात्र है।

शायद हमारे पिछले विवेचन को देखते हुए आप यह जानना चाहेंगे कि मनोग्रस्तता-रोग के बारे में आजकल की मनश्चिकित्सा क्या कहती है। इसका बहुत मामूली-सा कार्य है। मनश्चिकित्सा ने अनेक तरह की बाध्यताओं के नाम रख दिए हैं, पर वह उनके बारे में और कुछ नहीं कहती। इसके बदले वह इस बात पर जोर देती है कि जिन व्यक्तियों में ये लक्षण दिखाई देते ह, वे 'पतित'[1] होते हैं। इससे हमें अधिक सन्तोष नहीं होता। इससे हम उनका सिर्फ मूल्य आंकते हैं—यह तो व्याख्या के बजाय निन्दा है। मैं समझता हूं कि मनश्चिकित्सा हमें यह बताना चाहती है कि प्ररूप अर्थात् असली आम रूप से पतित हो जाने पर लोगों में स्वभावतः सब तरह से विषमताएं पैदा हो जाती हैं। अब हम भी यह मानते हैं कि जिन लोगों में ऐसे लक्षण होते हैं, वे दूसरे मनुष्यों से प्ररूप में कुछ न कुछ भिन्न होते हैं, पर हम यह जानना चाहते हैं कि क्या वे दूसरे स्नायु-रोगियों, अर्थात् हिस्टीरिया वाले या पागल लोगों की अपेक्षा अधिक 'पतित' होते हैं? इस तरह स्वरूप-निर्देश करना अत्यधिक साधारण वर्णन है। जब हम यह देखते हैं कि ऐसे लक्षण असाधारण योग्यता वाले उन नर-नारियों में पाए जाते हैं, जिन्होंने अपनी पीढ़ी पर अपने चिह्न छोड़े हैं, तब यह सन्देह होने लगता है कि क्या ऐसा कहना जरा भी उचित है? उनकी अपनी विवेक-बुद्धि और जीवन-चरित-लेखकों की असत्य-परायणता के कारण हमें आदर्श महापुरुषों के भीतरी स्वभाव के बारे में प्रायः बहुत कम जानकारी होती है, पर कभी-कभी ऐसा अवश्य होता है कि उनमें से कोई, सचाई के बारे में एमिल जोला की तरह मतांध होता है, और तब हमें उन बहुत-सारी असाधारण मनोग्रस्तता वाली आदतों का पता चल जाता है, जिनसे उसने सारे जीवन कष्ट उठाया।

मनश्चिकित्सा ने इन लोगों को 'पतित महापुरुष' कहकर पिंड छुड़ा लिया।

१. Degenerate.

अच्छा किया; पर मनोविश्लेषण ने यह सिद्ध कर दिया कि इन असाधारण मनोग्रस्तता-लक्षणों को दूसरे रोगों के लक्षणों की तरह, और उस तरह जैसे उन लोगों में, जो पतित नहीं हैं, स्थायी रूप से हटाया जा सकता है। स्वयं मुझे ऐसा करने में बहुत बार सफलता मिली है।

मैं मनोग्रस्तता-लक्षणों के विश्लेषण के सिर्फ़ दो उदाहरण दूंगा। इनमें से एक पुराना है, पर उससे अच्छा उदाहरण मुझे आज तक नहीं मिला, और एक हाल का है। मैं इन दो उदाहरणों तक ही रहूंगा, क्योंकि इस तरह का वर्णन बड़ा स्पष्ट होना चाहिए, और उसमें बहुत विस्तार में जाना होगा।

लगभग ३० वर्ष की आयु वाली एक महिला बड़े प्रबल मनोग्रस्तता-लक्षणों से पीड़ित थी। यदि दुर्भाग्य ने मेरा काम न बिगाड़ दिया होता तो शायद मैं उसकी मदद कर सका होता—इसके बारे में शायद आगे चलकर मैं बताऊंगा। वह निम्नलिखित अजीब मनोग्रस्तता के कार्य एक दिन में कई बार करती थी। वह अपने कमरे में से दौड़कर पास वाले कमरे में चली जाती; वहां कमरे के बीच में रखी हुई मेज के पास एक विशेष स्थिति में खड़ी हो जाती, घन्टी बजाकर अपनी नौकरानी को बुलाती, उसे कोई मामूली-सा हुक्म देती, या बिना हुक्म दिए बाहर भेज देती, और फिर दौड़कर अपने कमरे में लौट जाती। इसमें निश्चित रूप से कोई भय पैदा करने वाली बात नहीं थी, पर इससे कुतूहल तो पैदा हो ही सकता है। इसकी व्याख्या विश्लेषक के बिना कुछ किए बड़े सरल और सीधे तरीके से सामने आई। मैं यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि मुझे इस मनोग्रस्तता के अर्थ की शंका भी कैसे हो सकती, या इसकी व्याख्या भी मैं कैसे कर सकता था। मैंने रोगी से जब भी यह पूछा : "तुम ऐसा क्यों करती हो ? इसका क्या अर्थ है ?" तब उसने यही उत्तर दिया : "मैं नहीं जानती।" पर एक दिन, जब मैं उसके बहुत बड़े संकोच को, जिसमें एक सिद्धान्त का प्रश्न आता था, दूर करने में सफल हुआ; एकाएक वह जान गई, क्योंकि उसने मनोग्रस्तता के उस कार्य का इतिहास सुना दिया। लगभग दस वर्ष पहले, उसने अपने से बहुत अधिक आयु के एक आदमी से विवाह किया था, जो सुहागरात में नपुंसक सिद्ध हुआ था। वह उस रात संभोग का प्रयत्न करने के लिए अनेक बार अपने कमरे से दौड़कर उसके कमरे में गया, पर हरबार असफल रहा। सबेरे उसने क्रोध से कहा था : "किसी आदमी को बिस्तर लगाने वाली नौकरानी की नजरों में गिरा देना ही काफी है !" और पास ही पड़ी लाल स्याही की बोतल लेकर उसे चादर पर उलट दी थी, पर ठीक उस स्थान पर नहीं उलटा था जहां ऐसा निशान हो सकता था। पहले मैं यह नहीं समझ सका कि इस स्मृति का प्रस्तुत मनोग्रस्तता-कार्य से क्या सम्बन्ध हो सकता है, क्योंकि मुझे दोनों स्थितियों में इसके अलावा और कोई समानता नहीं दिखाई दी थी कि एक कमरे से दूसरे कमरे में दौड़ने की और शायद नौकरानी के घटना-स्थल पर आने की बातें एक-सी हैं।

तब रोगिणी मुझे साथ के कमरे में मेज के पास ले गई, जहां मैंने मेजपोश पर एक बड़ा निशान देखा। उसने यह भी बताया कि मैं मेज के पास इस तरह खड़ी होती हूं कि जब नौकरानी अन्दर आए, तब वह इस निशान को अवश्य देख सके। इसके बाद प्रस्तुत मनोग्रस्तता-कार्य और सुहाग रात की घटना के सम्बन्ध-सूत्र के बारे में कोई शक नहीं रह सकता था हालांकि अभी इसके बारेमें बहुत कुछ जानना बाकी था।

प्रथम तो यह बात स्पष्ट थी कि रोगिणी अपने आप को अपना पति बना रही थी। उसके एक कमरे से दूसरे कमरे में जाने का अनुकरण करके वह उसका अभिनय कर रही थी। दोनों में समानता बनाए रखने के लिए हमें यह मानना पड़ेगा कि उसने चारपाई और चादर के स्थान पर मेज और मेजपोश को प्रस्तुत कर लिया। यह बिलकुल मनमानी बात मालूम हो सकती है, पर हमने स्वप्न-प्रतीकों पर व्यर्थ ही विचार नहीं किया। स्वप्नों में मेज बहुत बार चारपाई को निरूपित करती है। 'चारपाई और मेज' का मिलाकर अर्थ विवाह है और इसलिए इनमें से एक आसानी से दूसरे के स्थान पर आ जाता है।

यह सब बात इस बात का पर्याप्त प्रमाण है कि मनोग्रस्तता-कार्य अर्थपूर्ण कार्य है; यह उस बहुत महत्वपूर्ण दृश्य का निरूपण या आवृत्ति प्रतीत होता है, पर इतने ही सादृश्य पर रुक जाना जरूरी नहीं; यदि हम दोनों स्थितियों के सम्बन्ध को अधिक बारीकी से पड़ताल करें तो शायद हमें कुछ और बात, अर्थात् इस मनोग्रस्तता-कार्य के प्रयोजन का पता चल जाए। स्पष्टतः असली बात नौकरानी को बुलाने में है, जिसे वह लाल निशान दिखाती है, और उसके पति के इन शब्दों से 'किसीको उसकी नौकरानी की नजरों में गिरा देना काफी है', उसकी बातों का वैषम्य दिखाई देता है। इस प्रकार, जिसका अभिनय वह महिला कर रही थी, वह नौकर के सामने शर्मिन्दा नहीं होता और धब्बा जहां होना चाहिए, वहीं है। इसलिए हम देखते हैं कि उसने दृश्य को सिर्फ दोहराया नहीं है, बल्कि उस सिलसिले को जारी रखा है और उसमें संशोधन किया है, और इसे ऐसा रूप दे दिया है जो इसका होना चाहिए था। इससे एक और बात भी पता चलती है, और वह है उस परिस्थिति का संशोधन, जिसने वह रात इतनी कष्टदायक बना दी थी, और जिसके कारण लाल स्याही की आवश्यकता हुई, अर्थात् पति की नपुंसकता। इस प्रकार, मनोग्रस्तता-कार्य का अर्थ यह है : "नहीं, यह सच नहीं है। वह नौकरानी की नजरों में गिरा नहीं। वह नपुंसक नहीं था।" स्वप्न की तरह यहां भी इस मनोग्रस्तता-कार्य में वह इस इच्छा को पूर्ण हुआ निरूपित करती है जिससे उस दुर्भाग्यपूर्ण घटना के बाद उसके पति का मान पुनः कायम होने का प्रयोजन सिद्ध हो जाता है।

इस महिला के बारे में मैं आपको और जो भी कुछ बता सकता था, वह सब इस अर्थ के साथ मेल खाता है। या अधिक सही रूप में कहें तो हम उसके बारे में और जो भी कुछ जानते हैं, उस सबसे उस मनोग्रस्तता-कार्य का जो वैसे बिलकुल समझ में

नहीं आता था, यही अर्थ सूचित होता है। वह वर्षों से अपने पति से अलग थी और उससे कानूनन तलाक लेने का इरादा कर रही थी। पर अपने मन में उसके उससे मुक्त होने की कोई सम्भावना नहीं हो सकती थी। वह अपने आप को उसके प्रति निष्ठावान् होने के लिए मजबूर कर रही थी। वह दुनिया से और सब व्यक्तियों से अपने को खींचकर अलग ले गई जिससे उसे प्रलोभन पैदा न हो, और अपने कल्पना-लोक में उसने उसे माफ़ कर दिया और आदर्श रूप में प्रतिष्ठित किया। उसके रोग का असली भीतरी रहस्य यह था कि इस तरह वह पड़ोसियों की द्वेषपूर्ण कानाफूसी से बच सकती थी, अपने को पति से अलग रहने को उचित ठहरा सकती थी, और अपने पति को अपने से अलग रहते हुए सुख से जीवन बिताने का मौका दे सकती थी। इस प्रकार किसी हानि रहित मनोग्रस्तता-कार्य के विश्लेषण से हम सीधे रोगी के सबसे अन्दर वाले रहस्य पर पहुंच जाते हैं, और साथ ही हमें सामान्य मनोग्रस्तता-रोग का रहस्य बहुत कुछ पता चल जाता है। मुझे यह मंजूर है कि आप इस उदाहरण पर कुछ समय लगाएं क्योंकि इसमें ऐसी दशाएं एक जगह मौजूद ह जिनकी सब उदाहरणों में आशा करना युक्तिसंगत नहीं। इस लक्षण का निर्वचन रोगिणी ने विश्लेषक की सहायता या हस्तक्षेप के बिना एकाएक खोज लिया था, और इसका एक ऐसी घटना से सम्बन्ध था, जो बचपन से भूले हुए समय की नहीं थी, जैसा कि आमतौर पर हुआ करती है, बल्कि वह रोगिणी के वयस्क जीवन में हुई थी और उसे स्पष्ट रूप से याद थी। आलोचक लक्षणों के हमारे निर्वचन पर आदतन जो आक्षेप किया करते हैं, वे सब यहां पर बिलकुल असंगत ह। पर सदा हमारा भाग्य इतना अच्छा नहीं होता।

एक बात और, क्या आपको यह अनुभव हुआ कि यह निर्दोष मनोग्रस्तता-कार्य हमें इस महिला के सबसे अधिक निजी और गोपनीय मामलों में सीधे ही पहुंचा देता है? स्त्री के लिए अपनी सुहागरात की कहानी कहने से बढ़कर गोपनीय कोई बात नहीं है, और क्या यह आकस्मिक बात है और क्या इसका कोई विशेष अर्थ नहीं है कि हम सीधे ही उसके यौन जीवन के भीतरी रहस्यों पर पहुंच जाते ह? निश्चित रूप से इसका यह कारण हो सकता है कि मैंने यही उदाहरण चुना। इस प्रश्न पर जल्दी में फैसला न कीजिए, बल्कि, दूसरे उदाहरण पर विचार कीजिए जो बिलकुल दूसरी तरह का है और उस तरह के उदाहरणों, अर्थात् सोने से पहले किए जाने वाले कृत्यों के उदाहरणों, में से है।

एक उन्नीस वर्ष की अच्छी तरह पली-पुसी हुई होशियार लड़की, जो अपने माता-पिता की एकमात्र सन्तान थी, और शिक्षा तथा बौद्धिक कार्य में उनसे बढ़कर थी, बड़ी चपल और उत्साही लड़की थी; पर कुछ वर्षों से वह बड़ी चिड़चिड़ी हो गई थी, जिसका कोई कारण दिखाई नहीं देता था। वह विशेष रूप से अपनी माता से बहुत चिड़चिड़ाती थी, असन्तुष्ट और निरुत्साहित थी तथा अनिश्चय और

सन्देह की वृत्तिवाली हो गई थी। और अन्त में वह कहने लगी कि मैं चौराहों और चौड़ी सड़कों पर अकेली नहीं चल सकती। हम उसकी जटिल दशा पर बहुत बारीकी से विचार नहीं करेंगे। इसके कम से कम दो निदान हो सकते हैं: 'अगोरा-फोबिया' (खुले स्थान की भीति) और 'मनोग्रस्तता-रोग'; पर हम उन कार्यों की ओर ध्यान देंगे जो यह नौजवान लड़की सोने से पहले किया करती थी और जिनसे उसके माता को बड़ी परेशानी पैदा हुई। एक अर्थ में यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक सामान्य अवस्थावाला व्यक्ति सोने से पहले कुछ बंधे-बंधाए काम करता है या कम से कम उसे कुछ ऐसी अवस्थाओं की आवश्यकता होती है जिनके बिना उसे सोने में बाधा पड़ती है। जागृत जीवन से नींद में पहुंचने के लिए एक नियमित सूत्र बना लिया गया जो हर रात उसी तरह दोहराया जाता। पर स्वस्थ व्यक्ति को नींद की जिस भी अवस्था की ज़रूरत है, उसकी बुद्धिसंगत व्याख्या की जा सकती है, और यदि बाहरी परिस्थितियों के कारण कोई परिवर्तन आवश्यक हो जाए तो वह बिना समय बरबाद किए आसानी से अपने आपको उसके अनुकूल बना लेता है पर अस्वस्थ कृत्य अपरिवर्तनीय होता है। अधिक से अधिक त्याग करके भी इसे किया जाता है। इसे बुद्धिसंगत प्रेरक भावों से ढक लिया जाता है, और इसमें तथा स्वस्थ कृत्य में सिर्फ यह ऊपरी भेद दिखाई देता है कि इसे करते हुए कछ विशेष सावधानी रखी जाती है। पर बारीकी से जांच करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इसे पूरी तरह नहीं ढका जा सकता है, और उस कृत्य में कुछ ऐसे काम भी होते हैं जो तर्कसंगत नहीं ठहराए जा सकते और कुछ तो बिलकुल तर्क विरुद्ध होते हैं। अपनी रात की सतर्कताओं का प्रेरक कारण बताते हुए हमारी रोगिणी यह कहती है कि रात में मुझे पूरी शान्ति चाहिए, और शोर की कोई सम्भावना मैं नहीं रहने देती। इसके लिए वह दो काम करती है: अपने कमरे की बड़ी घड़ी बन्द कर देती है, और शेष सब घड़िया, यहां तक कि अपनी छोटी-सी कलाई घड़ी भी कमरे से बाहर कर देती है। फूलों के गमले और गुलदस्ते सावधानी से मेज पर रख दिए जाते हैं ताकि वे रात में नीचे गिरकर और टूटकर उसकी नींद खराब न कर सकें। वह जानती है कि शान्ति कायम करने के लिए ये सतर्कताएं मिथ्या उपाय हैं। छोटी घड़ी की टिक-टिक चारपाई के साथवाली मेज पर रखी होने पर भी सुनाई नहीं दे सकती और हम सब जानते हैं कि पेंडुलम वाली घड़ी की नियमित टिकटिक से नींद कभी खराब नहीं होती, बल्कि उससे नींद पैदा होने की सम्भावना अधिक है। वह यह भी मानती है कि उसका यह भय कि रात में अपने स्थान पर रखे हुए गुलदस्ते और गमले अपने आप नीचे गिर जाएंगे, और टूट जाएंगे, बिलकुल असम्भाव्य है। इसी तरह, उसके कुछ और कार्यों में शांति के लिए आग्रह उसका उद्देश्य नहीं होता। असल में तो वह यह व्यवस्था करके कि उसके सोने के कमरे और उसके माता-पिता के सोने के कमरे का दरवाजा आधा खुला रहे

(जिसके लिए वह दरवाजे में कई तरह की चीजें रख देती है), वह शोर के आने के लिए रास्ता खोलती हुई प्रतीत होती है। पर सबसे महत्वपूर्ण काम स्वयं बिस्तर से सम्बन्ध रखते हैं। बिस्तर के सिरहाने वाला गोल तकिया या मसनद लकड़ी के पलंग के पिछले हिस्से को नहीं छूना चाहिए। छोटा तकिया गोल तकिए से ठीक विकर्ण की स्थिति में होना चाहिए, और किसीमें नहीं। इसके बाद वह अपना सिर इस सम चतुर्भुज के बीचोंबीच लम्बाईनुमा रख देती है। रजाई ओढ़ने से पहले उसे हिलाना जरूरी है, जिससे उसमें भरे हुए पंख पैरों की तरफ चले जाएं पर वह इसे फिर दबाकर फैलाती है और सारे में कर देती है।

मैं उसके कृत्य की और छोटी-मोटी बातें छोड़ देता हूं। उनसे हमें कोई नई बात नहीं पता चलेगी, और हम अपने प्रयोजन से बहुत दूर निकल जाएंगे। पर आप यह मत समझिए, कि यह सब बिलकुल बिना बाधा के हो जाता है। हर काम के साथ यह चिन्ता लगी रहती है कि यह सब उचित रीति से नहीं हुआ, इसकी जांच की जाए और इसे ठीक किया जाए। पहले उसे अपनी एक सतर्कता पर शक होता है और फिर दूसरी पर, और परिणाम यह होता है कि वह लड़की सोने से पहले एक-दो घन्टा लगा देती है और भयभीत माता-पिता को भी नहीं सोने देती।

इन कष्टों का विश्लेषण उतनी आसानी से नहीं होगा जितनी आसानी से पहली रोगिणी के मनोग्रस्तता-कार्य का हो गया था। मैंने इसके निर्वचन के बारे में कुछ संकेत और सुझाव पेश किए जिनपर उसने सदा स्पष्ट इंकार किया या घृणा और सन्देह प्रकट किया, पर अस्वीकृति की पहली प्रतिक्रिया के बाद के समय में उसने सुझाई गई सम्भावना का स्वयं विचार किया, उनसे उत्पन्न साहचर्य नोट किए, स्मृतियां पैदा कीं, और सम्बन्ध-सूत्र कायम किए और अन्त में उसने उन्हें स्वयं निकालते हुए सब निर्वचन स्वीकार कर लिए। उसने जितना-जितना निर्वचन किया, उतना ही उतना वह अपनी मनोग्रस्तितावाली सतर्कताएं शिथिल करती गई और इलाज खत्म होने से पहले उसने सब कृत्य छोड़ दिए थे। मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि आजकल हम जिस तरह विश्लेषण कार्य करते हैं, उसमें निश्चित रूप से यह नहीं होता कि किसी एक ही लक्षण पर तब तक लगातार जुटे रहें जब तक कि इसका अर्थ पूरी तरह स्पष्ट न हो जाए। इसके विपरीत, किसी एक बात को इस आशा पर बार-बार छोड़ देना पड़ता है कि शायद हम किसी दूसरे प्रसंग में नए सिरे से इसपर पहुंच जाएं। इसलिए, उस लक्षण का जो निर्वचन मैं आपको बतानेवाला हूं, वह उन सब परिणामों का मिला-जुला रूप है जो बीच में अन्य प्रश्नों पर विचार करते हुए सप्ताहों और महीनों में हासिल हुए थे।

धीरे-धीरे रोगिणी को यह समझ में आने लगा कि वह बड़ी और छोटी घड़ियों को रात के समय इसलिए बाहर कर देती है क्योंकि वे स्त्री-जननेन्द्रियों की प्रतीक ह। घड़ियों को, जिनके बारे में हम जानते हैं कि उनके और भी प्रतीकात्मक अर्थ

हो सकते हैं, आवर्ती प्रक्रम और नियमित मध्यान्तरों से सम्बद्ध होने के कारण यह जननेन्द्रिय का अर्थ प्राप्त होता है। कोई स्त्री यह शेखी बघार सकती है कि उसे मासिक धर्म घड़ी की तरह नियमित होता है। इस रोगिणी को विशेष भय यह था कि घड़ियां उसकी नींद खराब करेंगी। घड़ी की टिक-टिक की आवाज़ कामोत्तेजन के समय भगनासा की थरथराहट के तुल्य है। यह संवेदन, जो उसे परेशान करता था, उसे कई बार नींद से सचमुच जगा चुका था और अब भगनासा के पुनः खड़े होने का भय इस रूप में प्रकट होता था कि वह सब चलती हुई बड़ी और छोटी घड़ियों को अपने से दूर हटाने का नियम बनाए हुए थी। गमले और गुलदस्ते, और पात्रों की तरह, स्त्री-जननेन्द्रियों के प्रतीक हैं; इसलिए रात में उन्हें गिरने और टूटने से रोकने की सतर्कता भी अर्थशून्य नहीं। हम जानते हैं कि यह प्रथा बहुत व्यापक है कि सगाई के समय कोई बर्तन या तश्तरी तोड़ी जाती है। वहां मौजूद सब लोग एक-एक टुकड़ा लेकर प्रतीकात्मक रूप में यह स्वीकार करते हैं कि अब हमारा इस वधू पर कोई दावा नहीं है। यह प्रथा सम्भवतः एक पत्नी-विवाह के साथ पैदा हुई। रोगिणी ने अपने कृत्य के इस हिस्से पर भी कुछ स्मृति और साहचर्यों से रोशनी डाली। एक बार बचपन में वह कांच या चीनी मिट्टी का बर्तन ले जाते हुए गिर पड़ी थी, जिससे उसकी उंगली कट गई थी और उससे बुरी तरह खून बहने लगा था। जब वह बड़ी हुई और उसे मैथुन सम्बन्धी तथ्यों का पता चला तब उसे यह भय पैदा हो गया कि सुहागरात को उसके खून नहीं निकलेगा, और इस प्रकार वह अक्षतयोनि नहीं सिद्ध होगी। गुलदस्तों के टूटने के बारे में उसकी सतर्कता का अर्थ यह था कि वह अक्षतयोनि होने और सम्भोग के प्रथम कार्य के समय रक्तरंजित होने के प्रश्न विषयक सारी ग्रन्थि को अस्वीकार करती थी; वह रक्तरंजित होगी और वह रक्तरंजित नहीं होगी, इन दोनों चिन्ताओं को वह अस्वीकार करती थी। असल में, इन सतर्कताओं का शोर रोकने के साथ सिर्फ दूर का सम्बन्ध था।

एक दिन उसे अपने कृत्य की मुख्य बात उस समय सूझी जब एकाएक उसे अपना यह नियम समझ में आ गया कि वह गोल तकिए को चारपाई के पिछले हिस्से से नहीं छूने देती थी। उसने कहा कि गोल तकिया मुझे सदा औरत मालूम होता था और चारपाई का सीधा खड़ा हुआ पीछे का हिस्सा आदमी मालूम होता था। इसलिए वह मानो जादू करके आदमी और औरत को अलग रखना चाहती थी, अर्थात् माता-पिता को अलग-अलग करना और उनका सम्भोग रोकना चाहती थी। उसके कृत्य के शुरू होने से वर्षों पहले उसने एक अधिक सीधे तरीके से यह लक्ष्य सिद्ध करने की कोशिश की थी। उसने भय का दिखावा किया था, या भय की प्रवृत्ति का लाभ उठाया था, जिससे उसके सोने के कमरे और उसके माता-पिता के सोने के कमरे के बीच का दरवाजा बंद न किया जाए। यह नियम अब

भी उसके मौजूदा कृत्य में सचमुच शामिल था। इस प्रकार, उसने अपने माता-पिता की बातचीत चुपके-चुपके सुन पाने का तरीका बना लिया था। इस कार्य में किसी समय उसे महीनों नींद नहीं आई थी। अपने माता-पिता को इस तरह परेशान करके ही वह सन्तुष्ट नहीं हुई थी, और कभी-कभी वह उस समय माता और पिता के बिस्तर में उनके बीच में सोने में भी सफल हुई थी। 'गोल तकिया' और चारपाई तब वास्तव में इकट्ठे नहीं मिल सके थे। जब अंत में वह इतनी बड़ी हो गई कि माता-पिता के साथ उस बिस्तर में सुविधा के साथ नहीं सो सकती थी, तब उसने जान-बूझकर भय का दिखावा करके, और अपनी माता से अपना स्थान बदलकर तथा पिता के पास उसका स्थान लेकर वही प्रयोजन पूरा किया। निश्चित रूप से इस घटना से ही उसके कल्पना-लोक का आरम्भ हुआ जिसका प्रभाव उसके कृत्य में स्पष्ट दिखाई देता था।

यदि गोल तकिये का अर्थ औरत था तो रजाई हिलाकर सब पंख पैरों की ओर ले आने का, जिससे तली में एक उभार बन जाए, भी कुछ अर्थ था। इसका अर्थ था स्त्री को निषेचित करना, अर्थात् उसको गर्भाधान कराना। उसने गर्भावस्था को फिर भी दूर नहीं किया; क्योंकि वर्षों वह इस बात से डरी रही कि उसके माता-पिता के सम्भोग से कोई और बच्चा पैदा हो जाएगा और इस तरह उसका कोई प्रतिस्पर्धी आ जाएगा। दूसरी ओर, यदि बड़े गोल तकिये का अर्थ माता था तो छोटे तकिये का अर्थ पुत्री ही हो सकता था। तो यह तकिया बड़े तकिये पर टेढ़ा करके क्यों रखा जाता था, और उसका सिर ठीक इसके बीच में लम्बाई-नुमा क्यों रखा जाता था? उससे आसानी से यह ध्यान आ जाता था कि दीवारों पर बनाए गए चित्रों में समचतुर्भुज का प्रयोग खुली स्त्री-जननेन्द्रियों को सूचित करने के लिए किया जाता है। पुरुष (पिता) का कार्य इस तरह वह स्वयं करती थी, और पुरुष-लिंग के स्थान पर अपना सिर रखती थी। (देखिए बधिया करने के लिए सिर काटने का प्रतीक)।

आप कहेंगे कि एक कुमारी लड़की के दिमाग में यह कैसे भयंकर विचार चल रहे हैं? मैं यह बात मानता हूं, पर यह न भूलिए कि मैंने ये विचार बनाए नहीं हैं, सिर्फ उन्हें उघाड़ दिया है। सोने से पहले इस तरह के कृत्य या काम-काज भी काफी विचित्र बात है, और इस काम-काज और उसकी कल्पना-सृष्टि में निर्वचन से जो सादृश्य और सम्बन्ध प्रकट हुआ है, उससे आप इन्कार नहीं कर सकते। परन्तु मेरे लिए अधिक महत्व की बात यह है कि आप इस बात पर ध्यान दें कि यह काम-काज किसी एक ही कल्पना-सृष्टि का परिणाम नहीं था, बल्कि इसमें कई कल्पना-सृष्टियां मिली हुई थीं, जिनकी कहीं एक गांठ या बन्धन-केन्द्र होगा। यह भी देखिए कि इस काम-काज की विस्तृत बातों से विध्यात्मक और निषेधात्मक दोनों रूपों में यौन इच्छाओं का पता चलता है। कुछ अंश में वे यौन इच्छाओं की

अभिव्यक्ति हैं, और कुछ अंश में वे इनके विरुद्ध सफ़ाई हैं।

इस काम-काज के विश्लेषण को रोगिणी के दूसरे लक्षणों के सिलसिले में रखकर और भी बहुत-सी जानकारी प्राप्त की जा सकती है, पर इस समय हमारा वह प्रयोजन नहीं है। आपको, पिता के प्रति कामासक्ति, जो बहुत पहले बचपन में ही पैदा हो गई थी, और जिसने इस लड़की को परवश बना दिया था, के निर्देश से ही सन्तुष्ट हो जाना चाहिए था। शायद इसी कारण, वह अपनी माता से इतना वैर-भाव रखती थी। हम इस तथ्य को भी नज़रन्दाज़ नहीं कर सकते कि इस लक्षण से भी हम रोगिणी के यौन जीवन पर ही पहुंचेंगे। स्नायु-रोगों के लक्षणों के अर्थ और प्रयोजन में हम जितना अधिक जाएंगे, इसपर हमें उतना ही कम आश्चर्य होगा।

दो छंटे हुए उदाहरणों से मैंने आपके सामने यह दिखलाया है कि ग़लतियों और स्वप्नों की तरह स्नायविक लक्षणों का भी अर्थ होता है और उनका रोगी के जीवन की घटनाओं से निकट सम्बन्ध होता है। क्या दो उदाहरणों के बल पर मैं आपसे इस विशेष महत्वपूर्ण कथन पर विश्वास कर लेने की आशा कर सकता हूं? नहीं, पर क्या आप मुझसे यह आशा कर सकते हैं कि मैं आपको तब तक उदाहरण देता जाऊंगा जब तक आप कह न दें कि हमें विश्वास हो गया? यह भी नहीं। क्योंकि प्रत्येक केस का जितना विस्तृत और पूरा विवेचन करना पड़ता है, उसे देखते हुए मुझे स्नायु-रोगों के सिद्धान्त में इस एक प्रश्न पर सारे सत्र में प्रति सप्ताह पांच घण्टे लगाने होंगे। इसलिए मैं वे नमूने देकर ही सन्तोष करूंगा जो अपने कथन के साक्ष्य रूप में मैंने दिए हैं, और विशेष जानकारी के लिए आपका ध्यान इस विषय के साहित्य की ओर खींचूंगा। ब्रायर के पहले केस (हिस्टीरिया) के लक्षणों का प्रसिद्ध निर्वचन तथाकथित डिमनेशिया प्रीकौक्स (अर्थात् स्वयं पोषी मनोवैकल्य) के बहुत अस्पष्ट लक्षणों का सी० जी० युंग द्वारा किया हुआ वह उल्लेखनीय विशदीकरण, जो उसने तब किया था जब वह सिर्फ मनोविश्लेषक था, और तत्काल भविष्यवक्ता बनने की आकांक्षा नहीं रखता था, और हमारी पत्र-पत्रिकाओं में आने वाले इस तरह के सब केस इसके लिए अच्छी अध्ययन सामग्री हैं। इस तरह की खोज-बीन बहुत हुई है। स्नायविक लक्षणों का विश्लेषण, निर्वचन और अनुवाद मनोविश्लेषकों को इतना आकर्षक लगा है कि इसकी तुलना में उन्होंने स्नायु-रोगों की दूसरी समस्याओं को कुछ समय के लिए भुला दिया है।

आप में से जो भी व्यक्ति इस प्रश्न का अध्ययन करने के लिए आवश्यक परिश्रम करेगा वह साक्ष्य सामग्री की प्रचुरता से निश्चय ही बहुत प्रभावित होगा, पर उसके रास्ते में एक कठिनाई भी आएगी। लक्षण का अर्थ, जैसा कि हम देख चुके हैं, रोगी के जीवन से सम्बन्धित होता है। वह लक्षण जितना व्यष्टितः बना होगा,

उतना ही स्पष्टतः हम यह सम्बन्ध-सूत्र स्थापित करने की आशा कर सकते हैं। तब यह कार्य एक खास खोज बन जाता है क्योंकि उसे भूतकाल की स्थिति की प्रत्येक अनुपयोगी क्रिया और प्रत्येक अर्थहीन विचार, जिसमें वह विचार और क्रिया उचित होते, एक उपयोगी प्रयोजन सिद्ध करते हैं। उस रोगिणी का मनोग्रस्तता-कार्य, जो दौड़कर मेज पर पहुंचती थी और नौकरानी को बुलाने के लिए घंटी बजाती थी, इस तरह के लक्षण का सबसे बढ़िया नमूना है। पर एक सर्वथा भिन्न प्ररूप के लक्षण बहुत बार दिखाई देते हैं। ये वे लक्षण हैं जिन्हें हम रोग के **प्रारूपिक**[1] लक्षण कहते हैं। ये प्रत्येक केस में प्रायः एक-से होते हैं। उनमें फ़र्क प्रायः दिखाई नहीं देते या बहुत ही थोड़े होते हैं; और इसलिए उनका रोगी के जीवन या उसके भूतकाल की विशेष स्थितियों से सम्बन्ध जोड़ना कठिन होता है। दूसरी रोगिणी के नींद से पहले के काम-काज बहुत-सी दृष्टियों से बिलकुल प्रारूपिक हैं, यद्यपि उसमें कुछ निजी विशेषताएं भी हैं, जिनके कारण, यह कहा जा सकता है कि उसका 'ऐतिहासिक' निर्वचन भी हो सकता है, पर मनोग्रस्तता के सब रोगियों में आवृत्ति या दोहराना, अपनी कुछ क्रियाओं को अलग कर लेना, और तालबद्ध व्यापार पाए जाते हैं। उनमें से बहुत-से लोग बहुत नहाते-धोते हैं। जो रोगी अगोराफोबिया (टौपोफोबिया अर्थात् स्थान-भीति के रोगी होते हैं—अब यह रोग मनोग्रस्तता-रोग नहीं माना जाता बल्कि इसे चिंता-हिस्टीरिया में गिना जाता है) रोग-चित्त की वही विशेषताएं फिर पेश करते हैं। वे घिरे हुए स्थानों, चौड़े खुले चौराहों, लंबी सड़कों और गलियों से डरते हैं। यदि कोई उनके साथ हो, या कोई सवारी उनके पीछे आ रही हो तो वे रक्षित अनुभव करते हैं। तो भी, इतनी समानता रखते हुए अलग-अलग मरीजों में अपनी निजी दशाएं दिखाई देती हैं। आप उन्हें मनोवस्थाएं कह सकते हैं, जिनमें एक दूसरे से बहुत असमानता होती है। कोई रोगी सिर्फ तंग गलियों से डरता है, कोई सिर्फ चौड़ी सड़कों से डरता है, कोई सिर्फ तब चल सकता है जब आसपास अधिक लोग न हों, और कोई तब ही चल सकता है जब चारों ओर लोग ही लोग हों। इसी तरह हिस्टीरिया में व्यक्तिगत विशेषताओं की प्रचुरता के अलावा सदा बहुत सारे सामान्य प्रारूपिक लक्षण होते हैं जो ऐतिहासिक ढंग से आसान निर्वचन करने में बाधा डालते प्रतीत होते हैं। हमें यह न भूलना चाहिए कि इन प्रारूपिक लक्षणों द्वारा ही हम निदान करने में अपना आधार बना सकते हैं। मान लीजिए कि हिस्टीरिया के किसी केस में हम पीछे की ओर चलते हुए किसी प्रारूपिक लक्षण से किसी अनुभव तक या एक जैसे अनुभवों की शृंखला तक (उदाहरण के लिए हिस्टीरिया वमन (उलटी) से घृणित प्रकार की भावनाओं की श्रेणी तक) सम्बन्ध जोड़ लेते हैं, तो किसी दूसरे केस में यह पता चल

---

१. Typical.

सकता है कि वमन (उलटी) पैदा करने वाले अनुभव पहले वाले अनुभवों से सर्वथा भिन्न हैं और ऊपर से वे कारण मालूम होते ह, और इस तरह विभ्रम हो जाता है। पर ऐसा लगने लगता है जैसे किसी अज्ञात कारण से हिस्टीरिया के रोगियों को वमन (उलटी) अवश्य होनी चाहिए, और मनोविश्लेषण द्वारा प्रकाश में लाए गए ऐतिहासिक कारण बहाने मात्र हैं, जो भीतरी आवश्यकता के कारण मौका मिलने पर अपनी प्रयोजन-सिद्धि के लिए अपना लिए गए हैं।

इससे हम इस निराशाजनक नतीजे पर पहुंचते हैं कि यद्यपि स्नायविक लक्षणों के व्यक्तिगत रूपों की संतोषजनक व्याख्या रोगी के अनुभवों से उनका संबंध स्थापित करके निश्चित रूप से की जा सकती है, तो भी उन्हीं केसों में अधिकतर होने वाले प्रारूपिक लक्षणों में हमारा विज्ञान असफल रह जाता है। इसके अलावा, मैंने किसी लक्षण के ऐतिहासिक अर्थ की दृढ़ता से खोज करने में आने वाली सब कठिनाइयां आपके सामने नहीं रखी हैं, और न मैं उन्हें रखूंगा, क्योंकि यद्यपि मैं आपसे न कोई चीज़ छिपाना चाहता हूं और न किसी चीज़ की शेखी बघारना चाहता हूं पर हमारे इस मिले-जुले अध्ययन के शुरू में ही मैं आपको विभ्रम और गड़बड़ी में नहीं डालना चाहता। यह सच है कि लक्षण-निर्वचन को समझना अभी हमने शुरू ही किया है पर जो जानकारी हमें प्राप्त हुई है, उसे हम याद रखेंगे और अज्ञात बातों की कठिनाइयों को एक-एक करके हल करेंगे : आपको इस विचार से शायद खुशी होगी कि एक तरह के लक्षण और दूसरी तरह के लक्षण में कोई मौलिक अंतर मानना संभव नहीं है। यदि लक्षण का व्यक्तिगत रूप रोगी के अनुभवों से इतने निश्चित रूप से संबंधित है तो संभव है कि प्रारूपिक लक्षण ऐसे अनुभव से संबंधित हों जो स्वयं प्रारूपिक है और सारी मनुष्य जाति में सामान्य हैं। स्नायु-रोग की अन्य सदा पाई जाने वाली विशेषताएं, जैसे मनोग्रस्तता-रोग की पुनरावृत्ति और संदेह, ऐसी व्यापक प्रतिक्रियाएं हो सकती हैं जिन्हें रोगी अस्वस्थ परिवर्तन के स्वरूप के कारण अतिरंजित करने को मजबूर होता है। संक्षेप में बात यह है कि निराश होकर जल्दी से हाथ-पांव छोड़ देना उचित नहीं है। हमें यह देखना चाहिए कि हम और क्या पता लगा सकते हैं।

इसी तरह की कठिनाई स्वप्नों के सिद्धांत में आई थी, जिसकी मैं अपने स्वप्नों के विवेचन के समय पूरी तरह व्याख्या नहीं कर सका था। स्वप्नों की व्यक्त वस्तु बहुत रूपों में होती है और अलग-अलग व्यक्ति में उसका बड़ा भिन्न रूप होता है, और हम बड़े विस्तार से यह दिखा चुके हैं कि इस वस्तु के विश्लेषण से क्या जानकारी प्राप्त हो सकती है। पर ऐसे स्वप्न भी होते हैं जो उसी तरह **प्रारूपिक** कहे जा सकते हैं और प्रत्येक को आते हैं, अर्थात् एक ही वस्तु वाले स्वप्न जिनके विश्लेषण में एक ही कठिनाइयां आती हैं। ये गिरने, उड़ने, बहने, तैरने, रोके जाने, नंगा होने के स्वप्न और ऐसे ही दूसरे चिन्ता-स्वप्न होते हैं, जिनमें संबंधित व्यक्ति

के अनुसार, पहले एक और फिर दूसरा निर्वचन होता है, और उनके बार-बार एक-से तथा प्रारूपिक रूप में आने की कोई व्याख्या नहीं हो पाती। पर हम देखते हैं कि इन स्वप्नों में भी सामान्य ज़मीन पर व्यक्तिगत विशेषता की सजावट मौजूद होती है। संभवतः वे भी दूसरे प्रकार के स्वप्नों के अध्ययन से, स्वप्न-जीवन विषयक अन्य जानकारी के साथ सुसंगत हो सकते हैं पर किसी ज़बरदस्ती या खींचतान द्वारा नहीं, बल्कि इन चीज़ों को समझने का क्षेत्र धीरे-धीरे विस्तृत करके।

उपघातों पर बद्धता : अचेतन

मैंने पिछली बार कहा था कि हम अपना आगे का कार्य अब तक प्राप्त जानकारी के आधार पर आगे बढ़ाएंगे, अपने मनों में उससे उत्पन्न संदेहों के आधार पर नहीं। अभी हमने ऊपर के उदाहरणों के विश्लेषण से उत्पन्न सबसे मनोरंजक निष्कर्षों पर विचार आरम्भ भी नही किया है।

पहली बात : दोनों मरीज़ों ने यह धारणा पैदा की है कि वे अपने भूतकाल की एक विशेष बात से **बंधे हुए हैं**, कि वे यह नही जानते कि अपने को उससे कैसे छुड़ाएं, और इसलिए वे वर्तमान और भविष्य दोनों से विच्छिन्न हो जाते है; मानो वे अपनी बीमारी में सबसे अलग रह जाते है, जैसे पुराने ज़माने में लोग अपने आश्रमों या कुटियों में अकेले रहकर अपने बदकिस्मती के दिन बिता दिया करते थे। पहले रोगी के मामले में उसका अपने पति से विवाह, जो असल में बहुत समय पहले खत्म हो चुका था, उसके मन में जम गया था। अपने लक्षणों के द्वारा वह उस पति के साथ अपना सम्बन्ध कायम रख सकी। उन लक्षणों में हमने ऐसी आवाजें सुनी जो उस पुरुष का समर्थन करती थीं, उसे क्षमा करती थीं, उसे ऊंचा उठाती थीं, और उसके अभाव में शोक प्रकट करती थी। यद्यपि वह युवती है और दूसरे पुरुषों को आकर्षित कर सकती है, पर वह हर सम्भव वास्तविक और काल्पनिक सतर्कता रखती है जो उस पुरुष के प्रति उसकी निष्ठा कायम रखेगी। वह अपरिचितों से नहीं मिलती, अपने बनाव-सिंगार पर ध्यान नही देती; इसके अलावा वह जिस कुर्सी पर बैठ जाती है उससे आसानी से नहीं उठ सकती, और वह अपना हस्ताक्षर नही करती और कोई उपहार नही दे सकती; क्योंकि उसकी अपनी चीज़ और किसी को नहीं मिलनी चाहिए।

दूसरी रोगिणी, अर्थात् नौजवान लड़की में जवानी से बहुत पहले पिता से जो कामुक अनुराग बन गया था, वह उसके जीवन में यह कार्य कर रहा है। उसने स्वयं भी यह देखा है कि जब तक वह इस तरह बीमार है, तब तक वह विवाह नही कर सकती। हम यह संदेह कर सकते हैं कि वह विवाह के अयोग्य बनने और इस

तरह अपने पिता के साथ ही रह सकने के लिए इतनी बीमार हो गई है।

हमें यह प्रश्न पूछना ही होगा कि कोई व्यक्ति जीवन के प्रति ऐसा असाधारण और अलाभकर रुख कैसे, किन साधनों से और किन प्रेरक भावों से प्रेरित होकर अपना सकता है, यदि यह रुख स्नायु-रोग में सर्वत्र दीखने वाला गुण हो और इन दो मरीज़ों की कोई अपनी विशेषता न हो। सच्ची बात यह है कि यह ऐसा ही है। यह प्रत्येक स्नायु-रोग में पाया जाने वाला सामान्य लक्षण है, और इसका व्यावहारिक महत्व बहुत अधिक है। ब्रायर की पहली हिस्टीरिया की रोगिणी इसी तरह उस समय से बद्ध[1] हो गई थी, अर्थात बंध गई थी, जब उसका पिता बहुत रोगी था, और उसने उसकी परिचर्या की थी। उसके अच्छा हो जाने के बावजूद वह तभी से कुछ हद तक जीवन से विछिन्न रही है, क्योंकि यद्यपि वह स्वस्थ और और चुस्त रही है, पर उसने स्त्री का सामान्य जीवन-कार्य नहीं अपनाया। अपने प्रत्येक रोगी में विश्लेषण करने पर हम देखते हैं कि लक्षणों और उनके अभावों ने रोगी को उसके जीवन से किसी गुज़रे हुए ज़माने में पहुंचा दिया है। अधिकतर उदाहरणों में यह ज़माना जीवन के इतिहास का बहुत आरम्भिक भाग, बचपन का काल या दूध पीते समय का ज़माना होता है, यद्यपि यह बात बेतुकी लगती है।

हमारे स्नायु-रोगियों के इस व्यवहार से बहुत सादृश्य रखने वाला रोग तथा-कथित **उपघातज स्नायु-रोग**[2] है, जिसे युद्ध ने कुछ समय से इतना आम बना दिया है। ऐसे उदाहरण युद्ध से पहले रेलवे दुर्घटनाओं तथा जीवन को खतरा पैदा करने वाले दूसरे डरावने अनुभवों के बाद भी होते थे। उपघातज स्नायु-रोग मूलतः वे स्नायु-रोग नहीं हैं जो स्वयं पैदा होते हैं, जिनकी हम विश्लेषण द्वारा खोज करते हैं और जिनका हम इलाज करते हैं। आज तक हमें अपने अन्य विषयों सम्बन्धी विचारों से उनका सम्बन्ध जोड़ने में सफलता नहीं हुई। बाद में मैं आपको यह दिखाने की आशा करता हूं कि इसमें क्या रुकावट पड़ती है। फिर भी उनमें एक बात पर पूरी सहमति है जिसपर बल दिया जा सकता है। उपघातज स्नायु-रोगों से यह बहुत अच्छी तरह प्रकट हो जाता है कि उनके मूल में उपघात सम्बन्धी घट-नाओं के समय से बद्धता होती है। ये रोगी अपने स्वप्नों में सदा उपघात वाली स्थिति पैदा करते हैं। हिस्टीरिया जैसे दौरों वाले मामलों में जिनमें विश्लेषण हो सकता है, यह प्रतीत होता है कि उस दौरे में वह स्थिति पूरी की पूरी फिर उत्पन्न हो जाती है, मानो यह व्यक्ति अभी तक उस स्थिति को पूरी तरह हल नहीं कर सकेगा, मानो यह काम अभी उसके सामने सचमुच अधूरा पड़ा है। हम उनके इस रुख को पूरी संज़ीदगी से स्वीकार करते हैं। इससे उस मार्ग का संकेत मिलता है जिसे हम मानसिक प्रक्रमों का **आर्थिक** अवधारण कह सकते हैं। **'उपघात संबंधी'**

---

१. Fixated. २. Traumatic neuroses.

शब्द का इस **आर्थिक** अर्थ के अलावा, असल में, और कोई अर्थ नहीं है। उस अनुभव को हम उपघातज, अर्थात् चोट से पैदा होने वाला कहते हैं जो बहुत थोड़े-से समय में मन पर उद्दीपन की इतनी अधिक मात्रा ला देता है कि उसका प्रकृत साधनों से स्वीकरण[1] या विशदन नहीं किया जा सकता और इसलिए मन में मौजूद ऊर्जा के वितरण में स्थायी विक्षोभ पैदा हो जाते हैं।

इस सादृश्य को देखकर हम उन अनुभवों को भी उपघातज में गिना देना चाहते हैं,जिनसे हमारे स्नायु-रोगी बंधे हुए प्रतीत होते हैं। इस प्रकार, हमें स्नायु-रोग की एक सरल अवस्था मिल जाएगी। इसकी उपघातज रोग से तुलना न हो सकेगी और यह अभिभूत करने वाले भावात्मक अनुभव को पचाने की असमर्थता से पैदा होगा। असल में, ब्रायर ने और मैंने १८९३–९५ में अपने नए प्रेक्षणों को एक सिद्धान्त का रूप दिया था। वह कुछ ऐसे ही रूप में था। उपर्युक्त पहले मरीज़ का मामला, जिसमें एक युवा औरत अपने पति से अलग हो गई है, इस वर्णन में बहुत अच्छी तरह जंच जाती है। वह अपने विवाह की अव्यवहार्यता को 'विजय' नहीं कर सकी और अब भी उस उपघात से बंधी हुई थी; पर दूसरे नौजवान लड़की वाले केस से, जो अपने पिता से बंधी हुई थी, तुरन्त यह पता चलता है कि यह सूत्र काफी व्यापक नहीं है। एक ओर तो छोटी लड़की का अपने पिता के प्रति बाल्यकालीन प्रशंसाभाव ऐसा आम अनुभव है और इतना अधिक पाया जाता है कि यदि यहां 'उपघातज' शब्द का प्रयोग करें तो वह निरर्थक हो जाता है; दूसरी ओर, केस के इतिहास से पता चलता है कि इस पहले यौन बन्धन को रोगी ने उस समय बिना कोई बाहरी लक्षण प्रकट किए बिलकुल हानि रहित ढंग से पार कर लिया और वह कई वर्षों बाद ही मनोग्रस्तता-रोग के रूप में प्रकट हुआ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्नायु-रोग में बहुत-सी उलझनें, बड़ी विविधता और अनेक निर्धारक कारक हैं। पर हमारा विचार है कि उपघात संबंधी दृष्टि-कोण को मिथ्या मानकर छोड़ना जरूरी नहीं होगा, और कि यह दूसरी जगह ही ठीक तरह जंच जाएगा और इसका समन्वय करना होगा।

यहां फिर हमें अपना पहले वाला रास्ता छोड़ना होगा। इस समय हम इससे बहुत आगे नहीं पहुंच सकते और इसको सन्तोषजनक रीति से आगे चलाने से पहले हमें बहुत कुछ सीखना पड़ेगा, पर उपघातों से बद्धता के विषय को छोड़ने से पहले यह समझ लेना चाहिए कि यह घटना स्नायु-रोगों के अलावा और बहुत-से क्षेत्रों में व्यक्त होती है; प्रत्येक स्नायु-रोग में ऐसी बद्धता होती है, पर प्रत्येक बद्धता से स्नायु-रोग नहीं सूचित होता, या प्रत्येक बद्धता का स्नायु-रोग से सम्बन्ध होना आवश्यक नहीं,या प्रत्येक बद्धता स्नायु-रोग में ही नहीं पैदा होती। दुःख किसी भूत-

---

१. Assimilation.

काल की चीज़ पर भावबद्धता का मूल रूप[1] और आदर्श उदाहरण है और स्नायु-रोगों की तरह इसमें भी वर्तमान और भविष्य से पूर्ण विच्छेद की अवस्था हो जाती है। पर साधारण आदमी भी दुःख और स्नायु-रोग में स्पष्ट भेद करता है। दूसरी ओर, ऐसे स्नायु-रोग रोग भी हैं जिन्हें दुःख के अस्वस्थ रूप कहा जा सकता है।

ऐसा भी होता है कि किसी उपघातज अनुभव से, जिसने व्यक्ति के जीवन के सारे ढांचे को जड़ से हिला दिया हो, उसका जीवन पूर्णतया स्थिर हो गया हो और इस तरह उसने वर्तमान और भविष्य में सारी दिलचस्पी छोड़ दी हो और वह स्थायी रूप से भूतकाल के चिन्तन में ही डूबा रहता हो। पर ऐसे दुःखी लोगों का स्नायु-रोगी बन जाना आवश्यक नहीं। इसलिए एक विशेषता स्नायु-रोगियों में सदा होने पर भी, और इसके अर्थपूर्ण होने पर भी, इसका स्नायु-रोग में उचित से अधिक महत्व नहीं समझना चाहिए।

अब हमारे विश्लेषण से निकले दूसरे निष्कर्ष पर विचार कीजिए। इस निष्कर्ष पर हमें बाद में कोई मर्यादा लगाने की आवश्यकता नहीं होगी। पहली रोगिणी से हमने उसके अर्थहीन मनोग्रस्तता-कार्य की, और इसके सिलसिले से वह जिन घनिष्ठ स्मृतियों को याद करती थी, उनकी बात सुनी है। हमने दोनों के सम्बन्ध पर भी विचार किया और स्मृति के साथ इसके सम्बन्ध-सूत्र को देखकर इस मनोग्रस्तता-कार्य का प्रयोजन भी अनुमान से निकाला। पर एक बात को हमने पूरी तरह उपेक्षित कर दिया, जब कि इस बात पर अधिक से अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। जब तक रोगिणी यह कार्य करती रही, तब तक वह यह नहीं जानती थी कि इसका पिछले अनुभव से किसी भी तरह सम्बन्ध है। दोनों बातों का सम्बन्ध-सूत्र छिपा हुआ था। वह यह बिलकुल सच्चा उत्तर दे सकती थी कि मैं यह नहीं जानती कि किस आवेग के वशीभूत होकर ऐसा करती हूं। तब एकाएक ऐसा हुआ कि इलाज के प्रभाव से उसे यह सम्बन्ध-सूत्र पता चल गया, और वह इसे कह सकी। पर तब भी उसे यह पता नहीं था कि वह क्रिया करने में उसका क्या प्रयोजन था—उसका प्रयोजन भूतकाल की कष्टकारी घटना को सुधारना और अपने प्रिय पति को अपनी नजरों में ऊंचा उठाना था। उसे यह समझने में और मेरे सामने स्वीकार करने में बहुत समय और प्रयास लगाना पड़ा कि उसके मनोग्रस्तता-कार्य के पीछे ऐसा प्रेरक भाव ही क्रियाशील हो सकता था।

दुःखदायी सुहागरात के बाद वाले सबेरे के दृश्य से सम्बन्ध, और अपने पति के प्रति रोगिणी की अपनी कोमल भावना, ये दोनों बातें मिलकर मनोग्रस्तता-कार्य का 'अर्थ' कही गई हैं। पर इस अर्थ के दोनों पहलू उससे छिपे हुए थे। जब तक वह यह कार्य करती रही, तब तक उसे न तो अपने काम का **कहां से** समझ में

---

१. Prototype.

आया और न **किधर**। इसलिए उसके भीतर ऐसे मानसिक प्रक्रम क्रिया कर रहे थे, जिनका परिणाम वह मनोग्रस्तता-कार्य था। वह उनके प्रभाव से सामान्य रीति से परिचित थी, पर इस परिणाम का मानसिक पूर्व इतिहास उसकी चेतना के ज्ञान में नहीं आया था। वह सम्मोहन (हिप्नोटिजम) से प्रभावित उस आश्रय या माध्यम[1] की तरह ही व्यवहार कर रही थी, जिसे बर्नहीम ने उसके जागने से पांच मिनट बाद छतरी खोलने का आदेश दिया था पर जिसे यह कुछ पता नही था कि वह ऐसा क्यों कर रहा था। जब हम **अचेतन मानसिक प्रक्रमों** के अस्तित्व की बात कहते है, तब हमारे मन में इसी तरह की घटना होती है; हम संसार में सबको यह चुनौती दे सकते है कि वे इस मामले की अधिक सही वैज्ञानिक व्याख्या पेश करें। तब हम खुशी से अपना यह अनुमान वापस ले लेंगे कि अचेतन मानसिक प्रक्रमों का अस्तित्व है, पर जब तक कोई ऐसी व्याख्या नहीं पेश करता, तब तक हम इस अनुमान पर दृढ रहेंगे, और जब कोई यह आक्षेप करेगा कि वैज्ञानिक अर्थ में अचेतन का कोई यथार्थ अस्तित्व नहीं है,यह तो एक कामचलाऊ कल्पनामात्र है, तब हम उसके कथन को अस्वीकार ही कर सकते है। यह अयथार्थ और अवास्तविक है, पर फिर भी मनोग्रस्तता-कार्य जैसी यथार्थ और दृष्टिगोचर चीज़ पैदा कर सकता है।

दूसरी रोगिणी में भी मूल रूप से वही चीज़ पाई जाती है। उसने यह नियम बना लिया है कि गोल बड़ा तकिया चारपाई के पिछले हिस्से को न छुए और वह इस नियम का पालन करती है पर वह यह नही जानती कि यह नियम कहां से पैदा हुआ, इसका क्या अर्थ है या यह किस बल पर चलता है। वह इसके प्रति उदासीन है, या इससे संघर्ष करती है, या इसपर क्रोध करती है, या इसे पराजित करने का संकल्प करती है—इस बात का विशेष महत्व नही, पर यह नियम पाला जाता है। इसका पालन उसे अवश्य करना होगा। वह व्यर्थ ही अपने आप से पूछती है कि क्यों करना होगा? इस बात से इन्कार नही किया जा सकता कि मनोग्रस्तता-रोग के ये लक्षण, ये मनोबिम्ब और ये आवेग, जिनके बारे में कोई आदमी यह नहीं जानता कि ये कहां पैदा होते है; और जो उन सारे प्रभावों का ऐसा प्रबल प्रतिरोध सहते हैं और फिर भी बने रहते है, जिन्हें वैसे प्रकृत मानसिक जीवन सहन नहीं कर सकता, स्वयं रोगियों पर भी यह असर डालते है कि जैसे वे किसी दूसरे लोक से आए हुए सर्वशक्तिमान् देवता हैं, या अमर सत्ताएं हैं, जो मर्त्य जगत् के आवर्त-चक्र में आकर मिल गई है। इन लक्षणों से मानसिक व्यापार के एक विशेष क्षेत्र का स्पष्टतम संकेत मिलता है, जो शेष सब व्यापारों से विच्छिन्न है। उनसे मन में अचेतन की सत्ता के प्रश्न पर विश्वास करने का असंदिग्ध मार्ग दिखाई देता

---

१. Subject.

है, और इसी कारण मनश्चिकित्सा, जो सिर्फ चेतना के मनोविज्ञान को मानती है, इन लक्षणों के विषय में इसके सिवा और कुछ नहीं कर सकती कि उन्हें एक विशेष तरह के 'पतन' के चिह्न बना दे। स्वभावतः मनोग्रस्तता वाले मनोबिम्ब और आवेग स्वयं उससे अधिक अचेतन नहीं होते जितना मनोग्रस्तता-कार्यों का करना। यदि वे चेतना में न घुस गए होते तो रोग-लक्षण न बने होते, पर विश्लेषण से उनके जो मानसिक पूर्व इतिहास प्रकट हुए, निर्वचन के बाद वे जिन सम्बन्धों से बंधे, वे कम से कम तब तक अचेतन हैं, जब हम विश्लेषण के कार्य द्वारा रोगी को उनसे चेतन, अर्थात् सज्ञान बनाते हैं।

इसके अलावा, अब इस बात पर भी विचार कीजिए कि इन दो केसों में स्थापित तथ्यों की प्रत्येक स्नायु-रोग के प्रत्येक लक्षण में पुष्टि होती है; कि लक्षणों का अर्थ सदा और सर्वत्र रोगी को अज्ञात होता है; कि विश्लेषण सदा यह प्रकट करता है कि ये लक्षण उन अचेतन मानसिक प्रक्रमों से पैदा होते हैं जो अ`क अनुकूल अवस्थाओं में चेतन भी हो सकते हैं। तब आपको यह बात समझ में आएगी कि मनोविश्लेषण में हम मन के अचेतन भाग को छोड़कर नहीं चल सकते, और हमें इसके साथ उसी तरह व्यवहार करने का अभ्यास है, जैसे किसी वास्तविक और मूर्त चीज से। शायद आप यह भी अनुभव कर सकेंगे कि वे लोग इस विषय में राय बनाने में कितने अक्षम हैं, जो अचेतन को एक शब्दमात्र के रूप में जानते हैं, जिन्होंने कभी स्वप्नों का विश्लेषण या निर्वचन या स्नायविक लक्षणों का उनके अर्थ और आशय में रूपान्तर या अनुवाद नही किया। आपके ध्यान में इसे अच्छी तरह से बैठाने के लिए मैं इसका सारांश फिर दोहराऊंगा। यह तथ्य कि विश्लेषण तथा निर्वचन द्वारा स्नायविक लक्षणों का अर्थ जानना सम्भव है, अचेतन मानसिक प्रक्रमों के अस्तित्व का, या यदि आप यों कहना चाहें तो उनका अस्तित्व मानने की आवश्यकता का अकाट्य प्रमाण है।

पर इतनी ही बात नहीं है। ब्रायर की दूसरी खोज से, जिसका सारा श्रेय उस अकेले को है और जिसका महत्व मुझे पहली खोज से भी अधिक दूरगामी मालूम होता है, अचेतन और स्नायु-रोगियों के लक्षणों के आपसी सम्बन्ध के बारे में और भी ज्ञान प्राप्त हुआ। लक्षण का अर्थ ही सदा अचेतन नहीं होता, उन दोनों में स्थानापन्नता के ढंग का सम्बन्ध-सूत्र भी होता है। लक्षण का अस्तित्व इस अचेतन व्यापार के कारण ही हो सकता है। मेरा आशय आप जल्दी ही समझ जाएंगे। ब्रायर की तरह मैं भी यह बात मानता हूं : जब कभी हम कोई लक्षण देखते हैं, तभी हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि रोगी के मन में सुनिश्चित अचेतन व्यापार मौजूद हैं, जिनमें लक्षण का अर्थ निहित है। विलोमतः, यह अर्थ पहले अवश्य अचेतन होना चाहिए, तब ही इससे कोई लक्षण पैदा हो सकता है। लक्षण चेतन प्रक्रमों से नहीं पैदा होता। ज्यों ही लक्षण पैदा करने वाले अचेतन प्रक्रमों

को चेतन बना दिया जाएगा, त्योंही लक्षण लुप्त हो जाएंगे। आप तुरन्त समझ जाएंगे कि यह चिकित्सा का एक नया रास्ता है, जिससे लक्षणों को हटाया जा सकता है। इसी उपाय से ब्रायर ने अपने रोगी को सचमुच अच्छा कर दिया, अर्थात् उसे उसके लक्षणों से मुक्त कर दिया। उसने उन अचेतन प्रक्रमों को, जिनमें उसके लक्षणों का अर्थ मौजूद था, उसकी चेतना में लाने का एक तरीका निकाला और लक्षण लुप्त हो गए।

ब्रायर की यह खोज किसी कल्पना या चिन्तन का परिणाम नहीं थी, बल्कि एक प्रेक्षण का परिणाम थी, जो रोगी के सहयोग के कारण सम्भव हो सका। अब आप इसे समझाने के लिए इसकी किसी ऐसी ही अपनी पूर्व परिचित चीज से तुलना करने की कोशिश करके अपने दिमाग को परेशान न करें; आपको इसे एक मौलिक रूप से नया तथ्य मानना चाहिए, जिसके द्वारा और बहुत-सी बातों की व्याख्या की जाती है। इसलिए मुझे यह बात दूसरे शब्दों में पेश करने की अनुमति दीजिए।

लक्षण किसी दूसरी चीज़ का, जो अन्दर छिपी रहती है, स्थानापन्न होता है। प्रकृत दशाओं में कुछ मानसिक प्रक्रम तबतक परिवर्धित होते रहते हैं जबतक व्यक्ति सचेत रूप से उन्हें न जानता हो। वह उन्हें सचेत रूप से नहीं जान पाया है, और इसके बदले इन प्रक्रमों से, जिसमें किसी तरह रुकावट और बाधा पड़ी है,और जिन्हें अचेतन रहना पड़ा है, वह लक्षण पैदा हो गया है। इस प्रकार एक तरह का विनिमय या अदला-बदला हो गया है। यदि हम अपनी चिकित्सा शैली द्वारा इस प्रक्रम को उलटा करने में सफल हो जाएं तो हम उस लक्षण को दूर कर सकते हैं।

ब्रायर की खोज अब भी मनोविश्लेषण चिकित्सा की बुनियाद है। यह कथन कि लक्षणों का अचेतन पूर्वइतिहास चेतन बना दिए जाने पर लक्षण लुप्त हो जाते हैं, बाद की सब गवेषणाओं से सच्चा प्रमाणित हुआ है, यद्यपि इस कथन का व्यवहार में लाने का यत्न करते हुए बड़ी असाधारण और अप्रत्याशित उलझनें सामने आती हैं। हमारी चिकित्सा-शैली अचेतन घटना को चेतन घटना में रूपान्तरित करके अपना कार्य करती है, और अपने कार्य में वहीं तक सफल होती है जहांतक वह यह रूपान्तर कर सके।

अब ज़रा एक दूसरी तरफ़ चलता हूं, क्योंकि कहीं आप इस कल्पना में न डूब जाएं कि यह चिकित्सा सम्बन्धी परिणाम बहुत आसानी से हासिल हो जाता है। अबतक हम जिन निष्कर्षों पर पहुंचे हैं, उनके अनुसार, स्नायु-रोग एक तरह के अज्ञान का; उन मानसिक प्रक्रमों को, जिनका ज्ञान होना चाहिए, न जानने का, परिणाम है। यह बात सुकरात के उस प्रसिद्ध सिद्धान्त से बहुत मिलती-जुलती है जिसके अनुसार पाप भी अज्ञान का परिणाम है। अब, विश्लेषण में ऐसा होता है कि अनुभवी विश्लेषक प्रायः बहुत आसानी से यह अनुमान कर लेता है कि किसी

विशेष रोगी में अचेतन रूप से मौजूद भावनाएं कौन-सी हैं। इसलिए रोगी को अपना ज्ञान देकर और इस तरह उसका अज्ञान हर करके उसका इलाज करना कोई कठिन काम नहीं होता। लक्षण के अचेतन अर्थ का एक पहलू तो इस तरह आसानी से हल हो सकता है, यद्यपि यह सच है कि इसका दूसरा पहलू, अर्थात् लक्षण तथा रोगी के जीवन के पिछले अनुभवों का सम्बन्ध, इस प्रकार नहीं जाना जा सकता; क्योंकि विश्लेषक नहीं जानता कि रोगी को क्या अनुभव हुए हैं, इसलिए उसे तब तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है जब तक रोगी उन्हें याद न कर ले और उसे न बता दे। पर बहुत-से उदाहरणों में इसके स्थान पर भी एक दूसरा उपाय किया जा सकता है। आप रोगी के मित्रों और रिश्तेदारों से उसके पिछले जीवन के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। प्रायः उन्हें यह पता होता है कि उपघात के ढंग की, अर्थात् मन को चोट पहुंचाने वाली कौन-सी घटनाएं हुई हैं। शायद वे कुछ ऐसी घटनाएं भी बतला सकें, जिनका रोगी को ज्ञान नहीं है, क्योंकि वे उसके बहुत बचपन में हुई थीं। ऐसा मालूम होने लगता है कि दोनों उपायों को मिलाकर रोगियों के रोगजनक अज्ञान को बहुत जल्दी और बिना अधिक परेशानी के दूर किया जा सकता है।

काश कि ऐसा हो सकता! हमने ऐसी खोजें की हैं जिनके होने से पहले हमें जरा भी यह सम्भावना नहीं थी कि जानने और जानने में भेद होता है। दोनों ज्ञान सदा एक ही चीज नहीं होते। ज्ञान अनेक प्रकार का होता है, और सब प्रकारों का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से समान मूल्य नहीं होता। चिकित्सक का जानना और रोगी का जानना, एक ही चीज नहीं हैं, और उन दोनों का एक ही प्रभाव नहीं होता। जब डाक्टर रोगी को अपना ज्ञान प्रकट करता है तब उसका प्रभाव होता है। नहीं, ऐसा कहना सही नहीं। इसका प्रभाव यह नहीं होता कि लक्षण लुप्त हो जाएं; पर इसका एक और प्रभाव होता है—इससे विश्लेषण गतिमान् हो जाता है, और इसका पहला परिणाम प्रायः जोरदार निषेध होता है। रोगी को कुछ ऐसी चीज़, अर्थात् अपने लक्षण का अर्थ, ज्ञात हुआ है जो उसे पहले ज्ञात नहीं था, और तब भी वह पहले की तरह कुछ नहीं जानता। इस तरह हम देखते है कि अज्ञान एक से अधिक प्रकार का होता है। यह समझने के लिए कि उन दोनों में किस बात का अन्तर है, मनोवैज्ञानिक मामलों की गहरी पैठ और सूझ-बूझ होनी चाहिए। पर यह कथन तब भी सच रहता है कि लक्षणों के अर्थ का ज्ञान हो जाने पर वे लुप्त हो जाते हैं। इसकी आवश्यक शर्त यह है कि इस ज्ञान का आधार रोगी का आन्तरिक परिवर्तन होना चाहिए, और यह परिवर्तन इस उद्देश्य से किए गए मानसिक व्यापार द्वारा ही हो सकता है। यहां हमारे सामने ऐसी समस्याएं आ गई हैं जो शीघ्र ही बढ़ते-बढ़ते लक्षण-निर्माण की **गतिकी**[1] (या गति विज्ञान) का रूप धारण कर

१. Dynamics.

लेंगी।

अब मुझे सचमुच रुक जाना चाहिए, और आपसे यह पूछना चाहिए कि जो बातें मैं कह रहा हूं, वे बहुत अधिक अस्पष्ट और उलझनदार तो नहीं है ? और क्या मैं इतनी सारी शर्तें और मर्यादाएं लगाकर, विचार-शृंखलाएं बनाकर और फिर उन्हें छोड़कर आपके मन में गड़बड़-घुटाला तो नहीं पैदा कर रहा ? यदि ऐसा होगा तो मुझे बड़ा दुःख होगा। मुझे सत्य की हानि करके सरलीकरण करना एकदम नापसन्द है। मुझे इस विषय के अनेक पहलुओं और जटिलता का पूरा चित्र आपके सामने रखने की इच्छा है, और मैं यह भी मानता हूं कि प्रत्येक प्रश्न के बारे में जितना आप इस समय पचा सकते हैं, उससे अधिक बताने से कोई हानि नहीं होगी। मैं जानता हूं कि प्रत्येक श्रोता और प्रत्येक पाठक जो कुछ सुनता-पढ़ता है, उसे अपने मन में अपने ढंग से सजा लेता है, उसे संक्षिप्त करता है, उसे सरल करता है, और उसमें से वह चीज़ निकाल लेता है जो वह याद रखना चाहता है। कुछ सीमाओं में यह बात सच है कि हम जितने अधिक से शुरू करेंगे, अन्त में उतना ही अधिक हमारे पास रहेगा। इसलिए मुझे आशा है कि विस्तार के बावजूद आपने लक्षणों के अर्थ, अचेतन, और उन दोनों के सम्बन्ध के बारे में मेरे कथन का सारांश समझ लिया है। शायद आपने यह भी समझ लिया है कि आगे हम दो दिशाओं में बढ़ेंगे--एक तो यह जानने की दिशा में कि लोग रोगी कैसे हो जाते हैं; उनका जीवन के प्रति विशिष्ट स्वाभाविक रुख, जो चिकित्सा-क्षेत्र की एक समस्या है, कैसे बन जाता है; और दूसरे, उनमें स्नायु-रोग की अवस्थाओं में से अस्वस्थ लक्षणों का परिवर्धन कैसे हो जाता है, जोकि मानसिक गतिकी समस्या है। इन दोनों समस्याओं का कोई न कोई मिलन-बिन्दु अवश्य होना चाहिए।

आज मैं इस विषय में और कुछ नहीं कह सकूंगा, पर क्योंकि अभी हमारा समय पूरा नहीं हुआ इसीलिए मैं आपका ध्यान अपने दो विश्लेषणों की एक और विशेषता की ओर खींचना चाहता हूं; वह है **स्मृति-व्यवधान या स्मृति-नाश (एमनेशिया)**--इसका पूरा महत्व भी आगे चलकर स्पष्ट होगा। आप देख चुके हैं कि मनोविश्लेषण के इलाज का कार्य इस संक्षिप्त सूत्र में आ जाता है--अचेतन की प्रत्येक रोगजनक बात चेतन में स्थानान्तरित कर दी जाए। अब शायद आपको यह सुनकर आश्चर्य हो कि इसके स्थान पर एक और सूत्र रखा जा सकता है : रोगी की स्मृति के सब अवकाशों, अर्थात् खाली स्थानों, को भर दिया जाए। उसके एमनेशिया अर्थात स्मृति-व्यवधान दूर कर दिए जाएं। यह बात भी वही है जिसका मतलब यह है कि लक्षणों के परिवर्धन और स्मृति-व्यवधानों में मौजूद महत्वपूर्ण सम्बन्ध-सूत्र पहचाना जाए। यदि आप पहली रोगिणी के उदाहरण पर विचार करें तो आपको स्मृति-व्यवधान एमनेशिया के बारे में यह विचार उचित नहीं मालूम होगा। रोगी उस दृश्य को नहीं भूला है जिससे मनोग्रस्तता-कार्य पैदा हुआ। इसके

विपरीत, यह उसकी स्मृति में सजीव है, इसी तरह उसके लक्षण के निर्माण की कोई और भी बात भूली हुई नहीं है। दूसरे उदाहरण में, जिसमें लड़की मनोग्रस्तता के काम-काज करती है, स्थिति बिलकुल ऐसी है; यद्यपि वह इतनी स्पष्ट नहीं है। वह भी अपने पहले के दिनों के व्यवहार को असल में भूली नही थी। यह तथ्य था कि उसने अपने माता-पिता के सोने के कमरे और अपने सोने के कमरे के बीच का दरवाजा खुला रखने का आग्रह किया था, और कि उसने अपनी माता को अपने माता-पिता के बिस्तर से हटा लिया था। उसे यह बात बिलकुल स्पष्ट रूप से ज्ञात थी, यद्यपि उसे इसमें संकोच और अनिच्छा अनुभव होती थी। इसमें विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि यद्यपि पहली रोगिणी ने अपना मनोग्रस्तता-कार्य असंख्य बार किया था, पर उसे सुहागरात के बाद वाले दृश्य से इसकी समानता का ध्यान **एकबारगी** नही आया, और जब उससे अपने मनोग्रस्तता-कार्य का मूल खोजने के लिए सीधे तौर से कहा गया, तब भी उसे यह बात ध्यान नही आई। यही बात उस लड़की के बारे में भी है, जिसके सामने न केवल अपना निश्चित काम बल्कि उसे पैदा करनेवाली स्थिति भी हर सायंकाल उसी रूप में आती थी। दोनों में से किसी भी उदाहरण में स्मृति-व्यवधान या एमनेशिया वस्तुतः नहीं था, पर वह सम्बन्ध-सूत्र टूट गया था जो जैसे का तैसा रहना चाहिए था, और जिसे उन बातों का स्मरण कराना चाहिए था। मनोग्रस्तता-रोग के लिए स्मृति का इस तरह गड़बड़ हो जाना काफ़ी है। हिस्टीरिया में यह दूसरी तरह का होता है। हिस्टीरिया रोग में प्रायः बहुत बड़े पैमाने पर स्मृति-व्यवधान होते है। साधारणतया हिस्टीरिया के प्रत्येक लक्षण का विश्लेपण करने पर पिछले संस्कारों की एक पूरी की पूरी शृंखला मिलती है, जिसके बारे में उनके लौट आने पर यह कहा जा सकता है कि वह अब तक बिलकुल भूली हुई थी। यह शृंखला एक ओर तो बचपन के बिलकुल आरम्भिक दिनों तक पहुंचती है, और इसीलिए हिस्टीरिक एमनेशिया, अर्थात् हिस्टीरिया का स्मृति-व्यवधान उस बाल्यकालीन स्मृति-व्यवधान का सीधा विस्तार दिखाई देता है, जो हमारे मानसिक जीवन के शुरू के संस्कारों को हम सबसे छिपाए रखते है। दूसरी ओर हमें यह देखकर आश्चर्य होता है कि रोगी को बहुत हाल के अनुभव भी भूल जाते हैं, और विशेष रूप से वे उत्तेजक कारण, जिन्होंने रोग को जन्म दिया या उसे बढ़ाया था, स्मृति-व्यवधान से पूरी तरह विलुप्त न होने पर भी कम से कम अंशतः तो लुप्त हो ही जाते है। हाल की स्मृति के ऐसे किसी भी पूर्ण चित्र में से महत्वपूर्ण बातें सदा लुप्त हो जाती हैं, या उनके स्थान पर जाली बातें आ जाती हैं। बार-बार प्रायः सदा यह हुआ कि विश्लेषण पूरा होने से कुछ ही पहले हाल के अनुभवों की वे स्मृतियां ऊपर आ जाती है, जो सारे समय भीतर रुकी रही थीं, और जिन्होंने सिलसिले में बहुत-से ध्यान खींचने वाले व्यवधान यानी खाली स्थान छोड़ रखे थे।

स्मृतियों को फिर से याद कर सकने के सामर्थ्य में जो ये विक्षेप या गड़बड़ियां हो जाती हैं; वे, जैसा कि मैंने बताया है, हिस्टीरिया की विशेषताएं हैं, जिसमें यह भी होता है कि वे अवस्थाएं लक्षण (हिस्टीरिया के दौरों) के रूप में आती हैं, जिनकी स्मृति का कुछ भी अंश उनके बाद बचे रहना ज़रूरी नहीं। क्योंकि मनोग्रस्तता रोग में इससे भिन्न स्थिति है, इसलिए आप यह अनुमान कर सकते हैं कि ये स्मृति-व्यवधान या एमनेशिया हिस्टीरिया वाले परिवर्तन के मनोवैज्ञानिक स्वरूप के अंश हैं, सामान्य स्नायु-रोग के व्यापक चिह्न नहीं। इस अंतर का महत्व निम्नलिखित बात पर विचार करने से बहुत कम रह जाएगा। दो चीज़ें मिलकर किसी लक्षण का अर्थ होती हैं : इसका **'कहां से'** और **'किधर'** या **'क्यों'**; अर्थात् ये संस्कार और अनुभव जिनसे यह पैदा हुआ, और वह प्रयोजन या उद्देश्य जो इससे पूरा होता है। किसी लक्षण के **'कहां से'** को बाहर से प्राप्त संस्कारों में खंडित किया जा सकता है जो किसी समय अवश्य चेतन अर्थात् ज्ञात थे, और जो उसके बाद भूल जाने के कारण अचेतन हो सकते हैं। पर लक्षण का **'क्यों'**, अर्थात् इसकी प्रवृत्ति सदा एक अंतर्मानसिक[1] प्रक्रम है, जिसका शुरू में चेतन होना भी संभव है, और यह भी संभव है कि वह कभी चेतन न रहा हो और शुरू से अचेतन में रहा हो। इसलिए यह बात बहुत महत्व की नहीं है कि स्मृति-व्यवधान या एमनेशिया ने **'कहां से'** पर, अर्थात् उन संस्कारों पर जिनके सहारे वह लक्षण जीवित है, अपना असर डाला है—जैसा कि हिस्टीरिया में होता है; **'किधर'** अर्थात् लक्षण की प्रवृत्ति ही, जो शुरू से अचेतन चली आने वाली हो सकती है, लक्षण को अचेतन के आश्रित रखती है; और यह, हिस्टीरिया की तरह मनोग्रस्तता-रोग में भी, लक्षण को अचेतन पर निर्भर रखती है।

इस प्रकार मानसिक जीवन में मौजूद अचेतन पर बल देकर हमने मनुष्य जाति की सारी दुर्भावना को मनोविश्लेषण के विरोध में खड़ा कर लिया है। इस पर आश्चर्य मत कीजिए, और यह भी मत समझिए कि यह विरोध अचेतन की धारणा बनाने में स्पष्टतः होने वाली कठिनाई से संबंधित है, या इसका समर्थन करने वाली गवाही की आपेक्षिक दुर्गमता से संबंधित है। मैं समझता हूं कि इसकी जड़ कुछ गहरी है। मनुष्य जाति को विज्ञान के हाथों अपने निष्कपट आत्मप्रेम पर दो अत्याचार बहुत समय से सहने पड़े हैं। पहला वह था, जब विज्ञान ने यह पता लगाया कि हमारी पृथ्वी विश्व का केन्द्र नहीं है, बल्कि कल्पनातीत रूप में बड़े विश्व-चक्र में एक छोटा बिन्दुमात्र है। यह बात हमारे मनों में कोपरनिकस के नाम के साथ जुड़ी हुई है, यद्यपि अलेक्जेंड्रियन सिद्धांतों में भी बहुत कुछ ऐसी बात थी। दूसरी बात तब हुई जब जैविकीय गवेषणा ने मनुष्य की यह विशेषता छीन

---

१. Endopsychic.

ली कि उसका निर्माण किसी विशेष तरह से हुआ था, और उसे पशु-जगत् से उत्पन्न बता दिया, जिसका मतलब यह था कि उसमें ऐसी पशु-प्रकृति मौजूद है जिसे उन्मूलित नहीं किया जा सकता। यह मूल्यान्तरण, अर्थात् मूल्यों का परिवर्तन हमारे ही जमाने में चार्ल्स डारविन, वालैस और उनके पूर्ववर्तियों की प्रेरणा पर हुआ, और इसका उनके समकालीन लोगों ने बड़ा प्रबल विरोध किया। पर अब, मनुष्य की बड़प्पन की लालसा को, आजकल की मनोवैज्ञानिक गवेषणा से तीसरा सबसे प्रबल आघात सहना पड़ रहा है--यह मनोवैज्ञानिक गवेषणा हममें से प्रत्येक के 'अहम्' के सामने यह सिद्ध करने का यत्न कर रहा है कि तुम अपने स्वयं के भी स्वामी नहीं हो, बल्कि तुम्हें, जो कुछ तुम्हारे अपने मन में अचेतन रूप से चल रहा है, उसके बारे में भी बहुत ही कम जानकारी से सन्तुष्ट रहना होगा। मनुष्य जाति को यह कहने का काम कि वह अपने अंदर की ओर देखे, सबसे पहले और या एकमात्र मनोविश्लेषकों ने ही नहीं किया है। पर प्रतीत होता है कि इसका पूरे आग्रह के साथ समर्थन करना और प्रत्येक व्यक्ति से नजदीकी संबंध रखने वाली आनुभविक[1] गवाही से इसका समर्थन करना, हमारे ही जिम्मे पड़ा है। हमारे विज्ञान के विरुद्ध सर्वत्र हो रहे विद्रोह का, वाद-विवाद में विद्वज्जनोचित शिष्टाचार के पूर्ण तिरस्कार का, और निष्पक्ष तर्क की सब अपेक्षाओं से मुक्त विरोध का यही मूल कारण है; और इसके अतिरिक्त, एक और तरीके से भी हमें दुनिया की शांति भंग करनी पड़ी है, जैसा कि आप आगे चलकर देखेंगे।

---

१. Empirical.

प्रतिरोध और दमन*

अब हमें स्नायु-रोगों को समझने की दिशा में बढ़ने के लिए और तथ्यों की आवश्यकता है। हमारे पास ही दो प्रेक्षण मौजूद हैं। दोनों बड़े ध्यान देने योग्य हैं और शुरू में बड़े आश्चर्यजनक थे। आप हमारे पिछले साल किए गए कार्य से उन दोनों के लिए निःसन्देह तैयार हो चुके हैं।

पहला : जब हम किसी रोगी के लक्षणों का इलाज करने का कार्य अपने ऊपर लेते हैं, तब वह इलाज के सारे समय हमारा जोरदार और लगातार विरोध करता है। यह ऐसी असाधारण बात है कि हम इसमें आपका बहुत विश्वास होने की आशा नहीं करते। सबसे अच्छी बात यह है कि रोगी के रिश्तेदारों से इसके बारे में कुछ न कहा जाए, क्योंकि वे सदा यह समझते हैं कि हमने इलाज को लम्बा खींचने के लिए या इलाज के व्यर्थ हो जाने पर यह बहाना तैयार कर रखा है। रोगी में भी इस प्रतिरोध के सब प्रकट रूप दिखाई देते हैं, यद्यपि वह इन्हें इस रूप में नहीं पहचानता, और हम उसे यह तथ्य अनुभव करा दें, तब समझिए कि एक बहुत बड़ी बाधा पार कर ली। यह सोचना कि रोगी, जिसके लक्षण उसे और उसके रिश्तेदारों को इतना कष्ट दे रहे हैं, और जो उनसे छूटने के लिए समय, धन और परिश्रम का इतना त्याग और आत्मविजय करने को तैयार है, वह अपने रोग को दूर करने के लिए प्रस्तुत सहायता का प्रतिरोध करे—यह बात कितनी असम्भाव्य लगती है, पर तो भी यह सच है, और यदि इस असम्भाव्यता के आधार पर हमारी निन्दा की जाए तो हम यही जवाब दे सकते हैं कि यह कोई अनोखी या बेमिसाल बात नहीं है, क्योंकि भयंकर दांत-दर्द से पीड़ित जो आदमी दांत-डाक्टर के पास जाता है, वह भी डाक्टर के जम्बूर निकालने पर उसको पकड़कर रोकने की कोशिश करता है।

रोगियों में दिखाई देनेवाला यह प्रतिरोध बड़े विविध रूपों वाला और अत्य-

* Resistance and Repression.

धिक सूक्ष्म होता है; प्रायः इसे पहचानना कठिन होता है, और इसके नाना रूप बहुत जल्दी-जल्दी बदलते रहते हैं। विश्लेषक को लगातार सन्देहशील और इसके विरुद्ध सावधान रहने की आवश्यकता है। मनोविश्लेषण द्वारा चिकित्सा में हम उस विधि का प्रयोग करते हैं जिसे आप स्वप्न-निर्वचन के सिलसिले में देख चुके हैं : हम रोगी से कहते हैं कि वह शान्तिपूर्वक आत्मप्रेक्षण करे, "कुछ भी सोचने की कोशिश न करे" और इसके बाद उसे अन्दर से जिस बात का ज्ञान हो, उस सबकी—भावनाओं, विचारों और स्मृतियों को—उसी क्रम से बताता जाए जिस क्रम से वे उसके मन में पैदा होती हैं। हम उसे साफ चेतावनी दे देते हैं कि वह किसी ऐसे कारण से प्रभावित न हो जो उसे उन मनोबिम्बों (साहचर्यों) में से किसीको छांटने या छोड़ने को प्रेरित करें, चाहे वे बहुत 'बुरे लगने वाले', या 'न कहने योग्य', या बहुत 'महत्वहीन' या 'अप्रासंगिक' या 'अर्थहीन' ही हों। हम उसके मन में यह बात बैठाते हैं कि उसे सिर्फ वह बात पकड़नी है जो उसके मन में चेतन रूप से ऊपरी तल पर है. और जो कुछ उसे प्राप्त हो, उसपर होने वाली सब तरह की आपत्तियों को छोड़ देना है, चाहे वे किसी भी रूप में हों। और हम उससे कह देते हैं कि उसके इलाज की सफलता, और सबसे बढ़कर, इसमें लगने वाला समय, इस बात पर निर्भर होगा कि वह कहां तक इस आधारभूत शास्त्रीय नियम पर सचाई से कायम रह सकता है। स्वप्न-निर्वचन की विधि से हमें पता चला था कि ठीक उन्हीं साहचर्यों में अचेतन का ज्ञान कराने वाली सामग्री होती है जिनके विरुद्ध असंख्य संदेह और आपत्तियां पैदा होती हैं।

यह शास्त्रीय नियम लागू करने के परिणामस्वरूप पहली बात यह होती है, कि सबसे पहले इसीका प्रतिरोध किया जाता है; रोगी प्रत्येक संयत उपाय द्वारा इससे बचने की कोशिश करता है। पहले वह कहता है कि मेरे दिमाग में कुछ भी नहीं आता; फिर वह कहता है कि मेरे दिमाग में इतनी सारी बातें आती हैं कि मैं उनमें से किसीको पकड़ नहीं सकता। फिर हम नाराजी और आश्चर्य से देखते हैं कि वह अपनी आलोचनाओं और आक्षेपों में से कभी किसीके और कभी किसीके वश में हो जाता है। यह बात उसकी बातचीत में आने वाली लम्बी चुप्पियों से दिखाई देती है। अन्त में वह मान लेता है कि वास्तव में मैं कुछ नहीं कह सकता, मुझे शर्म आती है, और वह अपने वायदे को तोड़कर इस भावना के वश में हो जाता है; अथवा उसने कोई बात सोची है जो स्वयं उसपर लागू नहीं होती, बल्कि किसी और पर लागू होती है, और इसलिए वह उस नियम का अपवाद है; अथवा, जो कुछ मैंने अभी सोचा है, वह बिलकुल महत्वहीन, मूर्खतापूर्ण और बेहूदा है, और आपका यह आशय कभी नहीं हो सकता कि मैं ऐसे विचारों पर ध्यान दूं। इस तरह अनेक रूपों में यह बात चलती है जिसपर यही उत्तर दिया जाता है कि प्रत्येक बात बताने का अर्थ वास्तव में प्रत्येक बात बताना ही है।

ऐसा कोई रोगी नहीं मिलता जो अपने विचारों के कुछ अंश पर रोक लगाने की कोशिश न करता हो, ताकि वे विश्लेषण की पहुंच से सुरक्षित रहें। एक रोगी ने, जो सामान्यतया विशेष रूप से बुद्धिमान था, एक बहुत घनिष्ठ प्रेम-सम्बन्ध इस तरह कई सप्ताह मुझसे छिपाए रखा। जब उससे कहा गया कि तुमने उस पवित्र नियम को तोड़ा है, तब उसने सफाई में यह दलील पेश की कि मैं इस किस्से को अपना निजी और गोपनीय मामला समझता था। स्वभावतः विश्लेषण का इलाज इस तरह की गोपनीयता का अधिकार नहीं मान सकता। इस तरह तो कोई आदमी यह भी कह सकता है कि वियेना जैसे शहर के कुछ हिस्सों को अपवाद माना जाए. और बाजार में या सेंट स्टीफन के चर्च के चौराहे पर कोई गिरफ्तारी न की जाए, और फिर किसी फरार आदमी को पकड़ने की कोशिश की जाए। निश्चित ही है कि वह उन सुरक्षित स्थानों के अलावा और कहीं नहीं जाएगा। एक बार मैंने एक आदमी को इस तरह की एक बात का अपवाद करने की अनुमति देने का निश्चय किया, क्योंकि मेरी बहुत कुछ सफलता इस बात पर निर्भर थी कि वह अपना कार्य का सामर्थ्य फिर प्राप्त कर ले और सरकारी कर्मचारी के नाते वह इस शपथ से बंधा हुआ था कि कुछ बातें मैं किसी अन्य व्यक्ति को नहीं बताऊंगा। यह सच है कि वह परिणाम सें संतुष्ट था पर मैं संतुष्ट नहीं था। मैंने ऐसी अवस्थाओं में फिर कभी विश्लेषण न करने का फ़ैसला कर लिया।

मनोग्रस्तता के रोगी इस बात में बड़े निपुण होते ह कि वे अपनी अति सत्य-निष्ठा और सन्देह को इस शास्त्रीय नियम पर लगाकर इसे प्रायः बेकार कर देते हैं। चिन्ता-हिस्टीरिया के रोगी कभी-कभी सिर्फ वे साहचर्य पैदा करते हैं जो अभीष्ट साहचर्यों से बहुत दूर होते हैं, और विश्लेषण योग्य कोई चीज़ नहीं प्रस्तुत करते, और इस तरह इस नियम को बेकार करने में सफल हो जाते है। पर मेरा आशय आपको इलाज की शास्त्रीय या टेक्निकल कठिनाइयों का परिचय देना नहीं। इतना ही जानना काफी है कि संकल्प और अध्यवसाय द्वारा हम रोगियों से इस विधि के नियम का कुछ पालन कराने में सफल हो जाते हैं, और तब प्रतिरोध बिलकुल दूसरा रास्ता अपना लेता है। यह बौद्धिक विरोध के रूप में आता है, दलीलों को हथियारों की तरह इस्तेमाल करता है, और उन सब कठिनाइयों और असम्भाव्यताओं को अपने प्रयोग में लाता है, जो प्रकृत, पर विषय से अनभिज्ञ, व्यक्ति के तर्क को विश्लेषण के सिद्धान्तों में दिखलाई देती है। तब हमें उस रोगी के मुंह से वह सब आलोचना और आक्षेप सुनने पड़ते हैं जो वैज्ञानिक पत्र-पत्रिकाएं सम्मिलित स्वर में हमारे चारों ओर दहाड़ती रहती है। बाहरी आलोचक हमारे ऊपर जो कुछ कहते हैं उसमें कोई नई बात नहीं। असल में वह बात का बतंगड़ है। फिर भी, रोगी से दलील की जा सकती है। वह यह देखकर बड़ा खुश होता है कि हम उसे समझाएं, पढ़ाएं, हराएं और उपयोगी साहित्य बताएं, ताकि वह

और अधिक सीख सके। वह इस शर्त पर मनोविश्लेषण का समर्थक होने के लिए पूरी तरह तैयार है कि विश्लेषण व्यक्तिगत रूप में उसे बख्श दे। पर ज्ञान की इस अभिलाषा में हमें प्रतिरोध स्पष्ट दीखता है। यह प्रस्तुत विषय से हटना है, और हम इसे नहीं चलने देते। मनोग्रस्तता-रोग में प्रतिरोध एक विशेष चाल चलता है, जिसके लिए हम बिलकुल तैयार होते हैं। यह विश्लेषण को बिना बाधा के इसके रास्ते पर चलने देता है, यहां तक कि केस की समस्याओं पर अधिकाधिक प्रकाश पड़ता जाता है, पर अन्त में हमें यह आश्चर्य होने लगता है कि इन स्पष्टीकरणों का कोई क्रियात्मक परिणाम क्यों नहीं होता, और लक्षणों में उनके अनुरूप सुधार क्यों नहीं होते। तब हमें पता चलता है कि प्रतिरोध मनोग्रस्तता-रोग की एक विशेषता, अर्थात् सन्देह पर आकर टिक गया है, और इस किले से हमें सफलतापूर्वक दूर रख रहा है। रोगी अपने मन में कुछ इस तरह की बात कह रहा है : "यह सब बात बड़ी सुन्दर और मनोरंजक है। मैं इसे जारी रखना चाहता हूं। मुझे निश्चय है कि यदि यह सच हो तो इससे मुझे बड़ा लाभ होगा, पर मुझे इसमें जरा भी विश्वास नहीं है, और जब तक मुझे इसपर विश्वास नहीं, तब तक इसका मेरे रोग पर कोई असर नहीं होगा।" इस तरह बहुत समय तक सिलसिला चलता रहता है, और अन्त में हम इस मनोभाव पर ही पहुंच जाते हैं, और फिर निर्णायक संघर्ष शुरू होता है।

बौद्धिक प्रतिरोध ही सबसे कठिन नहीं होते। इनको सदा हटाया जा सकता है, पर रोगी जानता है कि खास विश्लेषण की सीमाओं में प्रतिरोध किस तरह कायम किए जाएं, और इनको पराजित करना इस विधि के सबसे कठिन कार्यों में से है। अपने पिछले जीवन की कुछ भावनाओं और मन की अवस्थाओं को याद करने के बजाय वह उन्हें पुनः पैदा कर लेता है, और उनमें से कुछ में, चिकित्सक और इलाज का मुकाबला करता हुआ 'स्थानान्तरण'[1] नामक उपाय द्वारा पुनः रम जाता है या जीने लगता है। यदि रोगी पुरुष है तो वह यह सामग्री प्रायः अपने पिता के साथ अपने सम्बन्ध से लेता है, जिसके स्थान पर अब उसने डाक्टर को रख लिया है; और ऐसा करते हुए वह व्यक्तिगत आत्मनिर्भरता और निर्णय की स्वतंत्रता प्राप्त करने के संघर्षों में से अपनी उस आकांक्षा में से, जिसका पहला लक्ष्य पिता के समान बनना, या उससे बढ़ जाना था, या अपने जीवन में दूसरी बार कृतज्ञता का भार अपने ऊपर लेने की अपनी अरुचि में से प्रतिरोध खड़े कर लेता है। कभी-कभी ऐसा समय आता है, जिसमें यह महसूस होता है कि रोगी की विश्लेषण को ग़लत सिद्ध करने की, उसकी असमर्थता सिद्ध करने की, उसपर विजय प्राप्त करने की, इच्छा ने उसकी अपने रोग का अन्त करने की उचिततर इच्छा को पूरी तरह

---

१. Transference.

निकाल भगाया है। स्त्रियों में यह प्रतिभा होती है कि वे विश्लेषक पर किए गए एक कोमल, कामुकता से अंकित, स्थानान्तरण द्वारा प्रतिरोध कायम रख सकती हैं। जब यह आकर्षण एक विशेष तीव्रता पर पहुंच जाता है, तब इलाज की असली परिस्थिति में सारी दिलचस्पी उड़ जाती है, और साथ ही इलाज आरम्भ करने के समय की गई सब प्रतिज्ञाएं भी उड़ जाती हैं। चाहे कितनी भी नर्मी से आप उस भाव को तिरस्कृत करें, पर उसके परिणामस्वरूप पैदा होनेवाली अनिवार्य ईर्ष्या और वैमनस्य से चिकित्सक के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध को अवश्य हानि पहुंचेगी, और इस तरह विश्लेषण में प्रयुक्त एक अत्यन्त शक्तिशाली प्रेरक बल प्रभावहीन हो जाएगा।

इस तरह के प्रतिरोधों की संकीर्ण भाव से निन्दा या तिरस्कार नहीं करना चाहिए। उनमें रोगी के पिछले जीवन की इतनी सारी सबसे अधिक महत्वपूर्ण सामग्री होती है और वे इतने निश्चायक तरीके से उसे वापस ले आते हैं कि यदि उन्हें ठीक-ठीक उपयोग में लाने के लिए कौशलपूर्ण विधि का सही ढंग से प्रयोग किया जाए तो वे विश्लेषण के लिए बहुत अधिक सहायक सिद्ध होते हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि यह सामग्री पहले सदा प्रतिरोध का कार्य करती है, और ऐसे रूप में सामने आती है जो इलाज का विरोधी होता है। यह कहा जा सकता है कि वे चरित्र के गुण हैं, अहंकार की व्यक्तिगत अभिव्यक्तियां या रुख हैं जो प्रस्तुत परिवर्तनों का विरोध करने के लिए इस तरह इकट्ठे हो जाते हैं। तब यह पता चलता है कि स्नायु-रोग की दशाओं के प्रसंग में, और इसकी आवश्यकताओं के विरोध में प्रतिक्रिया के रूप में ये चरित्र-गुण कैसे परिवर्धित हुए हैं, और इस चरित्र में वे विशेषताएं दिखाई देती हैं जो अन्यथा न दिखाई देतीं, या कम से कम इतने स्पष्ट रूप से न दिखाई देतीं अर्थात् जिन्हें हम गुप्त कह सकते हैं। आपको यह धारणा नहीं बनानी चाहिए कि हम इन प्रतिरोधों को ऐसा अकल्पित खतरा मानते हैं, जो हमारे विश्लेषण के प्रभाव को कोई हानि नहीं पहुंचा सकता है। नहीं, हम जानते हैं कि ये प्रतिरोध अवश्य प्रकट होंगे, बल्कि हम तब असन्तोष अनुभव करते हैं जब उन्हें काफी सुनिश्चित रूप से उब्बुद्ध न कर सकें, और रोगी को उनका इस रूप में ज्ञान न करा सकें। सच तो यह है कि हम अन्त में यह समझे हैं कि इन प्रतिरोधों को दूर करना विश्लषण का आवश्यक कार्य है, और इसे करने पर ही यह निश्चित होता है कि हमने रोगी के लिए कुछ सफलता प्राप्त की है।

इसके अलावा, आपको यह भी ध्यान रखना चाहिए कि रोगी इलाज के दिनों में पैदा होनेवाली सब आकस्मिक घटनाओं का प्रयोग इलाज में बाधा डालने में करता है। अपने मिलने-जुलने वालों के क्षेत्र में, जिसे भी वह प्रामाणिक मान सकता है, उसकी ही विरुद्ध राय को,किसी भी आकस्मिक शारीरिक रोग को, या स्नायु-रोग को उलझाने वाली किसी भी बीमारी को, वह इलाज में बाधा डालने में प्रयुक्त

करता है। सच तो यह है कि वह अपनी दशा में होने वाले प्रत्येक सुधार को भी अपने प्रयत्न शिथिल करने के लिए एक प्रेरक कारण में परिवर्तित कर लेता है। इसी तरह आपको उन प्रतिरोधों के रूपों और तरीकों की एक तस्वीर, चाहे वह अधूरी ही हो, प्राप्त हो गई, जो प्रत्येक विश्लेषण के बीच में आते हैं, और जिन्हें दूर करना पड़ता है। मैंने इस प्रश्न पर इतने विस्तार से रोशनी इसलिए डाली है क्योंकि मैं अभी आपको यह बतलाने वाला हूं कि स्नायु-रोगों के बारे में हमारी गतिकीय अवधारणा हमारे उन प्रतिरोधों के अनुभव पर ही आधारित है, जो स्नायु-रोगी अपने लक्षणों के इलाज के विरोध में पेश करते हैं। ब्रायर और मैं, दोनों, पहले सम्मोहन, अर्थात् हिप्नोटिक, विधि से मानसिक चिकित्सा का कार्य करते थे। ब्रायर के पहले रोगी का इलाज सम्मोहनीय आदेशवश्यता[1] अर्थात् सम्मोहनावस्था में दिए जानेवाले आदेश की अधीनता की अवस्था में ही किया गया था। पहले मैंने उसका अनुकरण किया। मैं मानता हूं कि उस समय मेरा कार्य बहुत आसानी से और मज़े से आगे बढ़ता था, और उसमें समय भी कम लगता था। पर उसके परिणाम मन-माने और अस्थायी होते थे। इसलिए मैंने अन्त में सम्मोहन छोड़ दिया और तब मैंने समझा कि इन मनोविकारों की गतिकी को तबतक नहीं समझा जा सकता जब तक सम्मोहन का प्रयोग होगा। इस अवस्था में प्रतिरोधों का अस्तित्व ही डाक्टर की नज़र से छिपा रहता है। सम्मोहन प्रतिरोधों को पीछे धकेल देता है और विश्लेषण कार्य के लिए कुछ क्षेत्र मुक्त कर देता है, पर इस क्षेत्र की सीमाओं पर उन प्रतिरोधों को रोक देता है, इसलिए वे अजेय रहते हैं। इसका परिणाम वैसा ही होता है जैसा मनोग्रस्तता-रोगी के संदेह का। इसलिए यह कहना उचित होगा कि सच्चा मनोविश्लेषण तभी आरम्भ हुआ, जब सम्मोहन का सहारा छोड़ दिया गया।

यदि इन प्रतिरोधों को कायम करने का इतना अधिक महत्व है, तो जब हम यह मानते हों कि सतर्कता और संदेह मौजूद हैं, तब निश्चित ही इन्हें पूरी तरह अपना प्रभाव दिखाने का मौका देना समझदारी की बात होगी। शायद स्नायु-रोग के ऐसे उदाहरण मिल जाएं जिनमें साहचर्य असल में दूसरे कारणों से विफल होते ह; शायद हमारे सिद्धान्तों के विरोध में पेश की गई दलीलें अधिक गम्भीरता से सुनने योग्य हों; और हमारा रोगी के बौद्धिक आक्षेपों को प्रतिरोध कहकर इतनी आसानी से उड़ा देना ग़लत हो। मैं आपको इतना ही विश्वास दिला सकता हूं कि इस मामले में हमारा निर्णय जल्दबाजी में किया हुआ नहीं है। हमें इन आलोचक रोगियों को प्रतिरोध के ऊपरी तल पर आने से पहले भी, और इसके दूर हो जाने पर भी, देखने का मौका मिला है। इलाज के समय प्रतिरोध की तीव्रता लगातार बदलती रहती

---

१. Hypnotic suggestibility.

है। जब नया विषय शुरू होता है, तब यह सदा बढ़ती है। इसपर विचार होने के दिनों में यह अधिकतम हो जाती है, और इस विषय पर विचार खतम हो जाने पर यह भी खतम हो जाती है। यदि कोई टेक्निकल ग़लती न कर दी गई हो तो ऐसा कभी नहीं होता कि कोई रोगी जितना अधिक से अधिक प्रतिरोध कर सकता है, वह सारा एक ही बार सामने आ जाए। इस प्रकार, हम सुनिश्चित रूप से यह जान सकते हैं कि वही आदमी विश्लेषण काल में बार-बार अपने आलोचनात्मक आक्षेप उठाएगा, और फिर उन्हें छोड़ देगा। जब कभी हम कोई ऐसी अचेतन सामग्री, जो उसके लिए खास तौर से कष्टदायक है, उसकी चेतना में लाने वाले होते हैं, तब वह बहुत कड़ा आलोचक हो जाता है; चाहे वह पहले बहुत कुछ समझ और स्वीकार कर चुका हो। तो भी वह सारी जानकारी अब लुप्त हो गई मालूम होती है। हर सूरत में विरोध करने की धारणा से प्रेरित होकर वह ऐसा व्यवहार कर सकता है मानो उसमें मानसिक विकलता हो, जो 'भाव-मूढ़ता'[1] का एक रूप है। यदि उसे इस नए प्रतिरोध को दूर करने में सफलतापूर्वक मदद दी जा सके तो उसे अपनी अंतर्दृष्टि और समझ फिर प्राप्त हो जाती है। उसका आलोचना का गुण स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं कर रहा है, और इसलिए इसका वैसा मान नहीं किया जा सकता जैसा इसके स्वतंत्र रूप से कार्य करने पर किया जाता। यह उसकी मनोविकारीय अभिवृत्तियों[2] के लिए सेवक मात्र है, और इसका संचालन उसके प्रतिरोध से होता है। जब उसे कोई चीज़ नापसंद होती है, तब वह बड़ी निपुणता से उसके विरोध में दलीलें दे सकता है, पर जब कोई चीज़ उसके मन के अनुकूल होती है तब वह बिलकुल अंधविश्वासी हो सकता है। हम सब शायद बहुत कुछ ऐसे ही हैं। जिस व्यक्ति का विश्लेषण हो रहा है, उसमें बुद्धि की भावजीवन पर यह निर्भरता बहुत स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, क्योंकि विश्लेषण में वह बड़े सख्त दबाव में होता है।

इस तथ्य का, कि रोगी अपने लक्षण से छुटकारा पाने और अपने मानसिक प्रक्रम के फिर सामान्य रूप से कार्य करने लगने के विरुद्ध इतना ज़ोरदार संघर्ष करता है, क्या कारण बताया जा सकता है? हम कहते हैं कि हमें यहां शक्तिशाली बलों के अवशेष कार्य करते दिखाई देते हैं जो अवस्था में कोई भी परिवर्तन करने का विरोध करते हैं। वे अवश्य वही बल हैं जिन्होंने शुरू में वह अवस्था पैदा की थी। लक्षणों के निर्माण में कुछ प्रक्रम अवश्य रहा होगा, जिसकी, उन्हें दूर करने के अपने अनुभव से, हम पुनः रचना कर सकते हैं, जैसा कि ब्रायर के प्रेक्षणों से हम पहले से जानते हैं। किसी लक्षण के अस्तित्व से यह नतीजा निकलता है कि कोई मानसिक प्रक्रम प्रकृत रीति से पूरा नहीं किया जा सका जिससे कि यह चेतन हो

---

१. Emotional stupidity. २. Affective attitudes.

सकता। लक्षण उसका स्थानापन्न है जो पूरा नहीं हो सका। अब हम जानते हैं कि जिन बलों के क्रियाशील होने का हमें संदेह है, वे कहां हो सकते हैं। प्रस्तुत मानसिक प्रक्रम को चेतना में घुसने से रोकने के लिए प्रबल प्रयास किया गया होगा, और परिणामतः यह अचेतन रहा है। अचेतन रहने के कारण इसमें लक्षण रचने की शक्ति है। वही प्रबल प्रयास विश्लेषण द्वारा इलाज के समय फिर क्रियाशील हो रहा है जो अचेतन को चेतन में लाने की कोशिश कर रहा है। इसे हम प्रतिरोधों के रूप में देखते हैं। प्रतिरोधों से प्रदर्शित होने वाले रोगजनक प्रक्रम को हम **दमन** कहते हैं।

अब **दमन** के इस प्रक्रम की अपनी धारणा को अधिक यथार्थ बनाना आवश्यक है। यह लक्षणों के परिवर्धन की आवश्यक आरम्भिक शर्त है। पर इसके अलावा कुछ और भी है—एक ऐसी चीज़ है जिसके मुकाबले की दूसरी चीज़ नहीं। नमूने के लिए, एक आवेग, अर्थात् अपने को क्रिया में परिवर्तित करने के लिए यत्नशील मानसिक प्रक्रम को लीजिए: हम जानते हैं कि यह 'प्रत्याख्यान'[1] या 'तिरस्कण'[2] द्वारा अस्वीकृत किया जा सकता है। तब इसके पास प्रस्तुत ऊर्जा वापस लौटा ली जाती है। यह शक्तिहीन हो जाता है, पर स्मृति के रूप में बना रह सकता है। इस प्रश्न पर फैसला करने का सारा प्रक्रम 'अहम्' के पूर्ण संज्ञान[3] से होता है, पर जब वह आवेग **दमन** के अधीन होता है, तब स्थिति बहुत भिन्न होती है: तब इसकी ऊर्जा कायम रहती है और इसकी कोई स्मृति पीछे नहीं रहती। दमन का प्रक्रम अहम् के संज्ञान बिना ही पूरा हो जाता है, इसलिए इस तुलना से हम दमन के स्वरूप के कुछ अधिक निकट नहीं पहुंचते।

मैं आपके सामने वे सैद्धान्तिक अवधारण ही पेश करूंगा जो **दमन** शब्द का अधिक सुनिश्चित अर्थ स्थापित करने में उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इसके लिए, पहले यह आवश्यक है कि हम 'अचेतन' शब्द के शुद्ध वर्णनात्मक अर्थ से आगे चलकर इसके व्यवस्थित या वैज्ञानिक अर्थ पर पहुंचें, अर्थात् हम किसी मानसिक प्रक्रम की चेतनता या अचेतनता को इसका एक गुण मात्र समझें, और आवश्यक नहीं कि यह उसका एकमात्र गुण हो। मान लें, कि इस तरह का एक प्रक्रम अचेतन रहा है, तो इसका चेतना से बाहर रह जाना इस बात का चिह्नमात्र हो सकता है कि इसकी क्या गति हुई और आवश्यक नहीं कि यह इसकी गति या भाग्य ही हो। इस भाग्य की अधिक ठोस धारणा बनाने के लिए, मान लें कि प्रत्येक मानसिक प्रक्रम—इसमें एक अपवाद है जिसकी चर्चा मैं बाद में करूंगा—पहले एक अचेतन अवस्था या कला[4] में रहता है, और इसमें से सिर्फ परिवर्धित होकर चेतन कला में आ जाता

---

१. Repudiation. २. Condemnation. ३. Cognizance. ४. Phase.

है—बहुत कुछ वैसे ही जैसे फोटो पहले नेगेटिव है और फिर पोजिटिव प्रिंट के द्वारा चित्र बन जाता है। पर हर नेगेटिव का पोजिटिव नहीं बनाया जाता, और इसी तरह यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक अचेतन मानसिक प्रक्रम चेतन बने। इसे इस तरह ठीक ढंग से कहा जा सकता है : प्रत्येक प्रक्रम पहले अचेतन मानसिक संस्थिति में रहता है। इस संस्थान से यह कुछ अवस्थाओं में आगे बढ़कर चेतन संस्थान में आ जाता है।

इन संस्थानों का सबसे स्थूल अवधारण ही हमें सबसे अधिक सुविधाजनक लगेगा और वह अवकाशीय[1] अवधारण है। इसलिए अचेतन संस्थान की तुलना एक बड़े पूर्वकक्ष[2] अर्थात् बड़े कमरे में पहुंचाने वाले छोटे कमरे से की जा सकती है, जिसमें अनेक प्रकार के मानसिक उत्तेजन, मनुष्यों की तरह, एक दूसरे के ऊपर भरे पड़े हैं। इससे लगा हुआ एक दूसरा छोटा कमरा एक तरह का स्वागत-कक्ष है जिसमें चेतना का निवास है, पर इन दोनों के बीच की देहली पर एक पहरेदार का काम करने वाला व्यक्ति खड़ा है जो इन विविध मानसिक उत्तेजनों की परीक्षा करता है, उन्हें सेन्सर करता है, अर्थात् उनमें काट-छांट करता है और जब वह उन्हें नापसन्द करता है तब उन्हें स्वागत-कक्ष में जाने से रोक देता है। आप तुरन्त समझ जाएंगे कि यदि पहरेदार किसी एक आवेग को देहली पर लौटा देता है, अथवा इसके एक बार स्वागत-कक्ष में घुस जाने के बाद इसे बाहर निकालता है, तो इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। यह तो उसकी जागरूकता की मात्रा और पहचानने की तत्परता का ही प्रश्न है। अब इस रूपक के द्वारा हम अपनी शब्दावली और बढ़ा सकते हैं। अचेतन या पूर्वकक्ष में मौजूद उत्तेजन चेतना को दिखाई नहीं देते क्योंकि वह दूसरे कमरे में है। इस प्रकार, शुरू में वे अचेतन रहते हैं। जब वे जोर लगाकर देहली में पहुंच गए हैं और चौकीदार द्वारा वापस लौटा दिए गए हैं, तब वे **'चेतन होने में असमर्थ'** हैं; तब हम उन्हें **दमित** कहते हैं, पर जो उत्तेजन देहली के पार जाने दिए जाते हैं, उनका भी चेतन हो जाना आवश्यक नहीं। वे तभी चेतन हो सकते हैं, यदि वे चेतना की दृष्टि आकर्षित कर सकें। इसलिए इस दूसरे कक्ष को **पूर्वचेतन**[3] **संस्थान** कहना उपयुक्त होगा। इस प्रकार चेतन होने के प्रक्रम का अपना शुद्ध वर्णनात्मक अर्थ बना रहता है। जब किसी आवेग को दमित आवेग कहते हैं, तब इसका अर्थ यह होता है कि वह अचेतन संस्थान में से निकलने में असमर्थ है क्योंकि चौकीदार उसे पूर्वचेतन में प्रवेश नहीं करने देता। चौकीदार वही है जिसे हम दमन को शिथिल करने का, विश्लेषण द्वारा, यत्न करते हुए प्रतिरोध के रूप में जान चुके हैं।

मैं अच्छी तरह जानता हूं कि आप यह कहेंगे कि ये अवधारण जितने स्थूल

---

१. Spatial. २. Ante-room. ३. Preconscious.

हैं, उतने ही कल्पित हैं, और वैज्ञानिक प्रतिपादन में इन्हें बिलकुल स्थान नहीं दिया जा सकता। मैं जानता हूं कि वे स्थूल हैं। इतना ही नहीं, मैं यह भी जानता हूं कि वे ग़लत हैं, और यदि मैं ग़लती नहीं करता तो हमारे पास उनसे अच्छे स्थानापन्न भी तैयार हैं। मैं नहीं जानता कि तब आप उन्हें इतना कल्पित समझते रहेंगे या नहीं। इस समय तो वे बात समझने में बड़े सहायक हैं, जैसे विद्युत् की धारा में तैरते हुए ऐम्पीयर के 'बितनू', अर्थात् बहुत छोटे-छोटे मनुष्य; और जहां तक उनसे बात समझने में मदद मिलती है, वहां तक वे तिरस्कारयोग्य नहीं। फिर भी मैं आपको यह विश्वास दिलाना चाहता हूं कि स्थूल परिकल्पिनाएं--दो कमरे, दोनों के बीच की देहली पर चौकीदार, और दूसरे कमरे के अन्त में दर्शक के रूप में चेतना--वास्तविक यथार्थता को बहुत दूर तक निर्दिष्ट करते हैं। मैं समझता हूं कि आप यह भी स्वीकार करेंगे कि हमारे रखे हुए नाम अचेतन, पूर्वअचेतन और चेतन दूसरे नामों की अपेक्षा, जो सुझाए गए है या प्रयोग में आ गए हैं, उदाहरण के लिए, अवचेतन (सबकान्शस), अन्तर्चेतन (इन्टरकान्शस), सहचेतन (को-कान्शस) आदि अधिक तर्कसंगत हैं।

यदि आप इसे स्वीकार करते हैं तो फिर आपका यह कहना मेरे लिए बहुत अधिक महत्वपूर्ण होगा कि मानसिक उपकरण की जैसी रचना मैंने स्नायविक लक्षण की व्याख्या के लिए मानी है, वह सर्वत्र लागू होनी चाहिए, और उसे सामान्य कार्य-व्यापार पर भी प्रकाश डालना चाहिए। आपका यह कहना बेशक बिलकुल सही है। हम इस समय इस निष्कर्ष पर अधिक विचार नहीं कर सकते, पर यदि हमें रोग की दशाओं के अध्ययन से सामान्य मानसिक कार्य-व्यापार के, जो अबतक एक रहस्य रहा है, भीतर की झांकी मिलने की सम्भावना दिखाई देती हो तो लक्षण-परिवर्धन के मनोविज्ञान में हमारी दिलचस्पी निश्चित ही बहुत अधिक बढ़ जाएगी।

इसके अलावा, क्या आप यह नहीं समझते कि इन दोनों संस्थानों की इन अवधारणाओं का और इनके तथा चेतना के आपसी सम्बन्ध का आधार क्या है?--अचेतन और पूर्व चेतन के बीच में मौजूद चौकीदार वह **सेंसरशिप** के अलावा और कुछ नहीं है जिसे हमने प्रत्यक्ष स्वप्न के रूप को प्रभावित करते देखा था। दिन के अनुभवों का अवशेष ही, जिसे हमने स्वप्न को उद्दीपित करने वाला उद्दीपन बताया था, वह पूर्वचेतन सामग्री है जो रात में सोते समय अचेतन और दमित इच्छाओं तथा उत्तेजनों से प्रभावित हुई है; और वे इस प्रकार उनके साहचर्य से उनकी ऊर्जा के द्वारा गुप्त स्वप्न का निर्माण कर सके हैं। अचेतन संस्थान के आधिपत्य ने इस सामग्री का--संघनन और विस्थापन द्वारा--इस तरह से विशदित या प्रभावित किया है जैसे प्रकृत मानसिक जीवन, अर्थात् पूर्वचेतन संस्थान, में नहीं हुआ करता, या बहुत ही कम होता है। उनके कार्य-व्यापार की रीति का

यह अन्तर ही हमें उन दोनों संस्थानों का भेद बताता है। चेतना से सम्बन्ध, जो पूर्वचेतन का स्थायी रूप है, यह संकेत करता है कि कोई दिया हुआ प्रक्रम दोनों संस्थानों में से किसका है। स्वप्न देखना रोगात्मक घटना नहीं है। प्रत्येक स्वस्थ मनुष्य को सोते हुए स्वप्न आ सकता है। मानसिक उपकरण की रचना से, जिसमें स्वप्नों और स्नायविक लक्षणों, इन दोनों का स्पष्टीकरण होता है, संबद्ध प्रत्येक अनुमान प्रकृत मानसिक जीवन पर भी अवश्य लागू होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

फिलहाल दमन के बारे में हम इतना ही कहना चाहते हैं। इसके अलावा, यह एक आवश्यक पूर्वावस्थामात्र है, लक्षण-निर्माण की पूर्वावस्था या पूर्व आवश्यकता मात्र है। हम जानते हैं कि लक्षण किसी और प्रक्रम का, जो दमन द्वारा रोक दिया गया है, स्थानापन्न है; पर दमन को मान लेने के बाद भी हमें इस स्थानापन्न-निर्माण को पूरी तरह समझने के लिए काफ़ी आगे बढ़ना होगा। स्वयं दमन-समस्या के भी कुछ और पहलू हैं, जिनसे कुछ प्रश्न पैदा होते हैं, जिनका उत्तर देना अवश्यक है : किस तरह के मानसिक उत्तेजनों का दमन होता है, कौन-से बल दमनकारी हैं और उनके प्रेरक या प्रवर्तक कारण क्या हैं ? अब तक हमें इस प्रश्न से सम्बधित जानकारी सिर्फ एक बात पर प्राप्त हुई। प्रतिरोध की समस्या पर विचार करते हुए हमने यह देखा था कि इसके पीछे कार्य करने वाले बल पह-चानयोग्य या गुप्त अहम् से या चरित्र-गुणों से पैदा होते ह। इसलिए इन्हीं बलों ने दमन किया है, कम से कम उसमें कुछ हिस्सा लिया है। इस समय हम इससे अधिक कुछ नहीं जानते।

मैंने आपको जिस दूसरे प्रेक्षण के लिए तैयार किया था, वह अब हमारा सहा-यक होगा। विश्लेषण के द्वारा हम सदा स्नायविक लक्षण के पीछे मौजूद प्रयोजन का पता लगा सकते हैं, पर यह आपके लिए कोई नई बात नहीं है। इसकी ओर स्नायु-रोग में दो उदाहरणों में मैं पहले ही संकेत कर चुका हूं। पर उन दो उदाहरणों से क्या सूचित होता है ? इस बात को दिखाने वाले सैकड़ों उदाहरण होने चाहिएं। पर मैं आपकी यह मांग नहीं मान सकता, इसलिए आपको व्यक्तिगत अनुभव या विश्वास का ही सहारा लेना होगा, और इस मामले में आपका विश्वास सब मनो-विश्लेषकों की सर्वसम्मत गवाही पर भरोसा कर सकता है।

आपको याद होगा कि जिन दो उदाहरणों के लक्षण पर हमने विस्तार से विचार किया था,उनसे रोगी के यौन जीवन के सबसे भीतरी रहस्यों का पता चला था। इसके अलावा, पहले उदाहरण में प्रस्तुत लक्षण का प्रयोजन या प्रवृत्ति विशेष रूप से स्पष्ट थी। शायद दूसरे उदाहरण में यह कुछ सीमा तक एक दूसरी बात से ढकी हुई थी जिसका जिक्र बाद में किया जाएगा। अब इन दो उदाहरणों में जो बात प्रकट हुई है, वही विश्लेषण के लिए प्रस्तुत हर उदाहरण में प्रकट होती है। हर बार

विश्लेषण से हम रोगी के यौन अनुभवों और अभिलाषाओं पर पहुंचते हैं, और हर बार इस बात की पुष्टि होती है कि लक्षण से वही प्रयोजन सिद्ध होता था। यह प्रयोजन यौन इच्छाओं की परितुष्टि प्रकट हुआ—ये लक्षण रोगी के लिए यौन परितुष्टि का प्रयोजन सिद्ध करते हैं। वे यथार्थ रूप में प्राप्त न होने वाली सन्तुष्टि के स्थानापन्न हैं।

हमारे पहले रोगी के मनोग्रस्तता-कार्य पर विचार कीजिए। इस स्त्री को अपने अत्यन्त प्रिय पति के बिना रहना पड़ता है। पति की त्रुटियों और कमियों के कारण वह उसके जीवन में हिस्सेदार नहीं बन सकती। उसे उसके प्रति निष्ठावान् रहना पड़ता है। वह उसके स्थान में और किसीको नहीं ला सकती। उसका मनोग्रस्तता-लक्षण उसे वह चीज़ देता है जिसकी उसे इतनी अभिलाषा है; वह उसके पति को ऊंचा उठाता है, उसकी कमियों का, और सबसे बढ़कर, उसकी नपुंसकता का निषेध और शोधन करता है। यह लक्षण मूलतः एक इच्छा-पूर्ति है और इस दृष्टि से बिलकुल स्वप्न की तरह है। इसके अलावा, यह कामुक इच्छा-पूर्ति है, जो कि हर स्वप्न नहीं होता। दूसरी रोगिणी के उदाहरण में आप देख सकते हैं कि उसके काम-काज का ध्येय माता-पिता के मैथुन को रोकना या उनकी दूसरी संतान पैदा होने में रुकावट डालना है। सम्भवतः आपने यह भी समझ लिया है कि यह लक्षण उसे उसकी माता के स्थान में रखना चाहता है। इसलिए यह भी यौन-संतुष्टि की रुकावटों का निवारण और रोगिणी की अपनी यौन इच्छाओं की पूर्ति है। इसके उदाहरण में बताई गई उलझनों के बारे में मैं आगे कहूंगा।

मैं यह नहीं चाहता कि इन कथनों के सब जगह लागू हो सकने के बारे में बाद में कुछ शर्तें या मर्यादाएं लगाऊं, और इसलिए आपसे यह बात समझ लेने के लिए कहता हूं कि दमन, लक्षण-निमार्ण और लक्षण-निर्वचन के बारे में मैंने अभी जो कुछ कहा है, वह स्नायु-रोग के तीन प्ररूपों के अध्ययन से ज्ञात हुआ है, और फिलहाल वह इन तीन प्ररूपों पर ही लागू हो सकता है, अर्थात **चिन्ता-हिस्टीरिया, कन्वर्शन-हिस्टीरिया,** और **मनोग्रस्तता-रोग**। ये तीन विकार ही, जिन्हें मिलाकर हम **स्थानान्तरण स्नायु-रोग**[1] के समूह में रखा करते हैं, मनोविश्लेषण चिकित्सा के लिए खुला हुआ क्षेत्र हैं। अन्य स्नायु-रोगों का मनोविश्लेषण की दृष्टि से इतनी बारीकी से अध्ययन नहीं हुआ। इस उपेक्षा का कारण निःसन्देह यह रहा है कि उनमें से एक समूह पर चिकित्सा का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। आपको यह नहीं भूलना चाहिए कि मनोविश्लेषण अभी बहुत नया विज्ञान है, और इसके अध्ययन के लिए बहुत समय और परिश्रम की आवश्यकता है, और कुछ समय पहले इस तरह चिकित्सा करने वाला सिर्फ़ एक आदमी था। पर सब दिशाओं में हो रहे प्रयत्न से

---

१. Transference neuroses.

अब हम उन अस्वस्थ अवस्थाओं को समझने के अधिक निकट पहुंचते जा रहे हैं जो स्थानान्तरण स्नायु-रोग नहीं हैं। मुझे आशा है कि मैं अब भी आपको यह बता सकूंगा कि इस नई सामग्री से अपना ताल-मेल बैठाने के लिए हमारी परिकल्पनाओं और निष्कर्षों को किस तरह प्रभावित होना पड़ा, और यह दिखला सकूंगा कि इन विस्तृत अध्ययनों से कोई परस्पर विरोध सामने नहीं आया, बल्कि हमारे ज्ञान का बहुत अच्छा एकीकरण ही हुआ। तो, जो कुछ कहा गया है, वह सिर्फ तीन स्थानान्तरण स्नायु-रोगों पर लागू होता है, और अब मैं एक और जानकारी दूंगा जो लक्षणों की सार्थकता पर और रोशनी डालती है। यह रोग जिन स्थितियों में पैदा हुआ, उनकी तुलनात्मक परीक्षा करके निम्नलिखित परिणाम निकलता है, जिसे इस सूत्र के रूप में रखा जा सकता है, अर्थात् ये व्यक्ति उस प्रवंचन[1] (विफलता या कुंठा[2])से रोगी हुए जो उन्हें उस समय सहनी थी जब यथार्थ या वास्तविकता ने उन्हें अपनी यौन इच्छाओं की परितुष्टि से रोका। आप समझ रहे होंगे कि ये दोनों निष्कर्ष कितनी सुन्दरता से एक दूसरे के पूरक बन जाते हैं। अब लक्षणों की व्याख्या हम इस तरह करते हैं कि वे जीवन में, अतृप्त इच्छाओं की स्थानापन्न परितुष्टियां हैं।

इस कथन पर निःसंदेह सब तरह की आपत्तियां उठाई जा सकती हैं कि स्नायविक लक्षण यौन परितुष्टियों के स्थानापन्न हैं। उनमें से दो की मैं यहां चर्चा करूंगा। यदि आप में से किसीने बहुत-से स्नायु-रोगियों का विश्लेषण किया है तो वह शायद सिर हिलाकर यह कहेगा: "कुछ उदाहरणों में यह बात बिलकुल लागू नहीं होती। उनमें तो यह प्रतीत होता है कि लक्षणों का प्रयोजन बिलकुल उलटा, अर्थात् यौन परितुष्टि से दूर रहने या उसे खत्म करने का होता है।" मैं आपके निर्वचन पर आपत्ति नहीं करता। मनोविश्लेषण में स्थितियां हमारी कल्पना की अपेक्षा बहुत अधिक उलझी हुई होती हैं; यदि वे सरल रूप में होतीं तो शायद मनोविश्लेषण को उन्हें पुनः सामने लाने की आवश्यकता ही न होती। हमारी दूसरी रोगिणी के काम-काज की कुछ बातें ऐसी ही साधुता की और यौन संतुष्टि की विरोधी दिखाई देती हैं; उदाहरण के लिए, रात के समय दृढ़ीकरण या खड़ा होने को रोकने के जादुई प्रयोजन के लिए उसका घड़ियों को हटा देना, या गमलों और गुलदस्तों को गिरने से रोकने की कोशिश करना, जिसका अर्थ है अपने कौमार्य या अक्षतयोनित्व की रक्षा करना। उसके बिस्तर पर लेटने पर किए जाने वाले कृत्यों में, और जिन केसों का मैंने विश्लेषण किया है, उनमें यह निषेधात्मक रूप काफी अधिक प्रमुख था। सारा काम-काज भी यौन स्मृतियों और प्रलोभन से अपनी रक्षा करने वाले नियमों के रूप में होता था। पर मनोविश्लेषण से बहुत पहले यह पता लग

---

१. Privation. २. Frustration.

चुका है कि विपरीत बातें परस्पर विरोधी नहीं होतीं। हम इस बात को और बढ़ाकर यह कह सकते हैं कि लक्षण का प्रयोजन यौन सन्तुष्टि और इससे बचना होता है, हिस्टीरिया में कुल मिलाकर, इच्छा-पूर्ति का अस्तिमूलक या पहला रूप प्रधान होता है, और मनोग्रस्तता-रोग में नास्तिवाला त्यागी रूप प्रधान होता है। ये लक्षण यौन परितुष्टि, और उसके विरोध, इन दोनों का प्रयोजन बहुत अच्छी तरह पूरा कर सकते हैं; क्योंकि उनके तंत्र के एक अवयव में, जिसका उल्लेख करने का अभी हमें मौका नहीं मिला है, इस दो-पहलूपन या **ध्रुवत्व** का सबसे अधिक उपयुक्त आधार होता है। असल में वे, जैसा कि हम आगे देखेंगे, दो एक दूसरे पर क्रिया कर रही विरोधी प्रकृतियों के **मध्यमार्ग या समझौते** का परिणाम होते हैं; वे उसे भी निरूपित करते हैं जिसका दमन किया गया है, और उसे भी निरूपित करते हैं जिसने दमन किया है और उन्हें पैदा करने में सहयोग दिया है। लक्षण में इन दो कारकों में से किसी एक का निरूपण प्रधान रूप में हो सकता है, पर ऐसा बहुत ही कम होता है कि उनमें से एक सर्वथा नदारद हो। हिस्टीरिया में एक लक्षण में इन दो प्रवृत्तियों का प्रायः सहयोग हो जाता है। मनोग्रस्तता-रोग में दोनों भाग प्रायः अलग-अलग रहते हैं। तब लक्षण दोहरा होता है, और उसमें दो क्रमिक क्रियाएं होती हैं जो एक दूसरे को उदासीन या रद्द करती हैं।

एक दूसरी कठिनाई को हल करना इतना आसान नहीं होगा। जब आप लक्षण-निर्वचनों की एक पूरी श्रेणी पर विचार करते हैं, तब सम्भवतः आपकी पहली राय यह होगी कि यौन स्थानापन्न परितुष्टि के अवधारण को अधिक से अधिक विस्तृत करने पर ही वे लक्षण उसके अन्तर्गत आ सकते हैं। आप यह भी अवश्य कहेंगे कि इन लक्षणों से परितुष्टि के बारे में कोई यथार्थ बात सामने नहीं आती, कि प्रायः वे किसी संवेदन को पुनरुज्जीवित करने या किसी यौन ग्रन्थि से पैदा होनेवाली कल्पना-सृष्टि का निर्माण करने तक ही सीमित रहते हैं। इसके अलावा, आप यह भी कहेंगे कि प्रायः यौन परितुष्टि का दृश्य रूप शैशवकालीन और अनुचित रूप जैसा होता है। शायद वह हस्तमैथुन-कार्य से मिलता-जुलता होता है, या उन गन्दी आदतों की याद दिलानेवाला होता है जो बचपन में बहुत पहले निषिद्ध की गई थीं, और छोड़ दी गई थीं; और फिर आप इस बात पर आश्चर्य करेंगे कि कोई व्यक्ति उन बातों को भी यौन परितुष्टियों में गिनता है जिन्हें क्रूर या भयंकर क्षुधाओं की तृप्ति ही कहा जा सकता है, या जिन्हें अस्वाभाविक या अप्राकृत कहा जा सकता है। सच बात यह है कि इन पीछेवाली बातों पर हम तब तक एक मत नहीं हो सकते, जब तक हमने मनुष्य की यौन प्रवृत्ति पर पूरा विचार न कर लिया हो और यह तय न कर लिया हो कि किस प्रवृत्ति को यौन प्रवृत्ति कहना उचित है।

व्याख्यान | २०

मनुष्य का यौन जीवन

आपके मन में निश्चित रूप से यही बात आती होगी कि 'यौन' (या कामात्मक) शब्द के अर्थ पर कोई सन्देह नहीं हो सकता। निःसन्देह, इसका सबसे पहला अर्थ है 'अनुचित', अर्थात् जिसकी चर्चा नहीं करनी चाहिए। मुझे एक प्रसिद्ध मनश्चिकित्सक के कुछ छात्रों के विषय में एक कहानी सुनाई गई है : इन छात्रों ने एक बार अपने गुरु को यह निश्चय कराने की कोशिश की कि हिस्टीरिया रोगी के लक्षण बहुत बार यौन बातों को निरूपित करते हैं। इस उद्देश्य से वे उसे हिस्टीरिया वाली एक स्त्री के पलंग के पास ले गए जिसके दौरे प्रसव के असंदिग्ध अनुकरण थे। पर वह बोला "लेकिन प्रसव में यौन कहीं नहीं है।" निश्चय जानिए कि प्रसव सदा अनुचित नहीं होता।

मैं समझ रहा हूं कि आप ऐसे गम्भीर मामलों पर मेरे मना करने को अच्छा नहीं समझते। पर यह सिर्फ़ मजाक नहीं है। गम्भीरता से सोचने पर हम देखते हैं कि यह बताना आसान नहीं कि यौन शब्द के अन्तर्गत क्या-क्या बातें आती हैं। शायद इसकी यही परिभाषा ठीक हो सकती है कि दोनों लिङ्गों के अन्तर या भेद से सम्बन्धित प्रत्येक बात यौन बात है। पर आप यह कहेंगे कि यह बहुत व्यापक, अनिश्चित परिभाषा हुई। यदि आप मैथुन या सम्भोग-कार्य को केन्द्रबिन्दु मान लें तो शायद आप यौन का अर्थ यह करेंगे कि प्रत्येक वह बात जो विपरीत लिङ्ग वाले के शरीर (और विशेष रूप से मैथुन के अंगों) से सुखदायक परिपुष्टि प्राप्त करने से सम्बन्ध रखती है; बहुत संकुचित अर्थ में, वह प्रत्येक बात यौन बात है, जिसका लक्ष्य जननेन्द्रियों का मिलन और मैथुन कार्य की परिपूर्ति है। पर यह परिभाषा करते हुए आपने यौन तथा अनुचित को करीब-करीब एक ही मान लिया है, और इस अवस्था में प्रसव का यौन प्रवृत्ति (काम) से सचमुच कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहेगा। फिर यदि आप प्रजनन के कार्य को यौनवृत्ति का सारतत्व मानते हैं तो हस्तमैथुन या चुम्बन जैसी बहुत सारी बातें, जिनका उद्देश्य प्रजनन नहीं होता, पर फिर भी निस्सन्देह यौन प्रवृत्तियां हैं, इससे बाहर रह जाएंगी। पर हम पहले

देख चुके हैं कि परिभाषा करने की कोशिश से सदा कठिनाइयां पैदा होती हैं। इसलिए इस मामले में हमें कोई अच्छी परिभाषा करने की कोशिश छोड़ ही देनी चाहिए। हम यह मान सकते हैं कि 'यौन' (या कामात्मक) अवधारणा बनते हुए कोई ऐसी बात हुई है जिसके परिणामस्वरूप, एच. सिलबरर के शब्दों में, 'व्याप्ति दोष' हो गया है। सच बात तो यह है कि यौन का अर्थ हम अच्छी तरह जानते हैं।

जनसाधारण की दृष्टि से, जो सामान्य जीवन में सब व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए काफी है, यौन वह चीज़ है जिसमें लिङ्ग-भेद, आनन्दजनक उत्तेजना और परितुष्टि, प्रजनन-कार्य, अनुचित की धारणा और छिपाने की आवश्यकता सम्बन्धी सब बातें इकट्ठी आ जाती हैं, पर विज्ञान के लिए अब इतना ही काफ़ी नहीं है। कारण कि परिश्रम से की गई गवेषणाओं से (जो आत्मत्याग से पोषित आत्मसंयम की भावना से ही हो सकती हैं) यह प्रकट हुआ है कि मनुष्य जाति में ऐसे वर्ग भी हैं जिनका यौन जीवन प्रचलित यौन जीवन से बहुत अधिक भिन्न है। इन 'विकृतों'[1] के एक समूह ने, मानो अपने जीवन-क्रम में से लिंगों के भेद को निकाल बाहर कर दिया है। इन लोगों में अपने समान लिंग के व्यक्ति से ही यौन इच्छा पैदा हो सकती है। उनके लिए दूसरे लिंग का (विशेष रूप से दूसरे लिंग वाले की जननेन्द्रिय का) जरा भी यौन आकर्षण नहीं है, और कुछ पराकाष्ठा वाले उदाहरणों में वह उनकी घृणा की वस्तु हो सकती है। इस प्रकार, उन्होंने प्रजनन के प्रक्रम को बिलकुल छोड़ दिया है। ये व्यक्ति समकामी या समलिंग कामी[2] कहलाते हैं। प्रायः, (पर सदा नहीं) वे ऐसे नर-नारी होते हैं जो बौद्धिक दृष्टि से और आचार की दृष्टि से मानसिक वृद्धि और परिवर्धन के बहुत ऊंचे स्तर पर पहुंच चुके हैं, और उनमें एक यही अजीब विशेषता होती है। अपने वैज्ञानिक प्रवक्ताओं के जरिये वे यह दावा करते हैं कि हम मानव जाति की एक विशेष किस्म 'तीसरा लिंग' है जिसे शेष दो लिंगों के बराबर ही अधिकार हैं। शायद हम आगे इन दोनों की समीक्षा करें। वे निःसन्देह मनुष्य जाति का 'श्रेष्ठ अंश' नहीं है, जैसा कि वे खुशी से मानते हैं। उनमें भी कम से कम उतने ही घटिया और बेकार लोग हैं जितने दूसरे प्रकार की यौन प्रवृत्ति वालों में।

ये विकृत लोग अपनी अभिलाषाओं के आलम्बनों से प्रायः वही लक्ष्य पूरे करना चाहते हैं जो प्रकृत लोग अपनी अभिलाषाओं के आलम्बनों से करते हैं। पर इनके पीछे अप्रकृत प्ररूपों की एक लम्बी श्रेणी है जिनमें काम-चेष्टाएं ऐसी वस्तुओं से अधिकाधिक दूर होती जाती हैं जो किसी बुद्धियुक्त प्राणी को आकर्षक प्रतीत होती हैं। उनकी विविधता और विचित्रता की दृष्टि से इन प्ररूपों की तुलना उन विकट जीवों से की जा सकती है जिन्हें पी० ब्रायडगाल ने सेंट एन्थनी के प्रलोभन

---

१. Perverts. २. Homosexual or Inverts.

को निरूपित करने के लिए चित्रित किया है, या उन बुड्ढे देवताओं और उपासकों के लम्बे जलूस से की जा सकती है जो गस्ताव फ्लाबेयर ने अपने धार्मिक प्रायश्चित्त करने वाले पात्र के सामने से गुजरता दिखाया है। इनकी तुलना और किसी चीज से नहीं की जा सकती। इस अव्यवस्थित जमघट को कुछ समझना है, तो इसका वर्गीकरण आवश्यक है। हम उन्हें दो भागों में बांटते हैं : पहले वे जिनमें **काम का आलम्बन** बदल गया है, जैसा कि समकामियों में हुआ, और दूसरे वे जिनमें सबसे मुख्य बात यह हुई है कि **काम का उद्देश्य** बदल गया है। पहले समूह में वे लोग आते हैं जिन्होंने जननेन्द्रियों के परस्पर मिलन को छोड़ दिया है, और जिन्होंने काम-क्रिया के एक साथी में जननेन्द्रियों के स्थान पर कोई और अंग या शरीर का भाग (योनि के स्थान पर मुख या गुदा) को रख लिया है, और इसमें होने वाली शारीरिक कठिनाइयों और विरक्ति के निवारण को भुला दिया है। इनके बाद, वे लोग हैं जिन्होंने जननेन्द्रियों को आलम्बन तो बनाया हुआ है, पर उनके मैथुन सम्बन्धी कार्य के कारण नहीं, बल्कि उन दूसरे कार्यों के कारण जिनमें वे शरीर की दृष्टि से, या उनकी संसक्तता, अर्थात् सबसे अधिक पास होने, के कारण शामिल होती हैं। इन लोगों को देखने से यह पता चलता है कि मल-विसर्जन, अर्थात् टट्टी-पेशाब के कार्य जिन्हें बच्चे के पालन-पोषण के समय गन्दा या अशिष्ट मान लिया जाता है, सम्पूर्ण यौन दिलचस्पी आकर्षित करने में समर्थ बने रहते हैं। कुछ और लोग ऐसे हैं जिन्होंने जननेन्द्रियों को अपना आलम्बन बनाना पूरी तरह छोड़ दिया है, और इसके बदले शरीर के किसी दूसरे भाग को अपनी इच्छा का आलम्बन बना लिया है, जैसे स्त्री की छाती, पैर या बालों की लट। कुछ लोग ऐसे हैं जिनके लिए शरीर का हिस्सा भी निरर्थक है, और कोई कपड़े का टुकड़ा या जूता या अन्दर पहनने का कपड़ा उनकी सब इच्छाओं की परितुष्टि कर देता है। ये लोग जड़ासक्त[1] कहलाते हैं। आगे चलकर वे लोग आते हैं, जो सारे आलम्बन की कामना करते हैं; पर इन लोगों की कामना बड़े असाधारण या अजीब रूप ग्रहण कर लेती है, यहां तक कि वे इसे चेष्टाहीन लाश के रूप में ही हासिल करना चाहते हैं, और अपनी अपराधी मनोग्रस्तियों से प्रेरित होकर इससे एकात्मता कायम करना, और इस तरह इसका भोग करना चाहते हैं, पर इन भयंकर बातों का इतना ही वर्णन काफी है।

दूसरे समूह में सबसे मुख्य वे विकृत लोग हैं जिनकी यौन इच्छाओं का उद्देश्य वह कार्य करना होता है जो सामान्यतः सिर्फ आरम्भिक या तैयारी का कार्य है। ये वे लोग हैं जिन्हें दूसरे व्यक्ति के बहुत गोपनीय कार्यों को या अंगों को देखने और छूने या ताकते रहने से परितुष्टि मिलती है; या वे लोग हैं जो अपने शरीरों के

---

१. Fetichists.

उन भागों को, जिन्हें ढके रखना चाहिए, इस धुंधली आशा में उघाड़ते हैं कि दूसरा व्यक्ति भी ऐसा ही कार्य करेगा, और उन्हें आनन्दित करेगा। इसके बाद वे अजीब पीड़कतोष[1] (सैडिस्ट) अर्थात् पीड़ा पहुंचाकर परितुष्टि हासिल करने वाले लोग आते हैं, जिनकी सारी अनुराग-भावना का एक ही उद्देश्य होता है, कि अपने आलम्बन को पीड़ा और कष्ट पहुंचाया जाए। यह भावना हलके रूप में दूसरे को अपमानित करने की प्रवृत्ति के रूप में दिखाई देती है, और उग्र रूप में सख्त शारीरिक चोट पहुंचाने का रूप ग्रहण करती है। इसके बाद पीड़ितोष[2] (मैसोकिस्ट) लोग आते हैं—ये मानो पीड़कतोषों के पूरक हैं—जिनकी एकमात्र यह लालसा रहती है कि अपने प्रेम को आलम्बन के हाथों वास्तविक रूप में या प्रतीक रूप में अपमान और पीड़ा सहें। कुछ लोग ऐसे होते हैं, जिनमें इस तरह की कई अप्रकृत विशेषताएं मिली-जुली होती हैं। अन्त में हम देखते है कि इनमें से प्रत्येक समूह को आगे फिर और उपसमूहों में बांटा जा सकता है: वे लोग जो अपनी यौन सन्तुष्टि यथार्थ रूप में करना चाहते हैं, और वे लोग जो अपने मनों में कल्पना करके ही सन्तुष्ट हो जाते हैं—उन्हें यथार्थ आलम्बन की आवश्यकता नहीं होती बल्कि वे इसके स्थान पर कल्पित आलम्बन बना लेते हैं।

इसमें जरा भी संदेह नहीं है कि पागलपन के ये असाधारण और भयंकर व्यवहार सचमुच इन लोगों के काम-व्यापार होते हैं। न केवल वे स्वयं इन्हें ऐसा मानते हैं क्योंकि वे आलम्बन के स्थानापन्न रूप को स्वीकार करते हैं, बल्कि हमें भी यह मानना पड़ता है कि उनका उनके जीवन में वही कार्य होता है जो हमारे जीवनों में प्रकृत यौन सन्तुष्टि का। उसमें वे उतने ही और प्रायः उससे भी अधिक त्याग करते हैं। यह स्थूलरूप में भी और सूक्ष्म रूप में भी पता लगाया जा सकता है कि ये अप्रकृतताएं कहां आकर प्रकृत में विलीन हो जाती हैं, और कहां वे उससे अलग होती हैं। यह बात भी आपके ध्यान में अवश्य आएगी कि किसी यौन व्यापार से अनिवार्यतः सम्बद्ध अनौचित्य का गुण भी इसके रूपों में मौजूद है। उनमें से अधिकतर में यह इतने तीव्र रूप में है कि कलंक बन जाता है।

तो, यौन सन्तुष्टि के इन व्यापक रूपों के बारे में हमारा क्या रुख होना चाहिए? इनपर गुस्सा करने से और व्यक्तिगत विरक्ति प्रकट करने से, तथा यह बताने से कि ये कामनाएं हममें नहीं हैं, स्पष्टतः हमारी गाड़ी बहुत दूर नहीं जा सकती। विचारणीय प्रश्न यह नहीं है। आखिरकार घटनाओं के अन्य क्षेत्रों की तरह यह भी एक घटना-क्षेत्र है। यह बहाना बनाकर कि ऐसा बहुत कम होता है, इनसे मुंह मोड़ने और भागने की कोशिश का आसानी से जवाब दिया जा सकता है। इसके विपरीत, ये घटनाएं काफी अधिक लोगों में और काफी व्यापक क्षेत्र में

---

१. Sadists. २. Masochists.

देखी जाती हैं। पर यदि आक्षेप किया जाए कि इसके कारण मनुष्य जाति के यौन जीवन के बारे में हमें अपने विचार संशोधित करने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि ये सब बातें नैसर्गिक यौन वृत्ति के विपथन और पथभ्रष्ट रूप है तो इसका गंभीर उत्तर देना आवश्यक होगा। यदि काम-वृत्ति के इन अस्वस्थ रूपों को हम नहीं समझते और यौन जीवन की प्रकृत वृत्तियों से उसका सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकते तो हम प्रकृत और यौन प्रवृत्ति को भी नहीं समझ सकते। संक्षेप में, हमारा यह सुनिश्चित कर्तव्य है कि ऊपर वर्णित सब काम-वृत्तियों के होने का सैद्धांतिक रूप से सन्तोषजनक कारण प्रस्तुत करें, और तथाकथित प्रकृति यौन वृत्ति से उनका संबंध स्पष्ट करें।

इस कार्य में हमें एक दृष्टिकोण से और दो नए प्रेक्षणों से मदद मिल सकती है। उस दृष्टिकोण के लिए हम इवान ब्लाख के आभारी हैं; उसके अनुसार यह विचार ग़लत है कि सब काम-विकृतियां 'पतन के चिह्न' हैं; क्योंकि यह साक्ष्य मिलता है कि मैथुन के लक्ष्य से विपथन (या मार्ग-भ्रष्टता), मैथुन के आलम्बन से ऐसा अनियमित सम्बन्ध, आदिकाल से, हमें ज्ञात प्रत्येक युग में, अधिक से अधिक आदिम जाति से लेकर अधिक से अधिक सभ्य जाति तक में दिखाई देते रहे हैं; और कभी-कभी इनको सहन भी किया जाने लगा और इनका व्यापक प्रचलन रहा। उपर्युक्त दो प्रेक्षण स्नायु-रोगियों की मनोविश्लेषण द्वारा की गई जांच में प्राप्त हुए हैं। उनसे काम-विकृतियों के सम्बन्ध में निःसंदेह हमारी धारणा को एक निश्चित रूप मिलेगा।

हम कह चुके हैं कि स्नायविक लक्षण यौन-सन्तुष्टियों के स्थानापन्न हैं, और मैं पहले संकेत कर चुका हूं कि इस कथन को लक्षणों के विश्लेषण से प्रमाणित करने में बहुत सारी कठिनाइयां आएंगी। असल में यह बात ठीक इस रूप में तभी सही है, जब तथाकथित 'विकृत' यौन आवश्यकताओं को यौन सन्तुष्टियों के अंतर्गत माना जाए, क्योंकि इस आधार पर लक्षणों का निर्वचन हमारे सामने इतनी बार आता है कि आश्चर्य होता है। समकामियों का यह दावा कि वे मनुष्य जाति का एक श्रेष्ठ अंश हैं, उस समय बिलकुल मिथ्या सिद्ध हो जाता है, जब हम यह देखते हैं कि एक-एक स्नायु-रोगी में समकामी प्रवृत्तियों का अस्तित्व दिखाई देता है और उसके अधिकतर लक्षण इस गुप्त समकामिता या (प्रतीपता)[1] को ही सूचित करते हैं। जो लोग खुले आम अपने आपको समकामी बताते हैं वे सिर्फ वही लोग हैं जिनमें समकामिता सचेत और व्यक्त होती है। इनकी संख्या उनके मुकाबले में कुछ भी नहीं है जिनमें गुप्त होती है। सच तो यह है कि अपने ही लिंग वाला आलम्बन अपनाने को प्रेम करने के सामर्थ्य की शाखा का नियमित

---

१. Inversion.

प्ररूप मानना पड़ता है, और नित्य ऐसी नई जानकारी मिल रही है जिसके कारण इसे विशेष रूप से महत्वपूर्ण मानना पड़ता है। इससे व्यक्त समकामिता तथा प्रकृत रुख के फर्क निश्चित रूप से मिट नहीं जाते। उनका अपना व्यावहारिक महत्व है तो बना रहता है, पर सिद्धांत की दृष्टि से उनका मूल्य बहुत ही कम रह जाता है। असल में, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि एक मानसिक विकार 'पैरानोइआ' जिसे अब स्थानान्तरण स्नायु-रोगों में नही समझा जाता, सदा अनुचित रूप से प्रबल समकामी प्रवृत्तियों को दबाने की कोशिश से ही पैदा होता है। शायद आपको याद होगा कि हमारी एक रोगिणी अपने मनोग्रस्तता-कार्य में एक पुरुष का, अर्थात् अपने पति का, जिसे उसने छोड़ दिया था, अभिनय करती थी; ऐसे लक्षण जिनमें पुरुष का रूप धारण किया जाता है, स्नायविक स्त्रियों में आम तौर से होते हैं। यदि इसे वास्तव में समकामिता से उत्पन्न न माना जाए तो निश्चित रूप से इसका उसके उद्गमों से नज़दीकी सम्बन्ध है।

जैसा कि सम्भवतः आप जानते हैं, हिस्टीरिया का स्नायु-रोग शरीर के सब संस्थानों (रक्त-संचार, श्वास-संस्थान आदि) में अपने लक्षण पैदा कर सकता है, और इस प्रकार सब कार्यों में गड़बड़ी कर सकता है। विश्लेषण से प्रकट होता है कि विकृत बताए गए वे सब आवेग, जिनका उद्देश्य जननेन्द्रिय के स्थान पर किसी और अंग को लाना होता है, इन लक्षणो में अभिव्यक्त होते है। इस प्रकार, ये अंग जननेंद्रियों के स्थानापन्न के रूप में कार्य करते हैं। हिस्टीरिया के लक्षणों के अध्ययन से ही हम इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि शारीरिक अंगों के जो अपने कार्य हैं, उनके अलावा उनका यौन या **कामजनक**[1] अर्थ भी है; और यदि उनसे कामजनक प्रयोग बहुत अधिक किया जाएगा तो उनके असली कार्य में बाधा पड़ेगी। इस प्रकार हमें यौन वृत्ति से जिन अंगों का कोई सम्बन्ध नही मालूम होता, उनमें हिस्टीरिया के लक्षणों के रूप में जो असंख्य संवेदन और स्नायुदीपन होते हैं, उनका अर्थ असल में यह है कि अन्य अंग जननेंद्रियों का कार्य छीनकर विकृत यौन इच्छाओं की पूर्ति करते है। इस प्रकार हमें यह भी पता चल जाता है कि खासकर पोषण और विसर्जन के अंग यौन उत्तेजना देने में कितना अधिक कार्य कर सकते हैं। असल में यह वही चीज़ है जो काम-विकृतियों में व्यक्त होती है; फर्क इतना ही है कि काम-विकृतियों में यह असंदिग्ध रूप से और बिना कठिनाई के पहचानी जा सकती है, जब कि हिस्टीरिया में हमें लक्षण का निर्वचन करना पड़ता है, और तब हम वह विकृत काम-आवेग व्यक्ति की चेतना में नहीं बताते, बल्कि उसके व्यक्तित्व के अचेतन भाग में बताते है।

मनोग्रस्तता-रोग के विशिष्ट लक्षण के बहुत-से प्ररूपों में से अधिक महत्वपूर्ण

---

१. Erotogenic.

प्ररूप वे हैं जो विकृत उद्देश्यवाली यौन प्रवृत्तियों के एक समूह, अर्थात् पीड़कतोष समूह, की अनुचित शक्ति के कारण पैदा होते हैं। मनोग्रस्तता-रोग की संरचना के अनुसार ही ये लक्षण मुख्यतः इन इच्छाओं से बचाव का काम करते हैं, अथवा वे सन्तुष्टि और अस्वीकृति के बीच मौजूद द्वंद्व को प्रकट करते है। पर सन्तुष्टि भी चुप नहीं बैठी रहती। यह जानती है कि रोगी के व्यवहार में चक्करदार रास्ता पकड़कर और विशेष रूप से अपने को स्वयं यंत्रणा देकर कैसे अपने को आगे बढ़ाया जाए। इस स्नायु-रोग के और रूप बहुत अधिक 'चिंता' और सोचते रहना है; इनसे उन कार्यों का, जो प्रकृत रूप में यौन सन्तुष्टि की तैयारी के कार्य हैं, अतिरंजित कामुकीकरण[1] प्रकट होता है : जैसे देखने की, छूने की, और अन्दर की बात जानने की इच्छा। इसी कारण इस रोग में स्पर्श के भय और मनोग्रस्तीय 'धोने' का इतना अधिक महत्व हो जाता है। मनोग्रस्तता-क्रियाओं का बहुत बड़ा भाग हस्तमैथुन की प्रच्छन्न रूप में पुनरावृत्ति और रूप-भेद होता है और यह स्वीकार किया जाता है कि यौन कल्पनाओं की जो विविध उड़ानें हैं, उन सबमें एक यही कार्य एक समान मौजूद रहता है।

काम-विकृति और स्नायु-रोग का सम्बन्ध अधिक विस्तार से दिखाना कुछ भी कठिन नहीं है, पर मैं समझता हूं कि मैंने अपने प्रयोजनों के लिए काफी कह दिया है। पर लक्षणों के निर्वचन में विकृत काम-प्रवृत्तियों के बारे में इतनी जानकारी हो जाने के बाद हमें मनुष्य जाति में उसकी बारंबारता और तीव्रता को बहुत अधिक महत्व देने से बचना चाहिए। आपने सुना है कि प्रकृत यौन सन्तुष्टि की कुंठा से स्नायु-रोग पैदा हो सकता है। वास्तविक जीवन में इस कुंठा के कारण आवश्यकता यौन उत्तेजन के अप्रकृत रास्ते अपनाने को मजबूर हो जाती है। बाद में आप समझ सकेंगे कि यह कैसे होता है; कम से कम आप इतना तो समझ ही जाएंगे कि इस तरह के एक साथ अवरोध से विकृत आवेगों का बल बढ़ जाएगा और अब वे तब की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हो जाएंगे जबकि वास्तविक रूप में प्रकृत यौन-सन्तुष्टि में कोई रुकावट न होती। प्रसंगतः, ऐसी ही बात व्यक्त काम-विकृतियों में भी दिखाई देगी। बहुत-से उदाहरणों में वे नैसर्गिक काम-वृत्ति की प्रकृत संतुष्टि में अनुचित रूप से बड़ी कठिनाइयों के कारण पैदा या सक्रिय होती है, और ये कठिनाइयां अस्थायी दशाओं या स्थायी संस्थाओं से पैदा होती हैं। दूसरे उदाहरणों में विकृत प्रवृत्तियां निश्चित रूप से ऐसी अवस्थाओं से बिलकुल स्वतन्त्र होती हैं। ऐसा लगता है मानो वे सम्बन्धित व्यक्ति के लिए स्वाभाविक यौन जीवन है।

शायद आप थोड़ी देर के लिए यह समझ रहे होंगे कि इन सब बातों से प्रकृत और विकृत यौन वृत्ति के सम्बन्ध स्पष्ट होने के बजाय और अस्पष्ट होने लगते हैं;

---

१. Sexualization.

पर यह बात मन में रखिए। यदि यह बात सही है कि यौन सन्तुष्टि के मार्ग की वास्तविक बाधाएं या इसके विषय में कुण्ठा उन लोगों में विकृत प्रवृत्तियों को ऊपर के तल पर ले आती है जिनमें अन्यथा ऐसी कोई प्रवृत्ति न दिखाई देती, तो हमें यह निष्कर्ष मानना ही होगा कि इन लोगों में कोई ऐसी चीज़ है जो उन काम-विकृतियों को अपनाने को तयार हैं, या आप कहना चाहें तो ये प्रवृत्तियां उनमें गुप्त रूप में अवश्य मौजूद हैं। इस प्रकार मैंने जिन दो नए प्रेक्षणों की बात कही थी, उनमें से दूसरे पर हम आ जाते हैं। मनोविश्लेषण की जांच-पड़ताल से यह पता चला है कि बच्चों के यौन जीवन की पड़ताल करना आवश्यक है, क्योंकि लक्षणों के विषय में जो संस्मरण और साहचर्य सामने आते हैं, वे सदा शैशव के आरम्भिक वर्षों पर लौटा ले जाते हैं। जो बात हमने इस तरह खोजी थी, उसके एक-एक अंश की पुष्टि बालकों के प्रत्यक्ष प्रेक्षण से हो चुकी है। इस प्रकार यह पता चला है कि सब विकृत यौन प्रवृत्तियों का मूल बचपन में मिलता है। बालकों में वे सब विकृत प्रवृत्तियां ग्रहण करने का झुकाव होता है और वे अपनी अपरिपक्वता के अनुसार अलग-अलग मात्रा में उन सबके वशीभूत होते हैं, और उन्हें अपनाते हैं। संक्षेप में, **विकृत यौन प्रवृत्ति** शैशवीय यौन प्रवृत्ति ही है जो अब अधिक बड़े रूप में और अपने घटक-अवयवों में खण्डित होती है।

अब आप काम-विकृतियों को बिलकुल दूसरे ही ढंग से देखेंगे और मनुष्य जाति के जीवन से उनके सम्बन्ध की उपेक्षा नहीं करेंगे। पर इन आश्चर्यकारक और अजीब बातों के ज्ञान से आपमें कितनी परेशानी के भाव पैदा होंगे! शुरू में निश्चित रूप से आप प्रत्येक बात का निषेध करना चाहेंगे। इस तथ्य का कि बालकों में यौन जीवन कही जा सकने योग्य कोई चीज होती है, हमारे प्रेक्षणों की यथार्थता का और बालकों के व्यवहार में उस चीज़ के साथ, जो बाद के वर्षों में विकृति कहलाती है, कोई सम्बन्ध देखने के हमारे दावे के औचित्य का आप विरोध करेंगे। सबसे पहले तो मैं आपके विरोध के प्रेरक कारण आपके सामने रखूंगा, और इसके बाद अपने प्रेक्षणों का सारांश पेश करूंगा। यह कहना या समझना कि बालकों का कोई यौन जीवन नहीं होता, अर्थात् उनमें यौन उत्तेजना, एक तरह की यौन आवश्यकताएं और सन्तुष्टि नहीं होती और उनमें ये बातें बारह और चौदह वर्ष की आयु के बीच एकाएक आ जाती हैं, और दृष्टियों के अलावा जैविकीय दृष्टि से भी वैसा ही असम्भाव्य, बल्कि बेहूदा होगा, जैसे यह कल्पना करना कि वे बिना जननेन्द्रियों के पैदा होते हैं और तरुणावस्था में उनमें जननेन्द्रियां फूटने लगती हैं। उनमें इस समय असल में जो चीज़ पैदा होती है वह है प्रजनन सम्बन्धी कार्य, जो उस समय शरीर और मन में मौजूद सामग्री का अपने प्रयोजनों के लिए उपयोग कर लेता है। आप यौन प्रवृत्ति और प्रजनन को एक दूसरे से मिला रहे हैं और इस तरह आप यौन प्रवृत्ति, काम-विकृतियों और स्नायु-रोगों को समझने

का रास्ता स्वयं बन्द कर रहे हैं। इसके अलावा, इस भूल में एक अर्थ भी है। कहने में अजीब मालूम होता है, पर इसका मूल कारण यह है कि आप सब कभी बालक रहे हैं, और बालकपन में आप शिक्षा के प्रभाव में रहे हैं। क्योंकि शिक्षा का एक सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक कार्य यह भी है कि वह नैसर्गिक यौन प्रवृत्ति को, जब वह प्रजनन सम्बन्धी कार्य के रूप में विकसित हो जाती है तब, संयत करे, सीमित करे, और व्यक्ति के नियंत्रण में रखे (व्यक्ति का नियंत्रण और समाज की आवश्यकता एक ही बात है)। इसलिए समाज अपने हित को देखते हुए बालक के पूर्ण परिवर्धन को तबतक के लिए टाल देता है, जबतक कि वह बौद्धिक परिपक्वता की एक निश्चित स्थिति पर न पहुंच जाए, क्योंकि नैसर्गिक यौन प्रवृत्ति के पूर्ण रूप में क्रियाशील हो जाने पर शिक्षणीयता अर्थात् शिक्षा-प्राप्ति की योग्यता प्रायः खत्म हो जाती है। यदि ऐसा न किया जाए तो निसर्ग-वृत्ति सब रुकावटों को और परिश्रम से खड़े किए गए सभ्यता के ढांचे को तोड़-फोड़कर फेंक देगी। इसे संयत करने का काम आसान भी नहीं है। इस दिशा में सफलता प्रायः बहुत कम होती है, पर कभी-कभी बहुत अधिक भी होती है। मूलतः समाज का प्रेरक भाव आर्थिक है क्योंकि इसके पास इतने साधन नहीं हैं कि यह अपने सदस्यों के बिना परिश्रम किए उनके जीवन का भरण-पोषण कर सके, इसलिए उसे यह यत्न करना पड़ता है कि इन सदस्यों की संख्या अधिक न बढ़ सके और उनकी शक्ति यौन व्यापारों से हटकर अपने कार्य पर लगी रहे—इसलिए जीवन-धारण के लिए होने वाला नित्य और आदिकाल से चला आता हुआ संघर्ष आज तक चल रहा है।

अनुभव से शिक्षकों को यह पता चला होगा कि अगली पीढ़ी की यौन इच्छा को ढालने का कार्य तभी सफल हो सकता है जब तूफान फटने तक प्रतीक्षा करने के बजाय शुरू में ही उसपर असर डाला जाए और तरुणावस्था से पहले ही बालकों के यौन जीवन में दखल दिया जाए। इसलिए बालक के प्रायः सब शैशवीय यौन व्यापारों पर रोक लगा दी जाती है, या उन्हें अरुचिकर बना दिया जाता है। आदर्श यह रहा है कि बालक के जीवन को निष्काम या कामहीन बना दिया जाए और धीरे-धीरे इसका यह नतीजा हुआ है कि हम इसे वास्तव में निष्काम मानने लगे हैं और विज्ञान भी इसे ऐसा ही बताता है। इसलिए प्रतिष्ठित विश्वासों और लक्ष्यों से कोई विरोध न होने देने के लिए बालकों के यौन व्यापार से आंख मींच ली जाती है—और यह कोई छोटी सफलता नहीं है—और उधर विज्ञान इसकी दूसरे ढंग से व्याख्या करके सन्तुष्ट हो जाता है। छोटे बालक को शुद्ध और निर्दोष माना जाता है। जो इससे भिन्न बात कहे उसको मनुष्य जाति की कोमलतम और पवित्रतम भावनाओं पर अविश्वास करने वाला कहा जाता है।

सिर्फ बालक इस रूढ़ प्रथा में कोई हिस्सा नहीं लेते। वे बड़ी चतुराई से अपनी पशु-प्रकृति पर जमे रहते हैं और आग्रहपूर्वक यह प्रदर्शित करते हैं कि 'शुद्धता'

उन्हें अभी सीखनी है। कैसी विचित्र बात है कि जो लोग बालकों में काम-प्रवृत्ति होने का निषेध करते हैं, वे ही इसको रोकने के लिए होने वाले शिक्षणात्मक उपायों को शिथिल करने का सबसे अधिक विरोध करते हैं। बच्चों में कोई भी 'दूषित प्रवृत्ति', जिसके होने का वे निषेध करते हैं, दीखने पर वे ही उसके लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था करते हैं। इसके अलावा, सिद्धान्त-विचार की दृष्टि से यह बात बड़े महत्व की है कि जीवन का जो समय निष्काम बालकपन सम्बन्धी संस्कार का सबसे प्रबल खण्डन करता है, अर्थात् पांच या छः वर्ष की आयु तक का समय, वह वही समय है जो अधिकतर लोगों में विस्मृति के पर्दे में छिपा रहता है। यह विस्मृति विश्लेषण द्वारा पूरी तरह हटाई जा सकती है, पर विश्लेषण से पहले भी उसके अन्दर प्रवेश होता था, और बालकपन के कुछ स्वप्न कायम रहते थे।

अब मैं आपको बालक के वे यौन व्यापार बताऊंगा जो सबसे अधिक स्पष्ट रूप से पहचाने जा सकते हैं। यह अधिक अच्छा होगा कि मैं पहले आपको **लिबिडो या राग** या काम-क्षुधा का परिचय दे दूं। लिबिडो या राग बिलकुल **क्षुधा** की तरह है। यह वह बल है जिसके द्वारा नैसर्गिक यौन वृत्ति वैसे ही अपनी अभिव्यक्ति करती है जैसे पोषण की निसर्ग-वृत्ति भूख के द्वारा अपनी अभिव्यक्ति करती है। यौन उत्तेजन और सन्तुष्टि आदि अन्य शब्दों की कोई परिभाषा देने की आवश्यकता नहीं। निर्वचन को शिशु के यौन व्यापारों के विषय में बहुत कुछ करने योग्य काम मिलता है, जैसा कि आप आसानी से समझ जाएंगे, और निःसंदेह आपको आक्षेप करने के लिए भी कारण दिखाई देगा। यह निर्वचन किसी लक्षण से पीछे की ओर चलते हुए मनोविश्लेषणात्मक जांच के आधार पर बना हुआ है। शिशु के प्रथम यौन उत्तेजन जीवन के लिए महत्वपूर्ण दूसरे कार्यों के सिलसिले में प्रकट होते हैं। इसकी मुख्य दिलचस्पी, जैसा कि आप जानते हैं, पोषण प्राप्त करने से सम्बन्ध रखती है। जब वह बिलकुल सन्तुष्ट होकर छाती पर पड़ा सोता है, तब उसके चेहरे पर पूर्ण परितृप्ति होती है, जो बाद के जीवन में शुक्रक्षरण[1] के अनुभव के बाद फिर दिखाई देगी। यह बात निष्कर्ष निकालने के लिए काफी नहीं है, पर हम देखते हैं कि शिशु पोषण पाने के लिए आवश्यक क्रिया वास्तव में पोषण न पाते हुए भी करता रहना चाहता है। इसलिए इसका कारण भूख नहीं है। हम इस क्रिया को 'सुख के लिए चूसना कहते हैं' (रबड़ का निप्पल चूसते रहना बच्चों को अच्छा मालूम होता है); और जब शिशु ऐसा करता है तब फिर वह वही आनन्दपूर्ण परितृप्ति प्रकट करता हुआ सो जाता है—इस तरह हम देखते हैं कि चूसने की क्रिया अपने आप में सन्तुष्टि देने के लिए काफी है। धीरे-धीरे उसे ऐसी आदत पड़ जाती है कि वह इस तरह निप्पल चूसे बिना नहीं सोता। बुडापेस्ट

---

१. Sexual orgasm.

के निवासी और बच्चों का इलाज करने वाले वयोवृद्ध डाक्टर लिन्डनर ने सबसे पहले इस प्रतिक्रिया को यौन प्रकृति का बताया था। बच्चों की देखमाल करने वाली नर्सें तथा और लोग इस चूसने के बारे में यही विचार रखते मालूम होते हैं। उन्हें इसमें सन्देह नहीं कि इसका एकमात्र प्रयोजन इससे प्राप्त होने वाला सुख ही है। वे इसे बच्चों की 'शैतानी' समझते हैं, और यदि बच्चा इसे खुद नही छोड़ देता तो वे उसकी यह आदत छुड़ाने के लिए सख्त उपाय बरतते हैं, और इस तरह हमें पता चला कि शिशु सुख-प्राप्ति से भिन्न कोई उद्देश्य न होते हुए कुछ क्रियाएं करता है। हम मानते हैं कि सबसे पहले यह सुख पोषण-ग्रहण के समय प्राप्त होता है, पर शिशु पोषण से अलग भी इसका सुख-भोग करना जल्दी ही सीख जाता है। इससे प्राप्त परितुष्टि सिर्फ मुख और होठों के क्षेत्र से सम्बन्धित होती है। इसलिए इन क्षेत्रों को हम **कामजनक क्षेत्र** कहते हैं, और इस चूसने से उत्पन्न सुख को **यौन-सुख** बताते हैं पर इस शब्द के प्रयोग के औचित्य के बारे में अभी हमें विचार करना है।

यदि बालक अपने मन की बात कह सकता तो वह अवश्य यह मानता कि माता की छाती चूसने का कार्य जीवन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। उसका यह कहना ग़लत नहीं होता, क्योंकि इस कार्य से जीवन की दो सबसे बड़ी आवश्यकताओं की एक साथ पूर्ति हो जाती है। फिर, मनोविश्लेषण से पता चलता है, और उससे आश्चर्य भी होता है कि इस कार्य का कितना अधिक मानसिक महत्व सारे जीवन में बना रहता है। पोषण के लिए स्तन चूसने से ही सारे यौन जीवन का परिवर्धन होता है। यह बाद में मिलने वाली प्रत्येक यौन सन्तुष्टि का अलभ्य मूर्त रूप है और आवश्यकता के समय कल्पना प्रायः इसी पर लौटकर पहुंचती है। चूसने की इच्छा में माता की छाती के लिए इच्छा भी शामिल है, और इसलिए माता की छाती यौन इच्छा का पहला **आलम्बन** है; जो आलम्बन बाद में बनते हैं, उनके निर्धारण में इस प्रथम आलम्बन का कितना महत्व होता है, यह रूपान्तरण और स्थानान्तरण द्वारा मानसिक जीवन के बहुत दूरवर्ती क्षेत्रों पर कितना प्रभाव डालता है, इसकी पूरी-पूरी धारणा आपको कराने में मैं असमर्थ हूं; पर सबसे पहले जब बालक सुख के लिए चूसता है, तब इस आलम्बन को छोड़कर इसके स्थान पर वह अपने शरीर के एक हिस्से का प्रयोग करता है। यह अपने अंगूठे या अपनी जीभ को चूसता है। इस प्रकार यह सुख-प्राप्ति के प्रयोजन के लिए अपने आपको बाहरी दुनिया की सहमति से स्वतंत्र कर लेता है, और उत्तेजन के क्षेत्र में शरीर के एक दूसरे हिस्से को लाकर, और इस तरह उसका विस्तार करके अपने सुख तीव्र कर लेता है। सब कामजनक क्षेत्र बराबर सुख नहीं दे सकते, इसलिए जब शिशु, जैसा कि लिन्डनर ने कहा है, अपने शरीर को टटोलता हुआ अपनी जननेन्द्रियों से विशेष रूप से उत्तेजन योग्य क्षेत्र का पता लगा लेता है, और इस तरह सुखार्थ चूसने से

स्वप्रेरित का रास्ता ढूंढ़ लेता है, तब यह एक महत्वपूर्ण अनुभव होता है।

सुखार्थ चूसने के स्वरूप के बारे में इस विचार ने शैशवीय यौन प्रवृत्ति की दो निश्चायक विशेषताओं की ओर हमारा ध्यान खींचा है। ये प्रबल शारीरिक आवश्यकताओं की संतुष्टि के सिलसिले में सामने आती हैं और **आत्मकामित:**[1] व्यवहार करती हैं, अर्थात् ये अपने शरीर में ही अपने आलम्बन खोजती हैं और प्राप्त करती हैं। जो बात पोषण-ग्रहण करने के बारे में बहुत स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, वही कुछ दूर तक मल-त्याग के प्रक्रम में भी होती है। हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि शिशुओं को पेशाब और आंतों का मल निकालने में सुख अनुभव होता है और वे बहुत शीघ्र इन क्रियाओं को इस तरह करने की कोशिश करते हैं जिससे इन कामजनक क्षेत्रों में इन क्रियाओं के साथ होने वाले झिल्लियों के उत्तेजन से उन्हें यथासम्भव अधिक से अधिक परितुष्टि मिल सके। जैसा कि लो एन्ड्रियास ने बताया है, किसी अन्त:प्रेरणा से प्रेरित होकर बाहरी दुनिया सबसे पहले इस जगह रुकावट के रूप में सामने आती है। वह बालक की सुख की इच्छा का विरोध करने वाले बल के रूप में उसके सामने आती है—यहीं उसे बाद के जीवन में अनुभव होने वाले बाहरी और भीतरी द्वंद्वों का पहला संकेत मिलता है। जब वह स्वयं चाहे तब मल-त्याग न करे, बल्कि दूसरे लोगों द्वारा नियत समय पर ही मल-त्याग करे। उसे सुख के इन स्रोतों को छोड़ने की प्रेरणा देने के लिए उससे कहा जाता है कि इन कार्यों से सम्बन्धित हर बात 'बुरी' या 'अनुचित' है और उसे छिपाना चाहिए। इस प्रकार, उसे पहली बार दूसरों की दृष्टि में अपना मान पाने के लिए अपना सुख छोड़ने को कहा जाता है। मल-त्याग के प्रति उसका अपना रुख शुरू में बड़ा भिन्न होता है। अपने खुद के मल से उसमें कोई घृणा पैदा नही होती। वह उसे अपने शरीर के हिस्से की तरह मानता है, और छोड़ना नहीं चाहता। वह उसका उपयोग अपने प्रिय लोगों को अपने चित्त की सबसे पहली 'भेंट' देने में करता है। शिक्षा के द्वारा इन प्रवृत्तियों से हटा दिए जाने पर भी वह अपनी 'भेंटों' और अपने 'धन' को उतना ही महत्व देता रहता है। पेशाब करने की अपनी सफलता उसे विशेष अभिमान की बात मालूम होती है।

मैं जानता हूं कि कुछ समय से आप मुझे रोकने के लिए यह कहने को उतावले हो रहे हैं: "ये बेहूदी बातें बन्द करो! आंतों की गति से बच्चे भी सुखदायक यौन तृप्ति करते हैं! मल भी कीमती वस्तु है और गुदा एक तरह की जननेन्द्रिय है! हम इन बातों पर विश्वास नहीं करते, पर हम यह समझ गए हैं कि बालकों के डाक्टरों और शिक्षा-शास्त्रियों ने मनोविश्लेषण और इसके निष्कर्षों को क्यों इस तरह बलपूर्वक अस्वीकार किया है।" जरा भी नहीं। आप इस समय यह बात

---

१. Auto-erotically.

भूल गए हैं कि मैं आपको शैशवीय यौन जीवन के वास्तविक तथ्यों और यौन विकृतियों के वास्तविक तथ्यों के बीच सम्बन्ध दिखाने की कोशिश कर रहा हूं। आप यह क्यों भूल जाते हैं कि बहुत-से समकामी और विषमकामी[1] वयस्कों में गुदा सचमुच उसी प्रयोग में आती है, जिसमें मैथुन के समय योनि-मार्ग काम आता है? और ऐसे बहुत-से लोग हैं जो आंतों से मल-त्याग के समय अनुभव होनेवाले सुखदायी सम्वेदनों को सारे जीवन कायम रखते हैं और उन्हें काफी महत्वपूर्ण मानते हैं। जब बालक कुछ बड़े हो जाएंगे और इन बातों के बारे में बोल सकेंगे तब आपको उनसे ही यह पता चल जाएगा कि मल-त्याग के काम में उनकी कितनी दिलचस्पी है और दूसरों को यह कार्य करते हुए देखकर उन्हें कितना सुख मिलता है। यदि आपने उन्हें पहले बाकायदा डरा दिया है तो वे बहुत अच्छी तरह समझ जाएंगे कि उन्हें इन बातों के बारे में नहीं बोलना चाहिए। अन्य जिन बातों पर आप विश्वास नहीं करना चाहते, उनके लिए मैं आपका ध्यान विश्लेषण में प्रकट हुए साक्ष्य तथा बालकों के प्रत्यक्ष प्रेक्षण की ओर खींचना चाहता हूं और आपसे कहता हूं कि इन सब बातों को न देखने या किसी भिन्न रूप में देखने में बुद्धि पर बलात्कार करना ही होगा, और मुझे आपके इस विचार से भी कुछ अरुचि नहीं है कि बालकों के यौन व्यापारों और यौन विकृतियों का सम्बन्ध विशेष रूप से प्रभावोत्पादक है। यह तो क्रम-विधान की बात है कि उनमें यह सम्बन्ध होना चाहिए, क्योंकि यदि बालक में जरा भी यौन जीवन होता है तो वह विकृत प्रकार का ही होना चाहिए क्योंकि थोड़े-से अस्पष्ट संकेतों के अलावा उसमें उन सब बातों का अभाव होता है जो यौन प्रवृत्ति को प्रजनन कार्य में बदल देती हैं। इसके अलावा, सब काम-विकृतियों की यह एक सामान्य विशेषता है कि उनमें उद्देश्य प्रजनन नहीं रहता। असल में, इसी कसौटी से हम यह फैसला करते हैं कि कोई यौन व्यापार विकृत है, अर्थात् यदि यह अपने प्रजनन के उद्देश्य को छोड़कर चलता है और स्वतन्त्र रूप से परितुष्टि प्राप्त करना चाहता है तो यह विकृत है। इसलिए आप समझ जाएंगे कि यौन जीवन के परिवर्धन में खाई और मोड़ बिन्दु उस स्थान पर हैं, जहां यह प्रजनन के प्रयोजनों के अधीन होता है। इस परिवर्तन से पहले होने वाली प्रत्येक चेष्टा को, जो इसके अनुरूप नहीं चलती, और सिर्फ़ परितुष्टि-प्राप्ति का साधन बनती है, 'काम-विकृति' के असम्मानित नाम से पुकारा जाता है, और इस रूप में उसको नफ़रत की निगाह से देखा जाता है।

तो, शैशवीय यौन प्रवृत्ति का संक्षिप्त वर्णन आगे बढ़ाया जाए। जो बात मैंने आपसे दो शारीरिक संस्थानों के बारे में कही है, उसके बारे में अन्य संस्थानों की उसी तरह सूक्ष्म परीक्षा करके बात को बढ़ाया जा सकता है। बच्चों के यौन

---

१. Heterosexual.

जीवन में सिर्फ उन घटक-निसर्ग-वृत्तियों[1] की एक शृंखला के सिर्फ़ वे व्यापार होते हैं जो एक दूसरे से स्वतन्त्र रहते हुए कुछ उसके अपने शरीर में और कुछ पहले ही से किसी बाहरी आलम्बन में परितुष्टि पाना चाहते हैं। इन शारीरिक संस्थानों के अंगों में शीघ्र ही पहला स्थान जननेन्द्रिय संस्थान[2] का हो जाता है; ऐसे लोग भी होते हैं जिनमें किसी अन्य जननेन्द्रिय या आलम्बन की मदद के बिना, अपनी ही जननेन्द्रिय में सुखदायक परितुष्टि, शैशव के दूध चूसने के समय की आदतन स्वयं रति से शुरू होकर तरुणावस्था में होनेवाली आवश्यकता से उत्पन्न स्वयं रति तक, बिना व्यवधान के जारी रहती है और उसके बाद भी अनिश्चित काल तक कायम रहती है। प्रसंगतः स्वयं रति का विषय इतने से खत्म नहीं हो गया। इसमें अनेक दृष्टिकोणों से विचार किया जा सकता है।

इस चर्चा को मैं बहुत नहीं बढ़ाना चाहता, पर फिर भी, बच्चों में जो यौन कुतूहल होता है, उसकी कुछ बात अवश्य कहना चाहता हूं। बाल्य यौन वृत्ति की यह इतनी बड़ी विशेषता है और स्नायु-रोग के लक्षण-निर्माण के लिए इतनी महत्वपूर्ण है कि इसे छोड़ा नहीं जा सकता। शैशवीय यौन कुतूहल बहुत छोटी उम्र में, कभी-कभी तीसरे वर्ष से भी पहले, शुरू हो जाता है। यह लिंगों के भेद से सम्बन्ध नहीं रखता। बालकों के लिए इसका कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि वे, कम से कम लड़के तो, दोनों लिंगों में वही पुरुष-जननेन्द्रिय समझते हैं। यदि फिर कोई लड़का अपनी छोटी बहन या साथ खेलने वाली लड़की की योनि देख ले तो वह तुरन्त अपनी इन्द्रियों के साक्ष्य का निषेध करना चाहता है, क्योंकि वह यह धारणा नहीं बना सकता कि कोई उसकी तरह का मनुष्य प्राणी उसके सबसे महत्वपूर्ण गुण से रहित भी हो सकता है। बाद में इससे जो शक्यताएं या किए जा सकने वाले कार्य उसके सामने आते हैं, उन्हें देखकर वह भयभीत हो जाता है। उसे अपने इस छोटे-से अंग पर बहुत ध्यान देते देखकर पहले जो धमकियां दी गई थीं, उनका प्रभाव उसे अब अनुभव होने लगता है। उसपर बाधियाकरण ग्रन्थि का आधिपत्य हो जाता है, जो उसके स्वस्थ रहने पर उसके चरित्र-निर्माण में, रोगी होने पर उसके स्नायु-रोग के निर्माण में और यदि उसका मनोविश्लेषण द्वारा इलाज किया जाता है तो उसके प्रतिरोधों के निर्माण में इतना महत्वपूर्ण कार्य करती है। हम जानते हैं कि छोटी लड़कियां बड़े दृष्टिगोचर शिश्न के अभाव से अपने में भारी कमी अनुभव करती हैं, और लड़कों में इसके होने पर ईर्ष्या रखती हैं, इसी मूल से प्रथमतः पुरुष होने की इच्छा पैदा होती है, जो किसी स्त्रियोचित परिवर्धन के साथ ठीक समंजन न होने के कारण बाद में स्नायु-रोग में फिर आ जाती है। इसके अलावा, लड़की की भगनासा बालकपन में हर प्रकार से शिश्न के तुल्य होती है। यह विशेष उत्तेज-

---

१. Component-instincts. २. Genitalia.

नीयता का क्षेत्र है, जिससे आत्मकामीय सन्तुष्टि प्राप्त होती है। नारीत्व में संक्रमण होने के समय बहुत कुछ परिणाम इस बात पर निर्भर है कि यह संवेदिता, बहुत पहले और पूरी तरह, भगनासा से हटाकर योनि-मुख पर पहुंचा दी गई या नहीं। जो नारियां यौन दृष्टि से संवेदनशून्य कहलाती हैं, उनमें भगनासा दृढ़ता से इस संवेदिता या संवेदनशीलता को कायम रखती है।

बालकों की यौन दिलचस्पी प्रथमतः जन्म की समस्या के प्रति होती है—थेबन स्फिक्स[1] के पीछे भी यही समस्या है। यह कुतूहल अधिकतर दूसरे बालक के आने के अहंकारमूलक भय से पैदा होता है। बालकों को इसका जो यह प्रचलित उत्तर दे दिया जाता है कि चिड़िया बच्चे दे जाती है, उसपर छोटे बालक भी, जितना हम समझते हैं, उससे बहुत अधिक अविश्वास करते हैं। बड़े आदमियों द्वारा ठगे-जाने और झूठ द्वारा बहलाए जाने की भावना से उनमें अलग रहने और स्वतंत्र होने का भाव पैदा होता है। पर बालक आप इस समस्या को हल नहीं कर सकता। उसकी अपरिवर्धित यौन रचना समझने की क्षमता की निश्चित सीमाएं बना देती है। पहले वह यह कल्पना करता है कि भोजन के साथ कोई विशेष वस्तु मिलाकर बालक बनाए जाते हैं। वह यह भी नहीं जानता कि बच्चे सिर्फ स्त्रियों के हो सकते हैं। बाद में उसे इसका पता चलता है और वह भोजन से बच्चे बनाए जाने का विचार छोड़ देता है, यद्यपि परियों की कहानियों में यह कायम रहता है। कुछ समय बाद वह जल्दी ही यह देख लेता है कि बच्चे बनाने में पिता का अवश्य कुछ कार्य है, पर वह नहीं जान पाता कि यह कार्य क्या है। यदि वह अचानक मैथुन-कार्य देख ले तो वह यह समझता है कि यह स्त्री को दबाने का यत्न है, जैसे कुश्ती में होता है—सम्भोग का पीड़कतोष वाला अवधारण; पर शुरू में वह इस कार्य का सम्बन्ध बच्चों के सर्जन से नहीं जोड़ता, यदि वह माता के बिस्तर या पेटीकोट पर खून का निशान देख लेता है तो वह इसे पिता द्वारा पहुंचाई गई चोट का प्रमाण समझता है। कुछ और बड़ा होने पर वह सम्भवतः यह अनुमान करता है कि पुरुष के लिंग का बच्चे पैदा करने में सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा होता है, पर शरीर के इस अंग का पेशाब करने के अलावा और कोई कार्य वह नहीं समझ सकता।

सभी बच्चे शुरू से यह विश्वास करते हैं कि बच्चे का जन्म आंत में से होता है, अर्थात् शिशु मल की तरह पैदा होता है। यह विचार तभी छूटता है, जब गुदा के क्षेत्र से उसकी सारी दिलचस्पी हटा दी गई हो, और इसके बाद वह यह कल्पना करने लगता है कि नाभि का छिद्र या दोनों स्तनों के बीच के क्षेत्र से बच्चे का

---

१. स्फिक्स ग्रीक पौराणिक कथाओं का एक दानव है, वह यात्रियों से पहेलियां पूछता था और जो उन्हें हल नहीं कर पाते थे, उनका गला घोट देता था।

—अनुवादक

जन्म होता है। कुछ-कुछ ऐसे तरीके से कुतूहली बालक यौन वृत्ति सम्बन्धी तथ्यों की कुछ जानकारी हासिल करता है बशर्ते कि वह अज्ञान के कारण ग़लत रास्ते पर न चला जाए। वह तथ्यों को नजरन्दाज करता रहता है, और अन्त में उसे प्रायः तरुणावस्था से पहले के दिनों में उनका अधूरा और भद्दा वृत्तान्त पता चलता है जिससे उसमें प्राय. उपघातज प्रभाव पैदा होता है।

अब, सम्भवतः आपने सुना होगा कि 'यौन' या 'काम सम्बन्धी' शब्द के अर्थ का मनोविश्लेषण ने अकारण फैलाव कर डाला है, जिससे स्नायु-रोगों के यौन उद्गम और लक्षणों के यौन अर्थ के बारे में इसकी मान्यताएं खड़ी हो सकें। अब आप स्वयं यह फैसला कर सकते हैं कि यह फैलाव उचित है या नहीं। हमने 'यौनवृत्ति' या 'कामुकता' के अवधारण का अर्थ विस्तृत कर दिया है, पर इतना ही विस्तृत किया है कि इससे विकृत व्यक्तियों और बालकों के यौन जीवन को इसके अर्न्तगत लाया जा सके, अर्थात् हमने इसे इसके अर्थ का सही दायरा फिर प्राप्त करा दिया। मनोविश्लेषण के बाहर जिस चीज़ को यौन वृत्ति या कामुकता कहा जाता है, वह सिर्फ उस सीमित यौन जीवन पर लागू होती है जो प्रजनन कार्य के लिए प्रयुक्त होता है, और प्रकृत कहलाता है।

व्याख्यान | २१

लिबिडो या राग का परिवर्धन और यौन संगठन

मुझे ऐसा लगता है कि यौन वृत्ति के हमारे अवधारण के लिए काम-विकृतियों का कितना महत्व है। इस बात का मैं आपको पूरा निश्चय नहीं करा सकता, इसलिए जहांतक मुझसे हो सकेगा, वहां तक मैं इस विषय पर प्रस्तुत किए हुए अपने पहले के कथन को फिर से पेश करूंगा और उसमें सुधार करूंगा।

आप यह न समझिए कि सिर्फ काम-विकृतियों के कारण ही हमें यौन वृत्ति या कामुकता के अर्थ में परिवर्तन करना पड़ा, जिसका इतना प्रबल विरोध हुआ है। शशवीय यौन प्रवृत्ति के अध्ययन से इसके विषय में और भी अधिक बातें पता चली हैं, और इन दोनों का मतैक्य निर्णायक था। परन्तु बचपन के बाद के वर्षों में शैशवीय कामुकता के व्यक्त रूप चाहे जितने असंदिग्ध रूप में दिखाई दे, पर आरम्भिक वर्षों में वे निश्चित ही इतने अस्पष्ट और हलके होते हैं, कि उन्हें निश्चित नाम देना कठिन है। जो लोग विकास की ओर और विश्लेषण द्वारा प्रकाश में लाए गए सम्बन्ध-सूत्रों की ओर ध्यान नहीं देना चाहते, वे उन व्यक्त रूपों के यौन स्वरूप पर आपत्ति उठाएंगे, और फिर उनमें कोई दूसरा स्पष्ट रूप से अलग न किया गया गुण बताएंगे। आपको यह नहीं भूलना चाहिए कि अबतक हमारे पास किसी घटना के यौन स्वरूप के लिए कोई व्यापक रूप से स्वीकृत कसौटी नहीं है—अबतक हम प्रजनन कार्य से सम्बन्ध को ही इसकी कसौटी मानते रहे हैं, और इसे हमने अव्याप्ति दोष से दूषित बताकर, अर्थात् बहुत संकुचित कहकर, अस्वीकार कर दिया है। जैविकीय कसौटियां, जैसे डब्ल्यू० फ्लायस द्वारा सुझाई गई तेईस और अट्ठाइस दिनों की आवर्तताएं[1] बहुत अधिक विवादास्पद हैं। यौन प्रक्रमों के लिए हम जिन विशिष्ट रासायनिक विशेषताओं की धारणा शायद बना सकें, वे अभी खोजी नहीं जा सकी हैं। दूसरी ओर वयस्कों की काम-विकृतियां काफी सुनिश्चित और असंदिग्ध होती हैं, जैसा कि उनके व्यापक रूप के स्वीकृत वर्णनों से ध्वनित

१. Periodicities.

होता है। वे निश्चित ही यौन स्वरूप वाली हैं, चाहे आप उन्हें पतन के चिह्न कहिए या कुछ और; पर इतना हौसला अभी किसीने नहीं दिखाया कि उन्हें यौन-जीवन की घटनाओं में रखने के बजाय किसी और वर्ग में रख दें। सिर्फ उन्हें देखते हुए भी हमारा यह मानना उचित है कि यौन प्रवृत्ति अथवा कामुकता और प्रजनन कार्य एक बात नहीं हैं, क्योंकि वे सबकी सब काम-प्रवृत्तियां प्रजनन के उद्देश्य को अस्वीकार करती हैं।

यहां एक मजेदार-सी समानान्तर बात दिखाई देती है। अधिकतर लोग 'मानसिक' का अर्थ 'चेतन' समझते हैं, पर हमें 'मानसिक' शब्द के प्रयोग का क्षेत्र बढ़ाना पड़ा, जिससे मन का वह भाग भी इसके अन्तर्गत आ जाए जो चेतन नहीं है। ठीक इसी प्रकार अधिकतर लोग 'यौन' या 'कामुक' को और 'प्रजनन सम्बन्धी', अथवा संक्षेप में कहना चाहें तो 'जननेन्द्रिय सम्बन्धी' को एक ही बताते हैं, जबकि हमें उन बातों को भी 'यौन' या 'कामुक' मानना पड़ता है जो 'जननेंद्रिय सम्बन्धी' नहीं है, और जिनका प्रजनन से कोई सम्बन्ध नही है। सिर्फ ऊपरी-सादृश्य है, पर इसका गहरा अर्थ भी अवश्य है।

पर यदि काम-विकृतियों का अस्तित्व इस प्रश्न पर इतनी प्रबल दलील है, तो इसने बहुत पहले ही इस प्रश्न का समाधान क्यों नहीं कर दिया? मैं सचमुच इसका उत्तर देने में असमर्थ हूं। मुझे ऐसा लगता है कि यौन विकृतियों पर बहुत सख्त पाबन्दी रही, जो इस सिद्धान्त में भी घुस गई, और इस विषय में वैज्ञानिक विवेक में भी बाधा डालती है। ऐसा लगता है कि जैसे कोई भी यह बात नहीं भुला सकता था कि वे न केवल घृणा योग्य हैं बल्कि कोई राक्षसी और भयानक चीज़ हैं मानो उनसे प्रलोभनकारी प्रभाव पड़ता था, मानो हृदय के अन्तस्तल में काम-विकृति का सुख लेने वालों से गूढ़ ईर्ष्या मौजूद थी जिसे दबाना पड़ता था। वास्तव में काम-विकृत लोग बेचारे मुसीबत के मारे ही होते हैं जिन्हें इतनी कठिनाई से प्राप्त की हुई सन्तुष्टियों की बड़ी कड़ी सज़ा भुगतनी पड़ती है।

विकृत काम-व्यापार के आलम्बनों या उनके उद्देश्यों में बिलकुल अस्वाभाविक लगने वाली बातें होने पर भी वे इस कारण असंदिग्ध रूप से यौन या कामुक व्यापार हैं कि विकृत सन्तुष्टि में भी कार्य का अन्त प्रायः पूर्ण सुखोत्तेजना और शुक्र-क्षरण के रूप में होता है। यह सम्बन्धित व्यक्तियों में वयस्कता-प्राप्ति पर ही होता है। बच्चों में सुखोत्तेजना और शुक्रक्षरण उस तरह सम्भव नहीं है। उनके स्थानापन्न के रूप में उनसे मिलती-जुलती चीजें होती हैं, पर उन्हें भी निश्चित रूप से यौन नहीं माना जाता।

काम-विकृतियों का पूरा स्वरूप चित्रित करने के लिए मुझे अभी कुछ और भी कहना होगा। उन्हें घृणित समझा जाता है, और वे प्रकृत यौन व्यापार से बहुत भिन्न भी हो सकती हैं, पर मामूली प्रेक्षण से पता चल जाएगा कि शायद

ही कोई ऐसी काम-विकृति हो जो प्रकृत व्यक्ति के यौन जीवन में न मिलती हो। सबसे पहले चुम्बन को ही विकृत यौन कार्य कहा जा सकता है, क्योंकि इसमें दो कामजनक मुख-क्षेत्रों का मिलन होता है, दो जननेन्द्रियों का नहीं, पर इसे कोई विकृत नहीं कहता। इसके विपरीत, नाटक में इसे दिखाया जा सकता है क्योंकि इसे मैथुन-कार्य का एक परिष्कृत संकेत माना जाता है। फिर भी चुम्बन ऐसी चीज़ है जो आसानी से पूर्ण काम-विकृति बन सकता है, अर्थात् तब जब यह इतनी तीव्रता में होता है कि सुखोत्तेजना और शुक्रक्षरण इसके साथ ही हो जाते हैं, जो कि कोई असामान्य बात नहीं हैं। फिर, आप देखेंगे कि एक व्यक्ति में आलम्बन को ताकना और उसे हाथ से स्पर्श करना यौन सुख के लिए अनिवार्य होता है; जबकि दूसरा, यौन उत्तेजन की पराकाष्ठा आने पर काटता है या चिऊंटी भरता है; किसी तीसरे प्रेमी में आलम्बन के शरीर का जननेन्द्रिय क्षेत्र के अलावा कोई और क्षेत्र अधिकतम उत्तेजना पैदा करता है; और इस तरह इनके अनन्त भेद हो सकते हैं। इस तरह की किसी एक विलक्षणता वाले लोगों को प्रकृतों की श्रेणी में से निकलना और विकृतों में शामिल करना बिलकुल बेतुका है। इसके विपरीत, यह अधिकाधिक स्पष्ट होता जाता है कि काम-विकृति का आवश्यक तत्व यौन उद्देश्य से आगे बढ़ जाना, जननेन्द्रियों के स्थान पर और अंगों को ले आना, और आलम्बन में भिन्नताएं हो जाना नहीं हैं, बल्कि सिर्फ यह है कि व्यक्ति इन विपथनों या मार्ग-भ्रष्टताओं पर कितनी **अनन्यता**[1] से कायम रहता है, और इस तरह प्रजनन का प्रक्रम कहाने वाले मैथुन-कार्य को सर्वथा दूर कर देता है। जहां विकृत काम-चेष्टाएं प्रकृत मैथुन कार्य की पूर्ति को तीव्र करने, या वहां तक पहुंचाने के लिए की जाती है, वहां वे वास्तव में विकृत नहीं हैं। जिस तरह के तथ्य अभी बताए गए ह, उनसे स्वभावतः प्रकृत और विकृत यौन प्रवृत्ति के बीच की खाई बहुत अधिक पटने लगती है। इससे सीधा यह अनुमान निकलता है कि प्रकृत यौन प्रवृत्ति किसी अपने से पहले मौजूद प्रवृत्ति में से पैदा हुई है, और इसके लिए इस वस्तु के कुछ अंशों को बेकार समझकर छोड़ दिया गया, और कुछ और अंश इसमें जोड़ दिए गए, जिससे इन्हें एक नए उद्देश्य, अर्थात् प्रजनन के उद्देश्य का साधन बनाया जा सके।

इस प्रकार विकृतियों के बारे में हमें जो दृष्टिकोण प्राप्त हुआ है, उसका उपयोग करके अब हम शैशवीय यौन प्रवृत्ति की समस्या पर अधिक स्पष्ट पृष्ठभूमि में अधिक गहरा विचार कर सकते हैं। पर इससे पहले मैं इन दोनों के एक महत्वपूर्ण अन्तर की ओर आपका ध्यान खींचना चाहता हूं। साधारणतया विकृत यौन प्रवृत्ति बहुत अधिक सघन होती है; इसका सारा व्यापार एक--और अधिकतर सिर्फ एक--उद्देश्य की ओर होता है; कोई एक ही घटक-आवेग सर्वोपरि होता

१. Exclusiveness.

है—यह या तो वही होता है जो दिखाई दे रहा है, या इसने दूसरों को अपने ही प्रयोजनों में लगा लिया है। इस दृष्टि से विकृत और प्रकृत यौन प्रवृत्ति के बीच इसके सिवाय और कोई अन्तर नहीं कि प्रधान घटक-आवेग और इसलिए यौन-उद्देश्य भिन्न है। वे दोनों ही एक सुसंगठित क्रूर शासन है; फ़र्क यही है कि इनमें से एक में शासक वंश ने सारी सत्ता हथिया ली है, और दूसरे में दूसरे ने। इसके विपरीत, शैशवीय यौन प्रवृत्ति में इस सघनता और संगठन का मुख्यत: अभाव होता है। इसके घटक-आवेग भी उतने ही प्रबल होते हैं। उनमें से प्रत्येक स्वतंत्र रूप से अपने ही सुख के लिए प्रयत्न करता है। (बालकपन में) इस सघनता का अभाव और (वयस्कता में) इसका अस्तित्व, ये दोनों बातें इस तथ्य के साथ बिलकुल मेल खाती हैं कि प्रकृत और विकृत दोनों यौन प्रवृत्तियां एक ही स्रोत, अर्थात् शैशवीय यौन प्रवृत्ति से पैदा होती हैं। सच तो यह है कि काम-विकृति के ऐसे उदाहरण भी हैं जो शैशवीय यौन प्रवृत्ति से इस दृष्टि से और भी मेल खाते हैं कि बहुत-सी घटक-निसर्ग-वृत्तियां और उनके उद्देश्य एक दूसरे से स्वतंत्र रहते हुए, उनमें परिवर्धित हो जाते हैं या स्थायी बन जाते हैं। इन उदाहरणों को यौन जीवन की विकृति के बजाय शैशवीयता[1] कहना अधिक सही है।

इतना जानने के बाद अब हमें एक सुझाव पर विचार करना चाहिए, जो हमारे सामने अवश्य पेश किया जाएगा। कहा जाएगा: "बालकपन की उन अनिश्चित अभिव्यक्तियों को, जिनमें से बाद के यौन जीवन का परिवर्धन हुआ और जिसे आप स्वयं अनिश्चित मानते हैं, पहले से यौन प्रवृत्ति का प्रकटन बताने के लिए आपने क्यों कमर कस ली है? आप उनका कार्यिकी की दृष्टि से वर्णन करके, और सिर्फ़ इतना कहकर ही क्यों सन्तुष्ट नहीं हो जाते कि खाली चूसने और मल रोकने जैसे व्यापार छोटे बच्चों में पहले ही देखे जा सकते हैं, जिससे प्रकट होता है कि वे **अपने अंगों से सुख** प्राप्त करते हैं? इस तरह आपको शिशुओं में भी यौन जीवन का अस्तित्व नही मानना पड़ेगा जो हमारी भावनाओं के लिए इतना अरुचिकर है।" इसका मैं यही उत्तर दे सकता हूं कि मुझे शरीर के अंगों से उत्पन्न सुख के विरुद्ध कुछ नहीं कहना है। मैं यह जानता हूं कि मैथुन या लैंगिक ऐक्य का सर्वोपरि सुख भी एक शारीरिक सुख ही है, जो जननेन्द्रिय की चेष्टा से पैदा होता है। पर क्या आप मुझे बता सकते हैं कि यह शारीरिक सुख, जो शुरू में निष्काम होता है, कब यौन रूप प्राप्त करता है?—परिवर्धन की अंतिम कलाओं में तो इसका यौन रूप असंदिग्ध रूप से होता है। क्या हम इस 'अंग-सुख' के बारे में यौन प्रवृत्ति की अपेक्षा अधिक जानते हैं? आप कहेंगे कि इसमें यौन रूप तब आ जाता है जब जननेन्द्रियां अपना कार्य करने लगती हैं; यौन प्रवृत्ति या कामुकता का अर्थ सिर्फ 'जननेन्द्रिय

---

१. Infantilism.

से सम्बद्ध' है। आप विकृतियों की रुकावट को भी यह कहकर पार कर जाएंगे कि उनमें से अधिकतर में जननेन्द्रियों का सुखोत्तेजन होता है, यद्यपि वह जननेन्द्रियों के ऐक्य के अलावा दूसरे उपायों से पैदा किया जाता है। यदि आप यौन प्रवृत्ति की आवश्यक विशेषताओं में से प्रजनन से इसके सम्बन्ध को निकाल दें, क्योंकि विकृतियों के होने के कारण यह विचार सत्य नहीं सिद्ध होता, और इसके बदले जननेन्द्रियों की चेष्टा पर अधिक बल दें तो सचमुच आप बहुत अधिक अच्छी स्थिति में होंगे। पर तब हममें बहुत अधिक मतभेद नहीं रहेगा। मामला सिर्फ़ यह रह जाएगा कि—जननेन्द्रिय **बनाम** दूसरे अंग। अब आपके पास अधिक मात्रा में मिलने वाले ऐसे साक्ष्य का क्या उत्तर है कि परितुष्टि के प्रयोजन के लिए जननेन्द्रियों के स्थान पर, जैसा कि सामान्य चुम्बन में होता है या आवारा जीवन के विकृत कर्मों या हिस्टीरिया के लक्षणों में होता है, अन्य अंग आ जाते हैं। इस स्नायु-रोग में प्रायः ऐसा होता है कि उद्दीपन घटनाएं, संवेदन, स्नायु-उद्दीपन[1] और खड़ा होने या दृढ़ीकरण के प्रक्रम भी, जो असल में जननेन्द्रिय से सम्बन्ध रखते हैं, अपना स्थान छोड़कर शरीर के दूसरे दूर के क्षेत्रों पर पहुंच जाते हैं (उदाहरण के लिए उनका नीचे से ऊपर सिर और चेहरे पर विस्थापन हो जाता है)। इस प्रकार आप देखेंगे कि जिन बातों को आप यौन प्रवृत्ति की आवश्यक विशेषताएं बताते हैं उनमें से कुछ भी नहीं बचा और आपको मेरा अनुसरण करके 'यौन' या 'कामुक' के अन्तर्गत बिलकुल बचपन के उन व्यापारों को भी रखना होगा जिनका उद्देश्य 'अंग-सुख' होता है।

अब मैं अपने दृष्टिकोण की समर्थक दो और बातें पेश करूंगा। जैसा कि आप जानते हैं, हम बिलकुल बचपन की उन संदिग्ध और अनिर्देश्य चेष्टाओं को, जो सुख के लिए की जाती हैं, यौन या कामुक कहते हैं; क्योंकि लक्षणों का विश्लेषण करते हुए हम ऐसी सामग्री से उन तक पहुंचते हैं जिसके यौन होने से इन्कार नहीं किया जा सकता। हम मानते हैं कि इतनी ही बात से उनका भी यौन हो जाना आवश्यक नहीं, पर एक वैसा ही उदाहरण लीजिए। मान लीजिए कि दो द्विबीज पत्री पादपों[2]—सेव और मटर—को उनके बीज से परिवर्धन देखने का कोई तरीका नहीं है, पर इन दोनों में ही पूर्ण परिवर्धित पादप से पीछे की ओर चलते हुए दो बीज पत्रों वाले प्रथम नवोद्भिज[3] तक इसका परिवर्धन[4] देखा जा सकता है। इन दोनों बीज पत्रों में कोई फर्क नहीं है। दोनों पादपों में वे एक-से लगते हैं। क्या इससे मैं यह निष्कर्ष निकाल लूं कि वे वास्तव में एक-से हैं और सेव के पेड़ और मटर के पौदे में जो भेद दिखाई देते हैं, वे पादप के **बाद के** परिवर्धन में पैदा होते हैं; अथवा, क्या जैविकीय दृष्टि से यह मानना अधिक ठीक नहीं है कि यह अन्तर नवोद्भिजों

---

१. Innervation. २. Dicotyledonous plants. ३. Seedling. ४. Development.

में **पहले ही** मौजूद है यद्यपि मैं उसे बीज-पत्रों में नहीं देख सकता ? यही बात हम तब करते हैं जब शिशु की सुखकर चेष्टाओं को यौन बताते हैं। प्रत्येक अंग-सुख को यौन या कामुक कहा जा सकता है या नहीं, अथवा यौन सुख के अलावा कोई और भी ऐसा सुख है या नहीं, जो इस नाम से न पुकारा जा सकता हो ?—इस प्रश्न का विवेचन मैं यहां नहीं कर सकता। अंग-सुख और इसके लिए आवश्यक दशाओं के बारे में मैं बहुत कम जानता हूं और मुझे ज़रा भी आश्चर्य नहीं है कि विश्लेषण के पीछे की ओर चलने के कारण मैं अन्त में ऐसे कारकों पर पहुंचता हूं जिनका इस समय सुनिश्चित वर्गीकरण सम्भव नहीं।

एक बात और। अब तक आपको अपनी इस स्थापना के लिए कि बच्चे यौन दृष्टि से शुद्ध होते हैं, कोई खास चीज़ नहीं मिली, चाहे आप मुझसे यह मनवा लें कि शिशु की चेष्टाओं को यौन या कामुक न माना जाता तो अच्छा रहता। कारण कि तीसरे वर्ष से तो बच्चे में यौन जीवन शुरू हो जाने के बारे में कोई संदेह ही नहीं है। इस समय जननेन्द्रियों में उत्तेजन के चिन्ह दिखाई देने लगते हैं। शायद शिशु-हस्तमैथुन का अर्थात जननेन्द्रियों से परितुष्टि पाने का एक संभवतः अनिवार्य समय है। अब यौन जीवन के मानसिक और सामाजिक पहलुओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती : आलम्बन का चुनाव, विशेष व्यक्तियों से अनुराग, और एक या दूसरे लिंग वाले में प्रीति तथा ईर्ष्या, मनोविश्लेषण के समय से पहले भी निष्पक्ष प्रेक्षकों ने स्वतंत्र रूप से कार्य करते हुए निश्चायक रूप से सिद्ध कर दी थीं। हर कोई प्रेक्षक, जो अपनी आंखों का प्रयोग करे, उनकी पुष्टि कर सकता है। आप कहेंगे कि हमने अनुराग जल्दी पैदा हो जाने में कभी संदेह नहीं किया। हमने तो सिर्फ़ इस बात पर संदेह किया है कि यह अनुराग 'यौन' प्रकार का है। तीन और आठ वर्षों के बीच की आयु वाले बालक निश्चित रूप से अनुराग के यौन तत्व को छिपाना सीख जाते हैं; पर फिर भी, यदि आप ध्यान से देखें तो आपको इस अनुराग के 'ऐन्द्रिक' प्रकार का होने की काफी गवाही मिल जाएगी, और यदि तब भी कोई बात आपके ध्यान में आने से रह जाएगी तो उसकी पूर्ति विश्लेषण की जांच-पड़ताल से बहुत अच्छी तरह हो जाएगी। जीवन के इस काल में यौन उद्देश्य उसी समय पैदा होने वाले यौन कुतूहल से, जिसका कुछ वर्णन मैंने किया है, बहुत नज़दीकी सम्बन्ध रखते हैं। इनमें से कुछ उद्देश्यों का विकृत स्वरूप बालक के अप्रौढ़ शरीर का स्वाभाविक परिणाम है, जिसे अभी सम्भोग के उद्देश्य या लक्ष्य का पता नहीं चला है।

छठे या आठवें वर्ष से आगे यौन परिवर्धन में स्थिरता या ह्रास दिखाई देता है—बहुत ऊंचे सांस्कृतिक स्तर वाले बालकों में इसे **गुप्तता-काल** कहना उचित होगा, पर यह गुप्तता-काल नहीं भी आ सकता है, और यह भी आवश्यक नहीं कि सारे क्षेत्र में यौन चेष्टाओं और यौन दिलचस्पियों में व्याघात हो। तब गुप्तता-

काल से पहले होने वाले अधिकतर मानसिक अनुभव और उत्तेजन शैशवीय स्मृति-व्यवधान या स्मृति-नाश से, जिसपर पहले विचार किया जा चुका है, पराजित हो जाते हैं; जो हमारे आरम्भिक बचपन को हमसे छिपा लेता है, और हमें इसके लिए अपरिचित बना देता है। प्रत्येक मनोविश्लेषण का कार्य है कि वह जीवन के इस भूले हुए काम को स्मृति में लाए। यह कल्पना बलात् होती है कि इस काल के यौन जीवन के आरम्भिक अंश ही इस भूलने के प्रेरक कारण होते हैं; अर्थात् यह विस्मरण दमन का परिणाम होता है। तीसरे वर्ष से बालकों के यौन जीवन में वयस्कों के यौन जीवन से बहुत समानता दिखाई देती है। इसमें वयस्कों के यौन जीवन से, जैसा कि हम पहले ही जानते हैं, यह भिन्नता होती है कि इसमें जननेन्द्रियों की प्रधानता वाले स्थायी संगठन का अभाव होता है; विकृत प्रकार के अनिवार्य रूप होते हैं और सारे आवेग में तीव्रता की बहुत कमी होती है। पर यौन परिवर्धन की, या जिसे हम आगे **राग-परिवर्धन** या **लिबिडो-परिवर्धन** कहेंगे, उसकी वे कलाएं, जो सिद्धान्ततः सबसे अधिक दिलचस्पी की हैं, इस काल से पहले होती हैं। यह परिवर्धन इतनी तेज़ गति से होता है कि शायद सिर्फ प्रत्यक्ष प्रेक्षण से इसके जल्दी-जल्दी बदलते हुए रूपों का निर्धारण करने में कभी सफलता नहीं हो सकती। स्नायु-रोगों की मनोविश्लेषण द्वारा जांच से इतनी दूर पीछे तक जाना और राग-परिवर्धन की और भी पहले वाली कलाओं को खोजना सम्भव हुआ है। निश्चित ही ये कलाएं सैद्धान्तिक निर्मिति मात्र हैं, पर मनोविश्लेषण के अभ्यास से आप देखेंगे कि वे आवश्यक और मूल्यवान् निर्मितियां हैं। आप शीघ्र ही समझ जाएंगे कि यह कैसे होता है कि रोग की दशाओं में हम वे घटनाएं देख लेते हैं जिन्हें प्रकृत दशाओं में निश्चित रूप से उपेक्षित कर देते हैं।

इस प्रकार अब हम यह बता सकते हैं कि जननेन्द्रिय क्षेत्र की प्रधानता से पहले बालक का यौन जीवन कौन-कौन-से रूप लेता है। इस प्रधानता की तैयारी शुरू के शैशव काल में, गुप्तता-काल से पहले, होती है, और तरुणावस्था में स्थायी रूप से संगठित हो जाती है। इस आरम्भिक काल में एक ढीला-ढाला संगठन होता है जिसे हम **प्राग् जननेन्द्रिय**[1] कहेंगे; क्योंकि इस काल में सबसे अधिक प्रमुख जननेन्द्रियों की घटक-निसर्ग-वृत्तियां नही होतीं, बल्कि **पीड़कतोषीय** और **गुदीय** निसर्ग-वृत्तियां होती हैं। अभी पुल्लिग और स्त्रीलिंग के भेद का कोई महत्व नहीं होता। इसके बजाय **सक्रिय और निष्क्रिय** का विभेद होता है, जिसे यौन ध्रुवत्व का पूर्ण रूप कहा जा सकता है, जिसके साथ बाद में यह जुड़ भी जाता है। इस काल में हमें जननेन्द्रिय कला के दृष्टिकोण से देखने पर जो चीज़ पुल्लिग प्रतीत होती है, वह आधिपत्य[2] के आवेग की अभिव्यक्ति सिद्ध होती है, जो आसानी से

---

१. Pre-genital. २. Mastery.

क्रूरता में परिवर्तित हो जाती है। निष्क्रिय उद्देश्य वाले आवेगों का सम्बन्ध गुदा के कामजनक क्षेत्र से होता है, जो इस समय बहुत महत्वपूर्ण होता है। दर्शनेच्छा और कुतूहल के आवेग बड़े प्रबल और सक्रिय होते हैं। जननेन्द्रिय यौन जीवन में वास्तव में इतना ही हिस्सा लेती है कि वह पेशाब विसर्जित करती है। इस काल में घटक-निसर्ग-वृत्तियों को आलम्बनों की कमी नहीं होती, पर आवश्यक नहीं कि ये सब आलम्बन एक आलम्बन में शामिल हों। पीड़कतोषीय-गुदीय संगठन जननेन्द्रिय क्षेत्र की प्रधानता की कला से ठीक पहले वाली अवस्था होती है। बारीकी से अध्ययन करने पर पता चलता है कि इसका कितना अंश बाद के अन्तिम ढांचे में, जैसे का तैसा कायम रहता है और किन मार्गों से ये घटक-निसर्ग-वृत्तियां नए **जननेन्द्रिय संगठन** के हित-साधन के लिए प्रयुक्त की जाती हैं। राग-परिवर्धन की पीड़कतोषीय-गुदीय कला के पीछे हमें परिवर्धन की उससे भी आदिम अवस्था की झांकी मिलती है, जिसमें कामजनक मुखक्षेत्र का कार्य मुख्य होता है। आप यह अनुमान कर सकते हैं कि (सिर्फ सुख के लिए) चूसने का यौन व्यापार इस अवस्था से ही सम्बन्ध रखता है, और आप उन प्राचीन मिस्रवासियों की समझ की प्रशंसा करेंगे जिन्होंने होरस देवता को भी मुख में उंगली डाले हुए चित्रित किया है। अब्राहम ने हाल में ही अपना गवेषण कार्य प्रकाशित किया है, जिसमें यह दिखाया गया है कि परिवर्धन की इस आदिम **मुखीय** अर्थात् मुख सम्बन्धी कला के अवशेष बाद के वर्षों के यौन जीवन में भी बचे रहते हैं।

मैं अच्छी तरह कल्पना कर सकता हूं कि यौन संगठन के बारे में यह जानकारी आपको ज्ञानवर्धक के बजाय कष्टदायक लगी होगी। शायद मैं फिर बहुत विस्तार में चला गया, पर जरा धीरज रखिए। जो कुछ अभी बताया गया है, वह बाद में अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। इस समय आप यह बात ध्यान में रखिए कि यौन जीवन—जिसे हम **राग-कार्य**[1] या लिबिडो-कार्य कहते हैं—अपने अन्तिम रूप में ही पहली बार नहीं पैदा होता, और न यह अपने सबसे पहले वाले रूपों के मार्गों पर फैल जाता है, बल्कि उत्तरोत्तर कलाओं की एक श्रेणी में से गुज़रता है जो एक दूसरे से भिन्न होती हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि इसमें उसी तरह बहुत-से परिवर्तन होते हैं जैसे कीड़े (कैटरपिलर) से तितली बनने में। इस परिवर्धन का मोड़-बिन्दु है **सब यौन घटक-निसर्ग-वृत्तियों का जननेन्द्रिय क्षेत्र की प्रधानता के अधीन हो जाना,** और इसके साथ-साथ, यौन प्रवृत्ति या कामुकता को प्रजनन कार्य के हित-साधन में नियुक्त कर लेना। कहा जा सकता है कि इससे पहले यौन-जीवन असम[2] या स्वच्छन्द होता है—अकेले घटक-आवेगों की स्वतंत्र चेष्टाएं अलग-अलग **अंग-सुख** (शरीर के किसी अंग से सुख) पाने का यत्न करती हैं। इस

---

१. Libido function. २. Disparate.

अराजकता को प्राग् जननेन्द्रिय 'संगठनों' की कोशिशों द्वारा सुधारा जाता है; इन संगठनों से पहले मुख्य कला पीड़कतोषीय-गुदीय कला है और उससे पहले मुख वाली कला है जो शायद सबसे आदिम है। इसके अलावा, और अनेक प्रक्रम, जिनके बारे में अभी विशेष जानकारी नहीं है, संगठन की एक अवस्था से उससे ऊपर वाली अगली अवस्था में संक्रमण कराते हैं। राग या लिबिडो के परिवर्धन की इतनी सारी अवस्थाओं की यह लम्बी यात्रा स्नायु-रोगों को समझने में किस तरह सहायक है, यह हम आगे चलकर देखेंगे।

आज हम इस परिवर्धन के दूसरे पहलू, अर्थात् यौन घटक-आवेगों का **आलम्बन** से सम्बन्ध, पर कुछ विचार करेंगे या यों कहिए कि हम इस परिवर्धन की सरसरी झांकी देखेंगे जिससे हम बाद में मिलने वाले इसके परिणाम पर अधिक अच्छी तरह विचार कर सकें। यौन निसर्ग-वृत्ति के कुछ घटक-आवेगों का बिलकुल शुरू से कोई आलम्बन होता है और वे इसे कसकर पकड़े रहते हैं : ये आवेग हैं आधिपत्य (पीड़कतोष), देखना (दर्शनेच्छा) और कुतूहल। दूसरे आवेगों का, जो शरीर के खास कामजनक क्षेत्रों से अधिक साफ तौर से सम्बन्धित होते हैं शुरू में सिर्फ तबतक एक आलम्बन होता है जबतक वे अ-यौन कार्यों पर निर्भर रहते हैं, और जब वे इनसे अलग हो जाते हैं तब वे उसे छोड़ देते हैं। इस प्रकार,यौन निसर्ग-वृत्ति के मुखीय घटक का पहला आलम्बन माता का स्तन है, जो शिशु की पोषण की ज़रूरत पूरी करता है। 'चूसने के लिए चूसने' के कार्य में काम-घटक, जो पोषण के लिए चूसते हुए भी परितुष्ट होता था, स्वतंत्र हो जाता है; बाहरी व्यक्ति में रहने वाले आलम्बन को छोड़ देता है, और इसके स्थान पर शिशु के अपने शरीर के एक हिस्से को अपना आलम्बन बना लेता है। मुखीय आवेग **आत्मकामुक** बन जाता है, जैसे कि गुदीय और दूसरे कामजनक आवेग शुरू से होते है। आगे के परिवर्धन को अधिक से अधिक संक्षेप में रखा जाए तो उसके दो लक्ष्य होते हैं : पहला, आत्मकामुकता को छोड़ना, शिशु के अपने शरीर में प्राप्त आलम्बन को फिर त्याग कर बाहरी आलम्बन ग्रहण करना; और दूसरा, पृथक् आवेगों के बहुत-से आलम्बनों को इकट्ठा मिला देना और उनके स्थान पर सिर्फ एक आलम्बन ग्रहण करना। स्वभावतः यह बात तभी हो सकती है यदि वह अकेला आलम्बन भी अपने आप में पूरा हो, और उसका भी आश्रय के शरीर की तरह शरीर हो; ऐसा करने के लिए यह भी आवश्यक है कि आत्मकामुक आवेग-उत्तेजनों के कुछ हिस्से को बेकार मानकर छोड़ दिया जाए।

आलम्बन जिन प्रक्रमों से प्राप्त किया जाता है, वे कुछ उलझनदार हैं और उनका अभी तक अच्छा खुलासा नहीं हो सका। हमारे प्रयोजन के लिए इस बात पर बल दिया जा सकता है कि जब बचपन के वर्षों में, गुप्ततताकाल से पहले, प्रक्रम एक निश्चित स्थान पर पहुंच जाता है, तब अपनाया गया आलम्बन मुखीय

सुख-आवेग के प्रथम आलम्बन से, जिसे बालक ने इससे निर्भरता का सम्बन्ध होने के कारण अपनाया था, प्रायः अभिन्न सिद्ध होता है; अर्थात् यह माता होती है, यद्यपि माता का स्तन नहीं। माता को हम पहला **प्रेम**-आलम्बन कहते हैं। 'प्रेम' हम तब कहते हैं जब यौन आवेगों के मानसिक पहलू पर बल देते हैं, और आवेगों के आधारभूत शारीरिक या 'ऐन्द्रिक' पहलू की आवश्यकताओं को छोड़ देते हैं, या जरा देर के लिए भूल जाना चाहते हैं। जिस समय माता प्रेम-आलम्बन बन जाती है, लगभग उसी समय बालक में दमन की मानसिक प्रक्रिया शुरू हो चुकी होती है और उसके यौन उद्देश्यों के कुछ हिस्से का ज्ञान उससे छीन लिया जाता है। प्रेम आलम्बन के लिए इस प्रकार माता को चुनने के साथ वे सब बातें जुड़ी हुई हैं जो **ओडिपस ग्रन्थि** या मातृप्रणय-ग्रन्थि[1] के नाम से पुकारी जाती हैं, जिनका स्नायु-रोगों की मनोविश्लेषणीय व्याख्या में इतना अधिक महत्व हो गया है और शायद मनोविश्लेषण का विरोध पैदा करने में भी जिसका इतना ही महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है।

एक छोटी-सी घटना है जो इन युद्ध के दिनों में हुई थी। मनोविश्लेषण का एक कट्टर अनुयायी पोलैंड के मोर्चे पर डाक्टर के रूप में काम कर रहा था। उसके दूसरे सहयोगियों का यह देखकर उसकी ओर ध्यान खिंचा कि कई बार वह किसी-किसी रोगी पर अप्रत्याशित प्रभाव डाल देता था। पूछने पर उसने माना कि मैं मनोविश्लेषण की विधियों का प्रयोग करता हूं और वह अपने सहयोगियों को अपना ज्ञान देने को तैयार हो गया। इस प्रकार, उसके दल के चिकित्सक अधिकारी, उसके सहयोगी और अफसर, हर सायंकाल मनोविश्लषण के रहस्यों को समझने के लिए इकट्ठे होने लगे। कुछ समय तक सब ठीक चलता रहा, पर जब उसने अपने श्रोताओं को ओडिपस ग्रन्थि का परिचय दिया, तब एक बड़ा अफसर खड़ा हो गया, और उसने कहा कि 'मैं इन सब बातों को नहीं मानता, और बहादुर लोगों को, जो परिवारों के पिता हैं और अपने देश की खातिर लड़ रहे हैं, ऐसी बातों पर व्याख्यान देना नीच कार्य है,' और उसने व्याख्यान जारी रहने पर रोक लगा दी। इस प्रकार उनका अन्त हो गया, विश्लेषक को मोर्चे के दूसरे हिस्से पर भेज दिया गया। पर मेरी राय में, यदि जर्मन सेना की विजय विज्ञान की ऐसी दलबन्दी पर निर्भर है तो उसका भविष्य अच्छा नहीं और ऐसी किसी दलबन्दी से जर्मन विज्ञान समृद्ध नहीं होगा।

अब आप यह जानने के लिए अधीर होंगे कि इस भयानक ओडिपस ग्रन्थि में क्या-क्या बात आती है। राजा ओडिपस की ग्रीक पुराणों में जो कथा आती है, उससे आप परिचित होंगे—ओडिपस के विषय में यह भविष्यवाणी की गई थी कि

---

१. Oedipus complex.

वह अपने पिता को मारेगा और अपनी माता से विवाह करेगा। उसने इन भविष्य-वाणियों को झूठा सिद्ध करने की भरसक कोशिश की, और जब उसे यह पता चला कि उसने अज्ञान में ये दोनों अपराध कर लिए हैं, तब दण्ड के रूप में उसने अपने आपको अन्धा कर लिया। इसीलिए इसे ओडिपस ग्रन्थि कहा जाता है। मैं समझता हूं कि सोफोक्लीज ने इस कहानी से जो दुखान्त नाटक बनाया है, उसका गहरा प्रभाव आपने स्वयं अनुभव किया होगा। इस यूनानी कवि की रचना में ओडिपस के कार्य का, जो बहुत पहले किया जा चुका था, क्रमशः उद्घाटन किया गया है; और पूछताछ के प्रसंग को बड़ी कुशलता से लम्बा करके, और उसे लगातार नए साक्ष्य से पुष्ट करके धीरे-धीरे सामने रखा गया है; इस प्रकार, यह कुछ-कुछ मनोविश्लेषण के तरीके जैसा है। संवाद में, भ्रम में पड़ी हुई माता-पत्नी जोकास्टा इस पूछताछ को जारी रखने का विरोध करती है। वह कहती है कि स्वप्नों में बहुत-से लोगों ने अपनी माताओं से सम्भोग किया है, पर स्वप्नों का कोई महत्व नहीं है। हमारे लिए स्वप्नों का बहुत महत्व है, विशेष रूप से प्रारूपिक स्वप्नों का, जो बहुत-से लोगों को आते हैं। हमें कुछ भी सन्देह नहीं कि जोकास्टा जिस स्वप्न की बात कहती है, उसका पौराणिक आख्यान की भयंकर कहानी से गहरा सम्बन्ध है।

यह आश्चर्य की बात है कि सोफोक्लीज के दुखान्त नाटक से उसके श्रोताओं में रोषपूर्ण विरोध नहीं पैदा होता। उनमें यह प्रतिक्रिया पैदा होना अधिक उचित होता, जो कि उस मन्द बुद्धि सैनिक डाक्टर में पैदा हुई थी; क्योंकि मूलतः यह अनैतिक नाटक है। यह सामाजिक नियम के प्रति मनुष्य की जिम्मेदारी को दूर कर देता है, और यह दिखलाता है कि दैवी बलों के विधान से यह अपराध होता है; और मनुष्य की नैतिक निसर्ग-वृत्ति, जो इस अपराध से उसकी रक्षा करती, शक्तिहीन हो जाती है। यह मानना आसान है कि पौराणिक आख्यान की कथा में भाग्य और देवताओं को दोष देने का आशय मौजूद रहा होगा; बुद्धिवादी यूरीपिडीज की रचना में, जो दैवी शक्तियों का विरोधी था, यह चीज़ सम्भवतः ऐसा दोषारोपण बन जाती, पर धर्मप्राण सोफोक्लीज के साथ ऐसे आशय का प्रश्न ही नहीं पैदा होता। उसकी धार्मिक भावना देवताओं की इच्छा के पालन को सबसे ऊंची नैतिकता बताती है; यहां तक कि जब वे अपराध का विधान करें, तब भी; और इस तरह वह इस दोष का भागी नहीं बनाया जा सकता। मैं यह नहीं समझता कि उस नाटक का यह संदेश भी उसकी एक अच्छाई है, पर इससे उसके प्रभाव में कमी भी नहीं होती। इससे श्रोता उदासीन बना रहता है। वह इसपर कोई प्रतिक्रिया नहीं करता, बल्कि स्वयं पौराणिक कथा के गूढ़ अर्थ और वस्तु पर इस तरह प्रतिक्रिया करता है, मानो आत्मविश्लेषण करके उसने अपने भीतर ओडिपस ग्रन्थि का पता लगा लिया है, और यह मान लिया है कि देवताओं की इच्छा और भविष्य-

वाणी मेरे ही अचेतन का गरिमा से ढका हुआ रूप है; मानो उसे यह याद आ गया है कि उसमें अपने पिता को खत्म कर देने और उसकी जगह अपनी माता से विवाह करने की इच्छा थी, और उसे इस विचार से घृणा करनी चाहिए। कवि के शब्दों का उसे यह अर्थ प्रतीत होता है : "आप व्यर्थ ही अपने को दोषी होने से इन्कार करते हैं; आप व्यर्थ ही यह बताते हैं कि आपने इन बुराइयों से बचने की कितनी कोशिश की; इसलिए आप अपराधी हैं, क्योंकि आप उन्हें दूर नहीं कर सके, वे अब भी अचेतन रूप में आपके भीतर मौजूद हैं।" और इसमें मनोवैज्ञानिक सत्य है। यद्यपि मनुष्य ने अपनी दूषित इच्छाओं का दमन करके उन्हें अपने अचेतन में भेज दिया है और तब वह खुशी से अपने मन में कहता है कि अब मैं उनके लिए उत्तरदायी नहीं, तो भी उसे इस रूप में अपनी जिम्मेदारी महसूस करनी पड़ती है कि उसके हृदय में एक ऐसी अपराध-भावना है जिसकी उसे कोई बुनियाद नहीं दिखाई देती।

इस बात में कोई सन्देह नहीं हो सकता कि स्नायु-रोगियों को प्रायः तंग करने वाली अपराध-भावना के सबसे महत्वपूर्ण स्रोतों में से एक ओडिपस ग्रन्थि है। इसके अतिरिक्त एक और बात है : मैंने १९१३ में **टौटेम अंड टैबू** (Totem und Tabu) शीर्षक एक अध्ययन प्रकाशित किया था, जिसमें धर्म और नैतिकता के प्राचीनतम रूपों का परिचय था। उसमें मैंने यह आशंका प्रकट की थी कि शायद सारी मनुष्य जाति की अपराध-भावना, जो सारे धर्म और नैतिकता का मूल स्रोत है, इतिहास के आरम्भ में ओडिपस ग्रन्थि के द्वारा ही प्राप्त की गई होगी। मैं इस विषय में आपको बहुत कुछ बताना चाहता हूं, पर अच्छा यह होगा कि न बताऊं। इस विषय को एक बार शुरू करके छोड़ देना कठिन है, और अब हमें फिर व्यष्टि मनोविज्ञान पर लौट आना चाहिए।

तो गुप्तता-काल से पहले वाले आलम्बन-चुनाव के काल में बालकों के सीधे प्रेक्षण से ओडिपस ग्रन्थि के बारे में हमें क्या पता चलता है? आसानी से दीख जाता है कि वह, जहां शिशु पुरुष अपनी सारी की सारी माता को अपने लिए ही चाहता है, अपने पिता को इसमें बाधक देखता है; जब पिता को उसका आलिंगन करते देखता है, तब बेचैन हो जाता है और जब पिता बाहर चला जाता है या अनुपस्थित होता है, तब वह अपना सन्तोष जाहिर करता है। वह अपनी भावनाएं सीधे तौर से शब्दों में प्रायः प्रकट करता है, अपनी माता को वचन देता है कि मैं तेरे साथ विवाह करूंगा; ओडिपस के कृत्यों की तुलना में यह बात कुछ बड़ी नहीं प्रतीत होगी, पर तथ्य की दृष्टि से यह काफी है, दोनों का सार एक ही है। बहुत बार प्रेक्षण में यह देखकर पहेली-सी लगने लगती है कि इस काल में वही बालक किसी समय पिता के लिए बड़ा अनुराग प्रदर्शित करेगा; पर भावना की ऐसी विषम, या ठीक-ठीक कहा जाए तो **उभयक**[1] एक जगह मौजूद अर्थात् विपरीत भावनाओं

१. Ambivalent.

की अवस्थाएं, जो वयस्कों में संघर्ष पैदा कर देंगी, बालकों में बहुत समय तक एक साथ आराम से रह सकती हैं, जैसे कि वे बाद में अचेतन में स्थायी रूप से इकठ्ठी रहती हैं। यह आक्षेप किया जा सकता है कि छोटे बच्चे का व्यवहार अहंकार से प्रेरित है, और उसमें कामुकता-ग्रंथि का अवधारण उचित नहीं। माता बालक की सब आवश्यकताओं का ध्यान रखती है, और परिणामतः बच्चे का हित इस बात में है कि वह और किसीकी ओर ध्यान न दे। यह भी बिलकुल सही है, पर शीघ्र ही यह स्पष्ट हो जाता है कि ऐसी निर्भरता की स्थितियों की तरह इसमें भी अहंकारमूलक हितों से सिर्फ वह अवसर प्रस्तुत होता है, जिससे कामुकता-आवेग लाभ उठाते हैं। जब छोटा बालक अपनी माता के बारे में बिलकुल खुले आम यौन कुतूहल प्रकट करता है, रात में उसके साथ सोना चाहता है, उसके कपड़े बदलते समय उसी कमरे में रहने का आग्रह करता है, और उससे शारीरिक काम-चेष्टाओं की भी कोशिश करता है, जिन्हें माता प्रायः देखती है और हंसते हुए औरों को सुनाती है, तब उसके प्रति इस आसक्ति का कामुकरूप असंदिग्धरूप से सिद्ध हो जाता है। इसके अतिरिक्त, यह नहीं भूलना चाहिए कि इस तरह छोटी पुत्री की आवश्यकताएं पूरी करके भी माता यही परिणाम पैदा करती है, और प्रायः पिता लड़के के लिए उतनी ही तकलीफ उठाने में माता के साथ उत्साह से होड़ करता है, पर उसकी नजरों में वही महत्व पाने में असफल रहता है, जो माता को प्राप्त है। संक्षेप में, लिंग-पसन्दगी वाली बात कितनी भी आलोचनाओं द्वारा वस्तुस्थिति में से हटाई नहीं जा सकती। लड़के की अहंकारमूलक दिलचस्पी की दृष्टि से,यह कोरी मूर्खता होगी कि वह अपनी सेवा सिर्फ़ एक व्यक्ति के बजाए दोनों व्यक्तियों से कराने को तैयार न हो।

जैसा कि आप देखते हैं, मैंने लड़के के अपने पिता और माता से सम्बन्ध का ही वर्णन किया है। आवश्यक उलट-फेर के साथ ठीक यही बात छोटी लड़कियों में चलती है। पिता से प्रेमपूर्ण अनुराग, अनावश्यक माता को हटाने और उसका स्थान ग्रहण करने की आवश्यकता, तरुणावस्था में होने वाले हाव-भावों और लीला का शुरू में ही प्रदर्शन——ये सब बातें मिलकर छोटी लड़की का विशेष रूप से मोहक चित्र बना देती हैं, और हम इसकी गम्भीरता और इस स्थिति से बाद में पैदा हो सकने वाले गम्भीर परिणामों को भूल जाते हैं। यह बात और कह दी जाए कि बहुत बार बालक में ओडिपस ग्रन्थि पैदा करने में स्वयं माता-पिता का ही सबसे निश्चायक प्रभाव पड़ता है। वे स्वयं, एक से अधिक बालक होने पर, लिंग-आकर्षण से प्रभावित होते हैं—पिता अपनी छोटी लड़की के प्रति असंदिग्ध रूप में प्यार प्रदर्शित करता है और माता पुत्र के प्रति; पर इस बात से भी शैशवीय ओडिपस ग्रंथि की स्वयंस्फूर्तता पर गम्भीर आक्षेप नहीं आता। जब और बच्चे हो जाते हैं, तब ओडिपस ग्रंथि विस्तृत हो जाती है, और वह परिवार-ग्रंथि बन

जाती है। अहंकारमूलक दिलचस्पियों को लगने वाले आघात से नया बल पाकर यह इन नए बच्चों के प्रति अरुचि की भावना और फिर उनसे छुटकारा पाने की निःसंकोच इच्छा पैदा करती है। ये घृणा की भावनाएं साधारणतया जनकीय ग्रंथि[1] से सम्बन्धित घृणा-भावनाओं की अपेक्षा अधिक खुले आम प्रकट की जाती हैं। यदि यह इच्छा पूरी हो जाए और कुछ समय बाद परिवार में अनचाही वृद्धि मृत्यु के कारण हट जाए, तो बाद के विश्लेषण से पता चलेगा कि बालक के लिए इस मृत्यु का भी कितना अर्थ था; यद्यपि यह आवश्यक नहीं कि इसकी याद उसे बनी रहे। दूसरे शिशु के पैदा हो जाने के कारण पहले बालक को मजबूरन दूसरे स्थान पर हटना पड़ता है, और अब पहली बार वह माता से प्रायः पूरी तरह अलग हो जाता है। इसलिए इस तरह अपने अलग कर दिए जाने को माफ कर देना उसके लिए बड़ा कठिन है। उसमें वैसी ही भावनाएं पैदा हो जाती हैं जिन्हें वयस्कों में हम 'गहरी कटुता की भावना' कहते ह, और प्रायः वे अस्थायी वैमनस्य का आधार बन जाती हैं। यह पहले ही बताया जा चुका है कि यौन कुतूहल और इसके बाद की सब बातों का प्रायः इन अनुभवों से सम्बन्ध होता है। जब ये नए भाई और बहन बड़े होते हैं तब उनके प्रति बालक के रुख में बहुत महत्वपूर्ण परिवर्तन हो जाते ह। लड़का अपनी निष्ठाहीन माता के स्थान पर अपनी बहन को प्रेम आलम्बन बना सकता है; जहां एक छोटी बहन को आकृष्ट करने वाले कई भाई होते ह, वहां बालकपन में ही विरोधपूर्ण प्रतिस्पर्धा पैदा हो जाती है, जो बाद के जीवन में बड़े महत्व की सिद्ध होती है। छोटी लड़की अपने से बड़े भाई को पिता का स्थानापन्न बना लेती है, क्योंकि पिता अब उससे बचपन के जैसा प्यार नहीं करता, या वह किसी छोटी बहन को उस शिशु का स्थानापन्न बना लेती है जो वह अपने पिता से पाना चाहती थी, पर न पा सकी।

यह और इसी तरह की अन्य बहुत-सी बातें बालकों के सीधे प्रेक्षणों से और बचपन की स्पष्ट स्मृतियों पर विचार करने से बिना विश्लेषण के दिखाई देती हैं। आप इससे, और बातों के अलावा, यह अनुमान भी कर सकते हैं कि भाइयों और बहनों के क्रम में बालक की जो स्थिति है, वह उसके बाद के जीवन के लिए बहुत अधिक अर्थपूर्ण है, जिस पर प्रत्येक जीवन-चरित्र में विचार करना चाहिए; पर इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि आसानी से प्राप्त होनेवाली इन ज्ञानवर्धक बातों को सुनकर आप निषिद्ध सम्भोग[2] का निषेध होने के कारणों के वैज्ञानिक सिद्धान्तों को याद करके मुस्करा पड़ेंगे। इसके लिए क्या-क्या उपाय नहीं सोचे गए? हमें बताया जाता है कि एक परिवार में विपरीत लिङ्ग के सदस्यों से यौन आकर्षण इसलिए हट जाता है कि वे बिलकुल बचपन से इकट्ठे रहते हैं, या अन्तरभिजनन

---

१. Parental complex. २. Incest.

के विरुद्ध जैविकीय प्रवृत्ति जैसी प्रवृत्ति के कारण मन में निषिद्ध सम्भोग का भय होता है। इस तरह सोचते हुए यह बिलकुल भुला दिया जाता है कि यदि निषिद्ध सम्भोग के प्रलोभन के विरुद्ध कोई विश्वसनीय प्राकृतिक रुकावटें होतीं तो कानून और रूढ़ि में ऐसे प्रबल निषेधों की आवश्यकता न रहती। सचाई बिलकुल इसके विपरीत है। मनुष्य जाति में आलम्बन का पहला चुनाव सदा निषिद्ध सम्भोगवाला ही होता है। पुरुषों के लिए वह माता और बहन होती हैं, और इस चली आनेवाली शैशवीय प्रवृत्ति को कार्यरूप में परिणत होने से रोकने के लिए बहुत कठोर निषेधों की आवश्यकता होती है। आज जो जंगली और आदिम जातियां मौजूद हैं, उनमें निषिद्ध सम्भोग विषयक निषेध हमारे यहां से बहुत अधिक कठोर हैं। थियोडोर-रीक ने हाल में ही एक बहुत उत्तम पुस्तक में यह बताया है कि तरुणावस्था या प्रौढ़ता पर जंगली लोगों में होनेवाले कर्मकाण्ड का, जो द्वितीय जन्म को निरूपित करता है, अर्थ है माता के प्रति बालक की निषिद्ध संभोगात्मक आसक्ति को शिथिल कर देना और पिता के साथ उसका फिर मेल-मिलाप करा देना।

पौराणिक साहित्य से पता चलता है कि जिस निषिद्ध सम्भोग से मनुष्य इतनी घृणा प्रदर्शित करते हैं, उसकी उन्होंने अपने देवताओं को बिना विचारे छूट दे रखी है; और प्राचीन इतिहास से आपको पता चलेगा कि बहन के साथ निषिद्ध सम्भोगात्मक विवाह राजाओं (मिस्र के फारो, और पेरू के इनका) के लिए धार्मिक कर्तव्य बताया गया था। इसलिए यह एक तरह का विशेषाधिकार था जो आम लोगों को नहीं दिया गया था।

ओडिपस का एक अपराध था माता के साथ निषिद्ध सम्भोग और दूसरा था पिता की हत्या। प्रसंगतः, टौटेमवाद, जो मनुष्य जाति की पहली सामाजिक-धार्मिक संस्था है, उन्हें सबसे बड़ा अपराध मानता है। अब बालकों के प्रत्यक्ष प्रेक्षण को छोड़कर वयस्क स्नायु-रोगियों की मनोविश्लेषण सम्बन्धी जांच की ओर आइए। विश्लेषण से ओडिपस ग्रन्थि के बारे में और क्या जानकारी मिलती है? यह बताया जाता है कि ग्रन्थि ठीक उसी रूप में प्रकट होती है जिस रूप में वह पौराणिक कथा में बताई गई है। यह पता चलता है कि इन स्नायु-रोगियों में से प्रत्येक व्यक्ति या तो स्वयं ओडिपस था, और या ग्रन्थि से उत्पन्न प्रतिक्रिया में 'हैमलेट' बन गया था, जो एक ही बात है। सचाई यह है कि विश्लेषण से ओडिपस ग्रन्थि का जो चित्र सामने आता है, वह शैशवीय रेखाचित्र का बड़ा और गहरा संस्करण ही होता है; अब पिता से घृणा और उसके मर जाने की इच्छा धुंधला संकेतमात्र नहीं रहती। माता के प्रति अनुराग मुखर हो जाता है, जिसका उद्देश्य उसे अपनी स्त्री बनाना होता है। क्या भावनाओं के इस भद्देपन और तीव्रता का कारण सचमुच बच्चे की नासमझी की उम्र को बताया जा सकता है, अथवा क्या विश्लेषण एक नया कारक पेश करके हमें धोखे में डाल रहा है? इन दोनों में से एक का भी पता लगाना

कठिन नहीं। जब कभी कोई व्यक्ति भूतकाल का वर्णन करता है, चाहे वह इतिहास-कार्य ही हो, तब हमें उन सब बातों को भी देखना पड़ता है, जिन्हें वह ऐसा आशय न रखते हुए भी, वर्तमान और बीच के कालों से भूतकाल में डाल देता है, और इस तरह उसे मिथ्या बना देता है। स्नायु-रोगी के मामले में यह भी संदिग्ध है कि यह प्रतिवर्तन[1] सर्वथा बिना आशय के होता है। आगे चलकर हम देखेंगे कि इसके लिए भी प्रेरक कारण होते हैं, और हमें 'प्रतीपगामी[2] कल्पना-निर्माण' के सारे विषय पर खोज करनी चाहिए, जो सुदूर भूतकाल तक जाता है। हमें यह भी शीघ्र ही पता चल जाता है कि पिता के विरुद्ध घृणा बाद के कालों में पैदा हुए कई प्रेरक कारणों से और जीवन के अन्य सम्बन्धों से पुष्ट हुई है, और माता के प्रति यौन इच्छाएं ऐसे रूपों में ढल गई हैं जो अब तक बच्चे के लिए अपरिचित होते। पर यदि हम सारी ओडिपस ग्रन्थि की व्याख्या 'प्रतिगामी कल्पना-निर्माण' से और जीवन के बाद के काल में पैदा होनेवाले प्रेरकों से करने की कोशिश करेंगे, तो वह निष्फल होगी। शैशवकाल का नाभिक[3], और इसमें जो कुछ अभिवृद्धि हुई हो, वह जैसे के तैसे बने रहते हैं, जिसकी पुष्टि बालकों के प्रत्यक्ष प्रेक्षण से होती है।

अब हमारे लिए वह चिकित्सा सम्बन्धी तथ्य सबसे अधिक व्यावहारिक महत्व का हो जाता है जो विश्लेषण द्वारा सिद्ध ओडिपस ग्रन्थि के रूप के पीछे से हमारे सामने आता है। हमें पता चलता है कि प्रौढ़ता के समय जब यौन निसर्ग-वृत्ति सबसे पहले अपनी आवश्यकताएं पूरी ताकत से पेश करती है, तब पुरानी परिचित निषिद्ध सम्भोगात्मक वस्तु राग या लिबिडो से ढके हुए रूप में पुनः ग्रहण की जाती है, मानो शैशव काल का आलम्बन-चुनाव खेल में किया गया एक विनोदात्मक यत्न था, पर इसने प्रौढ़ता के आलम्बन-चुनाव के लिए दिशा निश्चित कर दी। इस समय ओडिपस ग्रन्थि की दिशा में या इसके विरोध में भावना का बड़ा तीव्र प्रवाह सक्रिय हो जाता है, पर क्योंकि उन भावनाओं की मानसिक पूर्वावस्थाएं असह्य हो गई हैं, इसलिए ये भावनाएं अधिकांशतः चेतन के बाहर ही रहती हैं। प्रौढ़ता या तरुणावस्था के समय से मनुष्य को **जनकों से अपने आपको स्वतन्त्र करने** के भारी काम में लगाना पड़ता है, और इस आसक्ति को छोड़ देने के बाद ही उसका बालकपन खत्म हो सकता है, और इस प्रकार वह सामाजिक समुदाय का सदस्य बन सकता है। पुत्र के लिए यह कार्य है कि वह अपनी रागात्मक अभिलाषाओं को अपनी माता से हटा ले, जिससे वह उसका उपयोग यथार्थ रूप में एक बाहरी प्रेम-आलम्बन की खोज में कर सके; और दूसरे, यदि वह अपने पिता का विरोधी रहा है, तो उसके साथ मेल कर ले, या यदि शैशवकाल के विद्रोह की प्रतिक्रिया के रूप में वह उसके अधीन हो गया है, या उसका साधनमात्र बन गया है, तो उसके आधिपत्य से अपने को मुक्त कर ले। ये कार्य प्रत्येक पुरुष के लिए हैं,

१. Retroversion. २. Retrogressive. ३. Nucleus.

पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि वे आदर्श रूप में बहुत कम उदाहरणों में पूर्ण किए जाते हैं, अर्थात् ऐसा बहुत कम होता है कि वे मनोवैज्ञानिक और सामाजिक दृष्टि से सन्तोषजनक रीति से हल हो जाएं। पर स्नायु-रोगियों में जनकों से यह अलगाव बिलकुल भी नहीं हो पाता। पुत्र सारे जीवन अपने पिता की अधीनता में रहता है, और अपने राग को किसी नए यौन आलम्बन पर स्थानान्तरित करने में असमर्थ होता है। इससे उलटे सम्बन्ध में यही अवस्था पुत्री की होती है। इस अर्थ में ओडिपस ग्रन्थि को स्नायु-रोगों का साररूप समझना उचित ही है।

आप कल्पना कर सकते हैं कि मैं ओडिपस ग्रन्थि के साथ सम्बद्ध बहुत सारे सम्बन्ध-सूत्रों की, जो व्यवहार और सिद्धान्त की दृष्टि से बड़े महत्व के हैं, कितनी अधूरी रूपरेखा दे रहा हूं। मैं इसके परिणमनों[1] (या विभिन्न रूपों) और सम्भव अपवर्तनों[2] की जरा भी चर्चा नहीं करूंगा। इसके जरा दूर के परिणमनों में से सिर्फ एक की चर्चा करना चाहता हूं, जिससे यह सिद्ध होता है कि इसने साहित्य-सृजन को बहुत ही अधिक प्रभावित किया है। औटो रैंक ने एक बहुत मूल्यवान गवेषण कार्य में यह दिखाया है कि सब युगों के नाटक-लेखकों ने अपनी सामग्री मुख्यतः ओडिपस तथा निषिद्ध सम्भोग-ग्रन्थि और इसके परिणमनों तथा छिपे हुए रूपों से ली है। यह कह देना भी उचित होगा कि मनोविश्लेषण के समय से बहुत पहले ओडिपस के दोनों दण्डनीय अपराध असंयत निसर्ग-वृत्ति की सच्ची अभिव्यक्तियां माने जाते थे। एन्साइक्लोपीडिया-लेखक डिडेरो की प्रतियों में आपको वह प्रसिद्ध संवाद **ल नेव्यू द रामो** (Le neveu de Rameau) मिलेगा, जिसका गेटे जैसे साहित्यकार ने जर्मन भाषा में अनुवाद किया था। उसमें आपको ये विलक्षण शब्द पढ़ने को मिलेंगे: "यदि इस छोटे-से जंगली का बल चले, यदि उसकी विमूढ़ता प्रतिरूप में मौजूद हो, और यदि उसमें दुधमुंहे बच्चे जितनी भी समझ हो और साथ ही तीस वर्ष के युवक बराबर प्रबल वासनावेश भी हो तो वह अपने पिता की गर्दन मरोड़ देगा और अपनी माता से संभोग करेगा।"

एक चीज़ और है जिसे मैं नहीं छोड़ सकता। ओडिपस की माता-पत्नी से हमें स्वप्नों का स्मरण आएगा। क्या आपको स्वप्न-विश्लेषणों के परिणाम अभी याद हैं? किस तरह स्वप्न-निर्माण करने वाली इच्छाएं प्रायः विकृत और निषिद्ध-सम्भोगात्मक सिद्ध हुई थीं या उनमें निकट के और प्रिय सम्बन्धियों के प्रति अनाशंकित शत्रुता दिखाई दी थी? तब हमने भावना के इन दूषित प्रयत्नों के स्रोत को बिना व्याख्या किए छोड़ दिया था। अब आप स्वयं इस प्रश्न का उत्तर दे सकते हैं। वे राग या लिबिडो के विन्यास[3] और आलम्बनों पर राग का आच्छादन[4] हैं, जो बिलकुल बचपन के काल से सम्बन्ध रखते हैं, और बहुत समय से चेतन जीवन

---

१. Variations. २. Inversions. ३. Dispositions. ४. Investments

में त्यागे जा चुके हैं; पर जो रात में अब भी अपनी मौजूदगी सिद्ध कर देते हैं, और एक अर्थ में, कार्य करने में समर्थ हैं। पर क्योंकि इस तरह विकृत निषिद्ध सम्भोगात्मक हत्या वाले स्वप्न सब लोगों को आते हैं, और सिर्फ स्नायु-रोगियों को नहीं आते, इसलिए हम यह अनुमान कर सकते हैं कि जो लोग ओज प्रकृत हैं, वे ओडिपस ग्रन्थि की विकृतियों और आलम्बन-आच्छादनों में से गुजर चुके हैं, और यह ही प्रकृत परिवर्धन का रास्ता है। इतनी ही बात है कि जो चीज हमें प्रकृत लोगों के स्वप्न-विश्लेषणों में भी प्रकट होती दिखाई देती है, वह स्नायु-रोगियों में बड़े अतिरंजित रूप में होती है, और यह भी एक कारण है जिससे हमने स्नायाविक लक्षणों पर विचार करने से पहले स्वप्नों का अध्ययन करना उचित समझा था।

व्याख्यान | २२

परिवर्धन और प्रतिगमन के अनेक पहलू : *कारणता

जैसा कि हम देख चुके हैं राग-कार्य प्रकृत कहलाने वाली रीति से प्रजनन-कार्य का सहायक बनने से पहले एक लम्बे परिवर्धन में से गुजरता है। अब मैं स्नायु-रोगों के कार्य-कारण-सम्बन्ध में इस तथ्य का महत्व बताऊंगा।

मैं समझता हूं कि यह मान्यता साधारण रोग-विज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार ही है कि ऐसे परिवर्धन में दो ख़तरे रहते हैं : पहला **निरोध**[1] का और दूसरा **प्रतिगमन**[2] का। कहने का मतलब यह कि जैविकीय प्रक्रमों में परिणमन या भिन्नता होने की व्यापक प्रवृत्ति के कारण यह आवश्यक है कि इन सब प्रारम्भिक कलाओं को उतनी ही सफलता से पार नहीं किया जा सकेगा और उतने ही पूर्णरूप से उनसे आगे वृद्धि नहीं हो सकेगी। कार्य के कुछ हिस्से इन आरम्भिक अवस्थाओं में स्थायी रूप से अवरुद्ध हो जाएंगे, जिसका परिणाम यह होगा कि साधारण परिवर्धन के साथ थोड़ा-सा निरुद्ध परिवर्धन भी चलता जाएगा।

दूसरे क्षेत्रों में इन प्रक्रमों जैसे प्रक्रम खोजने चाहिएं। जब कोई सारी की सारी जाति अपने वासस्थान को छोड़कर नए देश की खोज में निकलती थी, जैसा कि मानव इतिहास के आरम्भिक काल में बहुत होता था, तब वे सबके सब लोग निश्चित ही नई मंज़िल पर नहीं पहुंचते थे। और कारणों से होनेवाली हानियों के अलावा, सदा ऐसा भी अवश्य हुआ होगा कि देश छोड़ने वाले लोगों के छोटे-छोटे समूह या टोलियां रास्ते में रुक गई होंगी, और पड़ावों पर ही बस गई होंगी; जब कि शेष लोग आगे चलते गए होंगे। या एक और अधिक पास का-सा दृश्य लीजिए। आप जानते हैं कि ऊंचे स्तन्यपायियों में वीर्य-ग्रंथियां, जो शुरू में उदर-विवर में बहुत नीचे होती हैं, गर्भाशय के अन्दर होने वाले परिवर्धन के एक निश्चित काल पर संच-

---

* Aetiology. १. Inhibition. २. Regression.

लन करने लगती हैं, जिससे वे श्रोणि[1] के सिरे की त्वचा के लगभग नीचे आ जाती हैं। कुछ नरों में यह देखा जाता है कि अंगों की इस जोड़ी में से एक श्रोणि-विवर में रह गईहै, या इसने इंग्वाइनल कैनाल (वंक्षण नाली) में, जिसमें से इन दोनों को गुजर कर आना था, एक ने अपना स्थायी स्थान बना लिया है, अथवा यह होता है कि नाली जो प्रकृत रूप से वीर्य-ग्रन्थियों के इसमें से गुजर जाने के बाद बन्द हो जानी चाहिए, बन्द नहीं हुई है। जब छात्रावस्था में वी० ब्रुक की देख-रेख में वैज्ञानिक गवेषणा का पहला काम कर रहा था, तब मैं एक छोटी मछली की, जो अभी बड़े आद्य या अति प्राचीन रूप में थी, मेरु-रज्जु (स्पाइनल कौर्ड) में पृष्ठीय स्नायु-मूलों (डौर्सल नर्व-रूट्स) के उद्गम पर कार्य कर रहा था। मैंने देखा कि इन मूलों के स्नायु-तंतु भूरे द्रव्य (ग्रे मैटर) के पश्च सींग (पोस्टीरियर हार्न) पैदा होते थे—यह अवस्था अब दूसरे पृष्ठवंशियों (वर्टेब्रेट्स) में नहीं पाई जाती, पर कुछ ही समय बाद मैंने देखा कि वैसी ही स्नायु-कोशिकाएं (नर्व-सेल्स) पश्च मूलों की तथा-कथित स्पाइनल गैंगलियोन (मेरु-ग्रगंड) की सारी लम्बाई पर भूरे द्रव्य से बाहर भी मौजूद थीं, जिससे मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि हरे गैंगलियोन की कोशिकाएं स्नायु-मूलों के साथ-साथ मेरु-रज्जु (स्पाइनल कौर्ड) से बाहर चली गई हैं। विकासात्मक परिवर्धन (एवोल्यूशनरी डेवलपमेंट) से भी यह बात मालूम होती है, पर इस छोटी-सी मछली में सारे रास्ते पर वे कोशिकाएं मौजूद थीं, जो रास्ते में रुद्ध[2] हो गई थीं। बारीकी से विचार करने पर आपको तुरन्त पता चल जाएगा कि इन तुलनाओं में कहां-कहां कमजोरियां हैं। इसलिए मैं सिर्फ इतना कहता हूं कि हमारी राय में यह हो सकता है कि प्रत्येक पृथक यौन-आवेग के एकाकी अंश परिवर्धन की किसी आरम्भिक अवस्था में रहे हों, जबकि उसी समय इसके दूसरे अंश अपने अन्तिम उद्देश्य पर पहुंच गए हों। इससे आपको पता चलेगा कि ऐसे प्रत्येक आवेग को हम जीवन के आरम्भ से निरन्तर बहती हुई धारा मानते हैं, और हमने इसके प्रवाह को कृत्रिम रूप से, पृथक, क्रमिक तथा अग्रगामी संचलनों में कुछ सीमा तक विभाजित कर दिया है। आपकी यह धारणा सही है कि इन मान्यताओं का और स्पष्टीकरण होना चाहिए, पर अधिक स्पष्टीकरण की कोशिश से हम अपने विषय से बहुत बाहर चले जाएंगे; इस समय हम आरम्भिक अवस्था में घटक-आवेग में होनेवाले इस **रोध** या रुकावट को (आवेग की) **बद्धता** कहेंगे।

क्रमिक अवस्थाओं में होने वाले परिवर्धन में इस तरह का जो दूसरा ख़तरा है, उसे हम **प्रतिगमन** कहते हैं। ऐसा भी होता है कि जो अंश आगे बढ़ चुके हैं, वे पीछे की ओर लौटकर इन पहले वाली अवस्थाओं में आ जाते हैं। आवेग को

---

१. Pelvic. २. Arrested.

इस तरह **प्रतिगमन करने** का मौका तब मिलेगा जब इसके बाद वाले और अधिक परिवर्धित रूप में होने वाले कार्य पर शक्तिशाली बाहरी रुकावटें आएंगी जो इसे अपने सन्तुष्टि के उद्देश्य पर पहुंचने से रोक देंगी । बद्धता और प्रतिगमन एक दूसरे से स्वतन्त्र नहीं होते। परिवर्धन के मार्ग मे बद्धताएं जितनी सबल होंगी, उतनी ही आसानी से कार्य बाहरी रुकावटों से पराजित हो जाएगा, और वह प्रतिगमन करके उन बद्धताओं पर आ जाएगा, अर्थात् परिवर्धित कार्य अपने मार्ग की बाहरी रुकावटों का प्रतिरोध करने में उतना ही असमर्थ होगा। यदि आप अपना देश छोड़कर जाने वाली किसी जाति पर विचार करे, जिसके बहुत-से लोग रास्ते के पड़ावों पर रह गए हैं, तो आप देखेंगे कि आगे जाने वाले लोग जब पराजित हो जाएंगे, या उन्हें जब बहुत बलवान शत्रु से मुकाबला पड़ेगा, तब वे स्वभावतः लौटकर इन पड़ावों पर आश्रय लेंगे और फिर वे अपने में से जितने अधिक लोगों को पीछे छोड़ गए होंगे, उनके उतनी ही जल्दी पराजित होने का ख़तरा रहेगा।

स्नायु-रोगों को समझने के लिए यह आवश्यक है कि आप बद्धता और प्रतिगमन का यह सम्बन्ध ध्यान मे रखें। इस प्रकार आपको एक ऐसा निश्चित आधार मिल जाएगा जिसपर खड़े रहकर आप स्नायु-रोगों के कारण-कार्य-प्रक्रम या उनकी कारणता का पता लगा सकेंगे, जिस पर हम शीघ्र ही विचार करेंगे।

फिलहाल हम प्रतिगमन के प्रश्न पर विचार करेंगे। राग या लिबिडो के परिवर्धन के बारे में जो कुछ कहा जा चुका है, उसे सुन लेने के बाद आप दो प्रकार के प्रतिगमन की कल्पना कर सकते हैं : राग से आच्छादित प्रथम आलम्बनों पर लौट आना, जिनके विषय में हम यह जानते हैं कि उनका रूप निषिद्ध सम्भोगात्मक होता है; और सारे यौन संगठन का पहले वाली अवस्थाओं में लौट आना। स्थानान्तरण स्नायु-रोगों में ये दोनों प्रकार के प्रतिगमन होते हैं, और उनके तंत्र में ये महत्वपूर्ण कार्य पूरा करते हैं; विशेष रूप से, राग या लिबिडो के प्रथम निषिद्ध सम्भोगात्मक आलम्बनों पर वापसी एक ऐसी विशेषता है जो स्नायु-रोगियों में बिलकुल नियमित रूप से पाई जाती है। यदि स्नायु-रोगों के एक दूसरे समूह—जिसे स्वरतिक[1] कहते हैं, अर्थात् वे स्नायु-रोग जिनमें अपने शरीर के अंगों से यौन परितुष्टि की जाती है—पर भी विचार किया जाए तो राग के प्रतिगमन के बारे में और बहुत कुछ कहना होगा। पर इस समय हमारा ऐसा विचार नहीं है। इन रोगों से राग-कार्य के परिवर्धन प्रक्रमों के बारे में ऐसे निष्कर्ष निकलते हैं, जिनका अभी हमने उल्लेख नहीं किया, और प्रतिगमन के नए प्ररूप भी सामने आते है, जो उनसे सजग होते हैं। पर मैं समझता हूं कि यहां यह चेतावनी दे देना उचित होगा कि आप **प्रतिगमन** और दमन में स्पष्ट रूप से विवेक करें, और एक के स्थान पर दूसरे को न

---

१. Narcissistic.

समझ लें, और इन दोनों प्रक्रमों के संबंध के बारे में आपके मन में स्पष्ट धारणाएं बनाने में मैं आपकी सहायता करूंगा। आपको याद होगा कि **दमन** वह प्रक्रम है जिसके द्वारा चेतन होने में समर्थ (अर्थात् पूर्वचेतन संस्थान में रहने वाला) मानसिक कार्य अचेतन बना दिया जाता है, और अचेतन संस्थान में धकेल दिया जाता है; और तब भी **दमन** कहलाता है जब अचेतन मानसिक कार्य को साथवाले पूर्व चेतन संस्थान में बिलकुल नहीं घुसने दिया जाता, बल्कि सेंसरशिप द्वारा देहली पर से पीछे लौटा दिया जाता है। इसलिए **'दमन'** के अवधारण का यौन प्रवृत्ति या कामुकता से कोई सम्बन्ध-सूत्र नहीं है। कृपा करके इस बात को सावधानी से गांठ बांध लीजिए। यह शुद्ध रूप से एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रम को सूचित करता है, और इसे **स्थान-वृत्तीय प्रक्रम**[1] कहना और भी अधिक ठीक होगा, जिसका अर्थ यह है कि यह उन अवकाशीय सम्बन्धों से वास्ता रखता है जिनको हम मन के भीतर मानते हैं और यदि सिद्धान्त-निर्माण में इन स्थूल सादृश्य-कल्पनाओं को छोड़ दिया जाए तो हम यह कहेंगे कि दमन शब्द का सम्बन्ध पृथक् मनोधात्वीय[2] संस्थानों में से सिर्फ मानसिक उपकरणों की संरचना से सम्बन्ध रखता है।

ऊपर प्रस्तुत की गई तुलनाओं से पता चला कि 'प्रतिगमन' शब्द का प्रयोग अब तक उसके सामान्य अर्थ में नही किया जा रहा था, बल्कि एक संकुचित अर्थ में किया जा रहा था। अगर आप इसका व्यापक अर्थ--अर्थात् साधारणतया परिवर्धन की ऊंची अवस्था से नीची अवस्था में लौट आना--लें, तब दमन भी प्रतिगमन के अन्तर्गत आ जाता है, क्योंकि यह भी कहा जा सकता है किसी मानसिक कार्य का, परिवर्धन की पहले वाली और निचली मंजिल पर प्रतिवर्तन, अर्थात् लौट आना, भी दमन है। फ़र्क सिर्फ़ इतना है कि दमन में इस प्रतिगमन की दिशा का हमारे लिए कोई महत्व नहीं है, क्योंकि हम इसे गतिकीय अर्थ में उस समय दमन भी कहते हैं, जब कोई मानसिक प्रक्रम निचली अचेतन अवस्था से चलने से पहले रोक दिया जाता है। इस प्रकार दमन एक स्थानवृत्तीय गतिकीय अवधारण है जबकि प्रतिगमन शुद्धरूप से वर्णनात्मक अवधारण है। पर अब तक जिस चीज़ को हमने **'प्रतिगमन'** कहा है और बद्धता के साथ जिसके सम्बन्ध पर विचार किया है वह परिवर्धन में अपने पहले वाले पड़ावों पर **राग या लिबिडो** की वापसी को ही सूचित करता था, अर्थात् ऐसी चीज़ को सूचित करता था जो सारतः दमन से बिलकुल भिन्न और उससे बिलकुल स्वतंत्र है। राग के प्रतिगमन को हम शुद्धरूप से मनोधात्वीय प्रक्रम भी नहीं कह सकते; न हम यह जानते हैं कि मानसिक उपकरण में इसका स्थान कहां निर्दिष्ट करें, क्योंकि यद्यपि यह मानसिक जीवन पर बड़ा प्रबल

---

१. Topographical process. २. Psychical.

प्रभाव डाल सकता है, तो भी इसमें मस्तिष्क-क्षेत्रीय[1] कारक सबसे अधिक प्रमुख होता है।

इस तरह का विचार कुछ शुष्क-सा हो जाता है। इसलिए उसकी अधिक सजीव धारणा प्राप्त करने के लिए उसके कुछ रोग सम्बन्धी दृष्टान्त लिए जाएं। आप जानते हैं कि स्थानान्तरण स्नायु-रोगों के समूह में मुख्यतः हिस्टीरिया और मनोग्रस्तता-रोग आते हैं। हिस्टीरिया में राग का प्राथमिक निषिद्ध सम्भोगात्मक यौन आलम्बनों पर प्रतिगमन तो निस्संदेह सदा मिलता है, पर यौन संगठन की इससे पहली वाली मंज़िल पर इसका प्रतिगमन नहीं होता, या बहुत ही थोड़ा होता है। परिणामतः हिस्टीरिया के तंत्र में मुख्य कार्य दमन द्वारा किया जाता है। अब तक इस स्नायु-रोग की जो निश्चित जानकारी मिल चुकी है, उसके आधार पर स्थिति इस तरह बयान की जा सकती है : जननेन्द्रिय क्षेत्र की प्रधानता में घटक-आवेगों का सायुज्यन[2] (अर्थात् मिलकर बिलकुल एक बन जाना) हो चुका है; पर इस एक्य के परिणामों का पूर्व चेतन संस्थान की, जिसके साथ चेतना जुड़ी हुई है, दिशा से प्रतिरोध होता है। इसलिए जननेन्द्रिय संगठन अचेतन के लिए तो ठीक बैठता है, पर पूर्व चेतन के लिए नहीं और पूर्व चेतन द्वारा इस अस्वीकृति के परिणामस्वरूप ऐसा चित्र बनता है जो जननेन्द्रिय क्षेत्र की प्रधानता से पहले वाली स्थिति से कुछ मिलता-जुलता है; पर असल में, यह बिलकुल भिन्न होता है। राग के दो प्रकार के प्रतिगमनों में से, जो प्रतिगमन यौन संगठन की पहले वाली कला पर होता है, वह अधिक महत्वपूर्ण होता है। क्योंकि हिस्टीरिया में यह प्रतिगमन नहीं होता, और अभी हमारा स्नायु-रोगों का सारा अवधारण मुख्यतः हिस्टीरिया के अध्ययन के द्वारा ही चल रहा है, जो समय की दृष्टि से पहले हुआ था; इसलिए राग-प्रतिगमन का महत्व दमन के महत्व से बहुत पीछे समझा जा सका। मुझे निश्चय है कि जब हम हिस्टीरिया और मनोग्रस्तता-रोग के अलावा अन्य स्व-रतिक स्नायु-रोगों पर भी विचार करेंगे, तब हमारे दृष्टिकोण और अधिक विस्तृत और परिवर्तित हो जाएंगे।

दूसरी ओर, मनोग्रस्तता-रोग में राग का, पीड़कतोषीय-गुदीय संगठन से पहले वाली अवस्था पर प्रतिगमन सबसे अधिक ध्यान खींचने वाला कारक है, और इसीसे यह निश्चित होता है कि लक्षण कौन-सा रूप ग्रहण करेंगे। तब प्रेम करने का आवेग अपने को अवश्य पीड़ातोषीय आवेग के नीचे छिपा लेगा। यह मनोग्रस्त विचार कि 'मैं तुम्हारी हत्या कर देना चाहता हूं' (कुछ ऊपर चढ़े हुए अवयवों को अलग कर देने पर, जो असल में आकस्मिक नहीं होते, बल्कि इसके साथ अपरिहार्य रूप से होते हैं) यही अर्थ सूचित करता है कि 'मैं तुम्हारे साथ प्रेम का आनंद

---

१. Organic factor २. Fusion.

लेना चाहता हूं।' इसके साथ जब आप यह विचार भी करते हैं कि उसी समय प्राथमिक आलम्बनों पर प्रतिगमन भी शुरू हो गया है, जिससे यह आवेग, सबसे निकट वाले और सबसे अधिक प्रिय व्यक्तियों से सम्बन्धित होता है, तब आप यह कल्पना कर सकते हैं कि इन मनोग्रस्त विचारों से रोगी में कितना भय पैदा होता होगा और साथ ही वे उसके चेतन के ज्ञान को कितने अकारण और अव्याख्येय मालूम होते होंगे। पर इस स्नायु-रोग के क्रिया-विन्यास में दमन का भी हिस्सा होता है और बहुत बड़ा हिस्सा होता है; पर उसे इस तरह के सरसरी तौर से किए जा रहे सर्वे में पेश नहीं किया जा सकता। बिना दमन के राग का प्रतिगमन कभी भी स्नायु-रोग पैदा नहीं करेगा—वह तो काम-विकृति में परिणत हो जाएगा। इससे आप समझ जाएंगे कि दमन वह प्रक्रम है, जो स्नायु-रोगों का विशेष रूप से विवेक कराता है, और जिससे उन्हें सबसे अधिक अच्छी तरह पहचाना जा सकता है। परन्तु शायद मुझे किसी समय आपको यह बताने का मौका मिले कि काम-विकृतियों के क्षेत्र के बारे में हम क्या जानते हैं, और तब आप देखेंगे कि वहां भी गाड़ी उतनी आसानी से नहीं चलती, जितनी कि हम अपनी निर्मितियों में कल्पित कर लेना चाहते हैं।

मुझे आशा है कि राग की बद्धता और प्रतिगमन के इस विवरण को आप तब आसानी से स्वीकार कर लेंगे जब आप यह समझेंगे कि यह स्नायु-रोगों की **कारणता** के अध्ययन की तैयारी है। अब तक मैंने आपको इस विषय में सिर्फ़ एक बात बताई है, और वह यह कि लोग स्नायु-रोग से तब पीड़ित होते हैं जब राग की सन्तुष्टि की सम्भाव्यता उनसे दूर कर दी जाए—अर्थात् वे 'कुंठा' या विफलता के परिणामस्वरूप रोगी होते हैं—और उनके लक्षण वास्तव में लुप्त सन्तुष्टि के स्थानापन्न हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि राग की सन्तुष्टि की प्रत्येक कुंठा प्रत्येक व्यक्ति को स्नायु-रोगी बना देती है। इसका इतना ही अर्थ है कि स्नायु-रोग के जितने उदाहरणों की जांच-पड़ताल की गई उन सबमें कुंठा का कारक प्रदर्शित किया जा सका। इसलिए इस कथन का विलोम सही नहीं है। आप अवश्य समझ गए होंगे कि इस कथन का आशय स्नायु-रोगों की कारणता का सारा रहस्य प्रकट करना नहीं है, बल्कि इसमें एक महत्वपूर्ण और सदा वर्तमान दशा पर ही बल दिया गया है।

अब इस बात पर आगे विचार करते हुए हम यह नहीं समझ पाते कि पहले कुंठा या विफलता के स्वरूप से शुरू करें या इससे प्रभावित व्यक्ति के अपने गुण से। ऐसा बहुत कम होता है कि यह कुंठा सर्वांगव्यापी और सर्वथा पूर्ण हो। संभवतः रोगजनक प्रभाव पैदा करने के लिए वह सन्तुष्टि के उसी रूप पर चोट करेगी जिसे वह व्यक्ति चाहता है, जो सन्तुष्टि वह प्राप्त कर सकता है। साधारणतया ऐसे बहुत-से तरीके हैं जिनसे रागात्मक सन्तुष्टियों के अभाव को, बिना रोगी हुए,

सहन किया जा सकता है। सबसे बड़ी बात यह है कि हम ऐसे लोगों को जानते हैं जो बिना किसी हानि के ऐसा निग्रह कर सकते हैं। वे उस समय खुश नहीं होते। वे असन्तुष्ट लालसा का कष्ट पाते हैं, पर वे बीमार नहीं पड़ते। इसलिए हमें यह निष्कर्ष निकालना पड़ता है कि यौन आवेग-उत्तेजनों में मानो निराली 'सुघट्यता'[1] अर्थात् लचीलापन होता है। उनमें से एक के स्थान पर दूसरा आ सकता है। यदि उनमें से एक की सन्तुष्टि वास्तव में नहीं हो सकती, तो दूसरे की सन्तुष्टि से पूर्ण भरपाई हो जाती है। वे तरल में भरी हुई संचार-नालियों के जाल की तरह एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं, और यह अवस्था जननेन्द्रिय की प्रधानता के अधीन रहने के बावजूद होती है—यह अवस्था ऐसी है जिसे आसानी से प्रतिबिंब के रूप में नहीं लाया जा सकता। इसके अलावा, यौन प्रवृत्ति की घटक-निसर्ग-वृत्तियों में और उस संयुक्त यौन आवेग में, जिसकी वे घटक होती हैं, अपना आलम्बन बदलने की बड़ी क्षमता होती है; इसे देकर दूसरा लेने, अर्थात् अधिक सुलभ आलम्बन ग्रहण करने की बड़ी क्षमता होती है। विस्थापन की यह क्षमता और स्थानापन्न को स्वीकार करने की तत्परता से कुंठा के प्रभाव का एक प्रबल प्रतिप्रभाव अवश्य पैदा हो जाएगा। अभाव से पैदा होने वाली बीमारी से बचाने वाले इन प्रक्रमों में से एक प्रक्रम संस्कृति के परिवर्धन में एक विशेष महत्व प्राप्त कर चुका है—वह है यौन आवेग द्वारा घटक-आवेग की परितुष्टि रूप या प्रजनन की प्रासंगिक परितुष्टि रूप, पहले गृहीत उद्देश्य का त्याग और एक नए उद्देश्य का ग्रहण—यह नया उद्देश्य प्रजनन-विज्ञान की दृष्टि से, पहले से सम्बन्धित तो है, पर इसे अब यौन या कामुक नहीं माना जा सकता; बल्कि इसके स्वरूप को सामाजिक कहना चाहिए। इस प्रक्रम को हम **उदात्तीकरण**[2] कहते हैं, और ऐसा कहकर हम साधारण प्रचलित मानदण्ड का ही समर्थन करते हैं, जो सामाजिक उद्देश्य को यौन (अन्ततः स्वार्थपूर्ण) उद्देश्यों से ऊंचा मानता है। प्रसंगतः, उदात्तीकरण यौन-आवेगों और दूसरे अ-यौन या निष्कर्ष-आवेगों के बीच मौजूद सम्बन्ध-सूत्रों की सिर्फ़ एक विशेष अवस्था है। इसपर हम एक और सिलसिले में विचार करेंगे।

अब आपके मन में यह धारणा होगी कि हमने सन्तुष्टि के अभाव को सहन करने के इतने सारे साधन मानकर इसे एक बहुत छोटी वस्तु बना दिया है; पर नहीं, यह बात नहीं है। इसमें इसकी रोगजनक शक्ति कायम रहती है। इसको सम्भालने के साधन सदा काफी नहीं होते। औसत मनुष्य अपने ऊपर असन्तुष्ट राग की जो मात्रा ले सकता है वह सीमित है। राग की सुघट्यता और स्वतंत्र चलिष्णुता[3] हम सबमें पूरी-पूरी कायम नहीं रह पाती और उदात्तीकरण राग के कुछ ही अंश को विसर्जित[4] कर सकता है। और इसके अलावा, तथ्य यह है कि

---

१. Plasticity. २. Sublimation. ३. Mobility. ४. Discharge.

बहुत-से लोगो में उदात्तीकरण की क्षमता बहुत ही कम होती है। इन परिसीमाओं में से सबसे महत्वपूर्ण परिसीमा स्पष्टत: वह है जो राग की चलिष्णुता के बारे में है, क्योंकि वह मनुष्य को ऐसे उद्देश्यों और आलम्बनों की प्राप्ति तक सीमित कर देती है जिनकी संख्या बहुत ही थोड़ी है। ज़रा सोचिए कि राग के अधूरे परिवर्धन के पीछे, संगठन की पहले वाली कलाओं और आलम्बन-चुनाव के प्ररूपों पर बहुत विस्तृत (और कभी-कभी संख्या में भी बहुत अधिक) राग-बद्धताएं रह जाती हैं जो अधिकतर वस्तु-जगत में सन्तुष्ट नहीं हो सकतीं। तब आप रागबद्धता को रोग पैदा करने में कुंठा के साथ मिलकर कार्य करने वाला दूसरा शक्तिशाली कारक स्वीकार करेंगे। हम इसे विन्यास की दृष्टि से, संक्षिप्त करके, यह कह सकते है कि स्नायु-रोगों की कारणता में रागबद्धता भीतरी पूर्वप्रवृत्ति वाले कारक[1] को निरूपित करती है और कुंठा या विफलता बाहरी आकस्मिक कारक को।

मैं यहां आपको यह चेतावनी दे दूं कि इस बिलकुल अनावश्यक विवाद में आप कोई पक्ष न लें। वैज्ञानिक मामलों में आम तौर से लोग सत्य का एक पक्ष पकड़ लेते हैं, और इसी को सम्पूर्ण सत्य मानने लगते है और फिर सत्य के अंश के पक्ष में रहकर शेष सारे अंश के बारे में जो स्वयं उतना ही सत्य होता है, विवाद किया करते हैं। इस तरह एक से अधिक टोली मनोविश्लेषण-आन्दोलन से पहले ही अलग हो चुकी है। उनमें से एक सिर्फ अहंकारमूलक आवेगों को मानती है, और यौन आवेगों का निषेध करती है। दूसरी टोली जीवन में हुए वास्तविक कार्यों का ही प्रभाव मानती है, और मनुष्य के पिछले जीवन का प्रभाव नहीं मानती। इसी तरह औरों के अलग-अलग विचार हैं। अब यहां एक और विवादग्रस्त प्रश्न है: स्नायु-रोग बहिर्जात[2] रोग है या अन्तर्जात[3] ?—एक विशेष प्रकार की शारीरिक रचना का अनिवार्य परिणाम हैं या व्यक्ति के जीवन की कुछ हानिकारक (उपघातीय) घटनाओं से पैदा होते हैं ? खासतौर से, क्या वे राग की बद्धता और शेष यौन रचना के कारण पैदा होते हैं, या कुंठा अथवा विफलता के दबाव से होते हैं ? यह विवाद मुझे वैसा ही मालूम होता है जैसा यह विवाद कि बालक पिता के जनन-कार्य से पैदा होता है, या माता के गर्भधारण से। आप यही उत्तर देंगे, जो कि उचित है, कि दोनों अवस्थाएं समान रूप से आवश्यक हैं। स्नायु-रोगों की आधारभूत अवस्थाएं भी, यदि बिलकुल वैसी नहीं तो भी उनसे मिलती-जुलती हैं। कारण-कार्य की दृष्टि से स्नायविक रोग के रोगी एक **श्रेणी** में आते हैं, जिसमें दो कारक—यौन रचना—और अनुभूत घटनाएं; अथवा यदि आप इस तरह कहना चाहें, तो रोग की बद्धता और कुंठा इस प्रकार निरूपित होती हैं कि जहां उनमें से एक की प्रधानता होती है, वहां दूसरा कारक उसी अनुपात में कम प्रमुख होता है। इस श्रेणी या शृंखला के एक सिरे

१. Predisposition. २. Exogenous. ३. Endogenous.

पर वे चरम रोगी हैं जिनके बारे में यह कहा जा सकता है: ये लोग अपने विषम राग-परिवर्धन के कारण अवश्य रोगी होते; चाहे कुछ भी होता, चाहे वे कुछ भी अनुभव करते, चाहे जीवन उनके लिए कितना ही सुखद रहा होता। दूसरे सिरे पर वे रोगी हैं, जिनके लिए बिलकुल विपरीत राय बनेगी—यदि जीवन में उनपर अमुक-अमुक बोझ न पड़े होते तो वे अवश्य रोग से बच गए होते। इस श्रेणी या शृंखला के मध्यवर्ती रोगों में रोगानुकूलता-कारक (यौन रचना) जीवन की हानिकर घटनाओं से कभी कम और कभी अधिक मात्रा में मिला रहता है। यदि उन्हें जीवन में अमुक-अमुक अनुभवों में से न गुज़रना पड़ता तो उनकी यौन रचना से उन्हें स्नायु-रोग नहीं पैदा हुआ होता, और यदि राग की रचना दूसरे ढंग से हुई होती तो जीवन के उतार-चढ़ावों का उनपर उपघातज प्रभाव न पड़ा होता। इस शृंखला में शायद मैं यह स्वीकार कर सकता हूं कि पूर्वप्रवृत्ति वाले कारक का प्रभाव कुछ अधिक होता है, पर यह बात भी इस बात पर निर्भर है कि स्नायु-रोग की सीमा-रेखा आप कहां खींचते हैं।

अब मेरा यह सुझाव है कि इस तरह की श्रेणी को हम **पूरक श्रेणी**[1] का नाम दें। साथ ही आपको पहले ही यह भी बता देना चाहता हूं कि हमें इस तरह की और भी श्रेणियां निश्चित करने का मौका पड़ेगा।

राग कुछ विशेष धाराओं और विशेष आलम्बनों से इतनी दृढ़ता से जुड़ा रहता है, कि राग का **लगाव** या **आसक्तता**[2] स्वतंत्र कारक प्रतीत होती है; जो अलग-अलग मनुष्य में अलग-अलग होता है, और उसकी मात्रा किस-किस बात से निर्धारित होती है, यह हमें बिलकुल पता नहीं। पर स्नायु-रोगों की कारणता में अब हम इसके महत्व को हीन नहीं मान सकते। साथ ही हमें दोनों वस्तुओं के नजदीकी सम्बन्ध को बहुत बड़ी चीज भी नहीं समझना चाहिए। राग का ऐसा ही लगाव (या आसक्तता)—अज्ञात कारणों से—अनेक अवस्थाओं में प्रकृत लोगों में होता है, और उन व्यक्तियों में एक निर्णायक कारक के रूप में मिलता है जो एक अर्थ में स्नायु-रोगियों के बिलकुल उलटे, अर्थात् विकृत व्यक्ति होते हैं। मनो-विश्लेषण के जमाने से बहुत पहले यह ज्ञात हो चुका था कि ऐसे व्यक्तियों के पूर्व-वृत्त[3], अर्थात् पिछले इतिहास में प्रायः एक बहुत बचपन का संस्कार मिलता है, जो एक अप्रकृत निसर्ग वृत्तीय प्रवृत्ति या आलम्बन-चुनाव से संबंधित होता है, और अब उस व्यक्ति का राग सारे जीवन उस संस्कार से जुड़ा रहता है (बिनेट)। प्रायः यह कहना कठिन होता है कि यह संस्कार राग पर इतनी तीव्र आकर्षण शक्ति कैसे लगा सका। मैं अपने देखे हुए इस तरह के एक पुरुष रोगी का वर्णन करूंगा, जिसके लिए स्त्री की जननेन्द्रियों और अन्य सब आकर्षणों का अब कोई अर्थ नहीं

---

१. Complemental Series. २. Adhesiveness. ३. Anamnesis.

रहा है। उसमें दुर्धर्ष यौन उत्तेजना एक विशेष रूपवाले जूते से ढके हुए पैर द्वारा ही पैदा की जा सकती है; वह अपने छठे वर्ष की एक घटना याद कर सकता है, जिसने उसमें राग की यह बद्धता पैदा कर दी है। वह अपनी शिक्षिका के पास स्टूल पर बैठा था और शिक्षिका उसे अंग्रेजी पढ़ा रही थी। वह सीधी-सादी बड़ी उमर की झुर्रियों वाली बूढ़ी धाय थी, जिसकी आंखें पानीदार नीली थीं, और नाक चपटी थी; उस दिन उसके पांव में चोट लग गई थी और इसलिए उसने इसे मखमली स्लीपर में गद्दे पर रखा था और टांग बहुत अच्छी तरह ढक रखी थी। बाद में तरुणावस्था में प्रकृत यौन व्यापार के, डरते-डरते किए गए, एक प्रयत्न के बाद उस शिक्षिका के पांव जैसा एक पतला उभरी नसों वाला पांव उसका एकमात्र यौन आलम्बन हो गया, और यदि किसी व्यक्ति की अन्य बातें भी उसे अंग्रेज शिक्षिका जैसी स्त्री का स्मरण करा देतीं तो वह पुरुष बेबस होकर आकर्षित हो जाता था। पर राग की इस बद्धता ने उसे स्नायविक न बनाकर विकृत बना दिया। हम कहेंगे कि वह पांव जड़ासक्त बन गया। इस प्रकार आप देखते हैं कि स्नायु-रोग के कारणों में राग की अत्यधिक और साथ ही समय से पूर्व, बद्धता एक अपरिहार्य कारण है। तो भी, इसके प्रभाव का विस्तार स्नायु-रोगों की सीमा से बहुत आगे निकल जाता है। यह अवस्था अपने आप में उसी तरह निश्चायक अवस्था नहीं है, जैसे कि पहले बताई हुई कुंठा या विफलता।

इस प्रकार स्नायु-रोगों के कारणों की समस्या और अधिक उलझ गई मालूम होती है। तथ्य तो यह है कि मनोविश्लेषण सम्बन्धी जांच-पड़ताल हमारा एक और कारक से परिचय कराती है, जिसपर हमने अपनी कारण-शृंखला में विचार नहीं किया है, और जो ऐसे व्यक्ति में बहुत अच्छी तरह देखा जा सकता है, जिसका पहले का अच्छा स्वास्थ्य स्नायु-रोग हो जाने के कारण एकाएक बिगड़ गया हो। इन लोगों में परस्पर विरोधी इच्छाओं या **मानसिक द्वन्द्व** के चिह्न सदा पाए जाते हैं। व्यक्तित्व का एक पक्ष कुछ इच्छाएं रखता है, और दूसरा भाग उनके खिलाफ संघर्ष करता है और उन्हें मार्ग बताता है। इस तरह के द्वन्द्व के बिना कोई स्नायु-रोग नहीं होता। हो सकता है कि आपको इसमें कोई विशेष बात न दिखाई दे। आप जानते हैं कि हम सबके मानसिक जीवन में सदा द्वन्द्व होते रहते हैं, जिनका फैसला करना पड़ता है। इसलिए ऐसा प्रतीत होगा कि कुछ विशेष दशाएं होने पर ही यह द्वन्द्व रोगजनक हो सकता है। हम पूछ सकते हैं कि वे दशाएं कौन-सी हैं? इन रोगजनक द्वन्द्वों में मन के कौन-कौन-से बल हिस्सा लेते हैं और द्वन्द्वों का अन्य कारणों से क्या सम्बन्ध होता है।

मैं इन प्रश्नों का उत्तर दे सकता हूं जो सन्तोषजनक होंगे, पर शायद संक्षिप्त रूपरेखामात्र होंगे। यह द्वन्द्व कुंठा या विफलता से पैदा होता है, क्योंकि असन्तुष्ट राग को दूसरे रास्ते और दूसरे आलम्बन तलाश करने की प्रेरणा मिलती है। तो,

इसकी एक शर्त यह है कि ये दूसरे रास्ते और आलम्बन व्यक्तित्व के एक भाग में नापसन्दगी पैदा करते हैं, जिससे वीटो या अभिषेध अर्थात् उसका निषेध, पैदा होता है, जो शुरू में सन्तुष्टि के नए रास्ते को व्यर्थ कर देता है। यहीं से लक्षणों के निर्माण की ओर गति होती है, जिसपर हम बाद में विचार करेंगे। अस्वीकृत रागात्मक लालसाएं चक्करदार मार्गों से अपने आगे बढ़ने का तरीका निकाल लेती हैं पर उन्हें प्रतिषेध[1] को यह चुंगी चुकानी पड़ती है कि वे अपना रूप कुछ बदल लेती हैं। ये चक्करदार रास्ते लक्षण-निर्माण के रास्ते हैं। लक्षण ही नई और स्थानापन्न सन्तुष्टियां हैं, जिनकी आवश्यकता कुंठा के कारण पैदा हुई है।

मानसिक द्वन्द्व का अर्थ एक और तरह से भी बताया जा सकता है : **बाहरी** कुंठा या विफलता के रोगजनक बनने के लिए आवश्यक है कि बाद में **भीतरी** कुंठा या विफलता से उसकी पूर्ति हो। जब ऐसा होता है तब निस्सन्देह बाहरी और भीतरी कुंठाएं भिन्न-भिन्न मार्गों और भिन्न-भिन्न आलम्बनों से सम्बन्धित होती हैं; बाहरी कुंठा संतुष्टि के एक अवसर को दूर करती है और भीतरी कुंठा दूसरे अवसर को हटाने की कोशिश करती है, और यह दूसरा अवसर ही द्वन्द्व का अखाड़ा बन जाता है। मैं इस रूप में इसलिए यह बात रख रहा हूं क्योंकि इसमें एक ध्वनितार्थ है। इसमें यह ध्वनि है कि भीतरी बाधा शुरू में मानव-परिवर्धन की आदिम कलाओं में मौजूद वास्तविक बाहरी बाधाओं में से पैदा हुई।

पर वे बल कौन-से हैं जिनमें से रागात्मक लालसाओं का प्रतिषेध पैदा होता है, और जो रोगजनक द्वन्द्व में दूसरा पक्ष है। बहुत मोटे रूप में कहा जाए तो हम कह सकते हैं कि वे यौनेतर निसर्ग-वृत्तियां हैं। उन सबको मिलाकर हम '**अहम्-निसर्ग-वृत्तियां**'[2] कहते हैं; स्थानान्तरण स्नायु-रोगों के विश्लेषण से उनकी और अधिक जांच-पड़ताल के लिए और ज्यादा मौका नहीं मिलता। अधिक से अधिक, हमें उनकी कुछ जानकारी विश्लेषण का विरोध करने वाले प्रतिरोधों से ही मिलती है। इसलिए, रोगजनक द्वन्द्व अहम्-निसर्ग-वृत्तियों और यौन निसर्ग-वृत्तियों में होता है। रोगियों की एक पूरी की पूरी श्रेणी में ऐसा लगता है, जैसे बहुत-से, शुद्ध रूप से यौन आवेगों में भी द्वन्द्व हो सकता है, पर गहराई में देखा जाए तो यह भी वही बात है, क्योंकि द्वन्द्व में लगे हुए दो आवेगों में से एक सदा 'अहम्-संगत' (अहम् से संगत)[3] दिखाई देगा, और दूसरा अहम् से विरोध कराता होगा। इसलिए यह भी अहम् का और यौन प्रवृत्तियों का ही द्वन्द्व है।

जब मनोविश्लेषण ने मन में होने वाली किसी घटना को नैसर्गिक यौन प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति माना है, तब बार-बार रोषपूर्वक उसके विरुद्ध यह आवाज उठाई गई है कि मानसिक जीवन में नैसर्गिक यौन प्रवृत्तियों के अलावा दूसरी नैस-

---

१. Prohibition. २. Ego-instincts; ३. Ego-syntonic.

र्गिक प्रवृत्तियां और अभिरुचियां भी मौजूद हैं, कि यौन प्रवृत्ति से ही 'सब कुछ' नहीं निकालना चाहिए, इत्यादि। तो, बात यह है कि अपने विरोधियों से कभी भी सहमत हो जाना सचमुच आनन्ददायक होता है । मनोविश्लेषण यह कभी नहीं भूला कि मानसिक जीवन में यौनेतर निसर्ग-वृत्तियां भी हैं । इसका निर्माण ही नैसर्गिक यौन प्रवृत्तियों और नैसर्गिक अहम्-प्रवृत्तियों के स्पष्ट विभेद पर हुआ है, और सारे विरोध के बाबजूद, यह इसी बात पर अड़ा रहा है कि स्नायु-रोगों के पैदा होने का कारण अहम् और यौन प्रवृत्तियों का द्वन्द्व है, इस बात पर नहीं कि वे यौन प्रवृत्ति से पैदा होते हैं : रोग में, और सामान्यतया जीवन में, यौन प्रवृत्तियों द्वारा होने वाले कार्य की जांच-पड़ताल करते हुए मनोविश्लेषण का, अहम्-निसर्ग-वृत्तियों के अस्तित्व या महत्व से इन्कार करने का कोई भी प्रयोजन नही हो सकता । सिर्फ इतनी बात है कि मनोविश्लेषण पर यौन निसर्ग-वृत्तियों पर विचार करने का ही सबसे मुख्य कार्य पड़ा है, क्योंकि स्थानान्तरण स्नायु-रोगों में निसर्ग-वृत्तियों पर ही जांच सबसे अधिक आसानी से पहुंच सकती थी, और क्योंकि उसे उस वस्तु का अध्ययन करना पड़ा जिसे दूसरों ने उपेक्षित कर दिया था ।

यह कहना यथार्थ नहीं है कि मनोविश्लेषण ने व्यक्तित्व के यौनेतर पहलू पर बिलकुल विचार नहीं किया । अहम् और यौन प्रवृत्तियों के विभेद से ही हमें यह विशेष स्पष्टता से पता चल गया है कि अहंकार-वृत्तियों में भी एक महत्वपूर्ण परिवर्धन होता है, जो न तो राग के परिवर्धन से पूरी तरह स्वतंत्र होता है, और न उसपर प्रभाव डालने में निष्क्रिय । अहम् के परिवर्धन को हम उतनी अच्छी तरह नहीं समझ पाए हैं जितनी अच्छी तरह राग के परिवर्धन को, क्योंकि स्नायु-रोगों के अध्ययन से ही अहंकार की संरचना का रहस्य समझ में आने की कुछ आशा हुई है । तो भी फेरेंक्जी ने अहम् के परिवर्धन की क्रमिक अवस्थाओं की सैद्धान्तिक रूप से पुनः रचना करने का उल्लेखनीय प्रयत्न किया है, और कम से कम दो बातें ऐसी हैं, जिनपर हमें एक ऐसा दृढ़ आधार मिल जाता है, जिससे इस परिवर्धन की आगे परीक्षा की जा सकती है । हम यह नहीं समझते कि मनुष्य के रागात्मक स्वहित शुरू से आत्मसंरक्षण[1] संबंधी स्वहितों के विरोधी होते हैं, बल्कि यह कहना चाहिए कि प्रत्येक अवस्था में अहम् यह प्रयत्न करता है कि वह यौन संगठन की तत्संवादी अवस्था से सामंजस्य बनाए रखे, और अपने आपको उसके अनुकूल बना ले । राग के परिवर्धन में अलग-अलग कलाओं का अनुक्रम सम्भवतः एक नियत मार्ग से चलता है; पर इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इस मार्ग को अहम् की दिशा से प्रभावित किया जा सकता है । यह भी माना जा सकता है कि अहम् और राग के दोनों परिवर्धनों की कलाओं में कुछ सादृश्य और एक

---

१. Self-preservation.

निश्चित संवादिता होती है। सच तो यह है कि इस संवादिता में होने वाला विक्षोभ एक रोगजनक कारक बन सकता है। हमारे लिए यह प्रश्न अधिक महत्व-पूर्ण है कि जब राग अपना परिवर्धन होते हुए किसी पहले वाले बिन्दु, अर्थात् स्थान, पर प्रबल बद्धता कर चुका है, तब अहम् कैसे व्यवहार करता है। हो सकता है कि अहम् ने बद्धता की यौन-स्वीकृति दे दी हो और तब वह उस सीमा तक विकृत होगा, या शैशवीय होगा, जो दोनों एक ही बात हैं। पर यह भी हो सकता है कि यह राग के इस संयोजन से अपने आपको उदासीन रखे, जिसका परिणाम यह होगा कि जहां राग **बद्ध** होता है, वहां अहम् **दमन** का कार्य शुरू कर देता है।

इस प्रकार, हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि स्नायु-रोगों की कारणता में जो तीसरा कारक **द्वन्द्व-वश्यता** है, वह अहम् के परिवर्धन से उतना ही जुड़ा हुआ है, जितना राग के परिवर्धन से; इस प्रकार स्नायु-रोगों के कारणों के विषय में हमारी अन्तर्दृष्टि विस्तृत हो जाती है। सबसे पहले प्रवंचन[1] की सबसे साधारण सामान्य दशा है। इसके बाद राग की बद्धता है (जो इसे विशेष धाराओं में जाने को मजबूर करती है), और तीसरी **द्वन्द्व-वश्यता**—यह द्वन्द्व उस विशेष प्रकार के रागात्मक उत्तेजनों को अस्वीकार करने पर अहम् के परिवर्धन से पैदा होता है। इसलिए यह चीज़ उतनी अस्पष्ट और जटिल नहीं है, जितनी शायद आपने मेरे विवरण के समय समझी हो। फिर भी अभी इसकी समाप्ति नहीं हुई। अभी कुछ और भी बात बतानी है, और जो कुछ हम पहले जानते हैं, उसकी और भी चीर-फाड़ करनी है।

द्वन्द्व की प्रवृत्ति पर, और उसके साथ-साथ स्नायु-रोग की कारणता पर अहम् के परिवर्धन का प्रभाव स्पष्ट करने के लिए मैं एक उदाहरण दूंगा, जो बिलकुल काल्पनिक होते हुए भी, किसी भी दृष्टि से असम्भाव्य नहीं है। मैं इसे नेस्ट्राय के प्रहसन वाला नाम देता हूं, अर्थात् **औन दि ग्राउन्ड फ्लोर एंड इन दि मैन्शन** (निचली मंजिल में और अटारी पर)। कल्पना कीजिए कि कोई चौकीदार किसी मकान की निचली मंजिल में रहता है और मालिक जो धनी और सम्भ्रांत व्यक्ति है, ऊपर रहता है। उन दोनों के बच्चे हैं, और हम यह मान लेते हैं कि मालिक की छोटी लड़की को सामाजिक दृष्टि से हीन चौकीदार के बच्चे से खेलने की खुली छूट है। तब बहुत आसानी से ऐसा हो सकता है कि उनके खेल 'शैतानी' के हो जाते हैं, अर्थात् उनका रूप यौन रूप हो जाता है: वे 'पिता और माता' का खेल खेलते हैं, एक दूसरे को अंतरंग कार्य करते समय देखते हैं, और एक दूसरे की जननेन्द्रियों को उद्दीप्त करते हैं। हो सकता है कि इसमें चौकीदार की लड़की ने मोहिनी डाली हो क्योंकि अपनी आयु पांच या छः वर्ष होने पर भी वह यौन विषयों में अधिक

---

१. Privation.

जानकारी प्राप्त कर चुकी है। उनके बहुत थोड़ी देर साथ रहने पर भी इन घटनाओं से दोनों बच्चों में कुछ यौन उत्तेजन पैदा हो जाएंगे जो उनका खेल बंद हो जाने के बाद कुछ वर्ष तक हस्तमैथुन के रूप में प्रकट होंगे। यहां तक दोनों में समानता है, पर अन्तिम परिणाम दोनों में बहुत भिन्न होगा। चौकीदार की लड़की शायद मासिक धर्म शुरू होने तक हस्तमैथुन करती रहेगी, और फिर बिना दिक्कत के इसे छोड़ देगी। कुछ वर्ष बाद वह एक प्रेमी खोज लेगी और शायद एक बालक को जन्म देगी, जीवन के आगे बढ़ने का कोई रास्ता ढूंढ़ेगी, शायद कोई प्रसिद्ध अभिनेत्री बन जाएगी, और अन्त में अभिजात कुलीन वर्ग में आ जाएगी। हो सकता है कि उसकी जीवन-यात्रा इतनी सफल न हो, पर अपरिपक्व अवस्था की यौन चेष्टाओं से उसे कोई हानि नहीं होगी; वह स्नायु-रोग से मुक्त रहेगी, और अपना जीवन सुख से बिता सकेगी। दूसरी बालिका में परिणाम बहुत भिन्न होगा। छोटी आयु में ही उसमें यह भावना पैदा हो जाएगी कि मैंने बुरा काम किया है। कुछ ही समय बाद वह हस्तमैथुन छोड़ देगी, यद्यपि उसे इसके लिए शायद बड़ा संघर्ष करना पड़ेगा। पर फिर भी उसमें दबी हुई उदासी की भावना हृदय में बनी रहेगी। जब बाद में तरुणावस्था आने पर उसे सम्भोग के बारे में कुछ पता चलेगा, तब वह अजीब डर के साथ इससे दूर भागेगी और अनजान बनी रहना चाहेगी। सम्भवतः उसे फिर हस्तमैथुन करने के लिए एक प्रबल आवेग पैदा होगा, जो वह किसीको बताने का साहस नहीं करेगी। जब वह किसी पुरुष की पत्नी बनेगी, तब उसमें स्नायु-रोग पैदा हो जाएगा और उसे विवाह के सुख और जीवन के आनन्द से वंचित कर देगा। अगर विश्लेषण द्वारा इस स्नायु-रोग का रहस्य उघाड़ा जा सकेगा, तो यह पता चलेगा कि इस अच्छी तरह पालित-पोषित बुद्धिमती आदर्श-प्रिय लड़की ने अपनी इच्छाओं का पूरी तरह दमन कर दिया है, पर उसकी यौन इच्छाएं अचेतन रूप से उन थोड़े-से छोटे-छोटे अनुभवों से जुड़ी हुई हैं, जो उसे बालकपन में अपनी सहेली के साथ हुए थे।

दोनों के सामान्य अनुभवों के बावजूद इन दोनों की अन्तिम अवस्थाओं में जो भेद पैदा हुए हैं, वे इस कारण पैदा हुए हैं कि एक लड़की में अहम् ने उस परिवर्धन को बनाए रखा जो दूसरी में नहीं है। चौकीदार की लड़की को बाद की आयु में भी यौन चेष्टा वैसी ही स्वाभाविक और हानिरहित मालूम हुई, जैसी बचपन में। मालिक की लड़की 'अच्छे ढंग से पाली-पोसी गई', और उसने अपने शिक्षण के मानदंड अपना लिए। इस प्रकार, उद्दीपित होकर उसके अहम् ने स्त्री की शुद्धता और वासना के अभाव के आदर्श अपना लिए जो यौन कार्यों से असंगत थे। उसके बौद्धिक प्रशिक्षण ने उसके उस नारी-कार्य को उसकी ही दृष्टि में हीन बना दिया जिसके लिए वह बनाई गई है। उसके अहम् में जो यह ऊंचा नैतिक और बौद्धिक परिवर्तन हुआ है, उसने उसका और उसकी यौन प्रवृत्ति की आव-

श्यकताओं का द्वन्द्व करा दिया है।

आज मैं राग के परिवर्धन के एक और पहलू की चर्चा करूंगा, क्योंकि एक तो यह हमें कुछ विस्तृत भूमि पर ले आता है और दूसरे, हम अहम् वृत्तियों और यौन वृत्तियों में जो स्पष्ट भेदक रेखा खींचा करते हैं, पर जो फौरन समझ में नहीं आती, उसका औचित्य सिद्ध करने के लिए यह बहुत उपयुक्त रहेगा। अहम् में और राग में हुए दो परिवर्धनों पर विचार करते हुए हमें एक पहलू पर अवश्य बल देना होगा, जिसकी ओर अब तक कोई ध्यान नहीं दिया गया। वे दोनों मूलतः वंशागत गुण हैं। सारी मनुष्य जाति ने प्रागैतिहासिक युगों से चले आते हुए बड़े दीर्घकाल में जो विकास किया है, वे उसकी संक्षिप्त पुनरावृत्तियां हैं। मैं समझता हूं कि राग के परिवर्धन में यह जातिचरितीय उद्गम[1] आसानी से दिखाई पड़ जाता है। यह देखिए कि किस तरह प्राणियों के एक वर्ग में जननेन्द्रिय यंत्र का मुख से बहुत नजदीकी सम्बन्ध होता है। और दूसरे में वह मल-त्याग-व्यवस्था से अलग नहीं दिखाई देता। तीसरे में वह चरता[2] के अंगों का हिस्सा है। इन तथ्यों का मजेदार वर्णन डब्ल्यू० बोलस्खे की मूल्यवान पुस्तक में मिलेगा। प्राणियों में सब तरह की काम-विकृतियां मिलती हैं, और यह कहा जा सकता है कि वे उस रूप में स्थिर हो गई हैं, जो उनके यौन संगठन ने ग्रहण कर लिया है पर मनुष्य में वह जातिचरितीय इस कारण कुछ अस्पष्ट हो गया है कि जो बात मूलतः वंशागत है, वह फिर भी नए सिरे से अलग-अलग सीखनी पड़ती है। सम्भवतः इसका कारण यह है कि जिन परिस्थितियों में इसे शुरू में सीखना पड़ा था, वही आज भी हैं, और प्रत्येक व्यक्ति पर वे अपना प्रभाव डालती हैं। मेरा यह कहना है कि जहां उन्होंने शुरू में एक नई अनुक्रिया की सृष्टि की थी, वहां अब वे एक पूर्व प्रवृत्ति को उद्दीपित करते हैं। इसके अलावा, इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि प्रत्येक मनुष्य में नियत परिवर्धन के मार्ग को बाहर से आने वाले वर्तमान संस्कारों से परिवर्तित किया जा सकता है, पर जिस शक्ति ने मनुष्य जाति पर यह परिवर्धन थोपा है, और जो आज भी इसे उसी मार्ग पर रखने के लिए अपना दबाव डाल रही है, वह हमें ज्ञात है। यह वही कुंठा या विफलता है जो वास्तविकता के अभाव में होती है, या यदि हम इसका दूसरा असली नाम दें तो यह **आवश्यकता** या जीवन-संघर्ष है। आवश्यकता बड़ी सख्त मालकिन रही है, और उसने हमें बहुत कुछ सिखाया है। स्नायु-रोगी उसके वे बालक हैं जिनपर इस सख्ती का बुरा प्रभाव पड़ा है, पर यह खतरा तो हर दिशा में अवश्य रहता है। प्रसंगतः जीवन कायम रखने के लिए होने वाले संघर्ष को विकास का एक प्रवर्तक बल मानने के लिए यह आवश्यक नहीं कि यदि 'भीतरी विकासात्मक वृत्तियां' मौजूद दिखाई दें तो उनके महत्व को कम समझा जाए।

१. Phylogenetic origin २. Organs of motility.

अब यह बात ध्यान देने योग्य है कि वास्तविक जीवन की आवश्यकता से सामना होने पर यौन वृत्तियों और आत्मसंरक्षण की वृत्तियों का व्यवहार एक-सा नहीं होता। आत्मसंरक्षण की निसर्ग-वृत्तियां और उनके साथ जुड़ी हुई और सब वृत्तियां अधिक आसानी से टल जाती हैं। वे वास्तविकता के आदेशों पर आवश्यकता के अनुकूल बनना और अपने परिवर्धन को उसके अनुकूल बना लेना जल्दी ही सीख जाती हैं। यह बात समझ में आती है, क्योंकि उन्हें अपने अभीष्ट आलम्बन और किसी साधन से नहीं प्राप्त हो सकते, और इन आलम्बनों के बिना मनुष्य अवश्य नष्ट हो जाएगा। यौन वृत्तियां उतनी आसानी से नहीं टलतीं, क्योंकि शुरू में उन्हें आलम्बनों का अभाव नहीं पता चलता; वे दूसरे शारीरिक कार्य के साथ मानो पराश्रयी[1] रूप में जुड़ी हुई हैं, और साथ ही उन्हें अपने ही शरीर से आत्म-कामिता द्वारा भी परितुष्ट किया जा सकता है। इसलिए वे पहले वास्तविक आवश्यकता के शिक्षणकारी प्रभाव से अलग-थलग हो जाती हैं, और बहुत-से लोगों में किसी न किसी दृष्टि से दृढ़, और दूसरे के प्रभाव से प्रभावित न होने का यह गुण जिसे हम 'अतर्कसंगतता' कहते हैं, सारे जीवन बना रहता है। इसके अलावा, साधारणतया तरुण व्यक्ति की शिक्षित किए जाने की योग्यता उस समय खत्म हो जाती है जब यौन इच्छा अपनी अन्तिम शक्ति से उफन पड़ती है। शिक्षक इस बात को जानते हैं, और इसके अनुसार ही कार्य करते हैं, पर शायद वे अब भी मनोविश्लेषण के परिणामों की ओर कान देने को तैयार हो जाएं और शिक्षा में अधिक बल बचपन के आरम्भिक वर्षों, अर्थात् दूध पीने से आगे के दिनों, पर दे। वह छोटा-सा मनुष्य-प्राणी प्रायः अपने चौथे या पांचवें वर्ष में पूर्णरूप से तैयार हो चुका होता है, और आगे के वर्षों में तो वह जो कुछ उसके भीतर है, उसे क्रमशः बाहर प्रदर्शित करता है।

निसर्ग-वृत्तियों के दो समूहों के इस अन्तर का पूरा आशय ग्रहण करने के लिए हमें थोड़ा-सा प्रसंगान्तर करना होगा, और उनमें के एक पहलू को इसके अन्दर लेना होगा, जिन्हें **आर्थिक** पहलू कहना उचित है; यहां हम मनोविश्लेषण के सबसे अधिक महत्वपूर्ण, पर बदकिस्मती से सबसे अधिक घुंधले, क्षेत्रों में से एक क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। हम यह प्रश्न पूछ सकते हैं कि मनोयंत्र के कार्य करने में कोई मुख्य प्रयोजन दिखाई देता है या नहीं, और इसका पहला उत्तर इस तरह दिया जा सकता है कि यह प्रयोजन सुख-प्राप्ति की दिशा में होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारी सारी मनोधात्वीय चेष्टा **सुख पाने** और **दुःख से बचने** में जुटी हुई है, अर्थात् वह **सुख-सिद्धान्त**[2] से स्वतः नियंत्रित है। अब हम सबसे पहले यही जानना चाहेंगे कि किन अवस्थाओं में सुख और दुःख पैदा होते हैं : पर यहीं हम चूक जाते हैं। हम

---

१. Parasite. २. Pleasure-principle.

इतना ही कह सकते हैं कि सुख मनोयंत्र में मौजूद उद्दीपन की मात्रा घटाने, हलका करने या हटाने से **किसी रूप में** सम्बन्धित है, और दुःख में यह उद्दीपन बढ़ जाता है। मनुष्य जो तीव्रतम सुख, अर्थात् सम्भोग-सुख पा सकता है, उसपर विचार करने से इस बात में कोई सन्देह नहीं रहता। इस प्रकार के सुखात्मक प्रक्रम मानसिक उत्तेजन और ऊर्जा की मात्राओं के वितरण से सम्बिन्धत है। इसलिए हम इस तरह के विचारों को **आर्थिक** विचारणा कहते हैं। मालूम होता है कि मनोयंत्र के कार्यों का वर्णन, सुख-प्राप्ति पर बिना बल दिए, हम एक और तरीके से और अधिक व्यापक रूप से कर सकते हैं। हम कह सकते हैं कि मनोयंत्र अतिरिक्त उद्दीपनों के ढेरों, अर्थात् ऊर्जा की मात्राओं को, नियंत्रित और विसर्जित करने का प्रयोजन सिद्ध करता है। यह बिलकुल स्पष्ट है कि यौन प्रवृत्तियां अपने परिवर्धन के आरम्भ से अन्त तक परितुष्टि के लक्ष्य की ओर चलती हैं। वे सारे समय, बिना किसी परिवर्तन के, यह प्राथमिक कार्य भी करती रहती हैं। पहले दूसरा समूह अर्थात् अहम् वृत्तियां भी यही कार्य करती हैं। पर अपनी मालकिन, आवश्यकता, के आदेश से वे जल्दी ही सुख-सिद्धान्त के स्थान पर उसके किसी रूप-भेद को लाना सीख लेती हैं। उनके लिए दुःख से बचने का काम लगभग उतने ही महत्व का होता है जितना सुख पाने का काम। अहम् को पता चल जाता है कि अनिवार्यतः उसे तत्काल सन्तुष्टि से वंचित रहना होगा; परितुष्टि बाद के लिए मुलतवी करनी होगी; कुछ दुःख सहन करना सीखना होगा; और सुख के कुछ स्रोतों को बिलकुल छोड़ देना होगा। इस प्रकार अभ्यास हो जाने पर अहम् 'तर्कसंगत' हो जाता है। अब वह सुख-सिद्धांत से नियंत्रित नहीं रहता, बल्कि **यथार्थता-सिद्धान्त** पर चलता है। पर यह भी मूलतः सुख खोजता है, यद्यपि यह देर से मिलने वाला और पहले से कम सुख तथा ऐसा सुख खोजता है, जो इसके तथ्य को समझ लेने के कारण और इसका यथार्थता **से** सम्बन्ध होने के कारण मिलना निश्चित है। सुख-सिद्धान्त से यथार्थता-सिद्धान्त में संक्रमण अहम् के परिवर्धन में एक महत्वपूर्ण प्रगति है। हम पहले ही जानते हैं कि इस अवस्था में यौन वृत्तियां देर से और अनिच्छा से चलती हैं। अब हम यह जानने का यत्न करेंगे कि बाह्य यथार्थता को इतने हलके हाथ से पकड़कर मनुष्य की यौनवृत्ति के सन्तुष्ट होने से उसके लिए क्या-क्या दुष्परिणाम होते हैं, और अन्त में इस सिलसिले में एक बात और। यदि मनुष्य जाति में अहम् का विकास भी राग के विकास की तरह हुआ है तो आपको यह सुनकर आश्चर्य नहीं होगा कि 'अहम् प्रतिगमन' भी होते हैं और आप यह जानना चाहेंगे कि अहम् के, लौटकर परिवर्धन की पहले वाली अवस्थाओं में पहुंचने का स्नायु-रोगों पर क्या प्रभाव पड़ता है।

व्याख्यान | २३

लक्षण-निर्माण के मार्ग

जनसाधारण की दृष्टि में लक्षण ही रोग का सारभाग है, और उनके लिए इलाज का अर्थ है—लक्षणों का हट जाना; पर चिकित्सा-विज्ञान में लक्षणों और रोग में भेद करना बहुत महत्वपूर्ण है, और यह बताना भी महत्वपूर्ण है कि लक्षणों का हट जाना और रोग का हट जाना एक ही बात नहीं। परन्तु लक्षणों के हट जाने के बाद रोग का जो एकमात्र मूर्त अंश रह जाता है, वह है नए लक्षणों का निर्माण करने की क्षमता। इसलिए थोड़ी देर के लिए हम जनसाधारण का ही दृष्टिकोण मान लें और लक्षणों की बुनियाद के ज्ञान को रोग विषयक जानकारी का समानार्थक समझ लें।

लक्षण ऐसे व्यापार या चेष्टाएं हैं जो, सारे जीवन की दृष्टि से, हानिकारक या हीनतम रूप में बेकार हैं। यहां यह ध्यान रखिए कि हम मानसिक (या मनोधातुजनक) लक्षणों और मानसिक रोगों पर विचार कर रहे हैं; लक्षणों से ग्रस्त व्यक्ति बार-बार यह शिकायत करता है कि वे मुझे बुरे लगते हैं या मुझे उनसे परेशानी और तकलीफ़ होती है। उनसे मुख्य हानि यह होती है कि उनमें बहुत-सी मानसिक ऊर्जा खर्च होती है, और इसके अलावा, उनसे संघर्ष करने में भी ऊर्जा खर्च होती है। जब लक्षण अधिक फैल जाते हैं तब दोनों प्रयासों में इतनी अधिक ऊर्जा खर्च हो जाती है कि व्यक्ति के पास अपनी कुल मानसिक ऊर्जा की गम्भीर कमी हो जाती है, जो उसे जीवन के सब महत्वपूर्ण कार्यों में असमर्थ कर देती है। यह परिणाम मुख्यतः इस बात पर निर्भर है कि इस तरह ऊर्जा की कितनी मात्रा खर्च हुई है। इसलिए आप देखेंगे कि 'बीमारी' सारतः एक क्रियात्मक या प्रायोगिक अवधारण है, पर यदि आप इस मामले पर सिद्धान्त की दृष्टि से विचार करें और मात्रा के प्रश्न को छोड़ दें तो आप आसानी से कह सकते हैं कि हम सब लोग रोगी अर्थात् स्नायु-रोगी हैं क्योंकि लक्षण-निर्माण के लिए जो अवस्थाएं अपेक्षित हैं वे प्रकृत व्यक्तियों में भी दिखाई जा सकती हैं।

स्नायविक लक्षणों के बारे में हम यह जानते हैं कि वे उस द्वंद्व का परिणाम हैं जो राग की सन्तुष्टि का नया रूप तलाश करने पर पैदा होता है। दो शक्तियां, जो एक दूसरे के विरोध में खड़ी हैं, लक्षण में फिर आकर मिल जाती हैं, और लक्षण-निर्माण में निहित **समझौते या मध्यमार्ग** द्वारा सामंजस्य कर लेती हैं। इसी कारण लक्षण में इतने प्रतिरोध का सामर्थ्य है। इसे दोनों ओर से सहारा मिलता है। हम यह भी जानते हैं कि द्वंद्व करने वाले दो पहलवानों में एक वह असन्तुष्ट राग है जो यथार्थता से कुंठित हो गया है और जिसे अब सन्तुष्टि के लिए दूसरा मार्ग खोजना पड़ा है। यदि यथार्थता तब भी अड़ी रहे जबकि राग निषिद्ध आलम्बन के स्थान पर दूसरा आलम्बन पकड़ने को तैयार है, तो तब अन्त में राग को प्रतिगमन का मार्ग पकड़ने तथा जिन संगठनों को यह पहले पार कर आया है, उनमें से किसी एक से, या जो आलम्बन इसने पहले छोड़ दिए थे, उनमें से किसी एक से सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए मजबूर होना पड़ेगा। राग को वे बद्धताएं प्रतिआगमन के मार्ग पर खींचती हैं जो यह अपने परिवर्धन में इन स्थानों पर अपने पीछे छोड़ आया है।

अब काम-विकृति का रास्ता स्नायु-रोग के रास्ते से बिलकुल अलग हो जाता है। यदि इन प्रतिगमनों पर अहम् कोई प्रतिषेध नहीं लागू करता तो स्नायु-रोग नहीं पैदा होता। राग यथार्थ सन्तुष्टि प्राप्त कर लेता है, यद्यपि वह प्रकृत संतुष्टि नहीं होती; पर यदि अहम्, जो न केवल चेतना को, बल्कि कर्म-स्नायु के उद्दीपन[1] द्वारों को भी नियंत्रित करता है, और इस प्रकार मानसिक आवेगों की वस्तुतः संतुष्टि को नियंत्रित करता है, इन प्रतिगमनों से सहमत नहीं है, तो द्वंद्व शुरू हो जाता है। राग जैसे चारों ओर से घिर जाता है और उसे ऐसा रास्ता ढूंढ़ना है जिससे वह सुख-सिद्धांत की मांग के अनुसार कैथेक्सिस, अर्थात् ऊर्जा के आवेश (या चार्ज) को बाहर कर सके : यह अहम् से बचने और दूर रहने की कोशिश करेगा। परिवर्धन के मार्ग पर, जिसपर अब प्रतिगमन हो रहा है, मौजूद बद्धताएं—जिनसे अहम् ने पहले दमन द्वारा अपने को बचा लिया था, ऐसे पलायन-मार्ग के रूप में दिखाई देती हैं। पीछे की ओर जाते हुए इन दमित स्थानों को पुनः ऊर्जाविष्ट करते हुए राग अहम् और उसके नियमों से अपने आपको दूर हटा लेता है, पर वह अहम् के प्रभाव से प्राप्त सारे प्रशिक्षण को भी त्याग देता है। यह तब तक विनीत था जब तक सन्तुष्टि नज़र आ रही थी; बाहरी और भीतरी कुंठा के दोहरे दबाव से यह अ-नियम्य बन जाता है और पुराने सुखमय दिनों की ओर मुड़कर देखने लगता है। यह इसका परमावश्यक अपरिवर्तनीय गुण है। अब राग अपना ऊर्जावेश या कैथेक्सिस जिन मनोबिंबों पर ले जाता है वे अचेतन संस्थान के होते हैं, और

---

१. Motor innervation.

उस संस्थान के सूचक विशेष प्रक्रमों के अधीन कार्य करते हैं, अर्थात् उनका संघनन और विस्थापन हो सकता है। इस प्रकार ऐसी अवस्थाएं बन जाती हैं जो स्वप्न-निर्माण की अवस्थाओं से बिलकुल मेल खाती हैं; जैसे गुप्त स्वप्न, जो पहले विचारों से अचेतन में बनता है और किसी अचेतन इच्छा-कल्पना की पूर्ति होता है, किसी (पूर्व) चेतन चेष्टा से मिलता है जो इसकी काट-छांट करती है, और अपनी राय के अनुसार व्यक्त स्वप्न में एक मध्यमार्गी या समझौते वाले रूप का निर्माण होने देती है। उसी प्रकार उन मनोबिंब को, जिससे राग चेतन में जुड़ा रहता है, (राग-निरूपक)[1] पूर्व चेतन अहम् की शक्ति से फिर संघर्ष करना पड़ता है। अहम् में इसका विरोध प्रति आवेश (एन्टी-कैथेक्सिस) बनकर इसके पीछे आता है, और इसे अभिव्यक्ति का ऐसा रूप अपनाने को मजबूर करता है जिससे साथ ही साथ विरोध करनेवाले बल भी अपने आपको अभिव्यक्ति कर सकें। इस प्रकार तब लक्षण अचेतन रागात्मक इच्छा-पूर्ति के अनेक प्रकार से विपर्यस्त व्युत्पन्न के रूप में, एक ऐसे चतुराई से चुने गए संदिग्ध अर्थ के रूप में, जिसके दो बिलकुल परस्पर विरोधी अर्थ होते है, जन्म लेता है। स्वप्न-निर्माण और लक्षण-निर्माण में सिर्फ इस अंतिम बात में अंतर है, क्योंकि स्वप्न-निर्माण में पूर्व चेतन का प्रयोजन सिर्फ इतना है कि नींद की रक्षा की जाए, और ऐसी कोई बात चेतना में न घुसने दी जाए जो इसे बिगाड़े। यह अचेतन इच्छा-आवेग के सामने 'नहीं, इसके विपरीत' का प्रतिषेधक नोटिस लगाने का आग्रह नहीं करता। यह अधिक सहिष्णु हो सकता है क्योंकि सोता हुआ मनुष्य कम खतरनाक स्थिति में रहता है। इच्छा को वास्तव में पूरी होने से रोकने के लिए नींद की अवस्था ही काफ़ी है।

आप देखते हैं कि द्वन्द्व की स्थिति में राग का यह पलायन बद्धताओं के अस्तित्व के कारण सम्भव हो पाता है। इन बद्धताओं पर मौजूद (राग का) प्रतिगामी आवेश दमनों से दूर रहता हुआ आगे बढ़ जाता है, और राग का विसर्जन (डिस-चार्ज) या सन्तुष्टि—हो जाती है, जिसमें तब भी समझौते या मध्य मार्ग की अवस्थाएं बनाए रखनी पड़ती हैं। अचेतन और पुरानी बद्धताओं का लम्बा रास्ता पकड़कर राग अन्त में वास्तविक सन्तुष्टि पाने में सफल हो जाता है, यद्यपि यह सन्तुष्टि निश्चित रूप से बड़े सीमित प्रकार की होती है, और इसे इस रूप में पहचानना कठिन होता है। इस नतीजे के बारे में दो बातें और कहता हूं। प्रथम तो आपने इस बात पर ध्यान दिया होगा कि एक ओर तो राग और अचेतन तथा दूसरी ओर, अहम, चेतना और यथार्थता में कितना नज़दीकी सम्बन्ध दिखाई देता है, हालांकि शुरू में उनमें कोई ऐसे सम्बन्ध नहीं थे; और दूसरे, यह याद रखिए कि मैंने इस विषय में जो कुछ कहा है और मुझे जो कुछ कहना है, वह सिर्फ़

---

१. Libido-representatives.

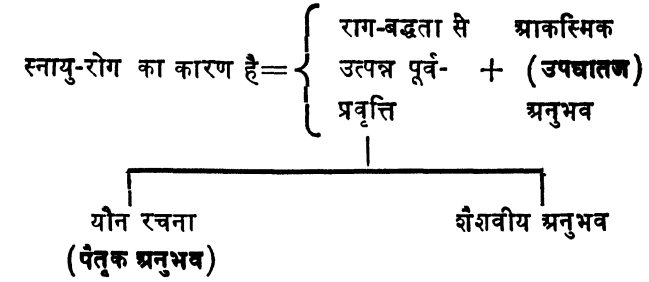
हिस्टीरिया-स्नायु-रोग से सम्बन्धित है।

राग को दमनों का घेरा तोड़कर निकलने के लिए जिन बद्धताओं की आवश्यकता है, वे उसे कहां मिलती हैं? वे उसे शैशवीय कामुक चेष्टाओं और अनुभवों में और बालकपन की घटक-प्रवृत्तियों और आलम्बनों में, जो अब त्याग दिए गए हैं, मिलती हैं; इसलिए राग मुड़कर वहीं पहुंचता है। बालकपन का महत्व दोहरा है: एक तरफ़ तो, जन्म के कारण नियत निसर्ग-वृत्ति-विन्यास या नैसर्गिक पूर्व प्रवृत्ति सबसे पहले उस समय प्रकट होती है; और दूसरी ओर, अन्य निसर्ग-वृत्तियां तभी बाहरी प्रभावों और अनुभव की गई आकस्मिक घटनाओं से उद्बुद्ध और सक्रिय हो जाती हैं। मेरी राय में हमारा यह युग्मभुजिता[1] स्थापित करना बिलकुल उचित है। इस बात पर निश्चय ही कोई आपत्ति नहीं की जाएगी कि जन्मजात पूर्व प्रवृत्ति अभिव्यक्त होती है, पर विश्लेषण सम्बन्धी प्रेक्षण हमें यह मानने के लिए भी मजबूर करता है कि बालकपन के सर्वथा आकस्मिक अनुभव भी राग की बद्धताएं पैदा कर सकते हैं। मुझे इसमें सिद्धान्त की दृष्टि से कोई कठिनाई नहीं मालूम होती। शरीर-रचनागत पूर्व प्रवृत्तियां निश्चित रूपसे किसी पुराने पुरखे के अनुभवों की अनुप्रभाव[2] होती हैं। वे भी किसी समय अर्जित की गई हैं, अर्थात् बाहर से प्राप्त की गई हैं। ऐसे अर्जित गुण न होते तो आनुवंशिकता कोई चीज़ न होती, और क्या यह बात समझ में आ सकती है कि जो गुण आगे संचरित होंगे, उनका अर्जन उस पीढ़ी में एकाएक बन्द हो जाए जिसपर आज प्रेक्षण किया जा रहा है? पर शैशवीय अनुभवों के महत्व की पूरी तरह उपेक्षा करके, जैसा कि आमतौर से किया जाता है, पैतृक अनुभवों या वयस्क जीवन के अनुभवों को ही सब कुछ न समझ लेना चाहिए। इसके विपरीत, उनका महत्व खासतौर से समझना चाहिए। वे इस कारण और भी परिणाम पैदा करने में समर्थ हैं कि वे अधूरे परिवर्धन के समय होते हैं और इसी कारण उनका उपघातकारी प्रभाव होने की सम्भावना है। रौक्स तथा दूसरे वैज्ञानिकों ने परिवर्धन के तन्त्र पर जो अनुसंधान किया है, उससे पता चला है कि विभाजन के समय भ्रूणीय कोशिका-संहति में सुई चुभाने से परिवर्धन में गम्भीर गड़बड़ियां पैदा हो जाती हैं। वही चोट किसी लारवा या पूर्णवर्धित प्राणी के लिए हानि रहित होगी।

इसलिए वयस्क की राग-बद्धता को, जिसे हमने स्नायु-रोगों के कारण बताते हुए शारीरिक कारक का निरूपक कहा है, अब दो और भागों में बांटा जा सकता है वंशागत पूर्व प्रवृत्ति और बचपन के शुरू में अर्जित पूर्व प्रवृत्ति। क्योंकि विद्यार्थी को रेखाचित्र के रूप में बात सदा आसानी से समझ में आती है, इसलिए इन सम्बन्धों को मैं इस तरह रखता हूं:

---

१. Dichotomy. २. After-effect.



आनुवंशिक यौन रचना में बहुत तरह की पूर्व प्रवृत्तियां दिखाई देती हैं, और किसीमें कोई घटक-आवेग और किसीमें कोई और घटक-आवेग, अकेला या दूसरों के साथ मिला हुआ, विशेष रूप से प्रबल होता है। यौन रचना और शैशवीय अनुभव मिलकर एक और पूरक श्रेणी बनाते हैं, जो बिलकुल वैसी ही होती है जैसी वयस्क की पूर्व प्रवृत्ति और आकस्मिक अनुभवों से बनने वाली पहली पूरक श्रेणी बताई गई है। प्रत्येक श्रेणी में वैसे ही चरम रोगी मिलते हैं और सम्बन्धित कारकों में वैसी ही कोटियां और सम्बन्ध मिलते हैं। यहां यह विचार करना उचित होगा कि राग-प्रतिगमन के दो प्रकारों में से जो प्रकार अधिक विशिष्ट है, अर्थात् जो प्रकार यौन संगठन की पहले वाली अवस्थाओं पर लौट आता है, वह आनुवंशिक शरीर सम्बन्धी कारक से ही प्रधानतः निर्धारित होता है या नहीं, पर सबसे अच्छा यह होगा कि इस प्रश्न का उत्तर तब तक के लिए टाल दिया जाए जब तक स्नायु-रोगों के अधिक विस्तृत रूपों पर विचार न कर लिया जाए।

अब ज़रा इस तथ्य की ओर ध्यान दीजिए कि : मनोविश्लेषण की जांच से प्रकट होता है कि स्नायु-रोगियों का राग अपने शैशवीय यौन अनुभवों से जुड़ा रहता है। इस जानकारी को देखते हुए ये अनुभव मनुष्य जाति के जीवनों और बीमारियों के लिए बहुत ही अधिक महत्वपूर्ण ह। विश्लेषण के इलाज वाले अंश के लिए भी इनका उतना ही महत्व है, पर एक और दृष्टिकोण से देखा जाए तो आसानी से पता चल जाएगा कि यहां एक ग़लतफ़हमी का खतरा है, जो हमें इस भ्रम में डाल सकती है कि हम जीवन को उसी दृष्टिकोण से देखने लगें जो स्नायु-रोगियों की स्थिति से बनता है। यह सोचने पर शैशवीय अनुभवों का महत्व घट जाता है कि राग-प्रतिगमन करके उनपर **तब** लौटता है जब उसे उसकी बाद की स्थितियों से खदेड़ा जाता है। इससे हम बिलकुल विपरीत नतीजे पर पहुंचेंगे, अर्थात् राग-अनुभवों का उस समय कोई महत्व नहीं था जब वे हुए, और उन्हें यह महत्व बाद में प्रतिगमन द्वारा ही प्राप्त हुआ। आपको याद होगा कि हमने ओडिपस ग्रन्थि पर विचार करते हुए पहले एक ऐसे ही विकल्प की विवेचना की थी।

इस प्रश्न का फैसला करना भी कठिन नहीं। यह कथन निस्संदेह सही है कि प्रतिगमन शैशवीय अनुभवों के रागात्मक आवेश को बहुत अधिक बढ़ा देता है, और साथ ही उनके रोगजनक महत्व को भी बढ़ा देता है। पर अकेले इसके आधार पर फैसला करना भ्रामक होगा। इसके साथ और बातों पर भी विचार करना होगा। प्रथम तो, प्रेक्षण से बड़े असंदिग्ध रूप से यह प्रकट होता है कि शैशवीय अनुभवों का अपना अलग महत्व होता है जो पहले बचपन में ही सामने आ जाता है। बालकों में भी स्नायु-रोग होते हैं। उनके स्नायु-रोगों में पिछले समय की ओर विस्थापन वाली बात बहुत कम होती है, जैसा कि आवश्यक ही है, या बिलकुल नहीं होती—रोग किसी उपघातकारी अनुभव के तुरन्त बाद शुरू हो जाता है। शैशवीय स्नायु-रोगों के अध्ययन से हम वयस्कों के स्नायु-रोगों को ग़लत रूप में समझने के बहुत-से खतरों से बच जाते हैं, जैसे बालकों के स्वप्नों से हमें वयस्कों के स्वप्नों को समझने की कुंजी मिल गई थी। बालकों में स्नायु-रोग बहुत आम होता है; आमतौर से लोग जितना समझते हैं, यह उससे भी अधिक आम होता है। प्रायः इसकी उपेक्षा कर दी जाती है। इसे दुष्ट व्यवहार या शैतानी का व्यक्त रूप समझ लिया जाता है और प्रायः दबा दिया जाता है। पर आगे से पीछ की ओर देखने पर यह सदा आसानी से पहचाना जा सकता है। यह चिन्ता-हिस्टीरिया के रूप में सबसे अधिक दिखाई देता है। इसका अर्थ क्या है, यह हम आगे चलकर देखेंगे। जब बाद के जीवन में कोई स्नायु-रोग उभरता है, तब विश्लेषण से सदा यह प्रकट होता है कि यह उस शैशवीय स्नायु-रोग की सीधी शृंखला है जो शायद प्रच्छन्न और आरम्भिक रूप में ही प्रकट हुआ था; पर, जैसा कि कहा जा चुका है, ऐसे रोगी भी सामने आए हैं जिनमें बालकपन की स्नायविकता बिना रुके जीवन भर रोग के रूप में चलती रही। कुछ उदाहरणों में हम स्नायु-रोग की अवस्था वाले बालक का विश्लेषण करने में सचमुच सफल हुए हैं, परन्तु अधिकतर उदाहरणों में हमें बालकपन के स्नायु-रोग की भूतकाल की उस झांकी से ही सन्तुष्ट होना पड़ा, जो बड़ी उम्र में रोगी होने वाले किसी व्यक्ति से मिली—इस बड़ी उम्र में उचित उपाय और सावधानियां करने में उपेक्षा नहीं बरतनी चाहिए।

दूसरे, यह बात भी निश्चित रूप से रहस्यमय या गूढ़ रहेगी कि यदि बालकपन के समय में ऐसी कोई बात नहीं थी जो राग को आकर्षित कर सकती तो राग क्यों उसपर ही इस तरह सदा प्रतिगमन करता है। हमने परिवर्धन की कुछ अवस्थाओं पर जो बद्धता मान ली है उसकी सार्थकता तभी है, यदि हम यह मानें कि यह अपने साथ रागात्मक ऊर्जा की कुछ निश्चित मात्रा जोड़ लेती है। अन्त में, मैं यह कहना चाहता हूं कि यहां **शैशवीय** अनुभवों की और **बाद वाले** अनुभवों की तीव्रता और रोगजनक अनुभवों में एक पूरक सम्बन्ध मौजूद है—यह सम्बन्ध भी

वैसा ही है जैसा हमने पहले वाली दो अन्य श्रेणियों में देखा था। ऐसे रोगी मिले हैं जिनमें सारा कारण बालकपन के यौन अनुभव ही मालूम होते हैं, इन रोगियों में इन प्रभावों या संस्कारों का निस्संदेह उपघातकारी प्रभाव हुआ था, और उनकी अनुपूर्ति करने के लिए सिर्फ़ औसत दर्जे की यौन शरीर-रचना और उसकी अपरिपक्वता की ज़रूरत थी। कुछ रोगी ऐसे हैं जिनमें बाद के द्वन्द्व महत्वपूर्ण कारण हैं, और बालकपन के संस्कारों पर विश्लेषण से जो बल पड़ता दिखाई देता है, वह सिर्फ़ प्रतिगमन का फल मालूम होता है। इसलिए दो सिरे या चरम पक्ष—'निरुद्ध परिवर्धन' और 'प्रतिगमन'—होते हैं और उनके बीच में, इन दोनों कारकों के विभिन्न अनुपात में मिश्रण मिलते हैं।

यह स्थिति उन लोगों के लिए कुछ मतलब की है जो बालक के यौन परिवर्धन में जल्दी से जल्दी पठन-पाठन को लाकर स्नायु-रोगों को रोकने की आशा करते हैं। जब तक ध्यान मुख्यतः शैशवीय यौन अनुभवों की ओर है, तब तक आदमी हर बात को इसी तरह सोचेगा कि इस परिवर्धन की गति को मन्द करने और बालक को इस तरह के अनुभव से बचाने का उपाय करके बाद के स्नायु-रोग का पहले ही निवारण किया जाए। हम जानते हैं कि स्नायु-रोग पैदा करने वाली अवस्थाएं इससे अधिक उलझी हुई हैं और कि उन्हें सिर्फ़ एक कारक की ओर ध्यान देकर सामान्यतः प्रभावित नहीं किया जा सकता। बालकपन में कड़ी देख-भाल इसलिए व्यर्थ हो जाती है क्योंकि वह शरीर सम्बन्धी कारक के बारे में कुछ नहीं कर सकती। इससे भी बड़ी बात यह है कि कड़ी देख-भाल करना इतना आसान नहीं है, जितना शिक्षा-शास्त्री लोग समझते हैं, और इसमें दो नए ख़तरे भी हैं जिनको लापरवाही से उपेक्षित नहीं किया जा सकता। हो सकता है कि यह बहुत अधिक सफल हो जाए,अर्थात् यह इतना अधिक यौन दमन करा दे जिसका परिणाम हानिकारक हो और तब बालक जीवन में प्रवेश करने पर अपनी यौनप्रवृत्ति की उन प्रबल पुकारों का प्रतिरोध करने की शक्ति नहीं रखता, जो तरुणावस्था में पैदा हुआ करती हैं। इसलिए यह बहुत संदिग्ध है कि बालकपन में कहां तब स्नायु-रोग निवारक कार्य लाभदायक हो सकते हैं, और यह विचारणीय है कि क्या स्नायु-रोगों की रोकथाम करने के लिए यह अधिक अच्छा नहीं होगा कि वास्तविकता के प्रति परिवर्तित या दूसरा रुख़ अपनाया जाए?

अब फिर लक्षणों पर विचार किया जाए। वे यथार्थ रूप में न मिलने वाली सन्तुष्टि के स्थान पर एक सन्तुष्टि प्रदान करते हैं। वे यह कार्य इस तरह करते हैं कि राग का जीवन के किसी पहले वाले समय को प्रतिगमन हो जाता है, और जीवन के उस समय से प्रतिगमन का अविच्छेद्य सम्बन्ध होता है, या राग आलम्बन-चुनाव की या संगठन की किसी पूर्ववर्ती कला में लौट जाता है। हमने कुछ समय पहले देखा था कि स्नायु-रोगी अपने पिछले जीवन के किसी काल से किसी रूप में बंधा

हुआ होता है। हम अब जानते हैं कि यह पिछला समय वह है जिसमें उसका राग सन्तुष्टि पा सकता था, जिसमें वह सुखी था। वह अपनी जीवन-कथा पर पीछे घूमकर देखता है, किसी ऐसे काल की तलाश करता है और इसे तलाश करता ही जाता है, चाहे उसे उस काल तक लौटना पड़े जब वह दुधमुंहा शिशु था, और वह बाद के प्रभावों से उसके मन में इसकी जो कल्पना बनी हुई है, उसके अनुसार, या अपनी स्मृति के अनुसार उसे पाने का यत्न करता है। लक्षण किसी रूप में सन्तुष्टि का वह पहला शैशवीय तरीका फिर पैदा कर देता है, चाहे द्वन्द्व में ध्वनित काट-छांट या सेन्सरशिप द्वारा उसका रूप छिपा दिया गया हो, या चाहे वह पीड़ा के संवेदना में बदल दिया गया हो, जैसा कि आम तौर पर होता है, और रोग पैदा होने तक के अनुभवों में से लिए हुए अवयवों से मिला हुआ हो। लक्षणों से जिस तरह की सन्तुष्टि मिलती है, उसका रूप ऐसा होता है कि हम पहचान नहीं पाते, और इसके अलावा, यह तथ्य तो है ही कि सम्बन्धित व्यक्ति को उस सन्तुष्टि का अनुभव नहीं होता; और जिसे हम सन्तुष्टि कहते हैं उसे वह तकलीफ़ के रूप में महसूस करता है, और दूसरी शिकायत करता है। यह रूपान्तरण मानसिक द्वन्द्व से हुआ है जिसके दबाव से लक्षण को बनना पड़ा; जो चीज़ किसी समय सन्तुष्टि थी उससे आज उसके मन में प्रतिरोध या भय पैदा हो रहा है। इस तरह के भावना-परिवर्तन का एक सरल, पर शिक्षाप्रद, उदाहरण हम देख चुके हैं। जो बच्चा माता के स्तन से बड़े आग्रह के साथ दूध चूसता था, वह कुछ वर्षों बाद दूध से प्रबल अरुचि प्रदर्शित करता है, जिसे प्रशिक्षण द्वारा कठिनाई से दूर किया जा सकता है। यदि दूध या दूध से युक्त किसी और तरह के द्रव्य के ऊपर कोई मलाई बन गई हो तो यह अरुचि इतनी तीव्र हो जाती है कि घृणा का रूप ले लेती है। हो सकता है कि यह मलाई माता के स्तन की याद की गूंज उसके मन में पैदा कर देती हो, जिसके लिए कभी वह इतनी प्रबल अभिलाषा रखता था। यह सच है कि दोनों के बीच में दूध छुड़ाने का उपघातज अनुभव हो चुका है।

अब भी कुछ चीज़ ऐसी है जिससे लक्षणों की यह व्याख्या पूरी तरह ठीक नहीं जंचती कि वे रागात्मक सन्तुष्टि के साधन हैं। हमें सन्तुष्टि के साथ प्रकृत रूप से जिन चीज़ों को सम्बधित करने की आदत है, उन सबकी याद दिलाने में वे बिलकुल विफल रहते हैं। वे अधिकतर आलम्बन से बिलकुल स्वतंत्र होते हैं, और इस तरह उन्होंने बाहरी यथार्थता से सम्बन्ध छोड़ दिया है। हम इसे यथार्थता-सिद्धांत की अस्वीकृति और सुख-सिद्धांत पर वापसी का परिणाम समझते हैं। पर यह बड़े रूप में आत्मकामिता के एक प्रकार पर, अर्थात् उस प्रकार पर जिससे यौन प्रवृत्ति को उसकी सबसे पहली परितुष्टि प्रदान की थी, लौटना भी है। बाहरी जगत में परिवर्तन लाने के बजाय वे शरीर में ही परिवर्तन ले आते हैं, अर्थात् बाहरी क्रिया के बजाय भीतरी क्रिया, चेष्टा के बजाय अनुकूलन—जातिचरितीय दृष्टिकोण से यह

भी बहुत अर्थपूर्ण प्रतिगमन है। इसे हम तब अच्छी तरह समझेंगे जब इसपर हम एक नए कारक के सिलसिले में विचार करेंगे, जो उन कारकों में है जिनका विश्लेषण सम्बन्धी गवेषणा ने लक्षण-निर्माण के बारे में पता लगाया है, और जिसे हमें आगे जानना भी है। फिर हम यह देखते हैं कि लक्षण-निर्माण में वही अचेतन प्रक्रम क्रियाशील हैं जो स्वप्न-निर्माण में थे, अर्थात् संघनन और विस्थापन। स्वप्न की तरह लक्षण भी किसी चीज़ को पूरी हुई दिखाता है, और यह सन्तुष्टि शैशवीय प्रकार की है। पर अत्यधिक संघनन द्वारा इस सन्तुष्टि को दबाकर सिर्फ एक संवेदन बनाया जा सकता है, या अधिकतम विस्थापन द्वारा इसे सारी रागात्मक ग्रन्थि का एक बहुत ही छोटा रूप दिया जा सकता है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि प्रायः, हम लक्षण में वह रागात्मक सन्तुष्टि आसानी से नहीं पहचान पाते जिसकी हम सम्भावना करते हैं और जिसके इसमें होने की जांच से सदा पुष्टि हो सकती है।

मैंने संकेत किया है कि हमें अभी एक नए अवयव को जानना है। यह सचमुच बड़े आश्चर्य और विस्मय में डालने वाली बात है। आप जानते हैं कि लक्षणों के विश्लेषण से हमें उन शैशवीय अनुभवों की जानकारी होती है जिनपर राग बद्ध है और जिनमें से लक्षण बने हैं। अब आश्चर्य कारक बात यह है कि शैशव के ये दृश्य सदा सच्चे नहीं होते। सच पूछिए तो अधिकतर दृश्य असत्य होते हैं, और कुछ उदाहरणों में तो वे ऐतिहासिक सत्य से बिलकुल उलटे होते हैं। आप देखेंगे कि इस खोज से या तो उस विश्लेषण को ग़लत ठहराया जाएगा जिससे ऐसे परिणाम पैदा होते हैं और या उस रोगी को झूठा कहा जाएगा जिसकी गवाही पर विश्लेषण और स्नायु-रोगों को समझने का सारा यत्न हो रहा है। इसके अलावा, इसमें एक और भी बड़ी विस्मयजनक बात है। यदि विश्लेषण से प्रकट किए जाने वाले शैशवीय अनुभव प्रत्येक अवस्था में वास्तविक होते तो हम यह अनुभव करते कि हम मज़बूत आधार पर खड़े हैं। यदि वे सदा झूठे सिद्ध होते और रोगी की गढ़न्त और कल्पना सिद्ध होते तो हमें वह अस्थिर आधार छोड़ना पड़ता और किसी और तरह अपनी रक्षा करनी पड़ती। पर यह न वह है न यह; क्योंकि जो चीज़ हमें मिलती है वह यह है कि विश्लेषण में फिर से जोड़े गए या याद कराए गए बालकपन के अनुभव कभी-कभी बेशक मिथ्या होते हैं, पर कभी-कभी वे इतने ही निश्चित रूप से बिलकुल सत्य भी होते हैं, और अधिकतर उदाहरणों में झूठ और सच मिले हुए होते हैं। इस प्रकार लक्षण कभी तो सच हुए अनुभवों के पुनरुत्पादन होते हैं जिनके बारे में यह कहा जा सकता है कि उन्होंने राग की बद्धता पर प्रभाव डाला, और अगले ही क्षण, वे रोगी की कल्पनाओं का पुनरुत्पादन मात्र होते हैं जिनका कार्य-कारण विचार में कोई महत्व मानना मुश्किल है। यहां कोई रास्ता नहीं सूझ पड़ता। शायद हमें इसी तरह की

खोज से कोई राह मिल सके कि बाल्यकाल की जो थोड़ी-सी स्मृतियां विश्लेषण से बहुत पहले लोगों ने सचेत रूप से संरक्षित कर रखी हैं, वे भी इसी तरह झूठी सिद्ध हो सकती हैं, या कम से कम, उनमें भी सचाई और झूठ का ऐसा ही बहुत अधिक मिश्रण हो सकता है। उनमें ग़लती प्रायः सदा साफ़ दीख जाती है और इस प्रकार हमें कम से कम यह तो निश्चय हुआ कि इस अकस्मात् आने वाली निराशा की जिम्मेदारी विश्लेषण पर नहीं, बल्कि किसी न किसी रूप में, रोगी पर ही है।

थोड़ा सोचने पर हम आसानी से समझ सकते हैं कि इस मामले में इतनी विस्मय पैदा करने वाली क्या चीज़ है। यह है यथार्थता को हीन या तुच्छ बना देना; यथार्थता और कल्पना के फ़र्क को भुला देना। हमें रोगी पर इस कारण गुस्सा आता है कि उसने मनगढ़न्त किस्सों से हमारा समय नष्ट किया। हमारी विचार-रीति के अनुसार गप्प और यथार्थता में आकाश-पाताल का अन्तर है और इन दोनों का मूल्य हम अलग-अलग ढंग से आंकते ह, यहां तक कि स्वयं रोगी भी प्रकृत रूप में विचार करते हुए इसी तरह सोचता है। जब वह ऐसी सामग्री पेश करता है, जिससे हम अभिलषित स्थितियों पर पहुंचते हैं (जो लक्षणों की तह में होती हैं और बालकपन के अनुभवों पर खड़ी होती है), तब निश्चित ही शुरू में हमें यह शक होने लगता है कि हमें यथार्थता का अध्ययन करना है या कल्पनाओं का। इस प्रश्न का फैसला बाद में कुछ संकेतों के द्वारा सम्भव हो जाता है और तब हमारे सामने इस परिणाम को रोगी को जतलाने का काम आ पड़ता है। यह कभी भी बिना कठिनाई के पूरा नहीं हो जाता। हम शुरू में उससे कहते हैं कि तुम अब वे कल्पनाएं हमारे सामने रखोगे, जिनमें तुमने अपने बालकपन के इतिहास को छिपा रखा है, जैसे कि प्रत्येक जाति अपने भुलाए हुए आरम्भिक इतिहास के बारे में पौराणिक कथाएं बना लेती है। तो, हम यह देखेंगे और इससे हमें बड़ा असन्तोष होगा कि इस विषय को आगे चालू रखने में उसकी दिलचस्पी एकाएक घट जाती है---वह भी तथ्य ही निकालना चाहता है, और जिसे 'कल्पना' कहा जाता है, उससे नफ़रत करता है। पर यदि हम कार्य का यह हिस्सा पूरा होने से पहले यह मानने की गुंजाइश दे दें कि हम उसके आरम्भिक जीवन की यथार्थ घटनाओं का पता लगा रहे हैं, तो बाद में यह कहा जाएगा कि हमने ग़लती की, और हमें इतना विश्वासी देखकर हमारी हंसी की जाएगी। उसे यह बात समझने में बहुत समय लगता है। कल्पना और यथार्थता को एक जैसा मानकर चलना होगा, और शुरू में इस बात का कोई महत्व नहीं है कि उसके जिन बालकपन के अनुभवों पर हम विचार कर रहे हैं, वे कल्पित हैं या यथार्थ; परन्तु फिर भी स्पष्टतः उसके मन की इन सृष्टियों के प्रति एकमात्र सही रुख यही हो सकता है। उनमें सचमुच एक तरह की यथार्थता भी है। यह तथ्य है कि इन कल्पनाओं का सृजन

रोगी ने किया है, और स्नायु-रोग के लिए यह तथ्य उतने ही महत्व का है जितने महत्व का दूसरा तथ्य—यदि उसने वस्तुतः उनमें वर्णित बातों का अनुभव किया होता। **भौतिक** यथार्थता के मुकाबले में इन कल्पनाओं में **मनोधात्वीय** या मानसिक यथार्थता है, और क्रमशः हम यह समझने लगते हैं **कि स्नायु-रोग की दुनिया में मनोधात्वीय या मानसिक यथार्थता ही निर्धारक कारक है।**

जो घटनाएं स्नायु-रोगी के बालकपन की कहानी में बीच-बीच में दुहराती रहती हैं, और जो सदा प्रायः हाजिर रहती हैं, उनमें से कुछ विशेष अर्थपूर्ण होती हैं, और इसलिए उनकी ओर मैं विशेष ध्यान खींचना चाहता हूं। इस तरह की घटनाओं के नमूने में गिनाऊंगा : माता-पिता का सम्भोग देखना, वयस्क द्वारा फुसलाया जाना और बधिया करने, अर्थात् लिंग काट लेने, की धमकी। यह समझना बड़ा ग़लत होगा कि ये घटनाएं यथार्थ रूप में कभी नहीं होतीं। इसके विपरीत, अधिक उमर वाले रिश्तेदारों की गवाही से उनकी प्रायः असंदिग्ध रूप में पुष्टि होती है। इस प्रकार, उदाहरण के लिए, ऐसा बहुत बार होता है कि छोटे बालक को जो अपने शिश्न से खेलने लगा है और जिसने अभी यह नहीं सीखा है कि उसे ऐसे कामों को छिपाना चाहिए, माता-पिता या नर्सें यह धमकी देती हैं कि उसका शिश्न या हाथ काट दिया जाएगा। पूछने पर माता-पिता प्रायः इस तथ्य को स्वीकार करेंगे, क्योंकि वे समझते हैं कि इस तरह डराना उचित था। बहुत-से लोगों को इस धमकी की स्पष्ट सचेत स्मृति होती है, विशेष रूप से यदि यह बालकपन के पिछले हिस्से में दी गई है। यदि यह धमकी माता या कोई और स्त्री देती है तो वह यह (धमकी में व्यक्त) कार्य करने का भार किसी दूसरे पर डालती है अर्थात् यह कहती है कि पिता या डाक्टर यह कार्य करेगा। बच्चों के चिकित्सक हाफमैन (फ्रांकफोर्ट वाले) की प्रसिद्ध रचना **स्ट्रुवेल-पीटर** में, जिसकी लोकप्रियता का कारण यही है कि वह बालकों की यौन तथा अन्य ग्रन्थियों को समझता था, आप देखेंगे कि बधिया करने के विचार का रूप बदलकर उसके स्थान पर अंगूठा चूसते रहने की सज़ा अंगूठे काटना रख दी है। पर यह बहुत असम्भाव्य है कि बधिया या लिंगच्छेद करने की धमकी इतनी बार दी गई हो, जितना किसी स्नायु-रोगी के विश्लेषण से प्रतीत होता है। हमें इतना ही समझना चाहिए कि बालक अपनी इस जानकारी में से कि आत्मकामिक सन्तुष्टियों पर रोक है, संकेतों और निर्देशों के आधार पर इस तरह की धमकी अपने मन से गढ़ लेता है, और इस तरह की बात गढ़ने में वह स्त्री-जननेन्द्रिय को देखने पर प्राप्त संस्कार से भी प्रभावित होता है। इसी तरह यह भी असम्भव नहीं है कि उस छोटे-से बच्चे ने, जिसके बारे में यह कहा जाता है कि उसे न समझ है और न स्मृति है, अपने माता-पिता को या गरीब मजदूरों के अलावा अन्य परिवारों के दूसरे वयस्कों को सम्भोग करते देखा हो। और यह सोचना तर्कसंगत है कि इस समय प्राप्त

संस्कार को बालक **बाद में** समझ सकता है, और तभी इसपर प्रतिक्रिया कर सकता है, पर जब इस सम्भोग-कार्य का वर्णन इतनी बारीक बातें विस्तार से बता-कर किया जाता है जो मुश्किल से ही देखी जा सकती थीं, या जब ऐसा प्रतीत होता है, जैसा बहुत बार होता है, कि सम्भोग पीछे से किया गया है, तब इसमें कोई शक नहीं रहता कि यह कल्पना सम्भोग करते हुए पशुओं (कुत्तों) को देखने से पैदा हुई है, और इसका प्रेरक बल बालक की अतृप्त दर्शनेच्छा में मौजूद है। इस तरह की कल्पना का सबसे बड़ा चमत्कार यह है कि रोगी कहता है कि मैंने अपने जन्म से पहले माता के गर्भ में रहते हुए ही माता-पिता का सम्भोग देखा था।

फुसलाने की कल्पना विशेष दिलचस्प है, क्योंकि अधिकतर, यह कल्पना नहीं होती बल्कि वास्तविक स्मरण होती है। पर सौभाग्य से, यह उतने उदाहरणों में यथार्थ नहीं होती जितने में यह पहले विश्लेषण के परिणामों से प्रतीत होती थी। वयस्कों की अपेक्षा उसी आयु के या कुछ अधिक आयु के बालकों द्वारा फुसलाने की बात अधिक होती है, और जब लड़कियां, जो अपने बालकपन की कहानी में प्रायः सदा इस घटना को पेश करती हैं, पिता को फुसलाने वाला बतलाती हैं, तब न तो इस कथन के कल्पित होने में संदेह किया जा सकता है और न इसके पीछे क्रियाशील प्रेरक भाव में। जब फुसलाने की बात नहीं हुई है तब कल्पना प्रायः बचपन की आत्मकामिता वाली यौन चेष्टा को ढकने के लिए प्रयुक्त की जाती है। बालक आत्मकामिता के बारे में शर्म की भावना से बचने के लिए, कल्पना से, बिलकुल शुरू के काल में किसी वांछित आलम्बन की बात बना लेता है। परन्तु यह मत समझिए कि निकटतम पुरुष रिश्तेदारों द्वारा बालकों का यौन दुरुपयोग पूरी तरह कल्पना-लोक की ही उड़ान है; अधिकतर विश्लेषकों ने ऐसे रोगियों का इलाज किया होगा, जिनके साथ सचमुच ऐसी घटनाएं हुई थीं और जो असं-दिग्ध रूप से सिद्ध की जा सकती थीं। पर फिर भी वे बचपन के पिछले वर्षों की घटनाएं थीं और वे उससे पहले के समय की बता दी गई थीं।

इस सबसे एक ही धारणा बनती है, कि स्नायु-रोग के लिए इस तरह के बालक-पन के अनुभव किसी न किसी रूप में आवश्यक हैं कि वे इसकी स्थायी सूची में आते हैं। यदि वे यथार्थ घटनाओं में मिलते हैं तो अच्छा है, पर यदि यथार्थता में वे नहीं हैं तो उन्हें संकेतों में से निकालकर कल्पना द्वारा बढ़ा लिया जाएगा। परि-णाम वही है, और आज भी हमें परिणामों में कोई भिन्नता पाने में सफलता नहीं हुई, चाहे इन अनुभवों में कल्पना ने मुख्य कार्य किया हो या यथार्थता ने। यह भी उन पूरक श्रेणियों में से एक है, जिनकी पहले इतनी बार चर्चा की गई है। निश्चित रूप से यह उन सबसे विचित्र है। उन कल्पनाओं की आवश्यकता और सामग्री कहां से आती है? निसर्ग-वृत्ति-स्रोतों के बारे में कोई संदेह नहीं हो सकता पर इस बात की कैसे व्याख्या की जाएगी कि समान कल्पनाएं सदा उसी वस्तु से बन जाती हैं।

इसका मेरे पास एक ही उत्तर है, और मैं यह जानता हूं कि वह आपको बड़ा साहसिक लगेगा। मेरा विश्वास है कि ये **आदिम कल्पनाएं**[1] (मैं इन्हें तथा कुछ और कल्पनाओं को भी यह नाम देना चाहता हूं) जातिचरितीय सम्पत्ति हैं। उनमें मनुष्य का अपना अनुभव जहां कहीं नाकाफी रहा, वहां वह इससे बाहर निकलकर अपने आपको अतीत के युगों के अनुभवों तक फैला लेता है। मुझे यह बिलकुल सम्भव मालूम होता है कि आज विश्लेषण में कल्पना के रूप में जो कुछ बताया जाता है—बचपन में फुसलाना, माता-पिता के मैथुन को देखकर यौन उत्तेजना का पैदा होना, लिंगच्छेद की धमकी, या स्वयं लिंगच्छेद भी वह मानव कुटुम्ब के प्रागैतिहासिक कालों में यथार्थतः था, और बालक अपनी कल्पना में अपने सच्चे व्यक्तिगत अनुभवों के खाली स्थानों के सच्चे प्रागैतिहासिक अनुभवों से पूर्तिमात्र कर देता है। हमें बार-बार यह संदेह करने का मौका आया कि मानव परिवर्धन के आद्यकालीन रूपों की सबसे अधिक जानकारी हमारे लिए स्नायु-रोगों के मनोविज्ञान में ही संचित है, हमारी गवेषणा के किसी अन्य क्षेत्र में नहीं।

अब जिन बातों पर हम विचार कर रहे हैं, उनके लिए उस मानसिक व्यापार के उद्गम और अर्थ पर अधिक बारीकी से विचार करने की आवश्यकता है, जिसे 'कल्पना-निर्माण' कहते हैं। साधारणतया, जैसा कि आप जानते हैं, इसे बड़ा सम्मान प्राप्त है, यद्यपि मानसिक जीवन में इसका स्थान स्पष्ट रूप से नहीं समझा गया। मैं इसके बारे में आपको इतना ही बता सकता हूं: आप जानते है कि बाहरी आवश्यकता के प्रभाव से मनुष्य का अहम् धीरे-धीरे इस तरह प्रशिक्षित हो जाता है कि वह यथार्थता का महत्व ग्रहण कर सके और यथार्थता-सिद्धांत पर चल सके, और ऐसा करने में इसे अपनी सुख की इच्छा के न केवल यौन बल्कि और बहुत-से आलम्बन और उद्देश्य स्थायी रूप से या अस्थायी रूप से त्यागने होंगे। पर सुख का त्याग मनुष्य के लिए सदा बड़ा कठिन रहा है। वह किसी न किसी तरह की क्षति-पूर्ति के बिना इसे नहीं कर पाता। इसलिए, उसने अपने वास्ते एक ऐसे मानसिक व्यापार का विकास कर लिया है जिसमें सुख के ये सब त्यागे हुए साधन और सन्तुष्टि के छोड़े हुए मार्ग अपना ऐसा अस्तित्व बनाए रख सकते है, जिसमें वे यथार्थता की आवश्यकताएं पूरी करने से फारिग रहते है, और जिसे हम 'प्रयोगशील यथार्थता'[2] का प्रयोग कहते हैं, उससे मुक्त रहते हैं। प्रत्येक लालसा शीघ्र ही अपनी पूर्ति के मनोबिंब में रूपान्तरित हो जाती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कल्पना में इच्छा-पूर्ति करने से तृप्ति होती है, यद्यपि यह ज्ञान कि यह यथार्थता नहीं है इसके द्वारा ढक नहीं जाता। इसलिए कल्पनामें मनुष्य उस बाहरी जगत की पकड़ से आजादी का मज़ा लेता रह सकता है, जिसे असल में उसने बहुत पहले त्याग दिया है। उसने अपने आपको इस तरह का बना लिया है कि वह कभी सुखार्थी प्राणी और कभी

१. Primal phantasies. २. Testing reality.

तर्कसंगत मनुष्य बनता रहे, क्योंकि यथार्थता से जो थोड़ी-सी सन्तुष्टि वह कर पाता है, वह उसे भूखा और अतृप्त छोड़ जाती है। फौन्टेन ने कहा था : "सहायक निर्माणों के बिना कोई भी कार्य नहीं किया जाता।" कल्पना के मनोराज्य की सृष्टि में ऐसे स्थानों पर 'संरक्षित वनों' और 'प्राकृतिक वाटिकाओं' की स्थापना अच्छी तरह की जाती है,जहां खेती, यातायात या उद्योग के विस्तार के कारण धरती का असली चेहरा बड़ी तेजी से एक अजनबी चीज में बदलने का खतरा मौजूद है। 'संरक्षित वन' है वस्तुओं की पुरानी अवस्था को कायम रखना, जिसे और सब जगह, खेद के साथ, आवश्यकता पर बलि चढ़ा दिया गया है। वहां प्रत्येक वस्तु, यहां तक कि बेकार और हानिकारक वस्तु भी, मनचाहे तौर से बढ़ और फैल सकती है। कल्पना का मनोराज्य भी ऐसा ही संरक्षित वन है जिसे यथार्थतावाद की घुस-पैठ से बचाकर हरा-भरा किया गया है।

कल्पना से उत्पन्न सबसे अच्छी तरह ज्ञात सृष्टियों से हम पहले परिचय कर चुके हैं। वे दिवा-स्वप्न कहलाती हैं, और वे ऊंची-ऊंची बड़ी-बड़ी कामुक इच्छाओं की काल्पनिक परितुष्टि ह, और यथार्थता विनय और धीरज रखने के लिए जितनी भर्त्सना करती है, उतना ही अधिक समय उनपर लगाया जाता है। उनमें काल्प-निक सुख का सारतत्व, अर्थात् सन्तुष्टि का ऐसी अवस्था में आ जाना जिसमें वह यथार्थता की अनुमति पर निर्भर नहीं रहती है,असंदिग्ध रूप से दिखाई देता है। हम जानते हैं कि ये दिवा-स्वप्न रात्रि-स्वप्नों के बीज और नमूने हैं। मूलतः रात्रि-स्वप्न ऐसा दिवा-स्वप्न ही है जिसे मानसिक व्यापार के रात में होनेवाले रूप ने विपर्यस्त कर दिया है, और जो इस कारण बन पाता है कि निसर्ग-वृत्ति सम्बन्धी उत्तेजनों को रात में आजादी रहती है। हम पहले ही जान चुके हैं कि दिवा-स्वप्न का चेतन होना आवश्यक नहीं, और अचेतन दिवा-स्वप्न भी होते हैं। इसलिए ऐसे अचेतन दिवा-स्वप्नों से जिस तरह रात्रि-स्वप्न पैदा होते हैं, वैसे ही स्नायविक लक्षण भी पैदा होते हैं।

लक्षण-निर्माण में कल्पना की सार्थकता आपको नीचे की बात से स्पष्ट हो जाएगी। हमने कहा था कि राग कुंठा में प्रतिगमन करके उन स्थानों को आच्छा-दित कर लेता है जिन्हें वह छोड़ चुका है, पर जिनसे फिर भी इसकी ऊर्जा के कुछ अंश जुड़े रह गए हैं। हम इस कथन को वापस नहीं लेंगे, या इसमें संशोधन नहीं करेंगे, पर हमें इसके बीच में एक जोड़ने वाली कड़ी रखनी होगी। राग को इन बद्धता-बिन्दुओं की ओर वापस लौटने का अपना रास्ता कैसे मिलता है ? अब राग ने जिन आलम्बनों और धाराओं या प्रवाह-मार्गों को छोड़ दिया है, उन्हें प्रत्येक अर्थ में नहीं छोड़ दिया है। वे या उनसे बनी हुई वस्तुएं, कुछ तीव्रता के साथ, कल्पना के अवधारणाओं में अब भी कायम हैं। राग को सब दमित बद्धताओं पर लौटने का अपने लिए खुला रास्ता पकड़ने के लिए सिर्फ इतना ही करना है कि

वह और सब तरफ से खिचकर कल्पनाओं पर आ जाए। इन कल्पनाओं ने एक तरह की सहिष्णुता का सुख पाया है। उनमें और अहम् में कितना ही स्पष्ट विरोध होने पर भी तब तक कोई द्वन्द्व नहीं बन सका जब तक कि एक खास अवस्था बनी रही—मात्रात्मक[1] स्वरूप की अवस्था बनी रही, जो अब, राग का प्रवाह कल्पनाओं पर आ जाने से बिगड़ गई है, या हट गई है। इस आगमन से कल्पनाओं का ऊर्जावेश या कैथेक्सिस इतना अधिक बढ़ जाता है कि वे अपना व्यक्तित्व दिखाने लगती हैं, और कार्य-सिद्धि की ओर दबाव डालने लगती हैं। पर तब उनमें और अहम् में संघर्ष अवश्यम्भावी हो जाता है। यद्यपि पहले वे पूर्व चेतन या अचेतन थीं, तो भी अब उनपर अहम् की ओर से दमन का प्रभाव पड़ता है और अचेतन की ओर से लगनेवाले आकर्षण का प्रभाव होता है। राग कल्पनाओं से, जो अब अचेतन हो गई हैं, अचेतन में मौजूद उनके उत्पत्ति-स्थानों की, अपने खुद के बद्धता-बिन्दुओं की, यात्रा करता है।

राग का कल्पना पर लौटना लक्षण-निर्माण के मार्ग में एक बीच का कदम है, जिसका कोई विशेष नाम देना उचित है। सी० जी० जुंग ने इसे एक उपयुक्त नाम **अन्तर्मुखता**[2] दिया है, पर उसने इसका दूसरी वस्तुओं के वर्णन करने में भी अनुपयुक्त रूप से प्रयोग किया है। हम इस स्थिति पर दृढ़ रहेंगे कि **'अन्तर्मुखता'** शब्द यथार्थ सन्तुष्टि की शक्यताओं से राग के परे हट जाने का, और उन कल्पनाओं पर, जो पहले हानिरहित मानकर सहन की जाती थीं, इसके अत्यधिक संचय का वर्णन करता है। अन्तर्मुख व्यक्ति अभी स्नायु-रोगी नहीं होता पर वह अस्थायी दशा में होता है। स्थान बदलते हुए बलों के नए विक्षोभ से लक्षण उभर आएंगे. बशर्ते कि वे अब भी अपने दबे हुए राग के लिए कोई और रास्ता तलाश न कर लें। इस जगह अन्तर्मुखता का रोध होने पर स्नायविक सन्तुष्टि का अयथार्थ रूप और कल्पना व यथार्थता के अन्तर का तिरस्कार होना पहले ही निश्चित हो जाता है।

निःसन्देह आपने देखा होगा कि अपने इस अन्तिम कथन में मैंने कार्य-कारण-शृंखला जोड़ते हुए एक नया कारक, अर्थात् **मात्रा** या सम्बन्धित ऊर्जाओं की राशि पेश की है। हमें इस कारक को भी सदा अपनी जांच में शामिल करना चाहिए, कारणात्मक अवस्थाओं का शुद्ध रूप से गुणात्मक[3] विश्लेषण काफी नहीं; या दूसरी तरह कहा जाए तो इन प्रक्रमों की शुद्ध रूप से गतिकीय अवधारणा काफ़ी नहीं; उसके साथ **आर्थिक** पहलू भी आवश्यक है। हमें यह प्रत्यक्ष होता है कि दो विरोधी बलों में तब तक द्वंद्व नहीं छिड़ता, जब तक आच्छादन की मात्रा में एक विशेष तीव्रता न आ जाए, चाहे उनका अस्तित्व सूचित करने वाली अवस्थाएं बहुत समय से मौजूद हों। इसी प्रकार, शरीर-रचना सम्बन्धी कारक का रोग-

१. Quantitative. २. Introversion. ३. Qualitative.

जनक महत्व इस बात से निर्धारित होता है कि घटक-निसर्ग-वृत्तियों में से एक उस विन्यास में दूसरी की अपेक्षा **अधिक** हो। यह भी समझा जा सकता है कि विन्यास गुणात्मक दृष्टि से सब मनुष्यों में एक-सा है, और उसमें जो कुछ भेद है, वह मात्रा के कारण ही है। स्नायविक रोग को सहन करने की क्षमता में भी इस मात्रा सम्बन्धी कारक का कम महत्व नहीं है। अविसर्जित राग की उस **राशि** पर ही यह बात निर्भर है कि जिसे कोई व्यक्ति, मुक्त रूप से घूमती हुई, अपने में धारण कर सकता है, और इसका **कितना बड़ा** अंश इसे यौन उद्देश्य से हटाकर उदात्तीकरण में यौनेतर उद्देश्य की ओर प्रेरित कर सकता है। मानसिक व्यापार का अन्तिम लक्ष्य—जो गुणात्मक दृष्टि से यह बताया जा सकता है कि सुख पाने और दुःख से बचने का प्रयत्न करना—आर्थिक दृष्टि से यह होता है कि मानसिक उपकरण में मौजूद उत्तेजन की मात्राओं (उद्दीपन-संहतियों) के वितरण को नियंत्रित किया जाए, और उसका ऐसा संचय, जो दुःख पैदा करे, रोका जाए।

स्नायु-रोगों के लक्षण-निर्माण के बारे में मुझे आपको इतना ही बताना था, पर यह बात एक बार फिर दोहरा देना चाहता हूं कि मैंने आज जो कुछ कहा है, वह सिर्फ हिस्टीरिया के लक्षण-निर्माण के बारे में है। मनोग्रस्तता-रोग में बहुत अन्तर दिखाई देते हैं, यद्यपि सारभूत बातें वे ही हैं। निसर्ग-वृत्ति द्वारा सन्तुष्टि के लिए पेश की गई मांग के विरुद्ध अहम् से होने वाले 'प्रति आवेश' जिनका हिस्टीरिया के सिलसिले में पहले उल्लेख किया गया है, मनोग्रस्तता-रोग में अधिक स्पष्ट और प्रबल होते हैं और 'प्रतिक्रिया-निर्माणों' के रूप में रोग-चित्र में प्रधान होते हैं। अन्य स्नायु-रोगों में, जिनमें लक्षण-निर्माण के तंत्रों की क्षेत्र-गवेषणा[1] अभी किसी भी दिशा में पूरी नहीं हुई, ऐसे ही और अधिक बड़े अन्तर पाए जाते हैं।

आज आपके उठने से पहले मैं जरा देर के लिए आपका ध्यान कल्पना-जीवन के ऐसे पहलू की ओर खींचना चाहता हूं जो व्यापक दिलचस्पी का है। कल्पना से फिर यथार्थता में आने का सचमुच एक रास्ता है और वह है—कला। कलाकार में भी अन्तर्मुख प्रवृत्ति होती है, और थोड़ा और चलते ही वह स्नायु-रोगी बन सकता है। वह ऐसा व्यक्ति है जिसे बहुत प्रबल और जोर-शोर वाली निसर्ग-वृत्तीय आवश्यकताएं प्रेरित करती हैं। वह सम्मान, शक्ति, धन, यश और स्त्रियों का प्रेम पाने की लालसा रखता है, पर उसके पास ये सन्तुष्टियां पाने के साधन नहीं हैं। इसलिए असन्तुष्ट लालसावाले अन्य व्यक्तियों की तरह वह यथार्थ से हट जाता है, और अपनी सारी दिलचस्पी और अपना सारा राग भी कल्पना के जीवन में अपनी इच्छाओं की सृष्टि पर ले जाता है, जहां से कुछ ही दूर चलने पर स्नायु-रोग आ सकता है। उसे अपना परिवर्धन करते-करते स्नायु-रोग पर पहुंचने से

---

१. Field research.

रोकने के लिए बहुत-से कारक इकट्ठे होते हैं। यह बात काफी प्रसिद्ध है कि अधिकतर कलाकार स्नायु-रोग के कारण अपनी क्षमताओं के आंशिक निरोध से पीड़ित होते हैं। सम्भवतः उनकी शरीर-रचना में उदात्तीकरण की प्रबल क्षमता होती है, और द्वंद्व पैदा करने या न करने के कारणरूप दमनों में कुछ लचक होती है, पर कलाकार यथार्थता की ओर लौटने का मार्ग इस तरह पा लेता है। वह अकेला ही ऐसा व्यक्ति नहीं है, जिसके पास कल्पना का जीवन हो। कल्पना का मध्यवर्ती लोक सारी मानव जाति में मिलती है, और हर अतृप्त आत्मा आराम और सान्त्वना के लिए इसका सहारा लेती है। पर जो लोग कलाकार नहीं हैं, वे कल्पना से बहुत सीमित आनन्द हासिल कर सकते हैं। उनके क्रूर दमनों के कारण वे उन थोड़े-से दिवा-स्वप्नों का ही आनन्द ले पाते हैं, सब कल्पनाओं का नहीं। सच्चे कलाकार के पास कुछ और भी चीज़ होती है। सबसे पहले तो वह अपने दिवा-स्वप्नों को इस तरह विशद करना जानता है कि उनमें से वह व्यक्तिगत अंश निकल जाए जो अपरिचित कानों को खटकता है और दूसरोंके लिए वे दिवा-स्वप्न रसनीय और रमणीय बन जाते हैं। वह यह भी जानता है कि उनमें इतना काफी परिवर्तन कैसे कर दिया जाए कि आसानी से यह पता न चल सके कि उनकी उत्पत्ति प्रतिषिद्ध स्रोतोंसे हुई है। इसके अलावा, उसमें यह रहस्यमय प्रवीणता होती है कि अपनी निजी सामग्री को इस तरह से बढ़ा सके कि वह उसकी कल्पना के मनोबिम्बों का ठीक-ठीक अभिव्यक्ति कर सके; और फिर,वह यह भी जानता है कि उसके कल्पना-जीवन के इस प्रतिबिम्ब से ऐसी प्रबल सुखधारा कैसे जोड़ दी जाए कि कम से कम कुछ देर केलिए यह दमनों से अधिक शक्तिशाली हो जाए और उन्हें बाहर कर दे। जब वह यह सब कुछ कर सकता है तब दूसरों के लिए, उनके अपने अचेतन सुख-स्रोतों से आराम और सान्त्वना पाने का रास्ता खोल देता है और इस तरह उनकी कृतज्ञता और प्रशंसा प्राप्त करता है; तब उसे अपनी कल्पना द्वारा वह चीज़ प्राप्त हो गई है जो पहले वह कल्पना में ही प्राप्त कर सकता था : सम्मान, शक्ति और स्त्रियों का प्रेम।

व्याख्यान | २४

साधारण स्नायविकता

पिछले व्याख्यान में हमने जिस कठिन प्रश्न पर विचार किया है, उसके बाद थोड़ी देर के लिए मैं उस विषय को छोड़ देता हूं और अब कुछ समय के लिए अपने श्रोताओं की ओर ध्यान देता हूं ।

मैं जानता हूं कि आप असन्तुष्ट हैं। आपने सोचा था कि **मनोविश्लेषण का सामान्य परिचय** बिलकुल दूसरी ही तरह की चीज़ होगी। आपको आशा थी कि सिद्धान्तों के बजाय जीवन के उदाहरण पेश किए जाएंगे। आप मुझसे कहेंगे कि उन दो बच्चों की कहानी ने, जिनमें से एक निचली मंजिल में और दूसरा ऊपर रहता था, स्नायु-रोग के कारण पर कुछ रोशनी डाली, पर वह एक मनगढ़ंत दृष्टांत के बजाय वास्तविक तथ्य होना चाहिए था; या आप कहेंगे कि जब मैंने शुरू में आपके सामने दो लक्षणों का वर्णन किया था, (भरोसा रखिए कि वे काल्पनिक नहीं थे) और उनका समाधान तथा रोगियों के जीवन से उनका सम्बन्ध-सूत्र पेश किया था, तब उससे लक्षणों के अर्थ पर कुछ प्रकाश पड़ा था, और आपने आशा की थी कि मैं उसी तरह आगे चलता रहूंगा। ऐसा करने के बजाय मैंने आपको बहुत समय लेने वाले और बड़े अस्पष्ट सिद्धान्त बताए जो कभी पूरे न हुए और उनमें मैं कुछ न कुछ जोड़ता ही रहा। मैं ऐसे अवधारणों की चर्चा करता रहा, जिनका मैंने अभी आपको परिचय नहीं दिया था। मैंने वर्णनात्मक व्याख्या छोड़कर गतिकीय पहलू से व्याख्या शुरू कर दी, और फिर इसे भी छोड़कर तथाकथित आर्थिक व्याख्या शुरू कर दी। आपके लिए यह समझना कठिन कर दिया कि इनमें से कितने पारिभाषिक शब्दों का अर्थ एक ही है, और वे सिर्फ बोलने की सुविधा के लिए एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग किए गए हैं। मैंने विस्तृत अवधारणाएं पेश कीं, जैसे सुख-सिद्धान्त और यथार्थता-सिद्धांत की और 'जातिचरितीय' परिवर्धन के वंशागत अवशेष की, और फिर आपके सामने कोई बात स्पष्ट करने के बजाय मैंने उन्हें आपके देखते-देखते आपकी नज़रों से ओझल हो जाने दिया।

मैंने स्नायु-रोगों के अध्ययन की भूमिका उन बातों से क्यों शुरू नहीं की जो

आप सब स्नायविकता के बारे में जानते हैं, जिन्होंने बहुत समय से आपकी दिलचस्पी जगा रखी है। या स्नायविक व्यक्तियों के खास तरह के स्वभाव, मानवीय समागम और बाहरी प्रभावों पर उनकी दुर्बोध प्रतिक्रियाओं, उनकी उत्तेजनशीलता, उनकी अविश्वसनीयता और किसी काम में सफल होने की उनकी असमर्थता से इसे क्यों शुरू नहीं किया ? मैंने स्नायविकता के सरल प्रतिदिन दिखाई देने वाले रूपों की व्याख्या से एक-एक कदम बढ़ते हुए आपको उसके उग्र गूढ़ रूपों तक क्यों नहीं पहुंचाया ?

सच पूछिए तो मैं इनमें से किसी भी बात से इन्कार नहीं करता, या यह नहीं कहता कि आपका कहना ग़लत है। मुझे अपनी प्रतिपादन-क्षमता से इतना प्रेम है कि मुझे इसकी हर कमी में एक विशेष आकर्षण दिखाई देता है। मैं स्वयं यह समझता हूं कि अगर मैं दूसरे तरीके से चलता तो अधिक अच्छा रहता, और सच पूछिए तो मेरा यही इरादा था। पर आदमी सदा तर्कपूर्ण योजना पर चल नहीं पाता। प्राय: ऐसा होता है कि सामग्री में कोई ऐसी चीज़ आ पड़ती है, या प्रतिपादन-सामग्री का ही कोई ऐसा अंश बीच में आ कूदता है जो मनुष्य पर हावी हो जाता है, और उसे अपने सोचे हुए रास्ते से हटा देता है। सुपरिचित सामग्री को सिलसिले से सजाने जैसा मामूली काम भी पूरी तरह कर्ता की इच्छा के अधीन नहीं रहता। यह अपने ही तरीके से बाहर आता है, और आदमी बाद में आश्चर्य भी कर सकता है कि यह ऐसा क्यों हुआ, और इससे भिन्न रूप से क्यों नहीं हुआ ?

सम्भवत: इसका एक कारण यह है कि मेरे मूल प्रतिपाद्य, अर्थात् मनोविश्लेषण के परिचय में, स्नायु-रोगों के विषय से सम्बन्धित अंश नहीं समाता। मनोविश्लेषण का परिचय या भूमिका में ग़लतियों और स्वप्नों का अध्ययन ही आता है; स्नायु-रोग का सिद्धान्त तो स्वयं मनोविश्लेषण ही है। मैं नहीं समझता कि इतने थोड़े-से समय में मैं आपको इस तरह बहुत सघन रूप के अलावा और किसी तरह स्नायु-रोगों के सिद्धान्त की भीतरी सामग्री की कुछ जानकारी दे सकता था। इसमें मुझे लक्षणों का अर्थ और तात्पर्य, और साथ ही लक्षण-निर्माण की बाहरी और भीतरी दशाएं और तन्त्र उनके उपयुक्त सिलसिले में आपके सामने पेश करने थे। यह पेश करने की कोशिश मैंने की है। मोटे रूप में मनोविश्लेषण आज जो कुछ आपके सामने रख सकता है, यह उसका सारभाग है। इसके साथ-साथ राग और उसके परिवर्धन के बारे में बहुत कुछ कहा गया है, और अहम् के बारे में भी कुछ कहा गया है। आरम्भिक व्याख्यानों से आप हमारी विधि के मुख्य सिद्धान्तों के लिए और अचेतन के तथा दमन (प्रतिरोध) के अवधारणों से सम्बन्धित मोटी बातों के लिए पहले तैयार हो चुके थे। आगे के एक व्याख्यान में आपको यह पता चलेगा कि किस जगह से मनोविश्लेषण आगे जारी रहेगा। अबतक मैंने आपसे यह बात नहीं छिपाई है कि हमारे सब प्रमाण स्नायविक रोगों के सिर्फ़ एक समूह

अर्थात् स्थानान्तरण स्नायु-रोग के अध्ययन से निकले हैं, और इसी तरह मैंने लक्षण-निर्माण के तंत्र की जांच-पड़ताल सिर्फ हिस्टीरिया-स्नायु-रोग की पेश की है। यद्यपि सम्भवतः आपको कोई बहुत सांगोपांग जानकारी नहीं हासिल हुई होगी, और छोटी-छोटी बात आपको याद नहीं रही होगी, फिर भी मुझे आशा है कि आपको मोटे तौर से यह पता चल गया है कि मनोविश्लेषण किन साधनों से कार्य करता है या किन समस्याओं पर विचार करता है, और यह कौन-से परिणाम पेश कर सकता है।

मैंने कहा था कि आप मन में यह चाहते थे कि मैंने स्नायु-रोगों का विषय स्नायु-रोगी के व्यवहार के वर्णन से और इन बातों के वर्णन से कि वह अपने रोग से किस तरह दुःख उठाता है, अपने आपको इससे किस तरह बचाता है, और किस तरह स्वयं को इसके अनुकूल बना लेता है, शुरू किया होता। निश्चित ही यह बड़ा मनोरंजक विषय है, अध्ययन करने योग्य है, और इसमें इलाज करना कुछ कठिन भी नहीं; तो भी इस पहलू से शुरू करने के विरुद्ध कुछ दलीलें हैं। खतरा यह है कि अचेतन को नज़रन्दाज़ कर दिया जाएगा, राग या लिबिडो के बहुत अधिक महत्व की ओर ध्यान न दिया जाएगा, और प्रत्येक चीज़ वैसी ही मान ली जाएगी जैसी वह रोगी के अपने अहम् को दिखाई देती है। अब यह स्पष्ट है कि उसका अहम् विश्वसनीय और निष्पक्ष प्रमाण नहीं है। आखिरकार अहम् वही बल है जो अचेतन के अस्तित्व से इन्कार करता है और जिसने इसका दमन कर रखा है। तो फिर, जहां अचेतन का सम्बन्ध है, वहां हम इसकी ईमानदारी का कैसे भरोसा कर सकते हैं? जिसका दमन किया गया है, उसमें सबसे मुख्य चीज़ यौन प्रवृत्ति ही है। यह बिलकुल साफ़ है कि हमको, इस मामले में अहम् का जो दृष्टि-कोण है उससे, उस दमित यौन प्रवृत्ति की मात्रा और उसके महत्व का कभी भी पता नहीं चल सकता। जैसे ही हमें दमन की प्रवृति या स्वरूप समझ में आने लगता है, वैसे ही हमसे कहा जाता है कि द्वंद्व में लगे हुए दोनों पक्षों में से किसी एक को और विशेष रूप से विजयी पक्ष को अधिक महत्व न दो। हमें पहले ही यह चेतावनी दे दी जाती है कि अहम् जो कुछ हमें बताता है, उससे हम ग़लत रास्ते पर न चल पड़ें। अहम् की गवाही के अनुसार ऐसा प्रतीत होगा कि जैसे यह ही सारे समय सक्रिय बना रहा है, और लक्षण इसीकी इच्छा से और इसीके द्वारा पैदा होते हैं। हम जानते हैं कि बहुत सीमा तक इसने निष्क्रिय रहकर कार्य किया है, और इस तथ्य को यह उस समय छिपाने की कोशिश करता और अपनी शान बघारता है। यह सच है कि यह सदा अपने इस दिखावटी रूप को कायम न रख पाता—मनोग्रस्तता-रोग के लक्षणों में यह स्वीकार कर लेता है कि इसका किसी शत्रु से मुकाबला हो रहा है, जिसका यह डटकर प्रतिरोध करता है।

जो अहम् की झूठी बातों को उनके पूरे अर्थ में न लेने की चेतावनी की ओर

ध्यान नहीं देता, वह निश्चित ही आराम से चलता जाता है। उसे उस सारे विरोध का सामना नहीं करना पड़ेगा, जो मनोविश्लेषण को अचेतन, यौन प्रवृत्ति और अहम् के निष्क्रिय रूप पर बल देने के कारण भुगतना पड़ता है। वह एलफ्रेड एडलर के इस विचार से सहमत हो सकता है कि 'स्नायविक चरित' स्नायु-रोग का परिणाम न होकर कारण है, पर वह लक्षण-निर्माण की एक भी ब्यौरे की बात या एक भी स्वप्न की व्याख्या नहीं कर सकेगा।

आप पूछेंगे : "क्या यह नहीं हो सकता कि मनोविश्लेषण द्वारा प्रकट किए गए अन्य व्याख्याओं की पूरी तरह उपेक्षा किए बिना स्नायविकता और लक्षण-निर्माण में अहम् के कार्य को ठीक रूप में समझा जा सके?" मेरा उत्तर यह है : "ऐसा हो सकना चाहिए और किसी न किसी समय यह किया भी जाएगा, पर मनोविश्लेषण के करने के लिए जो काम इस समय पड़ा है, वह यहां से करना उपयुक्त नहीं है।" यह भविष्यवाणी अवश्य की जा सकती है कि किस जगह जाकर इस काम को भी उसमें शामिल कर लिया जाएगा। कुछ और स्नायु-रोग हैं जिन्हें हम **स्वरतिक** (नारसिस्सिस्टिक) स्नायु-रोग कहते हैं, जिनमें अहम् उन स्नायु-रोगों की अपेक्षा, जिनपर हमने पहले विचार किया है, अधिक गहरा उलझा होता है। इन रोगों की विश्लेषण द्वारा जांच करके हम अधिक निष्पक्ष और विश्वसनीय रूप से यह निश्चित कर सकते हैं कि स्नायु-रोगों में अहम् का कितना कार्य होता है।

परन्तु अपने स्नायु-रोग से अहम् के जो सम्बन्ध है, उनमें से एक इतना प्रमुख था कि यह शुरू से पूरी तरह समझ में आता था। यह कभी भी अनुपस्थित नहीं प्रतीत होता, पर सबसे अधिक स्पष्ट रूप से यह उस रोग में दिखाई देता है, जिसे हम उपघातज स्नायु-रोग कहते हैं और जिसे हम समझ नहीं सकेंगे। आपको यह जानना चाहिए कि स्नायु-रोग के सब विविध रूपों के कारणों और तन्त्रों में बार-बार वही कारक क्रिया करते दिखाई देते हैं। बात इतनी ही है कि किसी प्ररूप में कोई एक कारक और किसी प्ररूप में कोई दूसरा कारक लक्षण-निर्माण में सबसे महत्व-पूर्ण होता है। यह बिलकुल उसी तरह की बात है जैसी किसी थियेटर कम्पनी के कार्यकर्ताओं में होती है। प्रत्येक कार्यकर्ता एक विशेष प्रकार का पार्ट लेता है—नायक का, विदूषक का, खलनायक का आदि; उनमें से प्रत्येक अपने लिए कोई एक काम चुन लेता है। इस तरह कल्पनाएं, जो लक्षणों में रूपान्तरित होती हैं, किसी रोग में इतनी व्यक्त नहीं होतीं, जितनी हिस्टीरिया में। 'प्रति आवेश' (एन्टी-कैथेक्सिस) या अहम् के प्रतिक्रिया-निर्माण मनोग्रस्तता-रोग के चित्र में सबसे प्रधान होते हैं; जिस तन्त्र को स्वप्नों में 'परवर्ती विशदन' कहा गया था, वह पैरानोइया के भ्रमों में सबसे प्रमुख होता है।

उपघातज स्नायु-रोगों में, विशेष रूप से उनमें, जो युद्ध के आतंक से पैदा होते हैं, एक स्वार्थपूर्ण अहम्मूलक प्रेरक भाव, रक्षा और अपने हित की दिशा में

होने वाला प्रयत्न, विशेष रूप से दिखाई देता है। शायद यह अकेला रोग को जन्म न दे सकता, पर यह रोग को अपना सहारा दे देता है, और एक बार रोग बन जाने के बाद यह उसे कायम रखता है। इस प्रवृत्ति का लक्ष्य अहम् को उन खतरों से बचाना है जो अपनी सन्निकटता से रोग पैदा करते हैं। यह तब तक इलाज भी नहीं होने देता जबतक कि उन खतरों का फिर पैदा न होना असम्भव न लगने लगे, या उठाए गए खतरे के बदले में कोई क्षति-पूर्ति न मिल जाए।

अहम् स्नायु-रोग और सब रूपों के जन्म और पोषण में भी इसी तरह की दिलचस्पी रखता है। हम पहले कह चुके हैं कि अहम् लक्षणों को इसलिए सहारा देता है क्योंकि इसके एक पहलू से दमनकारी अहम् प्रवृत्ति को सन्तुष्टि मिलती है। इसके अलावा लक्षण-निर्माण द्वारा द्वन्द्व का समाधान सबसे अधिक सुविधाजनक और सुख-सिद्धान्त के सबसे अधिक अनुसार है, क्योंकि इससे निःसंदेह अहम् बहुत कठोर और कष्टदायक भीतरी श्रम से बच जाता है। सचमुच ऐसे रोगी आए हैं जिनमें स्वयं डाक्टर को यह मानना पड़ता है कि स्नायु-रोग द्वारा द्वन्द्व का समाधान सामाजिक दृष्टि से सबसे अधिक हानिरहित और सबसे अधिक सह्य है। इसलिए यह सुनकर आश्चर्य मत कीजिए कि कभी-कभी डाक्टर स्वयं उस रोग का समर्थक बन जाता है, जिसको वह दूर कर रहा है। वह जीवन की सब स्थितियों में स्वास्थ्य के बारे में कठमुल्लापन नहीं अपना सकता। वह जानता है कि दुनिया में स्नायु-रोग के कष्ट के अलावा **और दूसरे** कष्ट भी हैं जो वास्तविक और अटल हैं, और आवश्यकता मनुष्य से यह भी कह सकती है कि वह इन कष्टों पर अपना स्वास्थ्य कुर्बान कर दे, और डाक्टर जानता है कि एक आदमी के इस तरह कष्ट सहने से दूसरे बहुत सारे लोग असीम कष्ट से बच सकते हैं। इसलिए, यद्यपि हर स्नायु-रोगी के बारे में कहा जा सकता है कि उसने **'रोग में पलायन'** किया है, अर्थात् रोग को कष्ट कम करनेवाला समझकर उसमें पलायन किया है, पर यह मानना ही होगा कि बहुत-से रोगियों में यह पलायन पूर्णतया उचित होता है, और जिस डाक्टर ने इस हालत को समझ लिया, वह बिना कुछ कहे, और रोगी के हित का विचार करके इलाज से हाथ खींच लेगा।

पर इन अपवादों की ओर ध्यान न देकर हमें आगे विचार करना चाहिए। सामान्यतया यह दिखाई देता है कि स्नायु-रोग में पलायन करके अहम् को एक तरह का भीतरी **'रोग-लाभ'**, अर्थात् रोग के द्वारा सुविधा मिल जाती है। कुछ अवस्थाओं में मूर्त बाहरी लाभ जो यथार्थता में कभी कम और कभी अधिक महत्व का होता है, इसके साथ जुड़ा हुआ हो सकता है। इस तरह का आम उदाहरण लीजिए : जिस स्त्री से उसका पति क्रूर व्यवहार करता है और निर्दयतापूर्वक उसका शोषण करता है, वह प्रायः सदा स्नायु-रोग में शरण लेती है, बशर्ते कि उसका स्वभाव इसे ग्रहण कर सके। यह बात तब होती है जब वह स्त्री इतनी

कायर या इतनी रूढ़ संस्कारों वाली हो कि दूसरे मर्द के साथ गुप्त रूप से अपनी सन्तुष्टि न कर सके; वह इतनी शक्तिशाली न हो कि अपने पति से अलग होने के विरोधी सब बाहरी कारणों को चुनौती दे सके, और उससे अलग हो सके; यदि उसे अपना भरण-पोषण कर सकने या अधिक अच्छा पति पा सकने की आशा न हो, और सबसे अन्तिम बात यह है कि यदि वह अब भी यौन दृष्टि से इस क्रूर व्यक्ति के प्रति प्रबल अनुराग न रखती हो। उसका रोग अपने पति के विरुद्ध किए जा रहे द्वन्द्व में उसका ऐसा हथियार बन जाता है जिसका वह अपनी रक्षा के लिए उपयोग कर सकती है, या बदला लेने के लिए दुरुपयोग कर सकती है। वह अपने रोग की शिकायत कर सकती है, यद्यपि सम्भाव्यतः उसे अपने विवाह करने की शिकायत का साहस न होगा। उसका डाक्टर उसका सहायक है। उसके पति को, जो वैसे इतना निर्दय है, उसे छुट्टी देनी पड़ती है, उसपर पैसा खर्च करना पड़ता है, उसे घर से अनुपस्थित रहने की छूट देनी पड़ती है, और इस प्रकार विवाह के अत्याचार से उसे स्वतन्त्रता मिलती है। जहां रोग के कारण मिलने वाली यह बाहरी या 'दुर्घटनामूलक' सुविधा जरा भी अधिक होती है, और यथार्थ जीवन में ऐसी सुविधा देने वाली स्थानापन्न वस्तु नही मिलती, वहां आप अपनी चिकित्सा द्वारा इस स्नायु-रोग का इलाज करने की बहुत आशा न रखिए।

अब आप कहेंगे कि मैंने 'रोग द्वारा लाभ या सुविधा' के बारे में अभी जो कुछ कहा है, उससे उस विचार की पुष्टि होती है जिसे मैंने अभी अस्वीकार किया था, अर्थात् यह कि अहम् स्वयं स्नायु-रोग को चाहता है,और इसे जन्म देता है। पर ज़रा ठहरिए। शायद इसका सिर्फ़ यह तात्पर्य है कि अहम् स्नायु-रोग को, जिसे रोकने में वह हर सूरत में असमर्थ है, स्वीकार करके प्रसन्न होता है, और यदि उसका कुछ लाभ उठाया जा सकता है तो वह उसका अधिक से अधिक लाभ उठाता है। यह तो बात का सिर्फ एक पहलू है। जहां तक यह प्रश्न है कि रोग से सुविधा या लाभ है, वहां तक यह ठीक है कि अहम् स्नायु-रोग से दोस्ती रखकर बिलकुल खुश रहता है, पर इसके साथ होने वाले अलाभों और असुविधाओं पर भी विचार करना होगा। आम तौर से शीघ्र ही यह दीख जाता है कि स्नायु-रोग को स्वीकार करके अहम् ने नुकसान का सौदा किया है। इसने द्वन्द्व के समाधान की बहुत भारी कीमत चुकाई है। लक्षणों के कारण होने वाले कष्ट शायद उतने ही खराब हैं जितना वह द्वन्द्व था जिसके स्थान पर ये आ गए हैं, और बहुत हद तक ये उससे बहुत खराब भी हो सकते हैं। अहम् लक्षणों के दुःख से छूटना चाहता है, पर इसको रोग द्वारा दत्त सुविधा या रोगजनित लाभ नहीं छोड़ना चाहता, और इसीमें उसे सफलता नहीं हो सकती। इसलिए ऐसा दिखाई देता है कि इस सारे मामले में अहम् का कर्तृत्व ऐसा नहीं रहा जैसा कि उसने समझा था; और हमें यह बात ध्यान में रखनी है।

यदि डाक्टर का कार्य करते हुए आपको स्नायु-रोगियों के बहुत इलाज करने

पड़ें तो शीघ्र ही आप यह आशा करना छोड़ देंगे कि जो लोग अपने रोग की बहुत अधिक शिकायत करते हैं, वे आपकी सहायता लेने को सबसे अधिक तत्पर होंगे, और सबसे कम कठिनाई पैदा करेंगे—बात इससे बिलकुल उलटी होगी। सब उदाहरणों में आप आसानी से समझ जाएंगे कि जिस चीज़ से रोगजनित लाभ की सहायता मिलती है, वह दमनों से उत्पन्न प्रतिरोध को और ताकत देती है, और इलाज करने की दिक्कतें बढ़ा देती है; एक और तरह का रोगजनित लाभ भी है जो लक्षण के साथ पैदा होने वाले लाभ के बाद आता है। जब रोग जैसा मानसिक संगठन काफी समय से चला आता है, तब अन्त में वह एक स्वतन्त्र सत्ता का-सा स्वरूप प्राप्त करता मालूम होता है। इसमें आत्मसंरक्षण की-सी निसर्ग-वृत्ति दिखाई देती है। यह मानसिक जीवन के दूसरे बलों के साथ, यहां तक कि उनके साथ भी जो बुनियादी तौर से इसके विरोधी हैं, एक तरह की संधि कर लेता है, और ऐसे मौके आते रहते हैं जिनमें यह एक बार फिर उपयोगी और समयोचित दिखाई देता है, और इस तरह इसे एक **द्वितीय कार्य या गौण कार्य** मिल जाता है, जो इसकी स्थिति को फिर मज़बूत बनाता है। रोग-शास्त्र का उदाहरण लेने के बजाय हम रोज़ाना के जीवन का एक प्रमुख उदाहरण लेंगे। कोई समर्थ मज़दूर, जो अपनी जीविका कमाता है, अपने रोज़गार में होने वाली किसी दुर्घटना से अंग-हीन हो जाता है। वह अब काम नहीं कर सकता, पर उसे मुआवज़े के रूप में थोड़ी-सी सहायता मिलती है, और वह यह सीख जाता है कि अपनी अंगहीनता का, भिखारी बनकर, किस तरह लाभ उठाया जा सकता है। उसका नया जीवन इतना हीन दर्जे का है, तो भी वही चीज़ उसे सहारा देती है जिसने उसके पुराने जीवन को नष्ट किया है। अगर आप उसकी असमर्थता दूर कर दें तो वह कुछ समय के लिए अपनी जीविका से वंचित रह जाएगा, क्योंकि यह सवाल पैदा होगा कि क्या उसे अब भी उसका पहले वाला काम मिल सकेगा? जब किसी स्नायु-रोग में इस तरह रोग का द्वितीय या गौण लाभ उठाया जाने लगता है, तब हम उसे पहले वाले की कोटि में रख सकते हैं और **दूसरा** या **गौण** रोगजनित लाभ कह सकते हैं।

मैं आपको मोटे तौर से यह सलाह देना चाहता हूं कि रोगजनित लाभ के व्यावहारिक महत्व को आप बहुत तुच्छ न समझें, और साथ ही इसके सैद्धान्तिक महत्व से बहुत अधिक प्रभावित भी न हों। पहले दिए गए अपवादों के अलावा भी, इस कारक से सदा उन दृष्टान्तों का स्मरण हो आता है, जो ओबरलैंडर ने **फ्लीगैंड ब्लैटर** में 'पशुओं में बुद्धि' के बारे में दिए हैं। एक अरब एक सीधे पहाड़ के एक ओर काटकर बनाए हुए संकरे रास्ते पर ऊंट पर चढ़ा जा रहा है। रास्ते के एक मोड़ पर एकाएक उसे अपने सामने एक शेर दिखाई देता है, जो उसपर झपटने को तैयार है। भागने का कोई रास्ता नहीं; एक ओर खड्ड है और दूसरी ओर सीधा पहाड़; पीछे लौटना और भागना भी असम्भव है। लाचार वह हाथ-पांव छोड़ देता

है पर ऊंट ऐसा नहीं करता। वह अपने सवार सहित खड्ड में कूद पड़ता है और शेर देखता रह जाता है। साधारणतया स्नायु-रोग द्वारा प्रस्तुत उपाय रोगी को अधिक लाभ नहीं पहुंचाएगा। शायद इस कारण कि आखिरकार लक्षण-निर्माण द्वारा द्वंद्व का समाधान एक स्वतः होने वाला प्रक्रम है, जो जीवन की आवश्यकताएं पूरी करने के लिए अपर्याप्त सिद्ध हो सकता है, और जिसके होने में मनुष्य को अपनी सर्वोत्तम और उच्चतम शक्तियां त्यागनी पड़ती हैं। यदि चुनाव का मौका हो तो अधिक सम्मान की बात यह होगी कि वह नियति से धर्मयुद्ध करता हुआ गिरे।

अपनी बात साधारण स्नायविकता से शुरू न करने का एक और भी कारण मैं आपको बताना चाहता हूं। शायद आप यह समझते हों कि मैंने इस कारण ऐसा नहीं किया कि उस तरह स्नायु-रोगों के यौन उद्गम की गवाही पेश करना कुछ ज्यादा मुश्किल होता, पर ऐसा समझना ग़लत है। स्थानान्तरण स्नायु-रोगों में लक्षणों को, निर्वचन पर पहुंचने से पहले, निर्वचन के लिए पेश करना पड़ता है; पर जिन्हें **असली स्नायु-रोग**[1] कहते हैं, उनके साधारण रूपों में यौन जीवन का कारणात्मक महत्व इतना साफ़ दिखाई देता है कि उसकी ओर ध्यान खिंच जाता है। यह बात मुझे २० वर्ष पहले पता चली थी, जब एक दिन मैं आश्चर्य से यह सोच रहा था कि स्नायु-रोगियों की परीक्षा करते हुए हम उनके यौन जीवन से सम्बन्ध रखने वाली सब बातों को क्यों सदा विचार से बाहर छोड़ देते हैं। पर इस प्रश्न पर जांच करने से मेरे रोगियों में मेरी लोकप्रियता कम हो गई। लेकिन बहुत थोड़े-से समय में अपनी कोशिशों से मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि: जहां यौन जीवन प्रकृत है, वहां कोई स्नायु-रोग—मेरा मतलब है असली स्नायु-रोग—नहीं होता। यह सच है कि इस कथन में लोगों के व्यक्तिगत अन्तरों को बिलकुल भुला दिया गया है, और इसमें यह भी दोष है कि 'प्रकृत' शब्द का सुनिश्चित अर्थ निर्धारित नहीं है; पर मोटे तौर पर, इसका आजतक वह महत्व कायम है। उस समय मैंने यहां तक किया कि स्नायविकता के कुछ रूपों और कुछ हानिकारक यौन अवस्थाओं में विशिष्ट सम्बन्ध-सूत्र भी कायम किए। मुझे इसमें सन्देह नहीं कि यदि मेरे पास अब भी जांच की वैसी सामग्री हो तो मैं फिर वही परीक्षण कर सकता हूं। मैंने बहुत बार देखा कि जो आदमी किसी तरह की अधूरी यौन सन्तुष्टि से, उदाहरण के लिए हस्तमैथुन से, आनन्द प्राप्त करता है, उसमें असली स्नायु-रोग का एक निश्चित प्ररूप होगा, और यदि वह यौन जीवन का उतना ही असन्तोषजनक कोई और तरीका अपना लेगा तो यह स्नायु-रोग भी झटपट दूसरा रूप धारण कर लेगा। उस समय मैं रोगी की अवस्था में होने वाले परिवर्तन से उसके यौन जीवन की रीति में परिवर्तन का अनुमान कर सकता था, और मैं तब तक अपने निष्कर्षों पर अड़ा रहता था, जब तक अपने रोगियों से इस बात की पुष्टि नहीं करा लेता

१. Actual neuroses.

था। यह सच है कि तब वे दूसरे डाक्टर ढूंढ़ने का विचार करते थे, जो उनके यौन जीवन में इतनी दिलचस्पी न रखें।

उस समय भी यह बात मेरे ध्यान में आए बिना नहीं रही थी कि स्नायु-रोग का कारण सदा यौन जीवन ही नहीं दिखाई देता; ठीक है कि एक व्यक्ति किसी हानिकारक यौन अवस्था के कारण रोगी हो जाएगा, पर दूसरा आदमी इसलिए रोगी हो जाएगा कि उसकी सम्पत्ति नष्ट हो गई, या हाल में ही उसे कोई सख्त मस्तिष्क-रोग हो गया था। इन विभिन्नताओं का स्पष्टीकरण बाद में हुआ जब अहम् और राग में जो परस्पर सम्बन्ध होने का सन्देह था, वे समझ में आए। व्यक्ति तभी स्नायु-रोग से पीड़ित होता है जब अहम् की, राग को किसी न किसी तरह तृप्ति करने की, क्षमता नष्ट हो जाती है। अहम् जितना अधिक शक्तिशाली होगा, वह उतनी ही आसानी से यह कार्य कर लेगा। अहम् में आने वाली प्रत्येक कमजोरी का, चाहे वह किसी भी कारण से आए, वही परिणाम होगा जो राग की आवश्यकता में बढ़ोतरी का, अर्थात् उससे स्नायु-रोग सम्भव हो जाएगा। अहम् और राग में कुछ और भी, तथा घनिष्ट, सम्बन्ध हैं, जिनकी मैं इस समय चर्चा नहीं करूंगा, क्योंकि अपने विषय-विवेचन में अभी हम वहां नहीं पहुंचे हैं। हमारे लिए सबसे अधिक सारभूत और सबसे अधिक शिक्षाप्रद बात यह है कि स्नायु-रोग के लक्षणों को सहारा देने वाला ऊर्जा-संचय, सदा, और चाहे वह स्नायु-रोग किसी भी परिस्थिति में पैदा हुआ हो, राग द्वारा ही प्रस्तुत किया जाता है, जिसका इस तरह अप्रकृत प्रयोग होने लगता है।

अब मैं आपको **असली स्नायु-रोगों** के और **मनोस्नायु-रोगों**[1] के, जिसके पहले समूह (स्थानान्तरण स्नायु-रोगों) पर हम अब तक इतना विचार करते रहे, लक्षणों का निश्चायक अन्तर बताना चाहता हूं। असली स्नायु-रोग और मनोस्नायु-रोग, इन दोनों में ही लक्षण रोग से चलते हैं; अर्थात् वे इसका उपयोग करने के अप्रकृत तरीके हैं, इसकी सन्तुष्टि की स्थानापन्न वस्तु हैं, पर असली स्नायु-रोग के लक्षणों—सिरदर्द, दुःख का सम्वेदन, किसी अंग की सन्तापयोग्य[2] अवस्था, किसी कार्य का कमजोर हो जाना या निरोध—का मन में कोई 'अर्थ' या तात्पर्य नहीं होता। इतना ही नहीं कि वे मुख्यतः शरीर में प्रकट होते हैं, जैसा कि उदाहरण के लिए, हिस्टीरिया के लक्षणों में होता है, बल्कि वे स्वयं भी शुद्धतः और बिलकुल शारीरिक प्रक्रम हैं। उनका जन्म इस तरह के उलझनदार मानसिक तंत्रों के बिना ही होता है, जिनका हमें यहां पता चला है। इसलिए वे वास्तव में वैसे लक्षण हैं जैसा पहले मनोस्नायु-रोगों को बहुत समय तक समझा जाता रहा। पर फिर वे उस राग की अभिव्यक्ति कैसे हो सकते हैं जिसे हमने मन में कार्य करते हुए बल के

---

१. Psychoneuroses. २. Irritable.

रूप में जाना है ? असल में, इसका जवाब बड़ा सरल है। मैं मनोविश्लेषण पर सबसे पहले की गई आपत्तियों में से एक आपत्ति की चर्चा करता हूं। यह कहा गया था कि मनोविश्लेषण के सिद्धान्तों में स्नायविक लक्षणों की सिर्फ मनोविज्ञान द्वारा व्याख्या करने की कोशिश की गई है और इसलिए इससे कोई आशा नहीं की जा सकती, क्योंकि मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों से कभी किसी भी रोग की पूरी व्याख्या नहीं की जा सकती। इन आलोचकों ने इस बात को भुला दिया था कि यौन कार्य जैसे सिर्फ़ शारीरिक चीज नहीं है, उसी तरह सिर्फ मानसिक चीज भी नहीं है। यह जैसे मानसिक जीवन को प्रभावित करता है, वैसे ही शारीरिक जीवन को भी प्रभावित करता है। यह जान लेने पर कि मनोस्नायु-रोगों के लक्षण इस कार्य में होने वाले किसी गड़बड़ के मानसिक परिणामों को प्रकट करते हैं, अब हमें यह देखकर आश्चर्य न होना चाहिए कि असली स्नायु-रोग यौन गड़बड़ियों के सीधे कायिक परिणामों को निरूपित करते हैं।

चिकित्सा-शास्त्र से हमें असली स्नायु-रोगों को समझने की दिशा में एक उपयोगी संकेत मिलता है (जिसे बहुत सारे अनुसंधानकर्ताओं ने स्वीकार किया है)। उनके लक्षण-समूह का ब्यौरा और यह विशेषता कि उनका सब शारीरिक संस्थानों और कार्य पर एक साथ असर पड़ता है, उन रोगात्मक अवस्थाओं से असंदिग्ध रूप से मिलती-जुलती है जो विजातीय टाक्सिनों के दीर्घकालीन प्रभाव से या एकाएक हट जाने से पैदा होती हैं, अर्थात् विषयुक्तता की या उस विष के अभाव की स्थितियों से असंदिग्ध रूप से मिलती-जुलती है। विकारों के इन दोनों समूहों में बैसेडो के रोग (अर्थात् ग्रेव्'स डिज़ीज या एक्साफथैलमिक गायटर) जैसी अवस्थाओं से तुलना करने पर और भी अधिक सादृश्य दिखाई देते हैं—इस रोग की अवस्थाएं भी विष के प्रभाव से पैदा होती हैं, पर बाहर से प्राप्त विष से नहीं बल्कि उस विष से जो अन्दर के विपचन[1] से पैदा होता है। मेरी राय में इन सादृश्यों से यह आवश्यक हो जाता है कि हम स्नायु-रोगों को यौन विपचन में होने वाले विक्षोभों का परिणाम मानें—ये विक्षोभ या तो इस कारण पैदा होते हैं कि व्यक्ति जितने यौन टाक्सिनों को दूर कर सकता है, उससे अधिक यौन टाक्सिन पैदा हो जाते हैं। अथवा, इनका कारण वे आन्तरिक और मानसिक अवस्थाएं हैं जो इन पदार्थों को उचित रीति से दूर करने में बाधा डालती हैं। यौन इच्छा के स्वरूप के बारे में ऐसी धारणाएं लोग आदिकाल से मानते आए हैं; प्रेम को 'मद' कहा जाता है; यह 'दवा के घूंट' लेने से पैदा हो सकता है—इन धारणाओं में कार्य करने वाले साधन को कुछ सीमा तक बाहरी दुनिया पर प्रक्षेपित कर दिया गया है। यहां हमें कामजनक क्षेत्रों का स्मरण आता है और इस कथन का ध्यान आता है कि यौन

---

१. Metabolism.

उत्तेजन अनेक अंगों में पैदा हो सकता है। इससे आगे 'यौन विपचन' या 'कामुकता के रसायन-शास्त्र' की बात बिलकुल खोखली है; हमें इसके बारे में कुछ पता नहीं है, और हम यह भी तय नहीं कर सकते कि दो प्रकार के यौन पदार्थ माने जाएं जिन्हें 'नर' या 'स्त्री' कहा जाए, या राग से पैदा होने वाले सब उद्दीपनों का कारण **एक** यौनटाक्सिन मानकर संतोष कर लिया जाए। हमने मनोविश्लेषण सिद्धान्त का जो भवन खड़ा किया है, वह वास्तव में सिर्फ़ ऊपरी ढांचा है, जिसे कभी न कभी इसकी शारीरिक बुनियाद पर जमाना होगा, पर यह बुनियाद अभी हमें अज्ञात है।

विज्ञान के रूप में मनोविश्लेषण की विशेषता इसकी कार्य करने की विधियां हैं, इसकी वर्णित वस्तु नहीं। इन विधियों का जो सारभाग है, वह सभ्यता के इतिहास पर, धर्म-विज्ञान पर तथा पुराण-शास्त्र पर उसी तरह लागू किया जा सकता है, जैसे स्नायु-रोगों के अध्ययन पर। मनोविश्लेषण का लक्ष्य और सफलता मानसिक जीवन में अचेतन की खोज ही है, और कुछ नहीं। असली स्नायु-रोगों की समस्या, जिसमें लक्षण सम्भाव्यतः सीधे टाक्सिक, अर्थात् विष-प्रभावजनित आघात से पैदा होते हैं, मनोविश्लेषण के विचारणीय विषय नहीं। इससे उनपर कोई खास रोशनी नहीं पड़ सकती, और इसे वह काम जैविकीय तथा चिकित्सा सम्बन्धी गवेषणा के लिए ही छोड़ देना होगा। शायद अब आप यह बात अधिक अच्छी तरह समझ गए होंगे कि मैंने अपने विषय-प्रतिपादन के लिए यह सिलसिला क्यों चुना। यदि मेरा विचार **स्नायु-रोगों के अध्ययन की भूमिका** पेश करना होता तो निस्संदेह यही ठीक होता कि मैं पहले (असली) स्नायु-रोगों के सरल रूप पेश करता और फिर उनसे चलकर राग के विक्षोभों से पैदा होने वाले अधिक उलझे हुए मनोधात्वीय विकारों पर पहुंचता। पहले विषय के बारे में मुझे अनेक स्थानों से वह सामग्री जमा करनी पड़ती, जो उसके बारे में हम जानते हैं, या हम समझते हैं कि हम जानते हैं; और इन पिछले स्नायु-रोगों के बारे में विचार करते हुए इन अवस्थाओं के रहस्य को समझने के सबसे महत्वपूर्ण टेक्नीकल साधन के रूप में मनोविश्लेषण को पेश करना पड़ता, पर मुझे **मनोविश्लेषण की भूमिका या परिचय** देना था, और ऐसा ही मैंने कहा भी था। आपको स्नायु-रोगों के बारे में कुछ समझा देने की अपेक्षा मैंने आपको मनोविश्लेषण की एक रूपरेखा देना अधिक महत्वपूर्ण समझा, और इसलिए असली स्नायु-रोग, जिनसे मनोविश्लेषण के अध्ययन में कोई मदद नहीं मिलती, उचित रूप से सामने न लाया जा सका। मैं यह भी समझता हूं कि मेरा चुनाव आपके लिए अधिक उपयोगी था, क्योंकि मनोविश्लेषण की क्रान्तिकारी स्वयंसिद्धियां और दूरगामी सम्बन्ध-सूत्र इसे त्येक शिक्षित की दिलचस्पी का पात्र बनाते हैं, पर स्नायु-रोगों का सिद्धान्त और चीज़ों की तरह चिकित्सा-शास्त्र का ही एक प्रकरण है।

फिर भी, आपका यह आशा करना उचित है कि हमें असली स्नायु-रोगों में कुछ दिलचस्पी होनी चाहिए। मनोस्नायु-रोगों के साथ उनके निकट सम्बन्ध के कारण भी इसकी आवश्यकता है। तो मैं आपको यह बताऊंगा कि असली स्नायु-रोग के हम तीन शुद्ध रूप मानते हैं: **न्यूरैस्थीनिया** या **स्नायु-दुर्बलता, चिन्ता-स्नायु-रोग और हाइपोकोन्ड्रिया** या **उदासी रोग**। इस वर्गीकरण पर भी आपत्ति उठाई गई है। ये सब शब्द निश्चित रूप से प्रयोग में आते हैं, पर उनका अर्थ अस्पष्ट और अनिश्चित है। कुछ डाक्टर ऐसे हैं जो स्नायविक रोगों की उलझनदार दुनिया में कोई भी भेद करने के विरोधी हैं, जो रोग-सत्ताओं या रोग-प्ररूपों में कोई भी विवेक करने पर आपत्ति उठाते हैं, और असली स्नायु-रोगों और मनोस्नायु-रोगों का भेद भी नहीं मानते। मेरी राय में वे अति करते हैं, और उन्होंने जो दिशा चुनी है, वह तरक्की में सहायक नहीं हो सकती। ऊपर बताए गए तीन प्रकार के स्नायु-रोग बहुत बार शुद्ध रूप में पाए जाते हैं। यह सच है कि वे अधिकतर एक दूसरे से और किसी मनोस्नायु-रोग से मिले हुए होते हैं। इस तथ्य के कारण हमें उनमें विभेद करना ही नहीं छोड़ देना चाहिए। विज्ञान में खनिज-शास्त्र के खनिजों और कच्ची धातुओं के अन्तर पर विचार कीजिए: खनिजों का अलग-अलग वर्गीकरण किया जाता है, जिसका एक कारण यह है कि वे बहुत बार ऐसे मणियों[1] के रूप में पाए जाते हैं जो अपने आसपास की और वस्तुओं से स्पष्टतः भिन्न होते हैं; कच्ची धातु में खनिज मिले हुए होते हैं, जो अकस्मात् नहीं मिल गए हैं, बल्कि अपने निर्माण के समय की अवस्थाओं के अनुसार मिले हैं। स्नायु-रोगों के सिद्धान्त में स्नायु-रोगों के परिवर्धन के प्रक्रम के बारे में हमें इतनी थोड़ी जानकारी है कि अपने कच्ची धातु सम्बन्धी ज्ञान की तरह हम कोई ज्ञान क्रमबद्ध नहीं कर सकते; पर लक्षणों के समूह में से पहचान योग्य रोग-लक्षणों को, जिनकी अलग-अलग खनिजों से तुलना की जा सकती है, पहले अलग कर लेना निश्चित ही सही दिशा में कदम उठाना है।

असली स्नायु-रोगों और मनोस्नायु-रोगों के बीच मौजूद एक ध्यान देने योग्य सम्बन्ध-सूत्र से मनोस्नायु-रोगों में लक्षण-निर्माण के बारे में कीमती सहायता मिलती है; असली स्नायु-रोग का लक्षण बहुधा मनोस्नायु-रोग के लक्षण का नाभिक या केन्द्र और प्रारम्भिक अवस्था होता है। इस तरह का सम्बन्ध-सूत्र स्नायु-दुर्बलता और उस स्थानांतरण स्नायु-रोग में, जिसे कन्वर्शन-हिस्टीरिया कहते हैं, चिन्ता-स्नायु-रोग और चिन्ता-हिस्टीरिया में बहुत स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। इतना ही नहीं, बल्कि यह उदासी या हाइपोकोन्ड्रिया में और पैराफ्रेनिया (डेमेन्शिया प्रिकौक्स और पैरानोइया) नामक स्नायु-रोग के रूपों में भी पाया

---

१. Crystal.

जाता है, जिसपर हम आगे चलकर विचार करेंगे। उदाहरण के लिए, हिस्टीरिया वाले का सिर-दर्द या पीठ-दर्द ले लीजिए। विश्लेषण से पता चलता है कि संघनन और विस्थापन द्वारा यह एक पूरी की पूरी रागात्मक कल्पनाओं, या स्मृतियों की सारी की सारी शृंखला के लिए स्थानापन्न सन्तुष्टि बन गया है, पर किसी समय यह दर्द वास्तविकता था, एक यौन टाक्सिन का प्रत्यक्ष लक्ष्य था, एक यौन उत्तेजन का शारीरिक प्रकाशन था। हम यह नहीं मानते कि हिस्टीरिया के सब लक्षणों में इस तरह का एक नाभिक होता है, पर बहुधा यह बात सच होती है और शरीर पर रागात्मक उत्तेजन के जो भी स्वस्थ या रोगात्मक परिणाम होते हैं, वे हिस्टीरिया के लक्षण-निर्माण के प्रयोजन पूरे करने के लिए विशेष रूप से अनुकूल बने हुए होते हैं। सम्भोग-कार्य के साथ होने वाले यौन उत्तेजन के अस्थायी चिह्न उसी तरह लक्षण-निर्माण के लिए सबसे अधिक उपयुक्त और सुविधाजनक सामग्री के रूप में मनोस्नायु-रोग को लाभ पहुंचाते हैं।

इसी तरह का एक क्रम निदान और चिकित्सा की दृष्टि से विशेष महत्व का है। उन व्यक्तियों में, जिनमें स्नायविक होने की प्रवृत्ति मौजूद रहती है, पर जिनमें अभी बड़े पैमाने पर कोई स्नायु-रोग परिवर्धित नहीं हुआ है, आम तौर से कोई अस्वस्थ शरीरावस्था—शायद कोई प्रदाह[1] या चोट लक्षण-निर्माण के काम को चालू कर देती है। इसके परिणामस्वरूप, स्नायु-रोग यथार्थता द्वारा प्रस्तुत किए गए लक्षण पर तेज़ी से झपट पड़ता है और इसे उन अचेतन कल्पनाओं को निरूपित करने में प्रयुक्त करता है जो अभिव्यक्ति के किसी साधन की प्रतीक्षा में चुप पड़ी थीं। इस तरह की अवस्था में डाक्टर पहले एक पद्धति से इलाज करेगा, फिर दूसरी से। वह या तो उस शारीरिक आधार को खत्म करने की कोशिश करेगा, जिसपर लक्षण खड़ा है और इसके मुखर स्नायविक विशदन के बारे में परेशान नहीं होगा, अथवा स्नायु-रोग का इलाज करेगा जो अवसर पाकर पैदा हो गया है, और उस शारीरिक उद्दीपन को एक ओर छोड़ देगा, जिसने इसे प्रेरित किया है। कभी एक रीति सफल होगी, और कभी दूसरी, और सफल रीति को ही उचित माना जाएगा। इस तरह के मिले-जुल केसों के लिए कोई व्यापक नियम नहीं बताया जा सकता।

---

१. Inflammation.

चिन्ता

मैंने सामान्य स्नायविकता के बारे में अपने पिछले व्याख्यान में आपको जो कुछ बताया था, उसे आपने मेरे सब वर्णनों में सबसे अधिक अपर्याप्त और अधूरा समझा होगा। मैं जानता हूं कि यह ऐसा ही था, और मुझे आशा है कि आपको यह देखकर सबसे अधिक आश्चर्य हुआ होगा कि मैंने चिन्ता का कोई उल्लेख नहीं किया, जिसकी सब स्नायविक लोग शिकायत करते हैं और जिसे वे अपना सबसे भयंकर दुश्मन बताते हैं। चिन्ता (या त्रास अर्थात् घोर चिंता) सचमुच बड़ा तीव्र रूप धारण कर सकती है, और परिणामतः बड़ी पागलपन भरी सतर्कताओं का कारण बन सकती है, पर कम से कम इस मामले में, मैं आपको थोड़े में नहीं टालना चाहता था। इसके विपरीत, मैंने स्नायविक चिन्ता की समस्या आपके सामने यथा-सम्भव स्पष्ट रूप से पेश करने का और उसपर बारीकी से विचार करने का निश्चय किया हुआ था।

चिन्ता (या त्रास) का वर्णन करने की कोई आवश्यकता नहीं; हर व्यक्ति ने किसी न किसी समय इस संवेदन को, या अधिक सही रूप में कहा जाए तो इस भाव-दशा को स्वयं अनुभव किया है। पर मेरी राय में इस बात पर काफ़ी गम्भीर विचार नहीं हुआ कि स्नायविक लोग ही चिन्ता से, औरों की अपेक्षा मात्रा में और तीव्रता में अधिक, कष्ट क्यों पाते हैं? शायद यह तो स्वयंसिद्ध मान लिया गया है कि उन्हें यह कष्ट होना ही चाहिए। सच पूछिए तो चिन्ता और स्नायविकता शब्द एक दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त कर दिए जाते हैं, मानो उनका एक ही अर्थ हो, परन्तु यह उचित नहीं। कुछ लोग चिंतायुक्त होते हैं, पर वे स्नायविक (नर्वस) नहीं होते; और इनके अलावा, ऐसे स्नायु-रोगी होते हैं जिनमें बहुत-से लक्षण होते हुए भी चिंतित या त्रस्त होने की कोई प्रवृत्ति नहीं दिखाई पड़ती। जो कुछ भी हो, पर एक बात निश्चित है कि चिन्ता या त्रास की समस्या वह केन्द्र-बिन्दु है जो सब तरह के सबसे महत्वपूर्ण प्रश्नों को एक सिलसिले में बांध देता है। यह एक ऐसी समस्या है जिसके हल होने से हमारे सारे मानसिक जीवन पर अवश्य ही बहुत

अधिक प्रकाश पड़ेगा। मेरा यह दावा नहीं है कि मैं इसका कोई त्रुटिहीन समाधान पेश कर सकता हूं, पर आप यह आशा अवश्य करते होंगे कि मनोविश्लेषण ने इस समस्या पर भी चिकित्सा-शास्त्र की प्रचलित रीति से भिन्न प्रकार से विचार किया होगा। चिकित्सा-शास्त्र में मुख्य बात उन शारीरीय प्रक्रमों को माना जाता है, जिनसे चिंतावाली अवस्था पैदा होती है। हमें पढ़ाया जाता है कि मैंडुला ओब्लौंगैटा, अर्थात् मस्तिष्क-पुच्छ, उद्दीपित हो जाता है, और रोगी को कहा जाता है कि तुम्हें वेगलस्नायु में स्नायु-रोग है। मस्तिष्क-पुच्छ एक आश्चर्यकारक और सुन्दर वस्तु है। मुझे अच्छी तरह याद है कि मैंने वर्षों पूर्व इसके अध्ययन पर कितना समय और श्रम लगाया था, पर आज मुझे यह कहना पड़ता है कि चिन्ता के मनोवैज्ञानिक रूप को समझने के लिए, जिन स्नायु-मार्गों से उत्तेजन चलते हैं, उनकी जानकारी सबसे अधिक महत्वहीन है।

चिंता या त्रास और स्नायविकता में अन्तर करना चाहिए। चिंता को वस्तुनिष्ठ या **आलम्बननिष्ठ चिंता**[1] समझना चाहिए, और स्नायविकता को स्नायविक चिंता कहना चाहिए। बात यह है कि यथार्थ या वास्तविक चिंता या त्रास हमें बिलकुल स्वाभाविक और बुद्धिसंगत चीज़ प्रतीत होता है। इसे किसी बाहरी खतरे या किसी आघात के, जिसकी सम्भावना है, और जो पहले ही पता चल रहा है, ज्ञान की प्रतिक्रिया कहना चाहिए। यह पलायन के रिफ्लेक्स अर्थात् प्रतिक्षेप, के साथ जुड़ा है, और इसे आत्मसंरक्षण की निसर्ग-वृत्ति की अभिव्यक्ति माना जा सकता है। इसके अवसर, अर्थात् वे वस्तुएं और स्थितियां जिनके बारे में चिंता महसूस की जाती है, स्पष्टत: बाहरी दुनिया के बारे में व्यक्ति की जानकारी और शक्ति की अनुभूति की अवस्था पर बहुत दूर तक निर्भर हैं। हमें यह बात बिलकुल स्वाभाविक लगती है कि कोई जंगली आदमी तोप या सूर्य-ग्रहण को देखकर डर जाए, पर पढ़ा-लिखा आदमी, जो तोप को चला सकता है, और सूर्य-ग्रहण की भविष्यवाणी कर सकता है, वैसी ही स्थिति में बिलकुल भी नहीं डरता। कभी-कभी ज्ञान ही भय पैदा करता है, क्योंकि यह खतरे को जल्दी ही प्रकट कर देता है। इस प्रकार जंगली आदमी जंगल में कोई पद-चिह्न देखकर आतंकित हो जाएगा, पर उसका अर्थ न जानने वाले बाहरी मनुष्य के लिए उसका कोई महत्व नहीं है; उसके लिए इसका इतना ही अर्थ है कि कोई जंगली पशु आसपास मौजूद है; और अनुभवी नाविक क्षितिज पर छोटा-सा मेघ-खण्ड देखकर चिंतित हो जाएगा क्योंकि इसका अर्थ यह है कि तूफान आने वाला है पर मुसाफिर के लिए इस मेघ-खण्ड का कोई अर्थ नहीं है।

परन्तु गहराई से विचार करने पर हमें अपने इस खयाल को ऊपर से नीचे

---

१. Objective anxiety.

तक बदलना होगा कि आलम्बननिष्ठ चिंता बुद्धिसंगत और इष्टकर या वांछनीय है। खतरे को निकट देखकर इष्टकर या वांछनीय व्यवहार तो सचमुच यही होगा कि ठण्डे दिमाग से यह सोचा जाए कि आने वाले खतरे के मुकाबले में हमारे पास कितनी ताकत है, और फिर यह फैसला किया जाए कि सफलता की सबसे अधिक आशा पलायन से है, या बचाव से, या हमले से। पर त्रास का इसमें कोई स्थान नहीं है। प्रत्येक कार्य उतनी ही अच्छी तरह, बल्कि उससे भी अधिक अच्छी तरह किया जा सकेगा, यदि त्रास पैदा न हो। आप यह भी देखेंगे कि जब त्रास अधिक होता है, तब वह बहुत ही अनिष्टकर हो जाता है। यह सारी क्रिया, यहां तक कि पलायन या भागने में भी असमर्थ कर देती है। खतरे की प्रतिक्रिया आम-तौर से दो चीज़ों के मेल के रूप में होती है—भय-मनोविकार और प्रतिरक्षात्मक कार्यवाही; डरा हुआ पशु भयभीत होता है **और** भागता है, पर इसमें इष्टकर या वांछनीय बात भागना है, भयभीत होना नहीं।

इसलिए यह धारणा प्रबल हो जाती है कि चिन्ता पैदा होना कभी भी वांछनीय नहीं। शायद त्रास वाली स्थिति की अधिक बारीकी से छान-बीन करने पर हम इसे अच्छी तरह समझ सकेंगे। इसके बारे में पहली बात खतरे के लिए 'तैयारी' है, जो पहले से अधिक तीव्र ज्ञानेन्द्रिय अवबोधन और कर्मेन्द्रिय तनाव के रूप में प्रकट होती है। यह सशंक तैयारी स्पष्टतः लाभकारक होती है। सच पूछिए तो इसके अभाव में बड़े गम्भीर परिणाम हो सकते हैं। तब इसके बाद, एक ओर तो कर्मेन्द्रिय की क्रिया होती है, जो प्रथमतः भागने और ऊंचे स्तर पर प्रतिरक्षा या बचाव की कार्यवाही के रूप में होती है; और दूसरी ओर, इसके बाद वह अवस्था पैदा होती है जिसे हम चिन्ता या त्रास का संवेदन कहते हैं। यह त्रास का परिवर्धन जितना ही क्षणिक और संकेतमात्र होता है, उतना ही यह संचित तैयारी की अवस्था से क्रिया करने की अवस्था में आने में कम बाधा डालता है, और उतने ही अधिक वांछनीय रूप से सारा घटनाक्रम आगे बढ़ता है। इसलिए **संचित तैयारी** मुझे इष्टकर या वांछनीय अंश प्रतीत होती है, और चिंता का **परिवर्धन**, या बढ़ना, अनिष्टकर या अवांछनीय अंश मालूम होता है।

मैं यहां इस विवाद में नहीं पड़ूंगा कि चिंता (या त्रास)[1], भय[2] और डर[3] का आम प्रयोग में एक ही अर्थ होता है, या अलग-अलग। मेरी राय में **चिंता** स्थिति या अवस्था से सम्बन्ध रखती है, और वह वस्तु या आलम्बन की ओर ध्यान नहीं देती, जबकि **भय** शब्द में वस्तु या आलम्बन की ओर ध्यान जाता है; डर शब्द का तो एक विशेष अर्थ मालूम होता है, अर्थात् यह उस दशा से ही सम्बन्ध रखता है जो पहले संचित तैयारी बिना किए अप्रत्याशित रूप से आ पड़ने वाले खतरे से

---

१. Anxiety or Dread. २. Fear. ३. Fright.

पैदा होती है। तो, यह कहा जा सकता है कि चिंता डर से बचने का एक साधन है।

आपके ध्यान में यह बात अवश्य आई होगी कि चिन्ता शब्द के प्रयोग में कुछ अस्पष्टता रहती है। आम तौर से यह समझा जाता है कि जिसे हमने 'परिवर्धित' चिंता कहा है, उसके ज्ञान से उत्पन्न व्यक्तिनिष्ठ या आशयनिष्ठ अवस्था चिंता है। यह अवस्था एक भाव या मनोविकार कहलाती है, पर गतिकीय अर्थ में भाव[1] या मनोविकार क्या होता है? यह निश्चित ही एक संकुल चीज है। भाव में सबसे पहले तो, कुछ कर्मस्नायु-उद्दीपन या विसर्जन होते हैं; और फिर कुछ संवेदन होते हैं, जो स्वयं दो प्रकार के होते हैं—कर्म-स्नायु द्वारा की गई क्रियाओं का अवबोधन या ज्ञान, और वे प्रत्यक्ष रूप से सुखात्मक या दुःखात्मक संवेदन, जिनसे भाव में उसका 'प्रधान स्वर' पैदा होता है। पर मैं नहीं समझता कि यह वर्णन भाव के सारतत्व को स्पष्ट कर देता है। कुछ भावों में अधिक गहराई तक जाया जा सकता है, और यह देखा जा सकता है कि उस सारी संकुल संरचना को एक जगह बांधने वाली गांठ का स्वरूप किसी विशिष्ट, बहुत अर्थपूर्ण पूर्व अनुभव की **पुनरावृत्ति** या दोहराने का होता है। यह अनुभव किसी सार्वत्रिक प्ररूप का बहुत आरम्भिक काल का संस्कार ही हो सकता है, जो व्यष्टि के बजाय स्नीशीज के पूर्व-इतिहास में रहा हो। अपनी बात अधिक साफ करने के लिए मैं यों कह सकता हूं कि भाव की अवस्था की रचना हिस्टीरिया के दौरे जैसी अर्थात् किसी संस्मरण का अवक्षेप होती है। इसलिए हिस्टीरिया के दौरे की तुलना किसी नवनिर्मित व्यष्टिगत भाव से की जा सकती है, और प्रकृत भाव की तुलना सार्वजनिक हिस्टीरिया से, जो मनुष्यमात्र को उत्तराधिकार में मिला है, की जा सकती है।

यह मत समझिए कि भावों के विषय में मैं जो कुछ बता रहा हूं, वह प्रकृत मनोविज्ञान की सामान्य सम्पत्ति है। इसके विपरीत, ये अवधारण-मनोविश्लेषण की भूमि पर पैदा हुए हैं और ये वही देशज[2] हैं। मनोविज्ञान भावों के विषय में जो कुछ कहता है—उदाहरण के लिए, जेम्स लांगे सिद्धान्त—वह बाह्य मनोविश्लेषकों को बिलकुल समझ में नहीं आता, और हमारे लिए उसपर विचार करना असम्भव है। पर हम भावों के विषय में जो कुछ जानते हैं, वह कोई अन्तिम रूप से निर्णीत बात नहीं है। यह तो इस रहस्यमय क्षेत्र में अपना पैर जमाने का आधार प्राप्त करने की पहली कोशिश है। अच्छा तो, हम समझते हैं कि हम यह जानते हैं कि इस चिंता-भाव में पुनरावृत्ति के रूप में पुनरुत्पादित होने वाला यह आदि संस्कार क्या है। हम समझते हैं कि यह **जन्म** का अनुभव है—यह ऐसा अनुभव है जिसमें दुःखात्मक भावनाओं का, उत्तेजन के विसर्जनों का, और शारीरिक संवेदनों का ऐसा गुंफन हो जाता है कि यह उन सब अवसरों के लिए, जिनमें जीवन को खतरा

---

१. Affect. २. Indigenous.

होता है, एक मूल रूप बन जाता है, और फिर सदा हमारे अन्दर त्रास या 'चिंता' की अवस्था के रूप में बार-बार पुनरुत्पादित होता है। रक्त के बदलते रहने में (अर्थात भीतरी श्वसन में) रुकावट से उद्दीपन में अत्यधिक वृद्धि के कारण जन्म के समय में चिंता अनुभव हुई थी; इसलिए पहली चिंता टाक्सिक अर्थात् विषीय कारण से पैदा हुई थी। (जर्मन का) **अंगुस्ट** शब्द (चिंता) **अंगुस्टीओ, अंगे**—संकरा-स्थान—सांस लेने में होने वाले कसाव पर बल देता है; यह कसाव उस समय एक वास्तविक स्थिति के परिणामस्वरूप पैदा हुआ था, और बाद में किसी भी भाव से इसकी प्रायः सदा पुनरावृत्ति होती है। यह बात भी बड़ी व्यंजनापूर्ण है कि पहली चिंता-अवस्था माता से अलग होने के मौके पर हुई। स्वभावतः हम यह मानते हैं कि इस पहली चिंता अवस्था को पुनरुत्पादित करने की प्रवृत्ति या स्वभाव जीव-पिंड में इतनी गहराई से आत्मसात् हो गया है कि असंख्य पीढ़ियों में कोई एक मनुष्य भी चिंता-भाव से नहीं बच सकता, चाहे वह किंवदन्तियों में आनेवाला मैकडफ ही क्यों न हो, जो अपनी माता के गर्भ से, चीरकर, असमय में ही निकाल लिया गया था, और इसलिए जिसने जन्म-काल का स्वयं अनुभव नहीं किया। स्तन्यपायी प्राणियों के अलावा, दूसरे प्राणियों के लिए चिंता-अवस्था का मूल रूप क्या होगा, यह हम नहीं कह सकते। हम यह नहीं जानते हैं कि उनमें संवेदनों का वह संकुलन कौन-सा है जो हमारे भय के तुल्य है।

शायद आपको यह जानने में दिलचस्पी होगी कि इस तरह के विचार पर हम कसे पहुंचे कि जन्म चिन्ता-भाव का मूल स्रोत और मूल रूप है। इसमें परिकल्पना का कोई कार्य नहीं था। इसके विपरीत, मैंने आम जनता के प्रतिभ ज्ञान सम्पन्न मन से एक विचार लिया। बहुत वर्ष पहले कुछ तरुण चिकित्सक, जिनमें मैं भी था, भोजन के लिए मेज के इर्द-गिर्द बैठे थे, और गर्भ-चिकित्सालय का डाक्टर हमें दाइयों की हाल में हुई परीक्षा की मनोरंजक बातें बता रहा था। एक परी-क्षार्थी से जब यह पूछा गया कि जन्म के समय मेकोनियम (शिशु का मल) पानी में मौजूद हो तो इसका क्या अर्थ है, तो उसने तुरन्त उत्तर दिया, "बालक डर गया है।" उसका मज़ाक उड़ाया गया, और उसे फेल कर दिया गया; पर मैं मन ही मन उसके पक्ष में हो गया, और मुझे यह सन्देह होने लगा कि उस बेचारी अनपढ़ औरत के निर्मूल अवबोधन ने एक बहुत महत्वपूर्ण सम्बन्ध-सूत्र का उद्घाटन किया।

अब स्नायविक चिंता पर विचार कीजिए। स्नायविक व्यक्तियों की चिन्ता में कौन-कौन-सी विशेष बातें और अवस्थाएं होती है? इस विषय में बहुत कुछ वर्णन करना होगा। सबसे पहले तो उनमें एक व्यापक भय का भाव दिखाई देता है, जिसे हम 'मुक्त उड़ती हुई' चिंता कहते हैं, जो जरा भी उपयुक्त दीखने वाले किसी भी विचार से अपने को जोड़ने को तैयार रहती है, और निर्णय पर असर

डालती है, भविष्य की आशंका पैदा कर देती है और यह प्रतीक्षा करती रहती है कि उसका औचित्य सिद्ध करने वाला कोई अवसर आए। इस अवस्था को हम **'साशंक त्रास'** या संचित आशंका कहते हैं। इस तरह की चिंता से पीड़ित लोग सदा सब सम्भव परिणामों में से सबसे बुरे परिणाम की कल्पना करते हैं, प्रत्येक आकस्मिक घटना को अपशकुन समझते हैं, और प्रत्येक अनिश्चितता का बुरे से बुरा अर्थ लगाते हैं। बुरा होने की इस तरह की आशंका की प्रवृत्ति कुछ लोगों में चरित्र के गुण के रूप में होती है, जिन्हें और किसी रूप में रोगी नहीं कहा जा सकता, और उन्हें हम 'अतिचिन्तित', 'अतित्रस्त' या निराशावादी कहते हैं। पर जिस स्नायु-रोग को मैंने चिन्ता-स्नायु-रोग कहा है, उसके साथ सदा साशंक चिंता बहुत मात्रा में होती है। इस चिंता-स्नायु-रोग को मैं 'असली स्नायु-रोगों'[1] में रखता हूं।

चिन्ता के इस प्ररूप के मुकाबले में दूसरी ओर इसका एक दूसरा रूप भी है, जो मन में बहुत अधिक सीमित क्षेत्र में घिरा हुआ होता है, और कुछ निश्चित वस्तुओं और स्थितियों से जुड़ा हुआ रहता है। यह चिंता बड़ी विविध और विचित्र 'फोबिया' या 'भीतियों' की चिंता है। प्रसिद्ध अमेरिकन वैज्ञानिक स्टेनलीहाल ने हाल में इन बहुत सारी भीतियों या 'फोबिया' को बड़े-बड़े यूनानी नाम देने का परिश्रम किया है। वे सुनने में मिस्र के दस जिन्नों जैसे मालूम होते हैं; फ़र्क इतना ही है कि ये दस से बहुत अधिक हैं। जरा देखिए कि भीति का आलम्बन कौन-कौन-सी चीज हो सकती है : अंधेरा, खुली हवा, खुले स्थान, बिल्लियां, मकड़े, टिड्डे, सांप, चूहे, बिजली की गरज, तेज नोक, खून, घिरी हुई जगह, भीड़, एकान्त, पुलों को पार करना, धरती या समुद्र पर यात्रा इत्यादि। इस गड़बड़झाले को कुछ काबू में लाने के लिए हम उन्हें तीन समूहों में बांट देते हैं : भय पैदा करने वाली बहुत-सी वस्तुएं और स्थितियां तो हम प्रकृत या स्वस्थ लोगों के लिए भी भयानक हैं। उनका खतरे से कुछ सम्बन्ध है, और ये भीतियां या फोबिया हमें कुछ हद तक समझ में आती हैं, हालांकि उनकी तीव्रता अतिरंजित मालूम होती है। उदाहरण के लिए हम में से अधिकतर लोगों को सांप देखकर परे हट जाने की भावना पैदा होती है। यह कहा जा सकता है कि सांप-भीति मानव जाति में सब जगह मौजूद है। चार्ल्स डारविन ने इस बात का बड़ा सजीव वर्णन किया है कि किस तरह वह अपनी ओर तेजी से आने वाले सांप को देखकर अपने त्रास को नियंत्रित नहीं कर सका, यद्यपि वह यह जानता था कि एक मोटे शीशे के भीतर वह सुरक्षित है। दूसरे समूह में वे स्थितियां हैं, जिनका अब भी खतरे से कुछ सम्बन्ध है, पर वह खतरा आम तौर से बहुत मामूली समझा जाता है। अधिकतर स्थिति-भीतियां इस समूह में आती हैं। हम जानते हैं कि घर में रहने के समय की अपेक्षा रेलगाड़ी में विनाश,

---

१. Actual neuroses.

अर्थात् टक्कर, का सामना होने का अधिक मौका है। हम यह भी जानते हैं कि जहाज़ डूब सकता है और ऐसा होने पर आमतौर से आदमी डूब जाते हैं, पर हम इन खतरों पर सोचते नहीं रहते, और बिना चिंता के रेल और जहाज में सफ़र करते हैं। यह भी निश्चित है कि यदि कोई पुल ऐसे समय टूट जाए जब हम उसे पार कर रहे हैं तो हम जलधारा में जा पड़ेंगे। पर ऐसी घटनाएं इतनी कम होती हैं कि हम इन्हें विचार करने योग्य खतरा नहीं समझते। एकांत में भी खतरे हैं, और कुछ परिस्थितियों में हम इनसे बचना चाहते हैं, पर यह नहीं कि हम किसी भी अवस्था में क्षण भर के लिए भी इसे सहन नहीं कर सकते। यही बात भीड़, घिरी हुई जगह, बिजली की गरज आदि पर लागू होती है। इन भीतियों में हमारे लिए अपरिचित बात उनकी वस्तु उतनी नहीं है जितनी कि उनकी तीव्रता। किसी भीति या फोबिया के साथ जो चिंता होती है, वह निश्चित रूप से अवर्णनीय होती है। और कभी-कभी हमें यह महसूस होता है कि स्नायु-रोगी उन वस्तुओं से सचमुच ज़रा भी नहीं डरते, जिनसे हमारे अन्दर कुछ परिस्थितियों में चिंता पैदा हो जाती है और जिसे वे उन्हीं नामों से पुकारते हैं।

अब एक तीसरा समूह रह जाता है जो हमें बिलकुल समझ में नहीं आता। जब कोई ताकतवर वयस्क आदमी अपने ही सुपरिचित नगर में किसी सड़क या चौराहे को पार करने में डरता है, या जब कोई स्वस्थ और वयस्क स्त्री सिर्फ़ इस कारण प्रायः बेहोश हो जाती है कि कोई बिल्ली उसके कपड़े से रगड़ती चली गई, या कोई चूहा कमरे में से भागा, तो हमें इन घटनाओं का किसी खतरे से सम्बन्ध कैसे दिखाई दे सकता है? पर स्पष्टतः इन लोगों के लिए खतरा मौजूद है। इस तरह की (मनुष्येतर) प्राणि-भीति में यह नहीं कहा जा सकता कि उनके प्रति मनुष्य की घृणा अधिक तीव्र हो जाने के कारण ऐसा होता है; असल में बिलकुल इसके विपरीत बात सिद्ध होती है, क्योंकि ऐसे कितने ही लोग हैं जो, उदाहरण के लिए, बिल्ली को देखकर उसे अवश्य अपनी ओर बुलाएंगे, और थपथपाएंगे। चूहे से बहुत-सारी स्त्रियां डरती हैं, पर फिर भी यह बहुत प्रचलित पुकारने का नाम है। बहुत-सी लड़कियां, जो अपने प्रेमियों द्वारा इस नाम से पुकारे जाने पर प्रसन्न हो जाती हैं, उस छोटे-से सचमुच के प्राणी को देखकर भय से चिल्ला उठती हैं। जो आदमी सड़कें और चौराहे पार करने में डरता है, उसके व्यवहार से हमें एक ही बात प्रतीत होती है, कि वह छोटे बालक की तरह व्यवहार कर रहा है। बालक को सीधे शब्दों में यह समझाया जाता है कि ऐसी स्थितियां खतरनाक होती हैं और इस आदमी की चिंताएं भी तब दूर हो जाती हैं जब कोई और आदमी उसे खुली जगह से पार करा देता है।

चिंता के जिन दो रूपों का वर्णन हमने किया है, अर्थात् 'मुक्त उड़ता हुआ' साशंक त्रास और वह त्रास जो भीतियों या फोबिया से बंधा हुआ है, वे एक दूसरे

से स्वतंत्र हैं। ऐसा नहीं है कि इनमें से एक कुछ आगे बढ़ने पर दूसरा बन जाता हो। ऐसा बहुत कम होता है कि वे जुड़े हुए हों, और वह भी मानो कभी संयोग-वश। साधारण भयपूर्णता के तीव्रतमरूप से भी भीति या फोबिया पैदा होना आवश्यक नहीं। जिन लोगों को सारे जीवन एगोरा फोबिया या खुला स्थान पार करने की भीति सताती रही है, वे निराशावादी साशंक त्रास से बिलकुल मुक्त हो सकते हैं। बहुत-सी भीतियां, उदाहरण के लिए, खुले स्थानों का या रेलयात्रा का भय, पहली बार बाद के जीवन में ही स्पष्ट रूप से पैदा होती हैं; और भीतियां, जैसे अंधेरे, बिजली या (मनुष्येतर) प्राणियों का भय, शुरू से मौजूद मालूम होती हैं। पहले प्रकार की भीतियां गम्भीर रोग की सूचक हैं, और दूसरे प्रकार की विलक्षणताओं की सूचक हैं। जिस मनुष्य में इन पीछेवाली भीतियों में से कोई विद्यमान है, उसके बारे में यह समझा जा सकता है कि उसमें इस जैसी और भीतियां भी होंगी। इतनी बात और कह दूं कि हम इन सब भीतियों को **चिंता-हिस्टीरिया** के अन्तर्गत रखते हैं, अर्थात् हम उन्हें उस प्रसिद्ध विकार से निकट सम्बन्ध रखने वाला मानते हैं, जो **कन्वर्शन-हिस्टीरिया** या कायापलट-हिस्टीरिया कहलाता है।

स्नायु-रोगियों की चिंता का जो तीसरा रूप है, वह हमें उलझन में डाल देता है; चिन्ता का और जिस खतरे से डर है, उसका जरा-सा भी सम्बन्ध नहीं दिखाई देता। यह चिंता, उदाहरण के लिए, हिस्टीरिया में, हिस्टीरिया के लक्षणों के साथ पैदा होती है; या उत्तेजन की अनेक अवस्थाओं में पैदा होती है, जिनमें हमें यह तो आशा करनी चाहिए कि कोई भाव प्रदर्शित होगा, पर वह चिंता-भाव हो होगा यह आशा बिलकुल नहीं करनी चाहिए; या परिस्थितियों से कोई सम्बन्ध न रखनेवाला और हमें तथा रोगी को भी न समझ में आनेवाला एक असम्बद्ध चिंता-दौरा होता है। दूर-दूर तक देखने पर भी कोई ऐसा खतरा या मौका नज़र नहीं आता, जिसे अतिरंजित रूप देकर भी इसका कारण बताया जा सके। इसलिए इन आप से आप पैदा हो जाने वाले दौरों या आक्रमणों से यह पता चलता है कि उस संकुल दशा को जिसे हम चिंता कहते हैं, दो खंडों में बांटा जा सकता है। सारे हमले या दौरे को एक तीव्र परिवर्धित लक्षण, कंपकंपी, कमजोरी, दिल की धड़कन, सांस बन्द होने के द्वारा निरूपित किया जा सकता है; और वह सामान्य भावना, जिसे हम चिंता कहते हैं, बिलकुल अनुपस्थित हो सकती है, या नज़र में आने के अयोग्य हो गई हो सकती है, और फिर भी यह अवस्था की 'चिंता पर्याय' कहलाती है, वही रोगात्मक और कारणात्मक प्रामाणिकता है जो स्वयं चिंता थी।

अब दो सवाल पैदा होते हैं: क्या स्नायविक चिंता को, जिसमें खतरे का बहुत ही थोड़ा स्थान होता है, या बिलकुल भी स्थान नहीं होता, आलम्बननिष्ठ चिंता से, जो सारतः खतरे की एक प्रतिक्रिया है, सम्बन्ध जोड़ना सम्भव है, और स्नायविक चिंता को किस रूप में समझा जाय? अभी तो हम इसकी आशा पर दृढ़

रहेंगे कि जहां चिंता है, वहां कोई ऐसी चीज़ भी अवश्य होनी चाहिए, जिससे व्यक्ति डरता है।

रोगियों को देखने से स्वाभाविक चिंता को समझने की दिशा में अनेक सूत्र मिलते हैं, और अब मैं उनके बारे में आपसे चर्चा करूंगा।

(क) यह समझना कठिन नहीं है कि साशंक त्रास या सामान्य भय का यौन जीवन के कुछ प्रक्रमों से, यह कहा जाए कि राग-उपयोजन, अर्थात् राग को उपयोग में लाने, की कुछ रीतियों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस प्रकार की सबसे सरल और सबसे शिक्षाप्रद अवस्था उन लोगों में पैदा होती है, जो 'कुंठित उत्तेजन' अनुभव होने की स्थिति पैदा करते हैं, अर्थात् ऐसी स्थिति पैदा करते हैं जिसमें प्रबल यौन उत्तेजन नाकाफी विसर्जन अनुभव करता है, और सन्तुष्टि देनेवाली परिणति तक नहीं ले जाया जाता। यह अवस्था, उदाहरण के लिए, पुरुषों में सगाई हो जाने के बाद होती है, और उन स्त्रियों में होती है जिनके पतियों में काफी पुंसत्व नहीं होता, या जो लोग सम्भोग बहुत तेजी से, या गर्भाधान को रोकने के विचार से अधूरा करते हैं। इन अवस्थाओं में रागात्मक उत्तेजन लुप्त हो जाता है, और उसके स्थान पर चिंता आ जाती है। यह चिन्ता साशंक त्रास के रूप में होती है। और चिंता के दौरों तथा चिंता-पर्यायों के रूप में भी होती है। **अधूरा सम्भोग**[1], जो गर्भाधान से बचने के लिए किया जाता है, जब नियमित आदत बन जाता है, तब वह पुरुषों में, और स्त्रियों में और भी विशेष रूप से चिंता-स्नायु-रोग का इतना नियमित कारण होता है कि ऐसे सब रोगियों में डाक्टरों को सबसे पहले इसी कारण के होने की खोज करनी चाहिए। असंख्य उदाहरणों से पता चलता है कि जब अधूरे सम्भोग की लत छोड़ दी जाती है, तब चिंता-स्नायु-रोग भी जाता रहता है। जहां तक मैं जानता हूं, अब वे डाक्टर भी इस बात से इन्कार नहीं करते, जो मनोविश्लेषण से विमुख रहते हैं, कि यौन संयम और चिंता-अवस्थाओं में कुछ सम्बन्ध मौजूद है। तो भी मैं आसानी से यह कल्पना कर सकता हूं कि वे इस सम्बन्ध को उलटा रखते हैं, और यह विचार पेश करते हैं कि इन लोगों में भयपूर्णता की पूर्वप्रवृत्ति होती है, और इसलिए वे यौन मामलों में सतर्कता बरतते हैं। यही बात और अधिक निश्चित रूप में उन स्त्रियों में होने वाली प्रतिक्रियाओं में दिखाई देती है, जिनमें मैथुन-कार्य सारतः निष्क्रिय होता है, और इसलिए इसका रास्ता पुरुष द्वारा किए गए आचरण से ही निश्चित होता है। किसी स्त्री में सम्भोग की इच्छा और सन्तुष्टि का सामर्थ्य जितना अधिक होगा, उतने ही अधिक निश्चित रूप में पुरुष की नपुंसकता या अधूरे सम्भोग के लक्षण प्रकट होंगे। पर जिन स्त्रियों में उतनी संवेदनशीलता नहीं होती या जिनमें काम-

---

१. Coitus interruptus.

क्षुधा इतनी प्रबल नहीं होती, उनमें इस तरह के दुष्कर्म से बहुत कम गम्भीर परिणाम होते हैं।

यौन विरति में भी, जिसकी डाक्टर लोग आजकल इतने उत्साह से सिफारिश करते हैं, चिंता-अवस्थाओं का सिर्फ तब यही अर्थ होता है जबकि राग, जिसके सन्तोषजनक रूप से निकलने का रास्ता रोका जाता है, बहुत प्रबल हो, और उदात्तीकरण में उसका बहुत अधिक मात्रा में उपयोग न हो रहा हो। रोग पैदा होगा या नहीं, इसका उत्तर सदा मात्रा पर निर्भर है। रोग के अलावा भी चरित्र-निर्माण के क्षेत्र में यह आसानी से देखा जा सकता है कि यौन संयम के साथ कुछ चिंतातुरता और सतर्कता रहती है, जबकि निर्भयता और साहसपूर्ण भावना के साथ यौन आवश्यकताओं को बिना रुकावट सहन करने की प्रवृत्ति रहती है। सभ्यता के बहुरूपी प्रभावों से यह सम्बन्ध कितना ही बदल जाए या उलझ जाए, पर यह बात निर्विवाद है कि औसत आदमी के लिए चिंता और यौन रुकावट का नजदीकी संबंध है।

मैंने आपको वे सब प्रेक्षण नहीं बताए हैं जो राग और चिंता के इस जननात्मक सम्बन्ध-सूत्र का संकेत करते हैं। उदाहरण के लिए, जीवन के कुछ कालों, जैसे तरुणावस्था और रजोरोध की चिंता-अवस्थाओं पर होने वाले प्रभाव में राग का उत्पादन बहुत बढ़ जाता है। उत्तेजना की बहुत-सी अवस्थाओं में भी यौन उत्तेजन और चिंता का सम्मिश्रण प्रत्यक्ष देखा जा सकता है, और इसी तरह यौन-उत्तेजन के स्थान पर अंत में चिंता का आ जाना भी स्पष्ट दिखाई देता है। इन सब बातों से दो धारणाएं बनती हैं। पहली तो यह कि इसमें प्रकृत उपयोग में आने से वंचित राग का संचय होता है, और दूसरी यह कि इसमें सिर्फ कायिक प्रक्रम होते हैं। यौन इच्छा से चिंता कैसे बन जाती है, यह बात इस समय स्पष्ट नहीं है। हम सिर्फ़ यह बात निश्चित रूप से पता लगा सकते हैं कि इच्छा का अभाव है, और उसके स्थान पर चिंता दिखाई पड़ती है।

(ख) दूसरा सूत्र मनोस्नायु-रोगों, खासकर हिस्टीरिया, के विश्लेषण से प्राप्त होता है। हम पहले कह चुके हैं कि इस रोग के लक्षणों के साथ चिंता भी प्रायः होती है और अन-बंधी चिंता जीर्ण रोग के रूप में मौजूद हो सकती है, या दौरों में प्रकट हो सकती है। रोगी यह नहीं कह सकते कि वे किस चीज़ से डरते हैं। वे इसका सम्बन्ध मरना, पागल होना, चोट खाना आदि बहुत अधिक सुविधाजनक भीतियों के असंदिग्ध परवर्ती विशदन से जोड़ लेते हैं। जब हम उस अवस्था का विश्लेषण करते हैं जिससे चिंता अथवा चिंता के साथ मौजूद लक्षण पैदा हुए, तब हम साधारणतया यह जान सकते हैं कि कौन-सा प्रकृत मानसिक प्रक्रम-मार्ग में रोक दिया गया है, जिसके स्थान पर चिंता प्रकट हुई है। दूसरे शब्दों में, इसे इस तरह कहा जा सकता है : अचेतन प्रक्रम का अर्थ हम इस तरह लगाते हैं जैसे इसका दमन नहीं हुआ, और यह बिना रुकावट चेतना में चला गया है। इस प्रक्रम के साथ

कोई खास भाव रहा होगा, और अब हम आश्चर्य से देखते हैं कि प्रत्येक रोगी में इस भाव के स्थान पर,जो सामान्यतः मानसिक प्रक्रम के साथ चेतना में पहुंच जाता है, चिंता आ जाती है, चाहे यह पहले किसी भी प्रकार का रहा हो। इस प्रकार, जब हमारे सामने हिस्टीरिकल चिंता-दशा हो, तब उसका अचेतन सहसम्बन्धी[1] उसी तरह का कोई उत्तेजन हो सकता है, जैसे साधारण भय, लज्जा, परेशानी; या इसी तरह सम्भव है कि यह धनात्मक रागगत उत्तेजन हो; या सम्भव है कि यह कोई विरोधी और प्रचण्ड उत्तेजन हो, जैसे गुस्सा। इस प्रकार चिंता वह आम चालू सिक्का है जो सब भावों के बदले मिल सकता है या जिसके बदले सब भाव मिल सकते हैं, जब कि तत्सम्बन्धी मनोबिम्बात्मक वस्तु का दमन किया गया हो।

(ग) तीसरा प्रेक्षण उन रोगियों से मिला है जिनके लक्षण मनोग्रस्तता का रूप धारण कर लेते हैं, और जिनमें चिंता से प्रभावित न होने की विशेषता दिखाई देती है। जब हम उन्हें उनके मनोग्रस्त कार्य करने से रोकते हैं, या जब वे स्वयं अपने किसी मनोग्रस्त कार्य को छोड़ने की कोशिश करते हैं, तब एक भीषण त्रास उन्हें इस अनिवार्यता के आगे सिर झुकाने, और उस कार्य को करने के लिए मजबूर कर देता है। हम देखते हैं कि चिन्ता मनोग्रस्त कार्य के नीचे छिपी हुई थी और यह त्रास की भावना से बचने के लिए ही की जाती है। इसलिए मनोग्रस्तता-स्नायु-रोग में चिंता के स्थान पर लक्षण-निर्माण हो जाता है; यदि यह न होता तो चिन्ता पैदा हो जाती; और जब हम हिस्टीरिया पर ध्यान देते हैं, तब हमें ऐसा ही सम्बन्ध मौजूद दिखाई देता है—दमन के परिणामस्वरूप या तो शुद्ध परिवर्धित चिंता होती है या लक्षण-निर्माण के साथ चिन्ता होती है, और चिंता के बिना लक्षण-निर्माण होता है। इसलिए सूक्ष्म अर्थ में, ऐसा कहना सही मालूम होता है कि लक्षण सब के सब चिंता से बचने के लिए ही पैदा होते हैं, अन्यथा उनका परिवर्धन अवश्य होता। इस प्रकार, स्नायु-रोगों की समस्याओं में चिन्ता हमारी दिलचस्पी में सब-से आगे आ जाती है।

हमने चिंता-स्नायु-रोगों को देखकर यह नतीजा निकाला था कि राग का अपने प्रकृत उपयोजन से हटाव, जिससे चिन्ता मुक्त हो जाती है, कायिक प्रक्रमों के आधार पर हुआ है। हिस्टीरिकल और मनोग्रस्तता-स्नायु-रोगों के विश्लेषण से यह नतीजा भी निकलता है कि मन में स्थित संस्थाओं की ओर से विरोध के बाद ऐसा ही हटाव और ऐसा ही परिणाम हो सकता है। इसलिए हमें स्नायविक चिन्ता के पैदा होने के बारे में इतना ही पता है। यह ज़रा अनिश्चित बात मालूम होती है, पर इस समय कोई और रास्ता भी नहीं है, जो हमें और आगे ले जा सके। हमने जो दूसरा कार्य उठाया था, अर्थात् स्नायविक चिंता (अप्रकृत रूप से

---

१. Correlative.

प्रयोग में आए राग) और 'आलंबननिष्ठ चिंता' (जो खतरे की प्रतिक्रिया की सम्वादी है) का सम्बंध-सूत्र स्थापित करना, उसे पूरा करना और भी कठिन मालूम होता है। आप सोचेंगे कि दोनों चीजों में कुछ सादृश्य नहीं हो सकता, पर फिर भी ऐसे कोई साधन नहीं हैं, जिनसे स्नायविक चिंता के संवेदनों और यथार्थ चिन्ता के संवेदनों में विवेक किया जा सकता है।

अभीष्ट सम्बन्ध-सूत्र अहम् तथा राग के इतनी बार पेश किए गए वैषम्य में ढूंढ़ा जा सकता है। जैसा कि हम जानते हैं, चिंता का परिवर्धन खतरे पर अहम् की प्रतिक्रिया और भागने की तयारी का संकेत है। इसके बाद यह कल्पना बहुत दूरारूढ़ नहीं रहती कि स्नायविक चिंता में भी, अहम् अपने राग की पुकार या आवश्यकता से दूर भाग जाने की कोशिश कर रहा है, और इस भीतरी ख़तरे को बाहरी ख़तरा समझ रहा है। तब हमारी यह आशा पूरी हो जाएगी कि जहां चिंता मौजूद है, वहां कोई ऐसी चीज़ भी अवश्य होनी चाहिए जिससे आदमी डरता है। पर यह सादृश्य और आगे भी चलता है। जैसे बाहरी खतरे से भागने की कोशिश पैदा करने वाला तनाव अपने क्षेत्र में जमे रहने, और बचाव या प्रतिरक्षा की उपयुक्त कार्यवाही करने, इन दो भागों में खंडित हो जाता है। ठीक वैसे ही स्नायविक चिंता के परिवर्धन से एक लक्षण-निर्माण पैदा हो जाता है, जिससे चिंता 'परिसीमित' हो सकती है।

अब, इसे समझने में हमें जो कठिनाई है, वह कहीं और है—वह चिंता, जो अहम् के अपने राग से बचकर भागने को सूचित करती है, फिर भी उसी राग में से पैदा हुई मानी जाती है। यह बात अस्पष्ट है, और हमें यह न भूलना चाहिए कि किसी व्यक्ति का राग मूलतः उस व्यक्ति का हिस्सा है और उस व्यक्ति से इस राग का इस तरह वैषम्य नहीं दिखाया जा सकता जैसे कि राग कोई बाहरी चीज़ हो। चिंता-परिवर्धन की स्थानवृत्तीय गतिकी का सवाल हमारे लिए अब भी अस्पष्ट है, अर्थात् किस-किस प्रकार की मानसिक ऊर्जाएं खर्च हो रही हैं, और वे किस-किस स्थान से सम्बन्धित हैं। मैं इस प्रश्न का भी उत्तर देने का वचन आपको नहीं देता, पर हम दो और सूत्रों को पकड़कर अवश्य चलेंगे, और उनमें भी अपनी कल्पना को सहारा देने के लिए प्रत्यक्ष प्रेक्षण और विश्लेषणीय अनुसंधान की फिर सहायता लेंगे। अब हम बालकों में होने वाली चिंता के उद्भवों पर और भीतियों या फोबिया से सम्बन्धित स्नायविक चिंता के उद्गम पर विचार करेंगे।

भयपूर्णता बालकों में आम तौर से पाई जाती है, और यह फैसला करना काफी कठिन है कि यह आलम्बननिष्ठ चिंता है या स्नायविक चिंता। सच पूछिए तो स्वयं बच्चों के रुख़ से इस विभेद की सार्थकता पर ही आपत्ति पैदा हो जाती है, क्योंकि एक ओर तो हमें यह देखकर आश्चर्य नहीं होता कि बच्चे नए आदमियों, नई वस्तुओं और स्थितियों से डरते हैं—और अपने मन में हम इस प्रतिक्रिया

का बड़ी आसानी से यह कारण समझ लते हैं कि वे कमज़ोर और अज्ञानी हैं। इस प्रकार, हम बालकों में आलम्बननिष्ठ चिंता की प्रबल प्रवृत्ति बताते हैं, और यदि यह भयपूर्णता जन्मजात होती तो हम इसे व्यावहारिक ही मानते। बालक प्रागैतिहासिक मनुष्य के और आदिम मानव के व्यवहार को ही आज दोहरा रहा है, जो अपने अज्ञान और असमर्थता के कारण हरएक नई और अपरिचित चीज़ से और बहुत-सी परिचित चीज़ों से त्रास अनुभव करता है; पर इनमें से कोई भी चीज़ अब हमारे अन्दर भय पैदा नहीं करती। यदि बालकों की भीतियां अंशतः वैसी हों, जैसी मानव-परिवर्धन के आदिम कालों में उपस्थित समझी जा सकती हैं, तो यह बात भी हमारी आशाओं से मेल खाएगी।

दूसरी ओर, इस बात को नज़रन्दाज़ नहीं किया जा सकता कि सब बालक एक समान भयपूर्ण या डरने वाले नहीं होते, और जो बालक सब तरह की वस्तुओं और स्थितियों से अधिक डरते हैं, वे ही बाद में स्नायु-रोगी बनते हैं। इसलिए स्नायविक स्वभाव का एक चिन्ह यह है कि इसमें आलम्बननिष्ठ चिंता की बहुत प्रवृत्ति होती है। स्नायविकता के बजाय भयपूर्णता प्राथमिक स्थिति मालूम होती है, और हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि बालक और बाद में वयस्क अपने राग की शक्ति से त्रास सिर्फ़ इस कारण अनुभव करता है क्योंकि वह हर चीज़ से डरता है। तब चिंता का स्वयं राग से पदा होना भी अस्वीकार कर दिया जाएगा, और यथार्थ चिंता की अवस्थाओं के अनुसंधान से हम तर्क द्वारा इस विचार पर पहुंचेंगे कि स्नायु-रोग का अन्तिम कारण व्यक्तिगत कमज़ोरी और लाचारी की चेतना है—जिसे ए० ऐडलर आत्महीनता[1] कहता है, जबकि वह बाद के जीवन में भी कायम रह सकती हो।

यह बात इतनी सरल और तर्कयुक्त दिखाई देती है कि इसकी ओर हमारा ध्यान बरबस खिंच जाता है। यह सच है कि इसके लिए हमें वह दृष्टिकोण बदलना होगा जिससे हम स्नायविकता की समस्या को देखते हैं। यह बात कि आत्महीनता की ये भावनाएं बाद के जीवन में कायम रहती हैं—और चिंता तथा लक्षण-निर्माण की प्रवृत्ति भी रहती है—इतनी अच्छी तरह सिद्ध मालूम होती है कि जब किसी अपवादरूप रोगी में, जिसे हम 'स्वास्थ्य' कहते हैं, वह परिणामरूप में दिखाई देता है, तब और अधिक स्पष्टीकरण की आवश्यकता पैदा होती है। बालकों की भयपूर्णता को नजदीक से देखने पर क्या पता चलता है? छोटा बालक सबसे पहले अपरिचित लोगों से डरता है। स्थितियों का महत्व उनसे सम्बन्धित व्यक्तियों के कारण होता है, और आलम्बन या वस्तुएं और भी बहुत बाद में आया करती हैं, पर बालक इन अजनबी लोगों से इस कारण नहीं डरता कि वह उनमें बुरे आशय

---

१. Inferiority.

देखता है, उनकी शक्ति से अपनी कमजोरी की तुलना करता है, और इस प्रकार उनका अस्तित्व सुरक्षा और अपनी दुःख से विमुक्ति के लिए खतरा समझता है। बालक के बारे में यह समझना कि वह संसार में अपने से बहुत प्रबल आक्रामक शक्ति के प्रति सन्देहशील और उससे डरा हुआ रहता है, बहुत ही घटिया सैद्धान्तिक विचार है। इसके विपरीत, बालक अजनबी शकल से इस कारण डरकर चिल्ला उठता है, क्योंकि उसे एक प्यारी और परिचित शकल, मुख्यतः अपनी माता, का अभ्यास पड़ा हुआ है, और इसलिए वह उसकी ही आशा करता है। उसकी निराशा और लालसा ही त्रास में परिवर्तित हो जाती है—उसका राग, जो उस समय खर्च नहीं हो सका और जो उस समय निलम्बित या निष्क्रिय भी नहीं रह सकता, त्रास में बदलकर विसर्जित हो जाता है। यह भी संयोगवश नहीं हो सकता कि इस स्थिति में, जो बालक की चिंता का मूलरूप है, जन्म-काल की प्राथमिक चिंता-अवस्था की दशा—माता से अलगाव—फिर सामने आती है।

बालकों में स्थितियों की पहली भीतियां अंधेरे और अकेलेपन से सम्बन्धित होती हैं। अंधेरे की भीति प्रायः सारे जीवन बनी रहती है। दोनों में सामान्य वस्तु—अनुपस्थित परिचारक की, अर्थात् माता की अभिलाषा है। एक बार अंधेरे से डरे हुए बालक को मैंने यह कहते सुना : "चाची, मुझसे बात करो, मैं डरा हुआ हूं।" "इससे क्या लाभ? तुम मुझे देख तो नहीं सकते।" जिस पर बालक ने जवाब दिया : "कोई बातचीत करता रहे तो डर कम हो जाता है।" इस प्रकार अंधेरे में अनुभूत लालसा अंधेरे के भय में रूपान्तरित हो जाती है। बजाय इस नतीजे के कि स्नायविक चिंता आलम्बननिष्ठ चिंता का सिर्फ़ परवर्ती और एक विशेष रूप है, हम यह देखते हैं कि छोटे बालक में कुछ ऐसी चीज़ है जो वास्तविक चिंता की तरह व्यवहार करती है, और इसमें स्नायविक चिंता की एक सारभूत विशेषता, अर्थात् अविसर्जित राग से उद्गम, मौजूद है। सच्ची 'आलम्बननिष्ठ चिंता' का बहुत ही थोड़ा अंश बालक दुनिया में प्रकट करता मालूम होता है। उन सब स्थितियों में, जो बाद में भीतियों की अवस्था बन जाती हैं, जैसे ऊंचाइयां, पानी के ऊपर बने हुए पुल, रेलगाड़ियां और नौकाएं, बालक कोई भय प्रकट नहीं करता। वह जितना कम जानता है, उतना ही कम डरता है। हम यह ही चाहते हैं कि उसमें ये जीवन-संरक्षक निसर्ग-वृत्तियां जन्म से ही और अधिक होतीं; तब उसकी देख-भाल करने और उसे एक के बाद दूसरे खतरे के सामने पहुंचने से रोकने का काम बहुत हलका हो जाता। असल में आप देखते हैं कि बालक शुरू में अपनी शक्तियों का बहुत अधिक अंदाज़ा लगाता है और बिना भय के व्यवहार करता है, क्योंकि वह ख़तरों को नहीं पहचानता। वह पानी के किनारे दौड़ेगा, खिड़की पर चढ़ जाएगा, धारदार वस्तुओं से और आग से खेलेगा, अर्थात् ऐसा कोई भी काम करने लगेगा, जिससे उसे चोट लगती है, और अपने देख-भाल करने वालों को

भयभीत कर देगा। हम उसे हर बात का अनुभव द्वारा सीखने का मौका नहीं देते। इसलिए उसमें यथार्थ चिंता अंत में बिलकुल पूरे रूप में प्रशिक्षण के कारण ही पैदा होती है।

अब यदि बहुत-से बालक भयपूर्णता के इस प्रशिक्षण को बहुत आसानी से सीख लेते हैं, और फिर उन खतरों को पहचान लेते हैं, जिनके बारे में उन्हें चेतावनी नहीं दी गई, तो इसकी व्याख्या इस आधार पर की जा सकती है कि इन बालकों की शरीर-रचना में रागात्मक आवश्यकता की, औरों की अपेक्षा अधिक मात्रा जन्म से ही होती है; अथवा उन्हें शुरू में ही राग की परितुष्टियों द्वारा बर्बाद कर दिया गया है। जो लोग बाद में स्नायविक हो जाते हैं, वे भी इसी तरह के बालक होते हैं। मतलब यह कि इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। हम जानते हैं कि स्नायु-रोग के परिवर्धन के लिए सबसे अनुकूल परिस्थिति दबे हुए राग की प्रचुर मात्रा को अधिक देर तक सहन करने की असमर्थता ही है। अब आप देखते हैं कि यहां शरीर-रचना सम्बन्धी कारक, जिसकी उपस्थिति से हमने कभी इन्कार नहीं किया, अपने पूरे रूप में दिखाई देता है; हम इसका विरोध सिर्फ तभी करते हैं जब दूसरे लोग इसपर इतना अधिक बल देते हैं कि और सब कारकों का निषेध हो जाए, और जब वे वहां भी शरीर-रचना सम्बन्धी कारक ले आते हैं, जहां वह प्रेक्षण और विश्लेषण दोनों के सम्मत विचार के अनुसार नहीं होता, या बहुत गौण अंश में होता है।

बालकों में होनेवाली भयपूर्णता के प्रेक्षण से निकाले गए निष्कर्षों का सारांश यह है: शिशुओं के त्रास का आलंबननिष्ठ चिंता (वास्तविक खतरे) के त्रास से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसके विपरीत, इसका वयस्कों की स्नायविक चिंता से नज़दीकी सम्बन्ध है। यह स्नायविक चिंता की तरह अविसर्जित राग से पैदा होता है, और जो प्रेम आलम्बन इसे नहीं मिल पाता, उसके स्थान पर यह किसी दूसरे बाहरी आलम्बन या किसी स्थिति को ले आता है।

अब आपको यह सुनकर खुशी होगी कि भीतियों के विश्लेषण से हमने जो कुछ सीखा है, उससे कुछ और अधिक सीखा जा सकता है। उनमें भी वही बात होती है जो बालकों की चिंता में—जो राग विसर्जित नहीं किया जा सकता वह लगातार देखने में 'आलंबननिष्ठ' लगनेवाली चिंता में बदलता रहता है, और इस प्रकार तुच्छ-से बाहरी खतरे को उसका प्रतिनिधि मान लिया जाता है, राग जिसकी कामना करता है। चिंता के इन दोनों रूपों में संवादिता आश्चर्यजनक नहीं है; क्योंकि शिशुओं की भीतियां सिर्फ उन भीतियों के पूर्वरूप ही नहीं हैं जो बाद में चिंता-हिस्टीरिया में दिखाई देती हैं, बल्कि वे उनकी सीधी आरम्भिक अवस्था और पूर्व तैयारी होती हैं। हिस्टीरिया की प्रत्येक भीति का आरम्भ बालकपन के किसी त्रास में ढूंढ़ा जा सकता है, जिसका यह विस्तार है, चाहे इसकी वस्तु भिन्न

है और इसे भिन्न नाम से ही पुकारना होगा। दोनों अवस्थाओं का अन्तर उनके तंत्र का अन्तर है। राग वयस्क में चिंता में परिवर्तित हो सके, इसके लिए अब इतना ही काफी नहीं कि राग का कुछ समय के लिए उपयोग न हो सके। वयस्क बहुत समय तक ऐसे राग को निलम्बित या निष्क्रिय बनाए रखना या विभिन्न तरीकों से इसे कायम रखना सीख चुका है। पर जब राग किसी ऐसे मानसिक उत्तेजन से जुड़ जाता है, जिसका दमन किया गया है, तब वैसी ही अवस्थाएं पैदा हो जाती हैं जैसी बालक में, जिसमें अभी चेतन और अचेतन का कोई विभेद नहीं होता; और शिशु-भीति की ओर प्रतिगमन मानो एक पुल बन जाता है जिससे राग को आसानी से चिंता में परिवर्तित किया जा सकता है। आपको याद होगा कि हमने दमन पर कुछ विस्तार से विचार किया है। पर उस विचार में हम सिर्फ यहीं तक गए कि दमन किए जाने वाले **मनोबिम्ब** का क्या होता है, और यह स्वाभाविक भी था, क्योंकि इसे पहचानना और पेश करना आसान था। पर अब तक हमने इस प्रश्न पर ध्यान नहीं दिया कि इस मनोबिम्ब से सम्बन्धित **मनोविकार या भाव** का क्या होता है, और अब पहली बार हमें यह मालूम हुआ है कि भाव तुरन्त चिंता में परिवर्तित हो जाता है--इससे कुछ मतलब नहीं कि यदि यह भाव अपने प्रकृत मार्ग पर चला होता तो किस विशेषता वाला होता। इसके अतिरिक्त, भाव का यह रूपान्तरण दमन के प्रक्रम का अधिक महत्वपूर्ण परिणाम है। यह बात आपके सामने प्रतिपादित करना आसान नहीं, क्योंकि हम अचेतन भावों का अस्तित्व उसी अर्थ में नहीं मानते जिस अर्थ में हमने अचेतन मनोबिम्बों का माना था। मनोबिम्ब कुछ दूर तक वैसे का वैसा ही रहता है, चाहे वह चेतन हो या अचेतन (अर्थात् ज्ञात हो या अज्ञात)। हम ऐसी कोई चीज निर्दिष्ट कर सकते हैं जो किसी अचेतन मनोबिम्ब की संवादी हो। पर भाव एक ऐसा प्रक्रम है, जिसमें ऊर्जा का विसर्जन आवश्यक है और इसे मनोबिम्ब से बिलकुल भिन्न समझना चाहिए। मानसिक प्रक्रमों के सम्बन्ध में अपनी परिकल्पनाओं की गहरी परीक्षा और स्पष्टीकरण बिना किए हम यह नहीं कह सकते कि अचेतन में इसका संवादी कौन है--और यह कार्य यहां नहीं किया जा सकता। पर फिर भी हम अपनी यह धारणा बनाए रखेंगे कि चिंता के परिवर्धन का अचेतन संस्थान से नजदीकी सम्बन्ध है।

मैंने कहा था कि दमन किए जाने वाले राग का सबसे पहला भविष्य यह होता है कि वह चिंता में बदल जाता है, या और अच्छे ढंग से कहा जाए तो वह चिंता के रूप में विसर्जित हो जाता है, पर यह इसका अन्तिम परिणाम नहीं। स्नायु-रोगों में ऐसे प्रक्रम होते हैं जिनका उद्देश्य चिंता के परिवर्धन को रोकना होता है, और जो अनेक उपायों से ऐसा करने में सफल होते हैं; उदाहरण के लिए, भीतियों में स्नायविक प्रक्रम की दो क्रमिक अवस्थाएं साफ दिखाई देती हैं। पहली अवस्था

दमन और राग का चिंता में परिवर्तन करती है, और इस तरह राग किसी बाहरी खतरे से जुड़ जाता है। दूसरी अवस्था में वे सब सतर्कताएं और रक्षा-साधन खड़े किए जाते हैं जिनसे इस बाहर के खतरे से सब तरह के सम्पर्क से बचा जा सके। दमन अहम् का राग से दूर भागने का प्रयत्न है, जिसे वह खतरनाक अनुभव करता है। भीति की तुलना एक किलेबन्दी से की जा सकती है जो त्रस्त राग के लिए अब मौजूद बाहरी खतरे के मुकाबले में की गई थी। भीतियों के रूप में इस प्रति-रक्षा प्रणाली की कमजोरी निस्सन्देह यह है कि यह किला, जिसकी बाहर से इतनी अच्छी तरह रक्षा की जा रही है, अन्दर के खतरे के लिए खुला रहता है। राग से खतरे का बाहर प्रक्षेपण या आरोप कभी भी बहुत सफल नहीं हो सकता। इस-लिए अन्य स्नायु-रोगों में चिंता के परिवर्धन की सम्भावना का मुकाबला करने के लिए दूसरी प्रतिरक्षा प्रणालियां अपनाई जाती हैं। यह स्नायु-रोगों के मनोविज्ञान का बड़ा मनोरंजक हिस्सा है। बदकिस्मती से हम इसमें बहकर विषय से बहुत दूर चले जाएंगे, साथ ही इसके लिए इस विषय के विशेष ज्ञान का मजबूत आधार भी चाहिए। मैं इतना ही और कह सकता हूं। मैंने पहले 'प्रति आवेशों' की चर्चा की है, जो अहम् द्वारा दमन पर डाले जाते हैं, और जिनका दमन के कायम रहने के लिए बना रहना जरूरी है। इस 'प्रति आवेश' का ही यह काम है कि वह दमन के बाद चिंता के परिवर्धन के विरोध में अनेक प्रकार से बचाव का कार्य करे।

अब फिर भीतियों पर आइए। मुझे आशा है कि अब आप यह समझ सकते हैं कि सिर्फ़ उनकी वस्तु की व्याख्या करने की कोशिश करना और उनके पैदा होने के स्थान के अलावा उनमें कोई दिलचस्पी न लेना कितना अधूरा काम है, अर्थात् सिर्फ़ यह विचार करना कि किस वस्तु या स्थिति की भीति है, यह बात कितनी अपर्याप्त है। भीति की वस्तु का वैसा ही महत्व है, जैसा व्यक्त स्वप्न की वस्तु का—यह बाहरी दिखावटी रूप है। सारे उचित रूप-भेद करके यह मानना पड़ता है कि विभिन्न भीतियों की वस्तुओं में बहुत-सी ऐसी वस्तुएं पाई जाती हैं जो, जैसा कि स्टेनलीहाल ने बताया है, जाति-चारितीय आनुवंशिकता के कारण त्रास की आलं-बन बनने के लिए विशेषरूप से उपयुक्त हैं। यह बात इस तथ्य से भी मेल खाती है कि इन त्रासकारक वस्तुओं में से बहुत-सी वस्तुओं का खतरे के साथ, प्रतीकात्मक सम्बन्ध के अलावा, और कोई भी सम्बन्ध नहीं होता।

इस प्रकार, हमें यह निश्चय हो जाता है कि स्नायु-रोगों के मनोविज्ञान में चिंता की समस्या बिलकुल केन्द्रीय अर्थात् सबसे महत्वपूर्ण, स्थिति में है। हमारी यह एक प्रबल धारणा बन गई है कि चिंता का परिवर्धन राग के भविष्य और अचे-तन संस्थान से किस तरह जुड़ा हुआ है। अब सिर्फ़ एक असम्बन्धित सूत्र, सारे ढांचों में एक ख़ाली स्थान, रह गया है, और वह यह तथ्य है जिसपर आपत्ति करना मुश्किल ही है कि 'आलम्बननिष्ठ चिंता' को अहम् की आत्मसंरक्षण विषयक निसर्ग-वृत्ति की अभिव्यक्ति माना जाए।

राग का सिद्धान्त : स्वरति

हमने बार-बार, और कुछ देर पहले भी, यौन निसर्ग-वृत्ति और अहम् निसर्ग-वृत्ति के विभेद की चर्चा की है। सबसे पहले दमन से यह प्रकट हुआ कि वे किस तरह एक दूसरे का विरोध करती हैं, फिर किस तरह यौनवृत्तियां आभासितः पराजित हो जाती हैं और उन्हें चक्करदार प्रतिगामी मार्गों से अपनी सन्तुष्टि करनी पड़ती है, और वहां अभेद्य परिस्थितियों में रहने से उन्हें अपनी पराजय की क्षति-पूर्ति या हर्जाना मिल जाता है। इसके बाद यह मालूम हुआ कि उन दोनों का शुरू से ही आवश्यकतारूपी मालकिन से भिन्न-भिन्न सम्बन्ध होता है, और इसलिए उनके परिवर्धन भिन्न-भिन्न होते हैं, और यथार्थता-सिद्धान्त के प्रति उनके भिन्न रुख हो जाते हैं। अन्त में हम यह मानते हैं कि हम यह देख सकते है कि यौन वृत्तियों का चिंता की भाव-दिशा से अहम्-निसर्ग-वृत्तियों की अपेक्षा अधिक नज़दीकी संबंध होता है—और यह निष्कर्ष सिर्फ़ एक महत्वपूर्ण बात में अब भी अधूरा मालूम होता है। इसके समर्थन में हम यह एक और उल्लेखनीय तथ्य पेश कर सकते है कि भूख या प्यास की जो दो सबसे अधिक प्राथमिक आत्मसंरक्षणात्मक निसर्ग-वृत्तियां हैं, उनकी सन्तुष्टि के अभाव का यह परिणाम कभी नहीं होता कि वे चिंता में परिवर्तित हो जाएं, जबकि असन्तुष्ट राग का चिंता में परिवर्तन, जैसा कि हमने बताया है, एक बहुत सुविदित और बहुत बार वैज्ञानिक रूप से प्रेक्षित क्रिया है।

यौन और अहम्-निसर्ग-वृत्तियों में विभेद करने के कारणों पर आपत्ति नहीं उठाई जा सकती। सच पूछिए तो मनुष्य में यौन-प्रवृत्ति का एक विशेष व्यापार के रूप में अस्तित्व होने से यह विभेद, स्वयं ही मान लिया जाता है। प्रश्न सिर्फ यह रह जाता है कि इस विभेद को कितना महत्व दिया जाए। हम इसे कितना मूलगत और निर्णायक मानना चाहते हैं, इसका उत्तर इस बात पर निर्भर है कि यौन निसर्ग-वृत्तियां अपने शारीरिक और मानसिक व्यक्त रूपों में दूसरी निसर्ग-वृत्तियों से, जो हमने उनके मुकाबले में रखी हैं, भिन्न रूप में जितनी दूरी तक चलती हैं, उसके बारे में हम क्या जानकारी प्राप्त कर सकते हैं; और इन अंतरों से पैदा होने

वाले परिणाम कितने महत्वपूर्ण सिद्ध होते हैं। निसर्ग-वृत्तियों के दो समूहों की आधारभूत प्रकृति में निश्चित अन्तर मानने में हमारा कोई प्रयोजन नहीं है, और वैसे देखा जाए तो इनमें कोई अंतर समझना कठिन भी होगा। वे दोनों हमारे सामने मनुष्य की ऊर्जा के स्रोतों के वर्णन के रूप में आते हैं, और यह विवेचना कि वे मूलतः एक हैं या सारतः भिन्न हैं, और यदि वे एक हैं, तो वे एक दूसरे से अलग कब होते हैं, सिर्फ इन अवधारणों के आधार पर ही नहीं की जा सकती, उन्हें तो उनके आधार रूप में मौजूद जैविकीय तथ्यों के ऊपर खड़ा करना होगा। इस समय हमें उनके बारे में बहुत ही कम जानकारी है, और यदि हम अधिक भी जानते होते तो मनोविश्लेषण के कार्य में उनकी कोई प्रासंगिकता नहीं थी।

स्पष्ट है कि हमें इस बात से भी कोई खास लाभ नहीं होगा कि हम जुंग की तरह सब निसर्ग-वृत्तियों के आद्य एकत्व पर बल दें, और उनसे प्रवाहित होने वाली सब ऊर्जाओं को 'राग' या लिबिडो कहें। तब हमें लिंगी या यौन और आलिंगी या अ-यौन राग मानना होगा, क्योंकि ऐसे किसी तरीके से यौन या लैंगिक कार्य को मानसिक जीवन के क्षेत्र से हटाया नहीं जा सकता। पर राग शब्द यौन जीवन के नैसर्गिक बलों के लिए सुरक्षित है, और यह उचित भी है, जैसे कि हमने अब तक इसका प्रयोग किया है।

इसलिए मेरी राय में यह प्रश्न, कि यौन और आत्मसंरक्षण की निसर्ग-वृत्तियों में सर्वथा औचित्यपूर्ण अंतर कितनी दूर तक किया जा सकता है, मनोविश्लेषण के लिए अधिक महत्व नहीं रखता, और न मनोविश्लेपण इसका उत्तर देने की क्षमता रखता है। जैविकीय दृष्टिकोण से ऐसे अनेक संकेत अवश्य मिलते हैं कि यह अंतर महत्वपूर्ण है। कारण यह कि जीवित जीव-पिंड का यौन कार्य ही एक ऐसा कार्य है, जो व्यष्टि से बाहर प्रवृत्त होता है, और अपनी स्पीशीज से सम्बन्ध जोड़ता है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इस कार्य के प्रयोग से व्यष्टि को सदा लाभ ही नहीं होता, जैसा कि उसकी अन्य चेष्टाओं से होता है, बल्कि इस कार्य में अत्यधिक सुख मिलने के कारण इसमें उसे ऐसे ख़तरे भी पैदा हो जाते हैं, जो उसके जीवन को संकट में डाल देते हैं, और प्रायः उसपर बहुत बोझ डालते हैं। व्यष्टि के जीवन का कुछ अंश बाद की पीढ़ी के लिए एक स्वभाव या प्रवृत्तिरूप में संरक्षित करने के वास्ते सम्भवतः बिलकुल विशिष्ट विपचक प्रक्रमों की आवश्यकता होती है, जो अन्य सब कार्यों से बिलकुल भिन्न होते हैं। और अन्त में, व्यष्टि जीव-पिंड, जो अपने आप को सबसे महत्वपूर्ण समझता है, और अपनी यौन प्रवृत्ति को अन्य प्रवृत्तियों की तरह अपनी निजी सन्तुष्टि का साधन समझता है, जैविकीय दृष्टिकोण से, पीढ़ियों या सन्ततियों की एक श्रेणी में एक अवान्तर कथा या उपाख्यान की तरह ही है। यह जर्म-प्लाज्म का, जो वास्तव में अमरत्व से सम्पन्न है, एक अल्पजीवी उपांग मात्र है, जिसकी तुलना

ऐसी सम्पत्ति के अस्थायी धारणकर्ता से की जा सकती है जिसके उत्तराधिकारियों का क्रम निश्चित है, और जो उसकी मृत्यु के बाद भी कायम रहेगी।

पर स्नायु-रोगों का मनोविश्लेषण द्वारा स्पष्टीकरण करते हुए हमें इतनी दूर की बातें सोचने की आवश्यकता नहीं। यौन और अहम् प्रवृत्तियों के अंतर को पकड़कर हमने स्थानान्तरण स्नायु-रोगों को समझने की कुंजी हासिल कर ली है। हम उनका उद्गम एक मूल-स्थिति से ढूंढ़ने में सफल हुए थे, जिसमें यौन प्रवृत्तियों का आत्मसंरक्षण की प्रवृत्तियों से संघर्ष हुआ था, या यदि जैविकी के शब्दों में कहें, जो उतना यथार्थ कथन नहीं होगा, तो—उसमें अहम् अपनी स्वतंत्र व्यष्टि जीव-पिंड की हैसियत में अपनी दूसरी हैसियत, अर्थात् एक सन्तति-श्रेणी के सदस्य की हैसियत, में अपने ही विरोध में आ खड़ा हुआ था। ऐसा विसंघटन[1] शायद सिर्फ मनुष्य में है, जिसका अर्थ यह हुआ कि कुल मिलाकर उसकी अन्य प्राणियों से श्रेष्ठता उसकी स्नायु-रोगी होने की क्षमता ही रह जाती है। उसके राग का अत्यधिक परिवर्धन और उसके मानसिक जीवन का बहुत अधिक विस्तार, जो शायद इसीके कारण सीधा सम्भव हुआ है, होने के कारण ही इस तरह का संघर्ष पैदा हुआ मालूम होता है। जो हो, पर इतनी बात स्पष्ट है कि इन्हीं अवस्थाओं में मनुष्य ने उन बातों के आगे बहुत अधिक तरक्की की है जिनमें वह पशुओं के समान है, और इस प्रकार उसका स्नायु-रोग का सामर्थ्य उसकी सांस्कृतिक उन्नति के सामर्थ्य का ही अभिरूप[2] है। फिर भी ये सब ऐसी कल्पनाएं हैं जो हमें विचारणीय विषय से दूर हटाती हैं।

अब तक हमने इस कल्पना के आधार पर कार्य किया है कि यौन तथा अहम् निसर्ग-वृत्तियों के व्यक्त रूपों में अंतर किया जा सकता है। स्थानान्तरण स्नायु-रोगों में यह बिना कठिनाई के किया जा सकता है। अहम् जो ऊर्जा अपनी यौन इच्छाओं के आलम्बनों की ओर भेजता है, उसे हमने राग या लिबिडो कहा था, और अन्य सब आच्छादनों को, जो उसकी आत्मरक्षण की प्रवृत्तियों से पैदा होते हैं, इसका 'स्वहित' कहा था। और राग के आच्छादनों, उनके रूपान्तरणों, और उनकी अन्तिम गतियों, पर विचार करके हम मानसिक जीवन में कार्य करने वाले बलों के बारे में पहली जानकारी हासिल कर सके थे। स्थानान्तरण स्नायु-रोग इस खोज के लिए सबसे अच्छी सामग्री प्रस्तुत करते थे। पर अहम्—अनेक संगठनों, से उनकी संरचनाओं और कार्य-रीतियों में से उसके संघटन—का पता नहीं चल सका, हमको यह अनुभव हुआ था कि इन मामलों पर रोशनी पड़ने से पहले दूसरे स्नायविक विचारों का विश्लेषण आवश्यक होगा।

इन दूसरे विकारों पर भी मनोविश्लेषण सम्बन्धी अवधारणों का लागू करना

---

१. Dissociation. २. Obverse.

आरम्भिक काल में शुरू किया गया था। १९०८ में ही के० अब्राहम मुझसे बातचीत करने के बाद यह विचार प्रकट कर चुका था कि डेमेन्शिया प्रीकौक्स का भेदक लक्षण यह है (यह एक मनोरोग माना जाता था) कि इस रोग में **आलम्बनों पर राग के आच्छादनों का अभाव होता है**।[1] पर तब यह प्रश्न पैदा हुआ : डेमेन्शिया रोगियों का राग जब अपने आलम्बनों से दूसरी ओर हट जाता है, तब उसका क्या होता है ? अब्राहम ने बिना हिचकिचाहट के जवाब दिया कि यह मुड़कर ईगो, अर्थात् अहम्, पर आ जाता है, और **इसके प्रतिक्षिप्त प्रतिवर्तन[2] से ही डेमेन्शिया प्रीकौक्स में भव्यता के भ्रम पैदा होते हैं**। भव्यता का भ्रम हर दृष्टि से वैसा ही होता है, जैसे किसी प्रेम-सम्बन्ध में आलम्बन को बढ़ा-चढ़ाकर देखना। इस प्रकार, एक मनोरोग की एक विशेषता को हम जीवन में प्रेम करने की प्रकृत रीति से जोड़कर समझ सके।

मैं प्रारम्भ में ही आपको बता दूं कि अब्राहम के ये शुरू के विचार मनोविश्लेषण में मान्य रहे हैं, और मनोरोगों के बारे में हम इन्हीं के आधार पर विचार करते हैं। धीरे-धीरे हमें इस अवधारणा का अभ्यास हो जाता है कि राग, जिसे हम कुछ आलम्बनों से जुड़ा हुआ पाते हैं, और जो इन आलम्बनों से कुछ संन्तुष्टि पाने की इच्छा को प्रकट करता है, इन आलम्बनों को त्याग भी सकता है, और उनके स्थान पर अहम् को ही स्थापित कर सकता है, और क्रमशः यह विचार अधिक सुसंगत होता चला गया। राग के इस तरह उपयोग में आने का नाम स्वरति या नारसिस्सिज़्म हमने पी० नैक द्वारा वर्णित एक काम-विकृति से लिया है, जिसमें एक वयस्क व्यक्ति वे सब आलिंगन, चुम्बन आदि कार्य अपने ही शरीर पर करता है, जो वैसे अपने से भिन्न यौन आलम्बन पर किए जाते हैं।

तब सोचने पर एकदम यह पता चला कि यदि आश्रय, अर्थात् रोगी के अपने शरीर और अपने व्यक्तित्व पर इस तरह की बद्धता हो सकती है, तो यह घटना बिलकुल अपवाद रूप और निरर्थक नहीं हो सकती। इसके विपरीत, सम्भावना यह है कि यह **स्वरति** विश्वव्यापी मूल दशा है, जिससे **आलम्बन-प्रेम** बाद में पैदा होता है, और आवश्यक नहीं कि आलम्बन-प्रेम पैदा हो जाने पर स्वरित खत्म ही हो जाए। आलम्बन-राग के विकास को भी याद रखना जरूरी है, जिसमें शुरू में बहुत-से यौन आवेग शिशु के अपने शरीर पर ही परितुष्ट किए जाते हैं—जिसे हम आत्मकामिता कहते हैं—और आत्मकामिता के इस सामर्थ्य के कारण ही यौन वृत्ति यथार्थता-सिद्धान्त के अनुरूप बनने में पिछड़ी रहती है। इस प्रकार, यह प्रतीत हुआ कि आत्मकामिता राग की संचरण-दिशा की स्वरति वाली कला का यौन-व्यापार है।

---

१. The Psycho-Sexual Differences between Hysteria and Dementia Praecox. २. Reflex reversion.

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि हमने अहम्-राग और आलम्बन-राग के पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में एक विचार बनाया था, जिसे मैं प्राणि-शास्त्र के एक दृष्टान्त से स्पष्ट कर सकता हूं। जीवन के सरलतम रूपों की कल्पना कीजिए, जो बहुत ही कम भिन्नित[1] जीवद्रव्यीय (प्रोटोप्लाजमिक) पदार्थों की छोटी-सी संहति होते हैं। उनमें से कुछ उभार निकलते हैं, जिन्हें स्यूडोपोडिया (या कूट-पाद) कहते हैं, जिनमें जीवद्रव्य (प्रोटोप्लाजम) बहकर आता है, पर वे अपने इन उभारों को फिर वापस खींच सकते हैं, और अपने आपको एक संहति बना सकते हैं। उभार निकालने की इस घटना की तुलना हम आलम्बनों पर राग के विकिरण से करते हैं, जबकि राग की अधिकतम मात्रा अभी अहम् के अन्दर ही होगी। हम यह अनुमान करते ह कि प्रकृत अवस्थाओं में अहम्-राग बिना कठिनाई के आलम्बन-राग में रूपान्तरित हो सकता है, और इसे फिर पीछे खींचकर अहम् में लीन किया जा सकता है।

इन अवधारणों की सहायता से अब मानसिक अवस्थाओं की एक पूरी की पूरी श्रेणी की व्याख्या की जा सकती है, या जरा और विनीत ढंग से कहा जाए, तो प्रकृत जीवन की दशाओं का राग-सिद्धान्त की शब्दावली में वर्णन किया जा सकता है; उदाहरण के लिए 'प्रेम-अनुभूति' की अवस्था अंग-रोगों[2] के, और नींद की दशाओं के प्रतिमानसिक रुख। नींद की अवस्था के बारे में हमने यह कल्पना की थी कि इसका आधार बाहरी जगत से अपने आपको हटा लेना, और सो जाने की इच्छा को प्रबल करना है। हमने देखा था कि रात का मानसिक व्यापार, जो स्वप्नों में प्रकट होता है, सोने की इच्छा का प्रयोजन पूरा करता है; और इसके अलावा, यह एकमात्र अहम्मूलक प्रेरकों से नियंत्रित होता है। राग-सिद्धांत के प्रकाश में, हम और आगे बढ़कर यह कह सकते हैं कि नींद वह अवस्था है, जिसमें आलम्बनों के सब आच्छादन, चाहे वे रागात्मक हों या अहम्मूलक हों, त्याग दिए जाते हैं, और उन्हें फिर अहम् में खींच लिया जाता है। क्या इससे नींद से मिलने वाली ताज़गी और आम थकावट के स्वरूप पर नई रोशनी नहीं पड़ती? सोने वाला हर रात जिस अवस्था में चला जाता है, उसका गर्भाशय के भीतर की स्थिति के आनन्दमय एकान्त से सादृश्य इस प्रकार मानसिक पहलुओं से पुष्ट और अति स्पष्ट हो जाता है। सोने वाले में राग-वितरण की आदिम अवस्था (परम स्वरति) फिर पैदा हो जाती है, जिसमें राग और अहम्-स्वहित अब भी स्वतः स्वावलम्बी 'स्व' में एक और अभिन्न होकर इकट्ठे रहते हैं।

यहां दो बातें कहना उचित होगा। प्रथम तो 'स्वरति' के अवधारण और 'अहंकार' में कैसे विभेद किया जाए? मेरी राय में स्वरति अहंकार की रागात्मक

---

१. Differentiated. २. Organic illness.

पूरक है। जब कोई आदमी अहंकार की बात कहता है, तब वह सम्बन्धित व्यक्ति के **स्वहितों** की ही बात सोच रहा होता है। पर स्वरति उसकी रागात्मक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि से भी सम्बन्ध रखती है। इन दोनों को अलग-अलग जीवन में व्यावहारिक प्रेरक रूप में बहुत दूर तक देखा जा सकता है। कोई आदमी बिलकुल अहंकारी हो सकता है और साथ ही अहंकारी आलम्बनों के प्रति वहां तक प्रबल रागात्मक रूप से जुड़ा हुआ भी, जहां तक किसी आलम्बन से होने वाली राग-सन्तुष्टि में उसके अहम् की आवश्यकता पूरी होती हो। तब उसका अहंकार यह व्यवस्था कर लेगा कि आलम्बन के प्रति उसकी इच्छाओं से उसके अहम् को कोई चोट न पहुंचे। कोई आदमी अहंकारी होता हुआ प्रबल स्वरति वाला (अर्थात् आलम्बनों की कोई आवश्यकता अनुभव न करने वाला) भी हो सकता है, और उसकी स्वरति का रूप वह भी हो सकता है जिसमें सीधे यौन सन्तुष्टि की जाती है; या वे भावना के ऊंचे रूप भी हो सकते हैं जो यौन आवश्यकताओं से पैदा होते हैं, और जो आमतौर से 'प्रेम' कहलाते हैं, और जिन्हें 'कामुकता या विषय-वासना' से भिन्न समझा जाता है। इन सब स्थितियों में अहंकार स्वत: स्पष्ट अचर अंश होता है, और स्वरति परिवर्ती अंश होता है। स्वार्थ या अहंकार का उलटा शब्द परार्थ किसी आलम्बन को राग से आच्छादित करने का वाचक नहीं है। इसमें आलम्बन से यौन सन्तुष्टि की इच्छा का अभाव होता है, पर जब प्रेम की दशा पूर्ण तीव्रता पर आ जाती है, तब परार्थ और किसी आलम्बन को राग से आच्छादित करना एक ही बात हो जाती है। साधारणतया यौन आलम्बन अहम् की स्वरति का एक अंश अपनी ओर खींच लेता है, जो आलम्बन के यौन अति-मूल्यांकन (यौन आलम्बन को बहुत अच्छा मानने) में दिखाई देता है। यदि इसमें आलम्बन के प्रति प्रेषित और प्रेमी के अहंकार से उत्पन्न परार्थ को भी जोड़ दिया जाए तो यौन आलम्बन सर्वोच्च हो जाता है। इसने अहम् को पूरी तरह निगल लिया है।

मैं समझता हूं कि इन शुष्क वैज्ञानिक कल्पनाओं से आप बोझ अनुभव कर रहे होंगे। इसलिए स्वरति की अवस्था और पूर्ण तीव्र प्रेम के 'आर्थिक' वैषम्य का एक कवि-वर्णन आपके सामने पेश करता हूं। यह मैं गेटे के वैस्टोस्ट्लिख डीवन (Westostliche Divan) में जुलेखा और उसके प्रेमी में हुए सम्वाद से ले रहा हूं :

जुलेखा

सब सहमत हैं, हों वे विश्वविजेता,
दास, याकि जन-साधारण,
अपने आपे का रहना ही है धरती का सुख सच्चा
इसके रहने पर सब जीवन ग्राह्य, और
इसको रखने को हैं सभी त्याग स्वीकार्य।

हातिम

कहते तो ह ! और ठीक ही कहते होंगे !
पर धरती का सारा सुख,
है मिला मुझे एकत्र जुलेखा में !
वह अपने को मुझ पर करती खर्च
कि जिससे मैं बनता हूं मैं;
हटती यदि वह दूर, नहीं
मुझको अपना आपा ढूंढ़े मिलता,
और खतम हातिम हो जाता;
पर यदि वह बन जाए किसी
सौभाग्यवान् की हृदय-हार
तो हातिम झट आ जाएगा
उसी हृदय की धड़कन बन कर।[1]

दूसरी बात है स्वप्नों के सिद्धान्त के अधिक विस्तार की। स्वप्न किस तरह पैदा होता है, इसकी तबतक व्याख्या नहीं हो सकती जब तक हम यह न मानें कि जिसे दमन करके अचेतन में भेज दिया है वह अहम् से कुछ स्वतंत्र हो गया है; इसलिए यह सोने की इच्छा के अधीन नहीं रहता और अपने आच्छादनों को कायम रखता है, हालांकि अहम् से पैदा होने वाले सब आलम्बन-आच्छादन नींद प्रयोजन के लिए पीछे खींच लिए गए हैं। इससे ही हम यह समझ सकते हैं कि यह अचेतन सामग्री रात में सेंसरशिप की क्रियाओं के निराकरण या कमी का कैसे उपयोग कर सकती है और यह जानती है कि दिन की बची हुई स्मृतियों से प्रतिषिद्ध स्वप्न-इच्छा का किस तरह निर्माण किया जाए। दूसरी ओर, सोने की इच्छा और इसके द्वारा प्रेरित राग के प्रत्याहरण या वापस खींच लेने के विरुद्ध जो प्रतिरोध होता है, उसका जन्म इस अवशेष और दमित अचेतन सामग्री के बीच पहले से मौजूद साहचर्य से हो सकता है। इसलिए इस महत्वपूर्ण गतिकीय कारक को भी अब स्वप्न-रचना के उस अवधारण में समाविष्ट कर लेना चाहिए, जो हमने पहले बनाया था।

कुछ दशाओं—अंग-रोग उद्दीपन की कष्टदायक अनुभूति, किसी अंग की प्रदाहात्मक अवस्था—का स्पष्टतः प्रभाव यह होता है कि राग की अपने आलम्बन पर संसक्ति कम हो जाती है। इस तरह जो राग खींचा गया है, वह शरीर के रोगी भाग पर अधिक प्रबल आच्छादन के रूप में फिर अहम् से जुड़ जाता है। सच पूछिए

---

१. अर्नेस्ट डाउडन के अंग्रेजी अनुवाद का हिन्दी रूपान्तर।

तो यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि ऐसी अवस्थाओं में राग का अपने आलम्बनों से खिचकर हट जाना बाहरी दुनिया में अहंकारमूलक स्वहितों या दिलचस्पियों के अपने विषयों से हटने की अपेक्षा अधिक विलक्षण होता है। इससे हाइपोकोन्ड्रिया को समझना सम्भव मालूम होता है। हाइपोकोन्ड्रिया में कोई अंग देखने में रोगी न होते हुए भी अहम् की चिन्ता का विषय बना रहता है। पर मैं इस विषय में आगे नहीं जाऊंगा, और उन स्थितियों पर विचार नहीं करूंगा जो आलम्बन-राग के अहम् पर लौट आने की इस धारणा के आधार पर किए जा सकते हैं। क्योंकि दो आक्षेप अवश्य उठाए जाएंगे, जो इस समय आपके ध्यान में हैं। प्रथम तो, आप यह जानना चाहते हैं कि जब मैं नींद, रोग और ऐसी ही अन्य अवस्थाओं पर विचार करता हूं, तब राग और 'स्वहित' में, यौन निसर्ग-वृत्तियों और अहम्-निसर्ग-वृत्तियों में विभेद पर क्यों बल देता हूं, जब कि यह मानने पर प्रेक्षणों की सन्तोषजनक व्याख्या हो जाती है कि एक ही,एक समान ऊर्जा,जो अबाधित चलती-फिरती है, आलम्बन या अहम् इन दोनों को ढांप सकती है, और दोनों के उद्देश्य बराबर सिद्ध कर सकती है। दूसरे, आप यह जानना चाहेंगे कि यदि राग का अपने आलम्बनों से वियोजन या आलम्बन-राग का अहम्-राग में——या साधारणतया अहम्-ऊर्जा में——रूपान्तरण एक प्रकृत मानसिक प्रक्रम है, जो प्रतिदिन और प्रतिरात्रि होता रहता है, तो राग के अपने आलम्बनों से वियोजनों की एक रोगात्मक दशा का उद्गम, मैं कैसे बता सकता हूं ?

इसका उत्तर यह है : आपका पहला आक्षेप ठीक मालूम होता है। नींद, रोग और प्रेम में पड़ने की अवस्थाओं की जांच से सम्भवतः कभी भी अहम्-राग और आलम्बन-राग के विभेद या राग और 'स्वहितों' के विभेद का पता नहीं चल सकता था, पर आप यह भूल गए हैं कि हमने शुरू में क्या चीज़ें देखी थीं, जिनकी रोशनी में हम मानसिक स्थितियों पर विचार कर रहे हैं। राग और स्वहितों में, यौन और आत्मसंरक्षण की निसर्ग-वृत्तियों में विभेद करने की आवश्यकता हमें उस द्वन्द्व की जानकारी होने पर, जिससे स्थानान्तर स्नायु-रोग पैदा होते हैं, मजबूरन माननी पड़ती है। आगे हमें इस विभेद को ध्यान में रखना होगा। यह धारणा ही कि आलम्बन-राग अहम्-राग में परिवर्तित हो सकता है——दूसरे शब्दों में, कि हमें अहम्-राग से भी वास्ता पड़ेगा——एकमात्र ऐसी धारणा प्रतीत होती है जो स्वरति सम्बन्धी स्नायु-रोग कहलाने वाले रोगों——उदाहरण के लिए डेमेन्शिया प्रीकौक्स की पहेली सुलझा सकती है, अथवा हिस्टीरिया और मनोग्रस्तताओं से उनके सादृश्यों और असादृश्यों की सन्तोषजनक व्याख्या कर सकती है। इसके बाद हम उन बातों को रोग, नींद और तीव्र प्रेम की दशा पर लागू करते हैं, जिन्हें हमने इन अवस्थाओं में असन्दिग्ध रूप से प्रमाणित पाया है। हम उनका किसी भी दिशा में प्रयोग कर सकते हैं, और यह देख सकते हैं कि वे हमें कहां पहुंचाएंगी। जो एकमात्र निष्कर्ष

सीधे विश्लेषण सम्बन्धी अनुभव के आधार पर नहीं है, वह यह है कि राग, राग ही है, और राग ही रहता है, चाहे वह आलम्बनों से युक्त हो या स्वयं अहम् से युक्त हो और वह कभी भी अहम्मूलक 'स्वहितों' में रूपान्तरित नहीं होता और इसी तरह इसका उलटा भी समझिए। पर यह कथन यौन निसर्ग-वृत्तियों और अहम् निसर्ग-वृत्तियों के भेद को, जिसपर पहले हमने आलोचनात्मक विचार किया है, प्रकट करने का एक और तरीका है, और इस विभेद को हम और बातें खोज निकालने के उद्देश्य से तब तक मानते रहेंगे जबतक कि वह निरर्थक सिद्ध न हो।

आपके दूसरे आक्षेप से भी एक उचित प्रश्न पैदा होता है, पर वह एक मिथ्या नुक्ते की ओर जाता है। आलम्बन-राग का वापस खिचकर अहम् में आ जाना निश्चित ही रोगजनक नहीं है। यह सच है कि नींद शुरू होने से पहले हर रात यह बात होती है और जागने पर उलटा प्रक्रम होता है। जीवद्रव्यीय (प्रोटोप्लाजमिक) अणुप्राणी[1] अपने उभारों को भीतर खींच लेता है, और अगली बार फिर उन्हें बाहर निकाल देता है; पर जब कोई सुनिश्चित, बड़ा जबरदस्त प्रक्रम राग को अपने आलम्बनों से हट आने के लिए मजबूर करता है, तब यह बिलकुल दूसरी ही बात होती है। जो राग तब स्वरति वाला बन चुका है, वह अब अपने आलम्बनों पर वापस नहीं लौट सकता, और राग के मुक्त संचलन के रास्ते की यह रुकावट निश्चित रूप से रोगजनक सिद्ध होती है। प्रतीत होता है कि एक निश्चित सतह से ऊपर स्वरतिक राग का संचय असह्य हो जाता है। यह कल्पना सुसंगत होगी कि इसी कारण आलम्बनों को इसने अच्छादित किया, कि अहम् को अपना राग इसलिए मजबूरन आगे भेजना पड़ा ताकि वह इसके अतिसंचय से रोगी न हो जाए। यदि हमें डेमेन्शिया प्रीकौक्स रोग पर विस्तार से विचार करना होता तो मैं आपको यह स्पष्ट बताता कि जो प्रक्रम राग को अपने आलम्बनों से अलग करता है और उसके फिर उनपर लौटने के मार्ग को रोकता है, उसका दमन के प्रक्रम से निकट सम्बन्ध है, और उसे इसका एक दूसरी ओर का हिस्सा ही समझना चाहिए। जो भी हो, पर जब आपने यह देखा कि इन प्रक्रमों को जन्म देने वाली आरम्भिक अवस्थाएं, जहां तक हमें इस समय मालूम हैं वहां तक, दमन के प्रक्रमों से प्रायः अभिन्न होती हैं, तब आपको अपना आधार कुछ परिचित भूमि पर पता चलेगा। द्वन्द्व भी वही प्रतीत होता है, और वह उन्हीं दोनों बलों के बीच चल भी रहा मालूम होता है; क्योंकि, उदाहरण के लिए, हिस्टीरिया के परिणाम की अपेक्षा यहां परिणाम भिन्न है। इसलिए इसका कारण स्वभाव या मनोविन्यास में कोई अन्तर ही हो सकता है। इन रोगियों में राग-परिवर्धन का दुर्बल स्थान परिवर्धन की एक दूसरी ही कला में पाया जाता है; निर्णायक बद्धता जो आपको याद होगा, लक्षण-निर्माण के प्रक्रम

---

१. Animalcule.

को शुरू करती है, एक दूसरे स्थान पर, सम्भवतः प्राथमिक स्वरति की अवस्था में, होती है; जिसपर डेमेन्शिया प्रीकौक्स अन्त में लौटता है। यह विशेष उल्लेखनीय बात है कि स्वरतिक स्नायु-रोगों के लिए हमें राग के बद्धता-बिन्दु परिवर्धन की उन कलाओं पर मानने पड़ते हैं, जो हिस्टीरिया या मनोग्रस्तता-रोग की कलाओं से बहुत पहले होती हैं, पर आप सुन चुके हैं कि स्थानान्तरण स्नायु-रोगों के अध्ययन से हम जिन अवधारणाओं पर पहुंचे हैं, वे हमें स्वरतिक स्नायु-रोगों के स्पष्टीकरण में भी, जो व्यवहारतः बहुत अधिक तीव्र होते हैं, सहायक होती हैं। उन दोनों में बहुत अधिक सादृश्य है। आधारतः वे एक ही वर्ग की घटनाएं हैं। आप कल्पना कर सकते हैं कि इन रोगों की (जो असल में मनश्चिकित्सा का विषय हैं), स्थानान्तरण स्नायु-रोगों का विश्लेषण से प्राप्त ज्ञान न होने पर, व्याख्या करने की कोशिश करना कितना व्यर्थ कार्य है।

डेमेन्शिया प्रीकौक्स के लक्षणों से जो तस्वीर बनती है--और यह बहुत परिवर्ती होती है--उसका रूप राग को आलम्बनों से पीछे की ओर धकेलने से पैदा होने वाले लक्षणों और अहम् में स्वरति के रूप में इसके संचय मात्र से ही निर्धारित नहीं होता, अन्य घटनाएं भी प्रमुख रूप से मौजूद होती हैं, और उनका कारण वे प्रयत्न हैं, जो राग अपने आलम्बनों पर फिर पहुंचने के लिए करता है, और इसलिए जो पुनः स्थापन[1] और स्वास्थ्य-लाभ के प्रयत्नों के संवादी होते हैं। असल में, ये ध्यान खींचने वाले मुखर लक्षण होते हैं। इनका हिस्टीरिया के लक्षणों से और कभी-कभी मनोग्रस्तता-रोग के लक्षणों से बहुत सादृश्य दिखाई देता है, पर फिर भी वे हर दृष्टि से भिन्न होते हैं। प्रतीत होता है कि डेमेन्शिया प्रीकौक्स में राग के, अपने आलम्बनों पर, अर्थात् अपने आलम्बनों के मनोबिंबों पर पहुंचने के प्रयत्न सफल हो जाते हैं, और वे उनके कुछ अंश को, जो छायामात्र होते हैं, अर्थात् उनसे जुड़ी हुई शाब्दिक प्रतिबिंबों या मूर्तियों, अर्थात् शब्दों को, अपने साथ मिला लेते हैं। यहां इस प्रश्न पर अधिक विचार नहीं किया जा सकता, पर मेरी राय में राग की इस उलटी प्रक्रिया से हमें कुछ-कुछ यह पता चल जाता है कि चेतन मनोबिंब के बीच वास्तविक अंतर क्या होता है।

अब हम ऐसी जगह पहुंच गए, जहां से आगे विश्लेषण-कार्य बढ़ाने की आशा होती है। जब हमने अहम्-राग का अवधारण बनाने का निश्चय किया था, उसके बाद हम स्वरतिक स्नायु-रोगों के रहस्य को समझने लगे हैं। हमारा लक्ष्य यह था कि इन रोगों में होने वाले गतिकीय कारकों का पता लगाएं और साथ ही अहम् को पूरी तरह समझकर मानसिक जीवन के बारे में अपने ज्ञान का विस्तार करें। हम अहम् के जिस मनोविज्ञान पर पहुंचना चाहते हैं, उसकी बुनियाद हमारे अपने

---

१. Restitution.

अवबोधनों से प्राप्त होने वाली सामग्री पर नहीं खड़ी की जा सकती। राग की तरह इसकी बुनियाद का आधार भी अहम् के विक्षोभों और विखंडनों के विश्लेषण को ही बनाना होगा। जब हम उस अधिक बड़े कार्य को कर लेंगे, तब स्थानान्तरण स्नायु-रोगों के अध्ययन से राग की गति के बारे में प्राप्त अपने मौजूदा ज्ञान के बारे में शायद कुछ भी नहीं सोचेंगे, पर अभी हम इसकी ओर बहुत आगे नहीं बढ़े हैं। जो विधियां स्थानान्तरण स्नायु-रोगों के लिए फ़ायदेमन्द रही हैं, उनसे स्वरतिक स्नायु-रोगों का अध्ययन नहीं किया जा सकता। इसका कारण आपको अभी बताया जाएगा। इन रोगियों के साथ सदा यह होता है कि कुछ दूर घुस जाने के बाद सामने एक पत्थर की दीवार आ जाती है, जिसे पार नहीं किया जा सकता। आप जानते हैं कि स्थानान्तरण स्नायु-रोगों में भी इस तरह के प्रतिरोध की रुकावटें आती हैं, पर उन्हें थोड़ा-थोड़ा करके हटा देना सम्भव है। स्वरतिक स्नायु-रोगों में प्रतिरोध अलंघ्य होता है; हम दीवार के ऊपर से गर्दन निकालकर वहां की अवस्था की एक-दो झांकियां ही ले सकते हैं। इसलिए हमें अपनी पुरानी विधि के स्थान पर अन्य विधियां अपनानी होंगी। इस समय हमें यह पता नहीं है कि हमें कोई और विधि प्राप्त करने में सफलता होगी या नहीं। इन रोगियों के पास सामग्री की कमी नहीं होती। वे बहुत कुछ मसाला हमारे सामने रखते हैं, यद्यपि वह हमारे प्रश्नों के उत्तर के रूप में नहीं होता। इस समय हम इतना ही कर सकते हैं कि जो कुछ वे कहते हैं, उसका स्थानान्तरण स्नायु-रोगों के अध्ययन से प्राप्त जानकारी के प्रकाश में अर्थ लगाएं। रोग के इन दोनों रूपों में मौजूद सादृश्य इतना अधिक है कि उनसे हम विचार सन्तोषजनक रीति से शुरू कर सकते हैं। इस रीति से हमें कितनी सफलता मिलेगी, यह अभी देखना है।

हमारे आगे बढ़ने के रास्ते में इसके अलावा और भी कठिनाइयां हैं। स्वरतिक रोग और उनसे सम्बन्धित मनोरोग की गुत्थी स्थानान्तरण स्नायु-रोग के विश्लेषण की दीक्षा पाए हुए प्रेक्षकों द्वारा ही सुलझाई जा सकती है। पर हमारे मनश्चिकित्सक मनोविश्लेषण का अध्ययन नहीं करते और हम मनोविश्लेषकों को मनश्चिकित्सा के रोगी बहुत कम दिखाई देते हैं। हमें ऐसे मनश्चिकित्सक पैदा करने होंगे जिन्होंने अपने कार्य की तैयारी के रूप में मनोविश्लेषण की दीक्षा पाई हो। इस दिशा में एक प्रयत्न अमेरिका में किया जा रहा है। यहां अनेक प्रमुख मनश्चिकित्सक मनोविश्लेषण पर अपने छात्रों को व्याख्यान देते हैं, और संस्थाओं और आश्रमों के अध्यक्ष डाक्टर अपने रोगियों को इस सिद्धान्त के प्रकाश में देखने की कोशिश करते हैं। फिर भी हमें स्वरति की दीवार के ऊपर से झांकने का मौका मिला है और अब मैं आपको वे बातें बताऊंगा जो मैं समझता हूं कि हमने इस दिशा में नई पता लगाई हैं।

मौजूदा मनश्चिकित्सा ने वर्गीकरण करने के जो यत्न किए हैं, उनमें पैरा-

नोइआ रोग की, जो **'सिस्टेमैटिक इन्सैनिटी'**, अर्थात् व्यवस्थित पागलपन का जीर्ण[1] रूप है, स्थिति बड़ी अनिश्चित है; पर इसमें कोई संदेह नहीं कि डेमेन्शिया-प्रीकौक्स से उसका नज़दीकी सम्बन्ध है। मैंने तो बल्कि यह प्रस्ताव किया है कि इन दोनों को मिलाकर पैराफ्रेनिया कहना चाहिए। पैरानोइआ के रूपों का वर्णन भ्रम की वस्तु के अनुसार किया जाता है; उदाहरण के लिए, महानता[2] का भ्रम, सताए जाने का भ्रम, ईर्ष्या का भ्रम, प्रेमपात्रता का भ्रम (ऐरोटामैनिया) इत्यादि। हम यह आशा नहीं करते कि मनश्चिकित्सा इनकी व्याख्या करने की कोशिश करेगी। उदाहरण के लिए, मैं उस प्रयत्न का उल्लेख करूंगा जो इनमें से एक लक्षण को दूसरे से निकालने या व्युत्पन्न करने के लिए बौद्धिक समीकरण[3] द्वारा किया गया था : जिस रोगी में अपने आप को सताया गया मानने की प्राथमिक प्रवृत्ति होती है, वह इससे यह निष्कर्ष निकालता है कि वह अवश्य ही बहुत महत्वपूर्ण व्यक्ति है, और इसलिए उसमें महानता का भ्रम पैदा हो जाता है। हमारे विश्लेषणीय अवधारण के साथ महानता का भ्रम आलम्बनों को आच्छादन से खींचे गए राग द्वारा अहम् के फुलाव का सीधा परिणाम होता है, और पहले वाले शुरू के शैशवीय रूप के वापस आ जाने से एक परवर्ती स्वरति आरम्भ हो जाती है। पर सताए जाने के भ्रमों के रोगियों में हमें जो चीजें दिखाई दीं, उन्हें पकड़कर हम कुछ दूर चल सके। प्रथम तो हमने यह देखा कि अधिकतर उदाहरणों में सताने वाला और सताए जाने वाले व्यक्ति दोनों एक ही लिंग के होते हैं। यह सच है कि इसकी हानि रहित व्याख्या की जा सकती है; पर कुछ अवस्थाओं में, जिनका बारीकी से अध्ययन किया गया, यह पता चला कि उसी लिंग का वह व्यक्ति ही, जो रोगी के प्रकृत होने पर उसे सबसे अधिक प्रिय था, रोग पैदा हो जाने के बाद सताने वाला बन गया। इससे इसका एक और परिवर्धन साहचर्य के सुविदित तरीकों से सम्भव हो जाता है, जिससे एक प्रिय व्यक्ति के स्थान पर कोई दूसरा व्यक्ति ले आया जाता है। उदाहरण के लिए, पिता के स्थान पर मालिक या सत्तारूढ़ व्यक्ति ले आए जाते हैं। इन प्रेक्षणों से, जिनकी बीच-बीच में लगातार पुष्टि होती रही, हमने यह निष्कर्ष निकाला कि सताने का भ्रमोन्माद या परसिक्यूटरी पैरानोइआ के द्वारा व्यक्ति अपने आपको समकामी आवेग से, जो बहुत प्रबल हो गया है, बचाता है। अनुरागपूर्ण भावना का घृणा में परिवर्तन, जैसा कि सुविदित है, प्रेम और घृणा के आलम्बन के जीवन का गम्भीर खतरा बन सकता है, तब रागात्मक आवेगों के चिन्ता में परिवर्तन का संवादी है, जो कि दमन के प्रक्रम का नियत परिणाम होता है। इसके दृष्टांत के लिए मैं इस तरह के

---

१. Chronic. २. Grandeur. ३. Intellectual rationalization.

उस रोगी का मामला पेश करता हूं, जो मेरे सामने आया था। एक तरुण डाक्टर को अपने रहने की जगह से इसलिए दूर भेजना पड़ा, क्योंकि उसने एक प्रोफ़ेसर के पुत्र के जीवन को, जो पहले उसका सबसे बड़ा दोस्त था, ख़त्म करने की धमकी दी थी। वह कहता था कि इस दोस्त में अमानुषी शक्तियां हैं, और मेरे प्रति बहुत बुरे इरादे हैं। हाल के वर्षों में रोगी के परिवार पर जो विपत्तियां आई थीं, और उसे सार्वजनिक और निजी जीवन में जो बुरे दिन देखने पड़े थे, सबके लिए वह उसे ही दोषी ठहराता था; पर इतनी ही बात नहीं थी। उस दुष्ट दोस्त और उसके प्रोफ़ेसर पिता ने ही युद्ध कराया था, और रूसियों को सीमा पर बुलाया था। उसने हजारों तरह से उसके जीवन को बर्बाद किया था। हमारे रोगी का यह निश्चय था कि इस बदमाश की मौत से दुनिया की सब बुराई दूर हो जाएगी; फिर भी उसके प्रति उसका पुराना प्रेम इतना प्रबल था कि जब उसे अपने शत्रु को सामने देखकर गोली मारने का मौका आया, तब वह निष्क्रिय हो उठा। रोगी से मेरी जो थोड़ी बातचीत हुई, उससे यह पता चला कि इन दोनों व्यक्तियों की यह घनिष्ठ मैत्री उनके स्कूल के दिनों से चली आती थी; कम से कम एक मौके पर यह मित्रता की सीमाओं का उल्लंघन कर गई थी—उन्होंने एक रात इकट्ठे बिताई थी, और इस अवसर पर पूर्ण सम्भोग किया था। रोगी में स्त्रियों के प्रति कभी कोई ऐसी भावना नहीं पैदा हुई थी, जो उस आयु में ऐसे आकर्षक व्यक्तित्व वाले आदमी में पैदा होनी स्वाभाविक थी। उसका एक सुन्दर और अच्छे घराने की लड़की से बचनबन्ध (सगाई से पहले बातचीत तय होना) हुआ था, पर उसने इस कारण उस बन्धन को तोड़ दिया कि उसका प्रेमी उसके प्रति बहुत उदासीन था। वर्षों बाद उसका रोग ठीक उस समय शुरू हुआ, जबकि वह पहली बार एक स्त्री को पूर्ण यौन परितुष्टि देने में सफल हुआ था। जब इसने कृतज्ञता और प्रेम के आवेश में उसे अपनी बाहुओं में भर लिया, तब इसे एकाएक यह अनुभव हुआ कि मेरे सिर के चारों ओर तेज चाकू की धार-सी चल रही है और पीड़ाकारक रहस्यमय घाव हो गया है। बाद में उसने इस सम्वेदन को दिमाग को नंगा करने के लिए पोस्टमार्टम, अर्थात् मरणोत्तर कार्य के समय किए जाने वाले कटाव जैसा बताया और चूंकि उसका मित्र रोग-शारीर-शास्त्री, या पैथोलौजिकल एनेटोमिस्ट था, इसलिए वह धीरे-धीरे इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि उसने इस औरत को प्रलोभन के रूप में भेजा होगा। बाद में उन दूसरी बातों के विषय में उसकी आंखें खुलने लगीं, जिनके द्वारा उसके पुराने दोस्त ने उसे सताया था।

पर उन उदाहरणों का क्या होगा जिनमें सताने वाला सताए जाने वाले से भिन्न लिंग का है और इसलिए जिनसे इस रोग के विषय में हमारी इस व्याख्या का खण्डन होता दिखाई देता है कि यह समकामी राग से बचाव है। कुछ समय पहले मुझे इस तरह के रोगी की जांच करने का मौका मिला और ऊपर दिखाई देने

वाले विरोध या खण्डन के पीछे मुझे उसकी पुष्टि होती हुई मिली। एक नौजवान लड़की यह समझती थी कि एक आदमी, जिसके साथ वह दो बार घनिष्ठ सम्बन्ध कर चुकी थी, उसे सताता था। असल में पहले उसका भ्रम एक स्त्री के विरुद्ध था जिसे माता का स्थानापन्न समझा जा सकता है। उस आदमी के साथ दूसरी बार मिलने के बाद ही उसने भ्रमात्मक मनोबिंब को स्त्री से पुरुष पर स्थानांतरित किया। इस प्रकार इस उदाहरण में भी यह शर्त पूरी होती है कि सताने वाला उसी लिंग का है, जिसका सताया जाने वाला है। वकील और डाक्टर से शिकायत करते हुए रोगिणी ने अपने भ्रम की पहले वाली कला की चर्चा नहीं की थी, और इससे पैरानोइआ के बारे में हमारे सिद्धान्त का खण्डन होता दिखाई देता था।

आलम्बन का समकामी चुनाव आरम्भ में, विषमकामी चुनाव की अपेक्षा, स्वरति से अधिक नज़दीकी सम्बन्ध रखता है। इसलिए जब कोई प्रबल नापसन्द समकामी उत्तेजन प्रत्याख्यात अर्थात् अस्वीकृत होता है, तब उससे स्वरति पर पहुंचने का रास्ता पा लेना विशेष रूप से आसान है। इन व्याख्यानों में मुझे अब तक यह बताने का कोई मौका नहीं मिला कि जहां तक हम जानते हैं, वहां तक जीवन में प्रेम-आवेग का मार्ग जिस आधारभूत रूपरेखा पर खड़ा है वह क्या है और न मैं अब इस विषय पर विशेष कुछ कह सकता हूं। मैं सिर्फ़ इतनी बात आपसे कहता हूं कि आलम्बन का चुनाव, जो स्वरति की अवस्था के बाद राग के परिवर्धन में अगला कदम है, दो प्ररूपों के अनुसार आगे बढ़ सकता है—या तो वह **स्वरतिक प्ररूप** होता है, जिसके अनुसार स्वयं अहम् के स्थान पर इससे यथासम्भव अधिक से अधिक मिलता-जुलता कोई व्यक्ति आलम्बन के रूप में ग्रहण कर लिया जाता है, या **एनेक्लीटिक प्ररूप** (Anlehnungstypus)[1], जिसमें राग भी उन्हीं व्यक्तियों को आलम्बन के रूप में चुनता है जो जीवन में आदिम आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करने के कारण प्रिय बन गए हैं। आलम्बन-चुनाव के स्वरतिक प्ररूप पर प्रबल राग-बद्धता भी व्यक्त समकामियों के स्वभाव का एक गुण होता है।

आपको याद होगा कि इस सत्र के अपने पहले व्याख्यान में मैंने एक स्त्री की भ्रमात्मक ईर्ष्या का एक उदाहरण दिया था। अब जबकि हम अपने अध्ययन को प्रायः समाप्त करनेवाले हैं आप निश्चित ही यह जानना चाहेंगे कि मनोविश्लेषण भ्रम की क्या व्याख्या करता है, परन्तु जितनी आप आशा करते हैं उससे बहुत कम बात मैं आपको बता सकता हूं। मनोग्रस्तताओं की तरह भ्रमों के भी तार्किक युक्तियों और वास्तविक अनुभव से अप्रभावित रहने की व्याख्या उस सम्बन्ध-सूत्र के

---

१. यह शब्द इस बात का निर्देश करता है कि यौन वृत्तियां अपने प्रथम आलम्बन के लिए आत्मसंरक्षण की निसर्ग-वृत्तियों पर अर्थात स्तन्य पिलाने वाली माता पर निर्भर हैं।—अंग्रेजी अनुवादक

द्वारा ही की जाएगी जो उनमें और उस अचेतन सामग्री में होता है जो भ्रम या मनोग्रस्तता द्वारा अभिव्यक्त भी होती है और रोककर भी रखी जाती है। इन दोनों में जो अन्तर हैं उनका आधार इन दोनों रोगों के स्थानवृत्तीय और गतिकीय अन्तर हैं।

पैरानोइआ की तरह मलांकोलिया अर्थात उदासी रोग (प्रसंगतः यह कह देना अनुचित न होगा कि इस रोग के अन्तर्गत बड़े भिन्न प्रकार के रोग-प्ररूप रखे गए हैं) की भी भीतरी रचना की कुछ झांकी प्राप्त करना सम्भव हुआ है। हमने देखा है कि ये रोगी अपने आपको जिस निर्दयता से फटकारते हैं, वह असल में दूसरे व्यक्ति से सम्बन्ध रखती है, अर्थात वह उस गौन आलम्बन से सम्बन्ध रखती है जो नष्ट हो गया है, या जिसे उन्होंने किसी दोष के कारण पसन्द करना बन्द कर दिया है। इससे हमने यह नतीजा निकाला है कि असल में उदासी रोगी ने अपना राग आलम्बन से हटा लिया है, पर एक ऐसे प्रक्रम द्वारा, जिसे हम 'स्वरतिक अभिन्नीकरण'[1] कहेंगे। उसने अहम् के भीतर ही आलम्बन को स्थापित कर लिया है, और इसे अहम् पर प्रक्षेपित कर दिया है। मैं आपको इस प्रक्रम की वर्णनात्मक रूपरेखा ही दे सकता हूं, स्थानवृत्त और गतिकी की शब्दावली में इसकी रूपरेखा नहीं पेश कर सकता। तब स्वयं अहम् से इस तरह व्यवहार किया जाता है, मानो वह त्यागा हुआ आलम्बन हो। उसे बदले और आक्रमण का वह सारा व्यवहार सहना पड़ता है जो आलम्बन के उद्देश्य से होता है। उदासी रोगियों के आत्महत्या के आवेग भी यह मानने पर अधिक स्पष्ट हो जाते हैं कि रोगी मन जो कटुता अनुभव करता है, उसका सम्बन्ध प्रेम और घृणा के आलम्बनों से भी उसी समय और उतना ही होता है जिस समय और जितना अहम् से। दूसरे स्वरतिक विकारों की तरह उदासी रोग में भी भाव-जीवन की विशेषता, जिसे ब्लूलर के अनुसार हम **उभयकता** या ऐम्बीवैलेन्स कहते हैं, विशेष रूप से सामने आती है। इसका अर्थ यह है कि एक ही व्यक्ति के प्रति विरोधी भावनाएं (अनुरागपूर्ण और शत्रुतापूर्ण) होती हैं। बदकिस्मती से मैं इन व्याख्यानों में उभयता पर अधिक कुछ नहीं कह सका।

स्वरतिक रूप के अलावा एक हिस्टीरिया वाला रूप भी है जिसे हम बहुत समय से जानते हैं। मैं चाहता था कि इन दोनों के अन्तर आपके सामने थोड़े-से सुनिश्चित शब्दों में स्पष्ट किए जा सकते। मैं आपको उदासी रोग के आवर्ती[2] और चक्रीय[3] रूपों के बारे में कुछ बता सकता हूं जो आपको दिलचस्प लगेगा। अनुकूल परिस्थितियों में विशद मध्यान्तरों[4], अर्थात दोष-दौरों के बीच के बिना दौरे वाले

---

१. Narcissistic identification. २. Periodic. ३. Cyclic. ४. Lucid intervals.

समय में, विश्लेषण द्वारा इलाज करके इस अवस्था या इसकी विरोधी अवस्था को फिर पैदा होने से रोका जा सकता है, और मुझे इसमें दो बार सफलता मिली है। इससे हमें यह पता चलता है कि अन्य अवस्थाओं की तरह उदासी रोग और सनक या मैनिया में, संघर्ष का एक विशेष प्रकार का समाधान चल रहा होता है, जिसकी सब पूर्व अपेक्षाएं दूसरे स्नायु-रोगों की पूर्व अपेक्षाओं से मिलती-जुलती हैं। आप कल्पना कर सकते हैं कि इस क्षेत्र में मनोविश्लेषण के लिए कितना काम करने को पड़ा है।

मैंने आपसे यह भी कहा था कि स्वरतिक विकारों के विश्लेषण द्वारा हमें विविध क्षमताओं और अवयवों से अहम् की बनावट और संरचना की कुछ जानकारी प्राप्त होने की भी कुछ आशा थी। हमने एक जगह इसकी ओर कदम बढ़ाया था। प्रेक्षण के भ्रम के विश्लेषण से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि अहम् में एक ऐसी शक्ति या क्षमता होती है, जो सदा ध्यान से देखती है, आलोचना करती है, और तुलना करती है, और इस तरह अहम् के दूसरे हिस्से के मुकाबले में खड़ी हो जाती है। इसलिए हमारी राय में जब रोगी यह शिकायत करता है कि मेरे हर कदम पर कड़ी नज़र रखी जाती है, और मेरे विचार तक जान लिए जाते हैं और उनकी जांच की जाती है, तब वह एक ऐसी सचाई प्रकट करता है जिसे अभी सचाई के रूप में नहीं समझा गया है। उसकी इतनी ही ग़लती है कि वह इस नापसन्द शक्ति को अपने से बाहर और अपने से अपरिचित किसी चीज़ में मौजूद बताता है। वह अपने अहम् में एक ऐसी शक्ति का शासन देखता है जो उसके वास्तविक अहम् और उसके सब कार्यों को एक **अहम्-आदर्श** से नापती है और यह अहम्-आदर्श अपने परिवर्धन के काल में उसने अपने लिए स्वयं पैदा किया है। हम यह भी अनुमान करते है कि उसने यह आदर्श प्राथमिक शैशवीय स्वरति से मिलने वाली आत्मसन्तुष्टि को फिर से प्राप्त करने के लिए किया है, जिसे तब से आज तक कितने ही आघात और आत्मपीड़न सहने पड़े हैं। अपनी आलोचना करने वाली इस शक्ति में हम अहम्-सेन्सरशिप या अहम्-अधीक्षक अर्थात् अन्तःकरण, को देखते हैं; यह वही सेन्सरशिप है जो रात में स्वप्नों पर प्रयुक्त होती है, जिससे अग्राह्य इच्छा-उत्तेजनों के दमन पैदा होते हैं। जब देखे जा रहे होने के भ्रम में यह शक्ति बिखर जाती है, तब हमें इसके उद्गम का पता चल जाता है, और हम देखते हैं कि यह माता-पिता तथा शिक्षकों के प्रभाव से और बालक के सामाजिक वातावरण से पैदा हुई है, जिसमें वह इनमें से कुछ व्यक्तियों से, जो आदर्श मान लिए गए थे, अपनी अभिन्नता स्थापित कर लेता है।

स्वरति सम्बन्धी विकारों पर मनोविश्लेषण का प्रयोग करने से जो परिणाम प्राप्त हुए हैं उनमें से कुछ ये हैं। इनकी संख्या अभी अधिक नहीं है और इनमें से बहुतों की रूपरेखा में स्पष्टता नहीं है। यह स्पष्टता नए क्षेत्र में तब तक नहीं आ

सकती जब तक कुछ अधिक परिचय न हो जाए। ये सब अहम्-राग या स्वरतिक राग के अवधारण का प्रयोग करने से ही सम्भव हुए हैं, जिनके द्वारा हम स्थानान्तरण स्नायु-रोगों के लिए स्थापित निष्कर्षों को स्वरतिक स्नायु-रोगों पर भी लागू कर सकते हैं। पर अब आप यह पूछेंगे कि क्या स्वरतिक स्नायु-रोगों से और मनोरोगों के सब रूपों को राग-सिद्धान्त के क्षेत्र में लाया जा सकता है ? क्या सदा यह देखा जा सकता है कि इस रोग के परिवर्धन का कारण सदा और सर्वत्र मानसिक जीवन का रागात्मक कारक ही होता है, और क्या आत्मसंरक्षण की निसर्ग-वृत्तियों के कार्यों में उसी परिवर्तन का कारणों में कोई स्थान नहीं होता ? मुझे ऐसा मालूम होता है कि इस प्रश्न का अभी फैसला करने की कोई आवश्यकता नहीं, और सबसे बड़ी बात यह है कि अभी फैसला करने का समय नहीं आया। हम इसे विज्ञान के कार्य की और अधिक उन्नति होने पर निर्णीत होने के लिए शान्तिपूर्वक छोड़ सकते हैं। यदि बाद में यह सिद्ध हो तो मुझे कुछ भी आश्चर्य नहीं होगा कि रोगजनक प्रभाव पैदा करने की क्षमता असल में रागात्मक आवेगों का एक विशेष अधिकार है। और इस प्रकार, राग का सिद्धान्त असली स्नायु-रोगों से लेकर व्यक्तिगत गड़बड़ी के उग्रतम मनोविकारों तक, सारे में सफल या सार्थक सिद्ध होगा। कारण यह है कि राग की यह विशेषता है कि वह जीवन में यथार्थता या आवश्यकता के अनुसार चलने से इन्कार कर देता है, पर मुझे यह अत्यधिक सम्भाव्य मालूम होता है कि अहम् निसर्ग-वृत्तियां गौणरूप से इसमें आती है, और राग के रोगजनक विकारों या प्रभावों से उनके कार्यों में गड़बड़ी या विक्षोभ पैदा हो सकते हैं; न मुझे यह दिखाई देता है कि यदि हमें यह मानना पड़े कि उग्र मनोरोग में स्वयं अहम्-निसर्ग-वृत्तियां प्रथमतः विक्षिप्त होती है; भविष्य ही इसका फैसला करेगा—कम से कम आपके लिए।

अब जरा चिन्ता के बारे में फिर थोड़ा-सा विचार किया जाए, जिससे हमने वहां जो बात अस्पष्ट छोड़ दी थी, उसपर प्रकाश पड़े। हमने कहा था कि राग की चिन्ता और राग का सम्बन्ध जो वैसे इतना सुनिर्दिष्ट है, इस प्रायः निर्विवाद मान्यता से बड़ी मुश्किल से संगत होता है कि खतरे को देखकर पैदा होने वाली आलम्बननिष्ठ चिन्ता आत्मसंरक्षण की वृत्ति को प्रकट करती है, पर यह चिन्ता का भाव अहम्-निसर्ग-वृत्ति के स्वार्थ के बजाय अहम्-राग से पैदा होता हो तो ? आखिरकार चिंता की दशा सदा हानिकारक होती है। जब यह तीव्र अवस्था में आ जाती है तब इसकी हानि की ओर ध्यान जाता है। तब यह उस क्रिया में बाधा डालती है जो उस समय एकमात्र दृष्टिकर और समयोचित्त क्रिया होगी और आत्मसंरक्षण का प्रयोजन सिद्ध करेगी, चाहे यह पलायन हो या आत्मरक्षा हो। इसलिए यदि हम आलम्बननिष्ठ चिंता के भावरूप घटक का कारण अहम्-राग को और की गई क्रिया का कारण अहम्संरक्षक निसर्ग-वृत्तियों को बताते हैं, तो सब सैद्धा-

न्तिक कठिनाई दूर हो जाती है। आप गम्भीरतापूर्वक यह नहीं मान सकते कि हम इस कारण भागते हैं **क्योंकि** हम भय देखते हैं; नहीं; हम भय देखते हैं **और** भागते हैं, और इसका वह सामान्य आवेग है जो भय देखकर पैदा होता है। जिन लोगों को जीवन में सन्निकट खतरे का अनुभव हुआ है, वे बताते है कि हमें भय का अव-बोधन नहीं हुआ। हमने सिर्फ वह क्रिया की --उदाहरण के लिए सामने से आते हुए पशु पर अपनी बन्दूक तानी--यहीं वे उस समय निश्चित रूप से, अधिक से अधिक, कर सकते थे।

स्थानान्तरण

अब हम अपने विषय की समाप्ति पर पहुंच गए हैं, और आपके मन में एक भाव उठ रहा होगा, जो आपको बहका सकता है पर ऐसा मौका नहीं आना चाहिए। सम्भवतः आप सोच रहे हैं कि निश्चित ही ऐसा नहीं हो सकता कि मनोविश्लेषण की इन सब उलझन भरी पहेलियों में से गुज़रने के बाद, मैं आपको मनोविश्लेषण द्वारा चिकित्सा के बारे में, जिसके आधार पर ही मनोविश्लेषण कार्य किया जा सकता है, बिना कुछ कहे विदा कर दूंगा। सच तो यह है कि इसके इस पहलू को छोड़ना सम्भव भी नहीं, क्योंकि इससे सम्बन्धित कुछ घटनाएं आपको एक ऐसे नए तथ्य का पता देंगी; जिसके ज्ञान के बिना आप उन रोगों को ठीक तरह नहीं समझ सकते, जिनपर हम विचार कर रहे हैं।

मैं जानता हूं कि आप यह आशा नहीं करते कि चिकित्सा-कार्य के लिए विश्लेषण का प्रयोग करने की विधि के निर्देश आपको दिए जाएं। आप तो मोटे तौर पर यह जानना चाहते हैं कि मनोविश्लेषण-चिकित्सा किन साधनों से और उपायों से की जाती है,और यह जानना चाहते हैं कि इससे क्या सफलता होती है; सचमुच यह जानने का आपको अवश्य अधिकार है। फिर भी, मैं आपको यह नहीं बताऊंगा, मैं चाहता हूं कि इसका पता आप स्वयं लगाएं।

जरा सोचिए तो ! आप उन अवस्थाओं से लेकर, जिनसे रोग आरम्भ होता है, रोगी मन के भीतर पैदा होने वाले सब कारकों तक, प्रत्येक आवश्यक बात पहले जान चुके हैं। इस सबमें चिकित्सा करने का रास्ता कहां है ? सबसे पहले वंशगत स्वभाव है---हम प्रायः इसका उल्लेख नहीं करते क्योंकि अन्य क्षेत्रों में इसपर बहुत बल दिया जाता है, और हम इसके बारे में कोई नई बात नहीं जानते। पर यह न समझिए कि हम इसे कम महत्वपूर्ण समझते हैं। चिकित्सक के नाते हम इसकी शक्ति से सुपरिचित हैं। कुछ भी हो, हम इसे बदलने के लिए कुछ नहीं कर सकते। हमारे लिए भी यह इस समस्या का स्थिर अंश है जिससे हमारे प्रयत्नों की एक सीमा बन जाती है। इसके बाद, आरम्भिक बचपन के अनुभवों का प्रभाव है,

जिसे हम विश्लेषण में बहुत अधिक महत्वपूर्ण समझते हैं। वे भूतकाल से सम्बन्ध रखते हैं, इसलिए हम उन्हें हटा नहीं सकते। इसके बाद, जीवन का वह सब दुःख है जिसे हमने 'यथार्थता में कुंठा' के अन्तर्गत शामिल किया है, जिससे जीवन का सारा प्रेम का अभाव पैदा होता है—अर्थात् ग़रीबी, पारिवारिक झगड़े, विवाह में ग़लत साथी का चुनाव, प्रतिकूल सामाजिक अवस्थाएं, और व्यक्ति पर नैतिक रूढ़ियों के नियमों की कठोरता। इन सभी में सफल इलाज की बहुत गुंजाइश है, पर इस इलाज को वियेना की दंतकथा वाले कैसर जोसेफ के ढंग पर चलना पड़ेगा—कैसर जोसेफ ऐसा परोपकारी निरंकुश राजा था जिसकी इच्छा के आगे लोग सिर झुका देते और कठिनाइयां दूर हो जातीं। पर हम चिकित्सा में इतना परोपकार कैसे कर सकते हैं? हम गरीब लोग हैं और समाज में हमारा कोई ऐसा प्रभाव नहीं, और हमें चिकित्सा करके अपनी रोजी कमानी है। इसलिए हम दूसरे डाक्टरों की तरह, जो दूसरी विधियों से चिकित्सा करते हैं, बहुत गरीब लोगों का इलाज भी नहीं कर सकते, और फिर हमारे इलाज में बहुत समय और मेहनत लगती है। पर शायद आप अब भी पहले पेश किए जा चुके कारकों में से एक को पकड़े हुए हैं, और यह समझते हैं कि उसके रास्ते हम अपना प्रभाव डाल सकते हैं। यदि समाज द्वारा लगाई गई परम्परागत रुकावटों के कारण रोगी को प्रवंचित होना पड़ा है तो इलाज से उसे साहस प्राप्त होगा, और उसे सीधे यह सलाह भी दी जा सकती है कि वह इन रुकावटों को न माने, और अपनी सन्तुष्टि और स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए उस आदर्श को तिलांजलि दे दे जो बहुत आदरणीय होता हुआ भी प्रायः दुनिया में रोज़ ठुकराया जाता है। तो, स्वास्थ्य 'मुक्त रहन-सहन' से प्राप्त होगा। विश्लेषण पर निश्चित रूप से यह आरोप लगाया जाएगा कि यह सामान्य नैतिकता का पोषण नहीं करता; इसने व्यष्टि को जो कुछ दिया, वह बाकी दुनिया से छीन लिया।

पर विश्लेषण के बारे में ऐसी मिथ्या धारणा आपको किससे मिली, यह कहने की आवश्यकता नहीं। विश्लेषण सम्बन्धी इलाज का एक भाग यह होगा कि 'मुक्त रहन-सहन' रखो—इसका एक यह कारण तो है ही कि हम स्वयं आपसे कहते हैं कि रोगी में रागात्मक इच्छाओं और यौन दमन में भोगात्मक और निवृत्ति की प्रवृत्तियों में जबर्दस्त द्वन्द्व चल रहा है। दोनों पक्षों में से एक को मदद देकर जिता देने से यह द्वन्द्व दूर नहीं होता। यह सच है कि हम देखते हैं कि स्नायु-रोगियों में निवृत्ति विजयी होती है जिसका परिणाम यह है कि अवरुद्ध यौन आवेग लक्षणों के रूप में दिखाई देने लगे हैं। यदि इसके स्थान पर हम भोगात्मक पक्ष को जिता सके तो कामुकता या यौन प्रवृत्ति का दमन करने वाले तिरस्कृत बलों को लक्षणों द्वारा अपनी क्षति-पूर्ति करनी पड़ेगी। इन दोनों में से किसी भी उपाय से भीतरी द्वन्द्व का अन्त करने में सफलता नहीं मिलेगी। दोनों अवस्थाओं में एक पक्ष अस-

न्तुष्ट रहेगा। बहुत कम रोगियों में यह द्वन्द्व ऐसा स्थायी होता है जिसपर डाक्टर की राय से कोई प्रभाव पड़ सके, और इन रोगियों को वास्तव में विश्लेषण द्वारा इलाज की आवश्यकता नहीं होती। जिन लोगों पर डाक्टरों का इतनी आसानी से असर पड़ जाता है, उन्होंने इस असर के बिना ही अपने द्वन्द्व को दूर करने का रास्ता निकाल लिया होगा। आखिरकार आप जानते हैं कि विषय-वासनाओं से बचकर रहनेवाला कोई नौजवान जब अवैध सम्भोग का इरादा करता है या, कोई असन्तुष्ट पत्नी जो कि किसी जार में सन्तुष्टि प्राप्त करती है, तब ऐसा करने के लिए किसी डाक्टर या मनोविश्लेषक की इजाज़त की राह नहीं देखते।

इस सवाल पर विचार करते हुए लोग आमतौर से कठिनाई के सबसे आवश्यक अंग को भूल जाते हैं, कि स्नायु-रोगी में होनेवाला रोगजनक द्वन्द्व और एक ही मानसिक क्षेत्र में मौजूद सब विरोधी आवेगों में होनेवाला प्रकृत संघर्ष दो भिन्न चीजें हैं। यह प्रकृत संघर्ष दो ऐसे बलों की कुश्ती है जिनमें से एक को मन के पूर्व-चेतन और चेतन भाग की सतह तक आने में सफलता हुई है, जबकि रोगजनक द्वन्द्व अचेतन सतह पर ही घिरा रहा है। इसी कारण, इस द्वन्द्व का किसी एक तरफ़ अन्तिम फ़ैसला कभी नहीं होगा। परस्पर विरोधी बल एक दूसरे के सामने नहीं आ पाते। निर्णायक फ़ैसला तभी हो सकता है जब वे उसी मैदान में आमने-सामने आएं, और मेरी राय में, यह स्थिति ला देना ही इलाज का एकमात्र कार्य है।

इसके अलावा, निश्चित समझिए कि यदि आपका ख्याल यह है कि जीवन-सम्बन्धी आचरण के विषय में सलाह और पथ-प्रदर्शन विश्लेषण की विधि का अखंड भाग है तो आप बड़ी ग़लतफहमी में हैं। इसके विपरीत, हम यथासम्भव उपदेशक का काम करने से बचते हैं। हम यही चाहते हैं कि रोगी अपने लिए स्वयं अपने समाधान ढूंढ़ ले। इसके लिए हम चाहते हैं कि वह अपने जीवन को प्रभावित करनेवाले महत्वपूर्ण निश्चय, जैसे जीवन-कार्य का चुनाव, व्यवसाय, विवाह या तलाक इलाज के दिनों में न करे, और इलाज पूरा हो जाने के बाद ही उनके बारे में तय करे। अब आपको स्वीकार कर लेना चाहिए कि आपने इससे बहुत भिन्न चीज की कल्पना की थी। थोड़े-से बहुत कम आयु वाले, या बिलकुल असहाय और संबल-हीन लोगों के लिए ही ऐसी सख्त पाबन्दी में रहना असम्भव है। इन व्यक्तियों के लिए हम चिकित्सक और शिक्षक दोनों बन जाते हैं। तब हम अपनी जिम्मेदारी को अच्छी तरह समझते हैं और आवश्यक सावधानी से कार्य करते हैं।

मैंने इस आरोप से, कि विश्लेषण वाले इलाज में स्नायु-रोगियों को 'मुक्त जीवन बिताने के लिए' उत्साहित किया जाता है, जिस उत्सुकता से अपनी सफाई पेश की है, उससे आपको भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए, और न यह नतीजा ही निकालना चाहिए कि हम उन्हें परम्परागत रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। यह बात भी हमारे प्रयोजन से उतनी ही दूर है, जितनी वह। दूसरी बात यह कि

यद्यपि यह सच है कि हम सुधारक नहीं, बल्कि सिर्फ प्रेक्षक हैं, पर तो भी हम आलोचक की दृष्टि से प्रेक्षण किए बिना नहीं रह सकते, और परम्परागत यौन नैतिकता का समर्थन करना या उन उपायों को श्रेष्ठ कहना, जिनके द्वारा समाज ने जीवन में यौन-प्रवृत्ति की व्यावहारिक समस्याओं को व्यवस्थित करने का यत्न किया है, हमें असम्भव मालूम हुआ है। हम आसानी से यह दिखला सकते हैं कि दुनिया जिसे अपनी नैतिक नियमावली कहती है, उसके लिए जितनी कुर्बानी करनी पड़ती है, उतनी की पात्र वह नहीं है, और इसका व्यवहार न तो ईमानदारी से निर्धारित हुआ है, और न समझदारी से। हम अपने रोगियों को ये आलोचनाएं सुनने से नहीं रोकते। हम उन्हें यह आदत डालते हैं कि वे और सब मामलों की तरह यौन मामलों पर भी बिना किसी पूर्वग्रह के विचार कर सकें, और यदि इलाज के प्रभाव से स्वतन्त्र होने के बाद, वे असंयत यौन स्वच्छन्दता और पूर्ण निवृत्ति के बीच का कोई रास्ता चुन लेते हैं, तो हमें कोई परेशानी नहीं होती, चाहे फिर उसका कुछ भी परिणाम हो। हम यह कहते हैं कि जिस आदमी ने अपने बारे में सच्ची बात समझना और पहचानना सीख लिया है, उसे अब अनैतिकता के खतरों से लड़ने का बल प्राप्त हो गया है, चाहे उसका नैतिकता का मानदण्ड कुछ दृष्टियों से प्रचलित मानदण्ड से भिन्न ही क्यों न हो। प्रसंगत:, हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि हम स्नायु-रोग पैदा करने में इन्द्रिय संयम को बहुत अधिक महत्व न दे बैठें। उस तरह के सम्भोग से, जो बिना किसी कठिनाई के प्राप्त हो सकता है, कुंठा से और तत्पश्चात् कुंठा द्वारा प्रेरित राग-संचय से उत्पन्न रोगजनक स्थितियों में से बहुत थोड़ी-सी स्थितियों में ही, आराम मिल सकता है।

इस प्रकार, मनोविश्लेषण के चिकित्सा सम्बन्धी प्रभाव की व्याख्या हेम यह मानकर नहीं कर सकते कि यह रोगियों को यौन सम्भोग करने की खुली छूट देता है। आपको कोई और चीज भी देखनी होगी। मैं समझता हूं कि आपके इस अनुमान पर विचार करते हुए मैंने जो बातें कही थीं, उनमें से एक बात से आप सही रास्ते पर आ गए होंगे। सम्भवत: किसी अचेतन चीज के स्थान पर किसी चेतन चीज़ के आ जाने, अचेतन विचारों के चेतन विचारों में रूपान्तरित हो जाने, से ही हमारा कार्य सफल होता है। आपका खयाल सही है। बिलकुल यही स्थिति है। अचेतन का चेतन में विस्तार करके दमन दूर किए जाते हैं, लक्षण-निर्माण की अवस्थाएं दूर की जाती हैं, और रोगजनक द्वन्द्व के स्थान पर प्रकृत संघर्ष लाया जाता है, जिसमें इधर या उधर फैसला अवश्य होना है। हम अपने रोगियों के लिए कुछ नहीं करते। उन्हें ऐसा करते हैं कि उनमें एक यह मानसिक परिवर्तन होने लगे। यह परिवर्तन उनमें जितनी अधिक मात्रा में कर दिया जाता है, उतना ही अधिक लाभ हम उन्हें पहुंचा देते हैं। जहां कोई दमन, या इस जैसा कोई और मानसिक प्रक्रम नहीं होता, जिसे दूर करना हो, वहां हमारी चिकित्सा के करने योग्य कोई

भी काम नहीं होता।

हमारे प्रयत्नों का लक्ष्य अनेक सूत्रों के रूप में प्रकट किया जा सकता है, जैसे अचेतन को चेतन बनाना, दमनों को हटाना, स्मृति में खाली स्थानों को भरना; ये सब समान बातें हैं, पर शायद आप इस कथन से असन्तुष्ट हैं। आपने स्नायु-रोगी के स्वास्थ्य-लाभ की कुछ और ही कल्पना की थी। आपने सोचा था कि मनोविश्लेषण के परिश्रमपूर्ण कार्य के बाद वह बिलकुल ही नया आदमी बन जाएगा और अब आपसे यह कहा जा रहा है कि बात सिर्फ इतनी है कि उसमें जितना अचेतन पहले था अब कुछ कमी हो गई है, और जितना पहले चेतन था उसमें कुछ वृद्धि हो गई है। असलियत यह है कि शायद आप इस तरह के भीतरी परिवर्तन के महत्व को पूरी तरह समझ नहीं पाते। जिस स्नायु-रोगी का इलाज हो जाता है, वह सचमुच ही एक नया आदमी बन जाता है, यद्यपि मूलतः वह पहले की तरह ही होता है, अर्थात् वह अपने सर्वोत्तम रूप में आ जाता है। वह वैसा ही बन जाता है, जैसा सबसे अनुकूल परिस्थितियों में बना होता, परन्तु यह बहुत बड़ी चीज़ है। फिर, जब आपको वे सब बातें पता चलेंगी जो उसके मानसिक जीवन में यह मामूली-सा लगने वाला परिवर्तन लाने के लिए करनी होंगी, तब इन अनेक मानसिक सतहों के इन अन्तरों का अर्थ आपको अधिक समझ में आएगा।

मैं जरा-सा विषयान्तर करके यह पूछना चाहता हूं कि क्या आपको पता है कि 'नैमित्तिक चिकित्सा'[1] का क्या अर्थ है? नैमित्तिक चिकित्सा उस प्रक्रिया को कहते हैं जो रोग के अभिव्यक्त रूपों को छोड़कर रोग के कारण को दूर करने के लिए कोई कमज़ोर पहलू तलाश करती है। अब प्रश्न यह है कि मनोविश्लेषण नैमित्तिक चिकित्सा है या नहीं? इसका उत्तर सरल नहीं है, पर इससे हमें ऐसे प्रश्नों की व्यर्थता अच्छी तरह समझने का मौका मिल सकता है। जहां तक इसका प्रश्न है कि मनोविश्लेषण चिकित्सा का लक्ष्य लक्षणों को तत्काल दूर करना नहीं होता; उस सीमा तक यह नैमित्तिक चिकित्सा के रूप में की जाती है। और दृष्टियों से यह कहा जा सकता है कि यह नैमित्तिक चिकित्सा नहीं, क्योंकि हम कारण-शृंखला पर पीछे की ओर चलते-चलते दमन से परे नैसर्गिक पूर्वप्रवृत्तियों, शरीर-रचना, उनकी आपेक्षिक तीव्रता और उनके परिवर्धन के मार्ग में होने वाले विपथनों तक पहुंचे हैं। अब मान लीजिए कि किसी रासायनिक साधन से इस मनोयंत्र पर असर डाला जा सकता, किसी खास समय उपलब्ध राग की मात्रा को बढ़ाया-घटाया जा सकता, या एक आवेग की ताकत छीनकर दूसरे आवेग की ताकत बढ़ाई जा सकती, तो यह शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से नैमित्तिक चिकित्सा होती, और हमारा विश्लेषण उसका अनिवार्य आरम्भिक कार्य होता। जैसा कि आप जानते हैं,

---

१. Casual therapy.

इस समय राग के प्रक्रमों पर ऐसे किसी प्रभाव का प्रश्न नहीं है। हमारी मानसिक चिकित्सा इस शृंखला के एक और स्थान पर हमला करती है। यह स्थान बिलकुल वही नहीं है, जहां रोग के अभिव्यक्त रूप जमे हुए दिखाई देते हैं, पर फिर भी यह लक्षणों से बहुत पीछे है। यह स्थान बड़ी विशिष्ट परिस्थितियों में हमारे काबू में आ जाता है।

तो, रोगी में जो कुछ अचेतन है, उसे चेतना में लाने के लिए हमें क्या करना पड़ता है? किसी समय हमने समझा था कि यह बड़ा सरल काम होगा। हमें सिर्फ इतना करना होगा कि हम इस अचेतन वस्तु को पहचान लें और फिर रोगी को यह बता दें कि यह वस्तु क्या है, परन्तु हम पहले ही यह समझ चुके हैं कि वह हमारी अदूरदर्शिता थी। उसमें जो कुछ अचेतन है, उसके बारे में हमें जानकारी होना, और रोगी को जानकारी होना एक ही बात नहीं है। जब हम उससे वे बातें कहते हैं जो हम जानते हैं, तो वह उन्हें अपने निज के अचेतन विचारों **के स्थान पर** नहीं अपनाता, बल्कि उनके **साथ-साथ** अपनाता है; और उसमें कुछ भी परिवर्तन नहीं होता। हमें इस अचेतन सामग्री पर स्थानवृत्तीय दृष्टि से विचार करना पड़ता है। हमें उसकी स्मृति में वह असली जगह खोजनी पड़ती है, जिसमें इसका दमन शुरू में आरम्भ हुआ। पहले इस दमन को हटाना होगा, और फिर सीधे ही अचेतन विचार के स्थान पर चेतन विचार लाया जा सकता है। इस तरह के दमन को कैसे हटाया जाए? यहां हमारे कार्य की दूसरी कला प्रारम्भ होती है। प्रथम तो दमन को खोजना, और फिर उस प्रतिरोध को हटाना, जो इस दमन को कायम रखता है।

इस प्रतिरोध से कैसे पिंड छूट सकता है? एक ही तरीका है: इसका पता लगाकर, और रोगी को इसके बारे में बताकर। प्रतिरोध भी किसी दमन में से पैदा होता है—या तो यह उसी दमन में से पैदा होता है, जिसे हम दूर करने की कोशिश कर रहे थे, या किसी पहले वाले दमन से पैदा होता है। यह उस प्रति आवेश द्वारा स्थापित किया जाता है जो प्रतिकर्षी आवेग[1] का दमन करने के लिए पैदा हुआ था। इस प्रकार हम ठीक वही कार्य कर रहे हैं जो पहले करने की कोशिश कर रहे थे। हम रोगी का निर्वचन करते ह, उसे ठीक-ठीक पहचानते हैं, और जानकारी देते हैं; पर इस बार हम यह काम ठीक स्थान पर कर रहे हैं। प्रति आवेश या प्रतिरोध अचेतन का भाग नहीं, बल्कि अहम् का भाग है, जो हमारे साथ सहयोग करता है और इसके वास्तव में चेतन न होने पर भी यही बात रहती है। हमें मालूम है कि यहां 'अचेतन' शब्द का अर्थ एक ओर तो एक घटना या क्रिया, और दूसरी ओर एक संस्थान होने के कारण कठिनाई पैदा होती है। यह बात बड़ी अस्पष्ट और

---

१. Repellent impulse.

कठिन मालूम होती है, पर आखिरकार यह उस बात को दोहराना मात्र है, जो हमने पहले कही थी। इस बात पर हम बहुत पहले पहुंच चुके हैं। तो, इस प्रकार हम यह आशा करते हैं कि जब हम अपने निर्वचन-कार्य द्वारा प्रतिरोध और प्रति-आवेश को पहचान लेंगे, तब यह प्रतिरोध दूर हो जाएगा, और प्रति आवेश हट जाएगा। ऐसा कर सकने के लिए हमारे पास कौन-से नैसर्गिक नोदक (अर्थात् धकेलने वाले) बल हैं ? प्रथम तो, रोगी की स्वास्थ्य-लाभ की इच्छा, जिससे प्रेरित होकर उसने हमारे सहयोग से विश्लेषण आरंभ किया और दूसरे उसकी बुद्धि की मदद जिसे हम अपने निर्वचन द्वारा मदद देते है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि रोगी के लिए प्रतिरोध को अपनी बुद्धि से पहचानना और अपने अचेतन में से इसके संवादी मनोबिंब को पकड़ना तब अधिक आसान हो जाता है, जब हमने उसे कोई ऐसा मनोबिंब प्रस्तुत कर दिया हो जो इसके विषय में उसमें आशाएं पैदा कर दे। यदि मैं आपसे कहूं : "आकाश की ओर देखिए तो आपको एक गुब्बारा दिखाई देगा", तो आपको गुब्बारा उस समय की बनिस्बत अधिक जल्दी दिखाई दे जाएगा जब मैं आपसे यह कहूं कि ऊपर देखकर बताइए कि क्या दिखाई देता है। सूक्ष्म-दर्शी या माइक्रोस्कोप सबसे प्रथम बार देखने वाले छात्र को शिक्षक यह बता देता है कि उसे क्या देखना है; अन्यथा उसे कुछ भी नहीं दिखाई देता; यद्यपि कोई चीज वहां है और काफी साफ दिखाई देती है।

और अब तथ्य को लीजिए। बहुत-से स्नायु-रोगियों, जैसे हिस्टीरिया, चिंता-दशाएं, मनोग्रस्तता-रोग, में हमारी परिकल्पना पूरी उतरती है। इस प्रकार, दमन को खोजकर, प्रतिरोधों का पता लगाकर, दमित को निर्दिष्ट करके कार्य में सफलता पाना, प्रतिरोधों को दूर करना, दमन को हटा देना और अचेतन वस्तु को चेतन वस्तु में बदल देना सचमुच सम्भव है। जब हम यह काम करते हैं तब हमें पता चलता है कि प्रत्येक प्रतिरोध को दूर करने के समय रोगी की आत्मा में एक भीषण युद्ध होने लगता है—यह उसी मैदान में लड़ रही दो प्रवृत्तियों के बीच प्रति आवेश को कायम रखने में यत्नशील प्रेरक भावों और उसे दूर करने को तत्पर प्रेरक-भावों के बीच प्रकृत मानसिक संघर्ष है। इनमें से पहले प्रेरक भाव वे पुराने प्रेरक भाव होते हैं जिन्होंने शुरू में दमन को कायम किया था। दूसरे प्रेरक भावों में वे नए प्रेरक भाव हैं जो कुछ ही समय पहले प्राप्त हुए हैं, और जिनसे आशा है कि वे इस द्वंद्व का हमारे पक्ष में फैसला कर देंगे। हमें दमन के पुराने द्वंद्व को फिर से जीवित करने में, इतने समय पहले निर्णीत प्रश्न को दुबारा विचार के लिए पेश करने में सफलता मिली है। हमने इसमें जो नया कार्य किया है, वह प्रथम तो यह है कि हमने यह दिखला दिया कि पहले वाले समाधान से रोग पैदा हुआ, और यह आशा दिलाई कि इससे भिन्न समाधान से यह स्वास्थ्य फिर प्राप्त होगा; और दूसरे हमने यह जतला दिया कि जब इन आवेगों को शुरू में अस्वीकार किया गया

था, तब से परिस्थितियां बहुत बदल चुकी थीं। उस समय अहम् दुर्बल और शैशवीय था, और शायद राग की प्रवृत्तियों को अपने लिए खतरनाक मानकर भय से संकुचित होता था। आज वह सबल और अनुभवी हो चुका है, और साथ ही चिकित्सक के रूप में एक सहायक उसके पास है। हम यह आशा कर सकते हैं कि यह पुनर्जीवित द्वंद्व दमन की अपेक्षा किसी अच्छे परिणाम पर पहुंचेगा; और जैसा कि कहा जा चुका है, हिस्टीरिया, चिंता-स्नायु-रोग और मनोग्रस्तता-रोग में प्राप्त सफलता से हमारे कथन की सचाई सिद्ध होती है।

रोग के कुछ अन्य रूप भी हैं, जिनमें हमारा इलाज कभी सफल नहीं होता, यद्यपि अवस्थाएं एक-सी होती हैं। उनमें भी शुरू में अहम् और राग में द्वन्द्व हुआ था, और फिर दमन हुआ था, यद्यपि इस द्वन्द्व में और स्थानान्तरण स्नायु-रोगों के द्वन्द्व में स्थानवृत्तीय फर्क थे। उनमें भी रोगी के जीवन का वह स्थान खोजा जा सकता है, जिसमें दमन हुए। हम वही विधि अपनाते हैं, वही आश्वासन देने को तैयार हैं; रोगी को यह बतलाकर कि वह क्या चीज खोजे, उसे वही सहायता पेश करते हैं; और यहां भी जिस समय दमन हुए थे, उसके और आज के बीच का समयान्तर द्वन्द्व का अधिक अच्छा परिणाम होने के लिए अनुकूल है, और फिर भी हम उसके एक भी प्रतिरोध को हटाने या एक भी दमन को दूर करने में सफल नहीं हो सकते। ये रोगी, जो पैरानोइआ, मैलांकोलिया (उदासी रोग) और डेमेन्शिया प्रीकौक्स के रोगी होते हैं, मनोविश्लेषण के इलाज के लिए चिकने घड़े सिद्ध होते हैं। इसका क्या कारण हो सकता है? बुद्धि की कमी इसका कारण नहीं है। यह ठीक है कि विश्लेषण के लिए बौद्धिक क्षमता की कुछ मात्रा स्वभावतः आवश्यक है; पर उदाहरण के लिए, बड़े हाजिर-जवाब डिडेक्टिव-पैरानोइआ-रोगी में इस दृष्टि से कोई कमी नहीं होती। इसी तरह, दूसरे प्रेरक बल भी सदा अनुपस्थित नहीं होते; उदाहरण के लिए, पैरानोइआ-रोगियों के मुकाबले उदासी रोगी इस बात को बहुत अधिक अनुभव करते हैं कि वे रोगी हैं, और उनके कष्टों का कारण यह रोग है; पर इसके कारण उनपर अधिक आसानी से प्रभाव नहीं पड़ता। इस तरह हमारे सामने एक ऐसा तथ्य आ जाता है जिसे हम नहीं समझ पाते, और इसीलिए यह प्रश्न पैदा होता है कि क्या हमने दूसरे स्नायु-रोगों में सफलता पाने के लिए आवश्यक सब अवस्थाओं को वास्तव में समझ लिया है?

जब हम हिस्टीरिया और मनोग्रस्तता के रोगियों पर विचार करते हैं, तब हमारे सामने शीघ्र ही एक दूसरा बिलकुल असम्भावित तथ्य आ जाता है। कुछ समय इलाज होने के बाद हम देखते हैं कि इन रोगियों का हमारे प्रति बड़ा अजीब व्यवहार होता है। हमने सचमुच समझा था कि हमने इलाज सम्बन्धी प्रेरक बलों पर विचार कर लिया है, और अपने तथा रोगी के बीच की स्थिति को इतनी अच्छी तरह स्पष्ट कर लिया है कि वह गणित की राशि के समान सन्तुलित हो गई है।

पर अब फिर कोई ऐसी चीज़ बीच में आ गई मालूम होती है, जो हमारी गणना से बिलकुल छूट गई थी। इस नई और अप्रत्याशित बात के खुद बहुत-से पहलू और उलझनें हैं। सबसे पहले मैं इसके अधिक आम और सरल रूप आपके सामने पेश करूंगा।

तो, हम देखते हैं कि रोगी में, जिसके मन में अपने को परेशान करने वाले द्वन्द्वों के समाधान के अलावा कोई और बात नहीं होनी चाहिए, डाक्टर के व्यक्तित्व में विशेष दिलचस्पी पैदा होने लगती है। उसे इस व्यक्ति से सम्बन्धित हर बात अपने निजी मामलों से अधिक महत्व की लगने लगती है, और उसके रोग से उसका ध्यान हटाने लगता है। तब रोगी के साथ सम्बन्ध कुछ समय के लिए बड़े मधुर हो जाते हैं। यह बिलकुल आपकी इच्छा के अधीन चलने लगता है, जहां मौका मिले वहीं अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करने की कोशिश करता है, चरित्र की निर्मलता और अन्य ऐसे श्रेष्ठ गुण प्रदर्शित करता है, जिनकी हमने उसमें पहले शायद कल्पना नहीं की थी। इस प्रकार, रोगी के बारे में विश्लेषक की राय बहुत अच्छी हो जाती है और वह ऐसे गुणी व्यक्ति का सहायक बनने को अपना सौभाग्य समझने लगता है। यदि डाक्टर को रोगी के रिश्तेदारों से मिलने का मौका पड़ता है, तो उनसे यह सुनकर उसे सन्तोष होता है कि यह समादर दोतरफा है। रोगी अपने घर पर विश्लेषक की प्रशंसा करता और उसमें नए-नए गुण बताता हुआ कभी नहीं थकता। "वह तो आपके पीछे पागल हो गया है, उसे आप पर पूरा भरोसा है; आपकी कही हुई हर बात उसके लिए ईश्वर की वाणी जैसी है,"—ये बातें रिश्तेदार उसे बताते हैं। कोई अधिक तीव्र दृष्टि वाला व्यक्ति यह भी कह देता है: "वह आपके सिवाय और कोई बात ही नहीं करता, जिससे जी बिलकुल ऊब जाता है; वह हर समय आपकी ही बातों के उद्धरण देता है।"

हमें यही आशा करनी चाहिए कि डाक्टर में इतनी विनय होगी कि वह रोगी द्वारा की हुई अपनी प्रशंसा का यह मतलब बताएगा कि रोगी को मेरे बताए हुए तरीकों से स्वास्थ्य-लाभ की आशा हो गई है, और इस इलाज में होने वाले आश्चर्यजनक रहस्योद्घाटनों और उनके मुक्तिकारक प्रभाव के परिणामस्वरूप रोगी का बौद्धिक क्षितिज विस्तृत हो गया है। इन अवस्थाओं में विश्लेषण भी बड़े अच्छे ढंग से आगे बढ़ता है। रोगी अपने सामने पेश किए गए सुझावों को समझता है, इलाज के लिए आवश्यक कार्यों पर ध्यान देता है, आवश्यक सामग्री—उसकी पुरानी स्मृतियां और साहचर्य—बड़ी मात्रा में उपलब्ध हो जाती है। वह विश्लेषक को उसके निर्वचन की निश्चितता और सत्यता से आश्चर्य में डाल देता है, और विश्लेषक को यह देखकर बड़ा सन्तोष होता है कि रोगी व्यक्ति उन सारे नए मनोवैज्ञानिक विचारों को कितनी आसानी से और तत्परता से स्वीकार कर लेता है, जिनपर बाहरी दुनिया में स्वस्थ व्यक्ति इतना गरमागरम वाद-विवाद

करते हैं। विश्लेषक के इस मधुर सम्बन्ध के साथ-साथ रोगी की दशा में भी सामान्य सुधार दिखाई देता है, जिसकी सब ओर से वैज्ञानिक पुष्टि हो जाती है।

पर ऐसी बहार सदा नहीं रह सकती। एक दिन आता है, जब कि घटा घिर आती है, विश्लेषण में कठिनाइयां पैदा होने लगती हैं। रोगी कहता है कि मुझे और कोई बताने लायक बात नहीं सूझती। स्पष्ट यही दिखाई देता है कि अब उसे इस कार्य में दिलचस्पी नहीं रही, और वह अपने को दिए गए इस आदेश की बीच-बीच में उपेक्षा कर रहा है कि अपने मन में आने वाली प्रत्येक बात वह कह डाले, और अपने मन में आने वाले आलोचनात्मक आक्षेपों में से किसीसे न दबे। उसके व्यवहार का रूप इलाज की स्थिति के कारण ऐसा नहीं होता। ऐसा लगता है कि जैसे उसने डाक्टर से उस आशय का इकरार ही नहीं किया था। स्पष्टतः वह किसी और बात में व्यस्त है, और साथ ही यह बात वह किसीसे कहना भी नहीं चाहता। इस स्थिति में इलाज को खतरा है। साफ़ बात यह है कि कोई बहुत प्रबल प्रतिरोध पैदा हो गया है। फिर, क्या बात हो सकती है ?

यदि इस स्थिति को स्पष्ट किया जा सके तो यह पता चलता है कि इस गड़-बड़ी का कारण यह है कि रोगी ने अनुराग की कुछ तीव्र भावनाएं डाक्टर पर स्थानान्तरित कर दी हैं, और इसका कारण न तो डाक्टर का व्यवहार है और न इलाज से पैदा होनेवाला सम्बन्ध। यह अनुरागपूर्ण भावना जिस रूप में प्रकट होती है, और जिस लक्ष्य पर पहुंचना चाहती है, वे स्वभावतः दोनों व्यक्तियों के बीच की स्थिति के हालात पर निर्भर होते हैं। यदि उनमें से एक, जवान लड़की हो और दूसरा अभी नौजवान-सा ही हो, तो उनमें प्रकृत प्रेम की-सी धारणा पैदा होती है। यह स्वाभाविक लगता है कि कोई लड़की ऐसे आदमी के साथ प्रेम करने लगे जिसके साथ वह बहुत समय एकान्त में रहती है और जिससे वह अपनी बहुत गुप्त बातें भी कह सकती है, और जो अधिकारपूर्वक सलाह देने वाले की स्थिति में है—हम सम्भवतः इस तथ्य को भूल जाएंगे कि स्नायु-रोग से पीड़ित लड़की में प्रेम करने की क्षमता में कुछ गड़बड़ी की आशा करनी ही चाहिए। दोनों व्यक्तियों की बीच की स्थिति इस कल्पित उदाहरण से जितनी अधिक भिन्न होगी, उतना ही कठिन यह बताना होगा कि अन्य रोगियों में भी इसी तरह की भावना क्यों दिखाई देती है। यदि कोई जवान स्त्री, जो अपने विवाह से सुखी नहीं हुई, अपने चिकित्सक के प्रति गंभीर प्रेमावेश से अभिभूत मालूम हो, जो कि अभी अविवाहित है, और वह तलाक लेने के लिए और अपने को उसको अर्पित करने के लिए तैयार हो जाए, या जहां परिस्थितियों के कारण ऐसा न हो सकता हो, वहां उसके साथ गुप्त प्रेम सम्बन्ध रखने लगे तो यह बात फिर भी समझ में आ सकती है। सच पूछिए तो इस तरह की बात मनोविश्लेषण से भिन्न क्षेत्र में हो चुकी है, पर इस स्थिति में स्त्रियां और लड़कियां बड़े आश्चर्यजनक रहस्य प्रकट करती हैं, जिनसे

यह पता चलता है कि चिकित्सा की समस्या पर उनका बड़ा अजीब रुख है। वे सदा यह समझती रही हैं कि प्रेम के अलावा और किसी चीज़ से उनका इलाज नहीं होगा, और इलाज के आरम्भ से उन्हें यह आशा थी कि जो चीज उन्हें अब तक जीवन में नहीं मिल सकी, वह अब आखिरकार इस सम्बन्ध से मिल जाएगी। इस आशा से ही उन्होंने अपने सब विचार प्रकट करने में आने वाली सारी कठिनाइयों को दूर किया, और विश्लेषण के लिए इतना कष्ट उठाया। इतनी बात हम और जोड़ दें: 'और जिन बातों को समझना आम तौर से इतना कठिन है, उन्हें इतनी आसानी से समझ लिया था।' पर इस तरह की स्वीकारोक्ति से हम अवाक् रह जाते हैं। हमारे सब हिसाब-किताब बेकार हो जाते हैं। कहीं ऐसा तो नहीं कि हमने सारी समस्या के सबसे महत्वपूर्ण अंश को छोड़ दिया है?

और सचमुच यही बात है। हमें जितना अधिक अनुभव प्राप्त हो जाता है, हमारे लिए इस नए कारक का, जिसने सारी समस्या को बदल दिया और हमारी वैज्ञानिक गणनाओं को तुच्छ बना दिया, मुकाबला करना उतना ही कम सम्भव हो जाता है। शुरू में कुछ बार तो आदमी यह सोच सकता है कि एक आकस्मिक घटना के रूप में, जो विश्लेषण के प्रयोजन से असम्बन्धित है और जिसके पैदा होने का इसके साथ कोई सिलसिला नहीं जुड़ता, एक बाधा आ गई है जिसपर आकर विश्लेषण का इलाज व्यर्थ हो गया है। पर जब यह होता है कि चिकित्सक के प्रति इस तरह का अनुराग हर नए रोगी में सदा दिखाई देता है और बहुत प्रतिकूल अवस्थाओं में भी, और बड़ी अटपटी परिस्थितियों में भी सदा दिखाई देता है—जैसे बुजुर्ग स्त्रियों में सफेद दाढ़ी वाले लोगों के प्रति, और ऐसे अवसरों पर भी जब हमें बुद्धि से यही निश्चय होता है कि वहां कोई प्रलोभन नहीं है—तब हमें आकस्मिक घटना का विचार छोड़ देना पड़ता है और यही मानना पड़ता है कि यह अपने आप में एक घटना है, जो रोग के स्वरूप के साथ सारतः जुड़ी हुई है।

इस प्रकार जो नया तथ्य मानने को अनिच्छापूर्वक मजबूर होना पड़ता है, उसे हम **स्थानान्तरण** कहते हैं। इससे हमारा आशय यह है कि भावनाएं डाक्टर के व्यक्तित्व पर स्थानान्तरित कर दी जाती हैं, क्योंकि हम यह नहीं समझते कि इलाज की स्थिति को ऐसी भावनाओं के जन्म का कारण कहा जा सकता है। हमें यह सन्देह करने की अधिक गुंजाइश मालूम होती है कि भावना पनपाने की इस सारी तत्परता का जन्म एक और जगह होता है; कि यह रोगी में पहले ही बन चुकी थी और इलाज द्वारा प्रस्तुत अवसर का लाभ उठाकर अपने आपको डाक्टर के व्यक्तित्व पर स्थानांतरित कर लिया गया है। यह स्थानान्तरण या तो आवेशपूर्ण प्रेम-याचना के रूप में प्रकट होता है, या इससे कुछ हलके रूप ग्रहण कर सकता है। जहां लड़की जवान और पुरुष बुजुर्ग है, वहां पत्नी या रखैल बनने की इच्छा के स्थान पर लाड़ली पुत्री के रूप में स्वीकार किए जाने की इच्छा प्रकट हो सकती है, या

रागात्मक इच्छा अपने रूप में थोड़ा परिवर्तन करके स्थायी और आदर्श आत्मिक[१] मित्रता की इच्छा के रूप में सामने आ सकती है। बहुत-सी स्त्रियां यह समझती है कि स्थानान्तरण को ऐसा उदात्त रूप कैसे दिया जाए और इसको इस तरह कैसे ढाला जाए कि इसके अस्तित्व का एक तरह से औचित्य सिद्ध होने लगे। कुछ स्त्रियां इसे इसके स्थूल मौलिक, प्राय: असम्भव, रूप में प्रकट करती हैं, पर सार रूप में यह सदा एक ही चीज होती है और इसका जन्म उसी स्रोत से होता है।

यह सोचने से पहले कि इस नए तथ्य को हम कहां जमाएं, हम इसका वर्णन थोड़ा विस्तार से करेंगे। पुरुष रोगियों में क्या होता है ? उनके साथ कम से कम यह आशा तो की ही जा सकती है कि लिंग-भेद और लिंग-आकर्षण का परेशानी पैदा करने वाला अंश नहीं होगा, पर यहां भी उत्तर बहुत कुछ वही है जो स्त्रियों के मामले में था—चिकित्सक के प्रति वही अनुराग, उसके गुणों का वही कीर्ति-गान, उसके स्वहितों को उसी तरह अपनाना, उससे सम्बन्धित सब व्यक्तियों से वही ईर्ष्या। पुरुष और पुरुष के बीच स्थानान्तरण के उदात्त स्वरूप अधिक मिलते हैं और सीधे यौन सम्बन्ध बहुत कम मिलते हैं। इनकी मात्रा इस बात पर निर्भर है कि रोगी की व्यक्त समकामिता दूसरे तरीकों के, जिनसे यह घटक निसर्ग-वृत्ति अपनी अभिव्यक्ति कर सकती है, कहां तक अधीन है। इसके अलावा पुरुष-रोगियों में ही विश्लेषक को स्थानान्तरण का वह रूप अधिक दिखाई देता है जो ऊपर से, उस वर्णन के विरुद्ध मालूम होता है जो अभी दिया गया है, अर्थात् विरोधी या **ऋणात्मक** स्थानान्तरण।

प्रथम तो हमें फौरन यह समझ लेना चाहिए कि स्थानान्तरण रोगी में इलाज के शुरू से मौजूद होता है, और कुछ समय तक वह विश्लेषण-कार्य का सबसे प्रबल प्रेरक होता है। तब तक यह दिखाई नहीं देता और इसके विषय में परेशान होने की आवश्यकता नहीं होती, जब तक इसका प्रभाव उस काम के अनुकूल होता है, जिसमें दो व्यक्ति सहयोग कर रहे हैं। जब यह प्रतिरोध के रूप में बदल जाता है, तब इसकी ओर ध्यान देना पड़ता है, और तब यह प्रतीत होता है कि इसमें दो भिन्न और परस्पर विरोधी मानसिक अवस्थाएं बीच में आ गई हैं, और उन्होंने इलाज के प्रति उसके रुख को बदल दिया : प्रथम तो जब अनुरागमय आकर्षण इतना प्रबल हो गया है, और उसका जन्म यौन इच्छा से होने के चिह्न इतने स्पष्ट दीखने लगे हैं कि इससे अपने विरुद्ध एक आन्तरिक विरोध पैदा होना अनिवार्य था; और दूसरे जब यह अनुरागमय भावना के बजाय विरोधपूर्ण भावना का रुख होता है। साधारणतया विरोधपूर्ण भावनाएं अनुरागपूर्ण भावनाओं के बाद और उनकी आड़ में दिखाई देती हैं। जब वे दोनों इकट्ठी पैदा होती हैं, तब वे भावना

---

१. Platonic.

की उस उभयता का बहुत अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करती है जो दूसरे मनुष्यों के साथ हमारे अधिकतर घनिष्ठ सम्बन्धों की नियामक होती हैं। इसलिए विरोधी भावनाएं भावना का वैसा ही लगाव सूचित करती है, जैसा अनुरागपूर्ण भावना का। इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि विश्लेषक-विरोधी भावनाओं को स्थानान्तरण कहना उचित है, क्योंकि इलाज की स्थिति में उनके पैदा होने का कोई पर्याप्त मौका नहीं है। ऋणात्मक स्थानान्तरण को इस रूप में मानने की आवश्यकता से धनात्मक या अनुरागपूर्ण स्थानान्तरण के विषय में पहले दिए गए हमारे इसी तरह के विचार की पुष्टि होती है।

स्थानान्तरण कहां से पैदा होता है, इससे हमारे सामने कौन-सी कठिनाइयां आ जाती हैं, हम उन्हें कैसे हल कर सकते हैं, और अन्त में हम इससे क्या लाभ उठा सकते है? इन प्रश्नों का ठीक-ठीक ढंग से उत्तर विश्लेषण की विधि का टेक्निकल विवरण देकर ही किया जा सकता है। यहां तो मैं उनका संकेतमात्र कर सकता हूं। यह तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता कि हम अपने स्थानान्तरण के प्रभाव के वश में होकर रोगी जो कुछ कराना चाहता है, उसे करने लगें। उन्हें लापरवाही से ठुकरा देना मूर्खता होगी और रोष से ठुकरा देना और भी बड़ी मूर्खता। रोगी को यह जतलाकर स्थानान्तरण को दूर किया जा सकता है कि उसकी भावनाएं वर्तमान स्थिति में नहीं पैदा हुई हैं, और वे असल में चिकित्सक के व्यक्तित्व से सम्बन्ध नहीं रखतीं, बल्कि वह किसी ऐसी चीज़ को फिर पैदा कर रहा है, जो बहुत पहले उसके साथ हुई थी। इस तरह हम उसकी **पुनरावृत्ति** को **पूर्वस्मरण** में बदलने के लिए कहते हैं। तब स्थानान्तरण, चाहे वह अनुरागपूर्ण था या विरोधपूर्ण था, जो इलाज के लिए सबसे बड़ा खतरा बन गया था, अब इसका सर्वोत्तम उपकरण बन जाता है, और इसकी सहायता से हम आत्मा के बन्द दरवाजों को खोल सकते है। पर आप पर इस असम्भावित घटना से लगे आघात से जो बुरा असर पड़ा होगा, उसे दूर करने के लिए कुछ शब्द कहना चाहता हूं। आखिरकार, हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि रोगी के जिस रोग का विश्लेषण करने की जिम्मेदारी हमने उठाई है, वह कोई अन्तिम रूप में तैयार पूर्ण वस्तु नहीं है, बल्कि वह जीवित वस्तु की तरह सारे समय बढ़ रही है, और अपना परिवर्धन जारी रखती है। पर ज्योंही इलाज रोगी पर असर डालने लगता है, त्योंही यह प्रतीत होता है कि इसके बाद रोग की सारी उत्पादकता एक दिशा में केन्द्रित हो जाती है और वह है चिकित्सक के प्रति संबंध। तब स्थानान्तरण की तुलना वृक्ष की दारु[1] और छाल के बीच वाले एधास्तर[2] से की जा सकती है, जिससे नए ऊतक का निर्माण और तने के व्यास में वृद्धि होती है। ज्योंही स्थानान्तरण इस रूप में आ जाता है, त्योंही रोगी के पूर्वस्मरणों का विश्ले-

---

१. Wood. २. Cambium layer.

षण गौण पड़ जाता है। तब यह कहना ग़लत नहीं है कि अब हम पुराने रोग का सामना नहीं कर रहे, बल्कि एक नए पैदा हुए और रूपान्तरित स्नायु-रोग का सामना कर रहे हैं, जो पहले वाले रोग के स्थान में आ गया है। पुराने रोग का यह नया संस्करण अपने शुरू होने के समय से हमारी नजर में है। हम इसे पैदा होते और बढ़ते देखते हैं, और इससे इस कारण विशेष रूप से परिचित हैं क्योंकि इसमें हम स्वयं ही केन्द्र हैं। रोगी के सब लक्षणों का पहले वाला अर्थ खत्म हो गया है, और उन्होंने एक नया अर्थ अपना लिया है, जो स्थानान्तरण के साथ उनके सम्बन्ध में निहित है; अथवा सिर्फ वे लक्षण शेष रह गए हैं, जो इस तरह नए अर्थ के अनुकूल बन सकते थे। इस नए कृत्रिम रूप से उत्पन्न स्नायु-रोग पर विजय, इलाज से पहले मौजूद रोग को दूर करने, अर्थात् चिकित्सा-कार्य को पूरा करने, के साथ ही होती है। जो व्यक्ति प्रकृत हो गया है, और चिकित्सक के साथ अपने सम्बन्ध दमित नैसर्गिक प्रवृत्तियों के प्रभाव से मुक्त हो गया है, वह अपने जीवन से चिकित्सक के हट जाने पर भी वैसा ही बना रहता है।

स्थानान्तरण का हिस्टीरिया, चिन्ता-हिस्टीरिया और मनोग्रस्तता-रोग के इलाज में बहुत महत्वपूर्ण और बिलकुल केन्द्रीय महत्व है, और इसलिए इनको 'स्थानान्तरण स्नायु-रोग' समूह में इकट्ठा रखना उचित ही है। जिस व्यक्ति ने मनोविश्लेषण के अनुभव से स्थानान्तरण के तथ्य की सही धारणा बना ली है, उसे दबे हुए आवेगों के स्वरूप के बारे में, जिन्होंने लक्षणों के रूप में अपने बाहर निकलने का एक रास्ता बना लिया है, फिर कभी सन्देह नहीं हो सकता, और उसे उनके रागात्मक स्वरूप के बारे में इससे बड़े किसी प्रमाण की आवश्यकता नही होगी। हम यह कह सकते हैं कि हमारा यह विश्वास स्थानान्तरण की घटना का मूल्यांकन करने से अन्तिम रूप से और सुनिश्चित रूप से सिद्ध हो जाता है, कि लक्षणों का अर्थ यह है कि वे राग की स्थानापन्न परितुष्टि हैं।

पर अब हमें इलाज के प्रक्रम के बारे में अपने पहले वाले गतिकीय अवधारण को सही करना होगा, और नई खोज के साथ इसका मेल बिठाना होगा। जब रोगी को प्रतिरोधों के साथ, जो हमने विश्लेषण द्वारा उसमें पता लगाए हैं, प्रकृत द्वन्द्व में जूझना पड़ता है, तब उसे स्वास्थ्य-लाभ की ओर ले जाने वाले हमारे सोचे हुए निश्चय की ओर धकेलने के लिए एक प्रबल नोदक (या धकेलने वाले) बल की आवश्यकता होती है; अन्यथा, हो सकता है कि वह पिछले परिणाम की पुनरावृत्ति करने का ही फैसला कर ले और जो चीज उठकर चेतना में आ गई थी, उसे फिर दमन के प्रभाव में सरक जाने दे। इस द्वन्द्व का परिणाम उसकी बौद्धिक अंतर्दृष्टि से तय नहीं होगा—ऐसे कार्य की सिद्धि के लिए न तो यह काफ़ी प्रबल है और न काफी मुक्त—बल्कि चिकित्सक के साथ उसके सम्बन्ध से और सिर्फ इस सम्बन्ध से ही निर्धारित होगा। जहां तक उसका स्थानान्तरण धनात्मक है, वहां तक यह

चिकित्सक को अधिकार युक्त करता है, अपने आपको उसकी खोजों और उसके विचारों में श्रद्धा के रूप में बदल लेता है। इस तरह का स्थानान्तरण या ऋणात्मक स्थानान्तरण न हो तो चिकित्सक और उसकी युक्तियों की ओर रोगी कान भी नहीं देगा। श्रद्धा अपने जन्म का इतिहास दोहराती है। यह प्रेम से पैदा होती है और शुरू में इसे किन्हीं दलीलों की आवश्यकता नहीं होती। बहुत बाद में यह दलीलों की ओर ध्यान देती है, पर उनपर आलोचनात्मक विचार तभी करती है जब वे किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा पेश की गई हो जो प्रिय है। इस सहारे के न होने पर रोगी के लिए दलीलों का कोई महत्व नहीं होता, और जीवन में भी अधिकतर लोगों के लिए उनका कोई महत्व नहीं होता। इसलिए मनुष्य की बुद्धि पर भी वहीं तक असर डाला जा सकता है जहां तक वह आलम्बनों को राग से आच्छादित करने में समर्थ है, और हमें समझ-बूझकर यह आशंका करनी चाहिए कि उसकी स्वरति की मात्रा उस पर विश्लेषण की सर्वोत्तम विधि का प्रभाव पड़ने में भी रुकावट बनेगी।

आलम्बन-आच्छादन में दूसरे व्यक्तियों के प्रति राग को विकीर्ण करने की क्षमता निस्संदेह सब प्रकृत लोगों में मौजूद मानी जा सकती है। तथाकथित स्नायु-रोगों की स्थानान्तरण की प्रवृत्ति एक व्यापक विशेषता का अपवाद रूप से होने वाला तीव्र रूप मात्र है। यदि इतने महत्व के और व्यापक मानवीय चरित्र-गुण को कभी न देखा गया होता और उसका उपयोग न किया गया होता तो यह बड़ी विचित्र बात होती, और इसे सचमुच देखा गया है। बर्नहीम ने बड़े सही और स्पष्ट विचार द्वारा सम्मोहन सम्बन्धी व्यक्त रूपों का सिद्धान्त इसी उपपत्ति पर खड़ा किया कि सब मनुष्य कम या अधिक मात्रा में आदेश के वशीभूत हो जाते हैं, वे 'आदेशवश्य' होते हैं। जिसे उसने आदेशवश्यता कहा था, वह स्थानान्तरण की प्रवृत्ति के अलावा और कुछ नहीं है, पर उसे बहुत तंग दायरे में रखने पर यह बात सच है कि ऋणात्मक स्थानान्तरण इसके क्षेत्र के भीतर नहीं आता। पर बर्नहीम यह कभी नहीं बता सका कि आदेश वास्तव में क्या हैं, या वे कैसे पैदा होते हैं। उसके लिए यह एक स्वयंसिद्ध तथ्य था और इसके पैदा होने की वह कोई व्याख्या नहीं कर सकता था। वह यह नहीं पहचान पाया कि 'आदेशवश्यता' यौनवृत्ति पर राग के कार्य करने पर निर्भर है, और हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि हमने अपनी विधियों में सम्मोहन का त्याग करके स्थानान्तरण के रूप में आदेश को फिर खोज लिया है।

पर अब मैं जरा रुककर आपको सूत्र पकड़ने का मौका देता हूं। मैं देख रहा हूं कि आपके विचारों में एक आक्षेप इतनी प्रबलता से घूम रहा है कि यदि उसे प्रकट न किया गया तो वह ध्यान केन्द्रित करने की आपकी सारी शक्ति छीन लेगा। "अब, इस प्रकार अन्त में आपने यह मान लिया कि आप भी सम्मोहकों

की तरह आदेश की सहायता लेते हैं। हम तो सारे समय यही समझते रहे हैं। पर फिर, गुज़रे हुए अनुभवों के द्वारा इन सब चक्करदार रास्तों का, अचेतन सामग्री को खोजने, विपर्यासों का निर्वचन करने और उन्हें फिर अनुवादित करने का, और समय, मेहनत और धन का इतना भारी खर्च करने का, क्या लाभ, जब अन्त में असली कार्यकारी साधन आदेश ही है? आप लक्षणों के विरुद्ध सीधे आदेश ही क्यों नहीं देते, जैसा कि दूसरे लोग कहते हैं, जो ईमानदारी से अपने आप को सम्मोहक बताते हैं। और इसके अतिरिक्त, यदि आप यह कहते हैं कि इन चक्करदार रास्तों के द्वारा आपने अनेक महत्वपूर्ण खोजें की हैं, जो सीधे आदेश में छिपी रहती हैं, तो उनकी प्रामाणिकता की पुष्टि कौन करेगा? क्या वे भी आदेश का, अर्थात् अनभिप्रेत आदेश का, परिणाम नहीं है? क्या आप रोगी पर इस दिशा में भी मनचाहा प्रभाव नहीं डाल सकते?"

इस तरह आप मुझपर जो आरोप लगाते हैं, वह बहुत अधिक मनोरंजक है, और उसका जवाब देना होगा, पर वह मैं आज नहीं दूंगा। हमारा समय पूरा हो गया है, इसलिए अगली बार सही। आप देखेंगे कि मैं आपकी आपत्ति का उत्तर दे सकूंगा। आज मुझे एक बात खत्म करनी है, जो मैंने शुरू की थी। मैंने स्थानान्तरण के कारण के जरिये आपके सामने यह व्याख्या करने का वायदा किया था कि स्वरति सम्बन्धी स्नायु-रोगों में हमारे चिकित्सा के प्रयत्न सफल क्यों नहीं होते।

यह व्याख्या मैं थोड़े-से शब्दों में कर सकता हूं और आप देखेंगे कि कितनी सरलता से पहेली हल हो जाती है, और हर चीज कैसे एक दूसरे के साथ सम्बद्ध हो जाती है। अनुभव से पता चलता है कि स्वरतिक स्नायु-रोगों से पीड़ित स्नायु-रोगियों में स्थानान्तरण की क्षमता नहीं होती, या इसका नाकाफी अंश होता है। वे उदासीन भाव से चिकित्सक से विमुख हो जाते हैं, विरोध भाव से नहीं। इसलिए चिकित्सक का उनपर प्रभाव नहीं पड़ सकता। चिकित्सक जो कुछ कहता है, उससे वे उदासीन रहते हैं; उनपर उसकी कोई छाप नहीं पड़ती और इसलिए इलाज का प्रक्रम, जो दूसरी बातों के, अर्थात् रोगजनक द्वन्द्व के पुनरुज्जीवन और दमन के कारण होने वाले प्रतिरोध को दूर करने के साथ-साथ चल सकता है, उनके साथ नहीं चलाया जा सकता। वे जैसे हैं, वैसे ही रहते हैं। उन्होंने बहुत बार अपने आप स्वास्थ्य-लाभ के प्रयत्न किए हैं, जिनसे रोगात्मक परिणाम पैदा हुए हैं। हम इसे बदलने के लिए कुछ नहीं कर सकते।

इन रोगियों की रोग-परीक्षा के आधार पर हमने कहा था कि उन्होंने राग से आलम्बनों का आच्छादन अवश्य त्याग दिया होगा और आलम्बन-राग को अहम्-राग में रूपान्तरित कर दिया होगा। इसके द्वारा, हमने उनमें स्नायु-रोगों

के प्रथम समूह (हिस्टीरिया, चिन्ता और मनोग्रस्तता) के रोगियों से अन्तर किया था। उन्हें स्वस्थ करने की कोशिश के समय उनका जो व्यवहार दिखाई देता है, उससे इस संदेह की पुष्टि होती है। वे कोई स्थानान्तरण नहीं पैदा करते और इसलिए हम उन तक नहीं पहुंच सकते और उनका इलाज नहीं कर सकते।

विश्लेषण-चिकित्सा

आज हम जिस बात पर विचार करने वाले हैं, उसका आपको पता है। मैंने यह स्वीकार किया कि मनोविश्लेषण-चिकित्सा के प्रभाव का अनिवार्य आधार स्थानान्तरण, अर्थात् आदेश, हैं; तब आपने मुझसे पूछा था कि हम सीधे ही आदेश का प्रयोग क्यों नहीं करते, और आपने यह संदेह भी पेश किया था कि जब आदेश इतना बड़ा कार्य करता है,तब भी क्या हम अपनी मनोवैज्ञानिक खोजों की आलम्बन-निष्ठता या वैज्ञानिकता का समर्थन कर सकते हैं? मैंने इसका पूरा उत्तर देने का आपसे वायदा किया था।

सीधा आदेश वह आदेश है, जो लक्षणों द्वारा ग्रहण किए गए रूपों के विरुद्ध सीधे ही दिया जाता है। यह आपकी सत्ता और रोग की तह में मौजूद प्रेरक भावों के बीच एक द्वन्द्व है। इस द्वन्द्व में आप इन प्रेरक भावों के बारे में कुछ नहीं सोचते। आप सिर्फ यह आवश्यक समझते हैं कि रोगी लक्षणों के रूप में उनके व्यक्त होने को दबा दे। मुख्यतः इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप रोगी को सम्मोहित करते हैं या नहीं। बर्नहीम ने बड़े ज़ोरदार शब्दों में बार-बार कहा था कि आदेश सम्मोहन के व्यक्त रूपों का सार तत्व है, और सम्मोहन स्वयं आदेश का परिणाम है, एक आदेशित अवस्था है। वह जागृत अवस्था में आदेश का प्रयोग करना पसन्द करता था, जिससे सम्मोहन में वही परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।

तो, अब मैं अनुभव के परिणामों पर पहले विचार करूं या सिद्धान्त सम्बन्धी विवेचनाओं पर? हम अनुभव से शुरू करेंगे। मैंने १८८९ में नान्सी में बर्नहीम को जा पकड़ा, और मैं उसका शिष्य बन गया। मैंने उसकी आदेश वाली पुस्तक का जर्मन भाषा में अनुवाद किया। वर्षों तक मैं सम्मोहन द्वारा इलाज करता रहा। पहले तो मैं प्रतिषेधात्मक आदेशों द्वारा और बाद में ब्रायर की, रोगी के जीवन के बारे में पूरी जांच करने की प्रणाली को मिलाकर इलाज करता रहा। इसलिए सम्मोहन-चिकित्सा या आदेश द्वारा चिकित्सा के परिणामों के बारे में विस्तृत आधार पर बोल सकता हूं। एक पुरानी डाक्टरी कहावत के अनुसार, आदर्श चिकित्सा-शैली शीघ्र कार्य करने वाली, भरोसा करने योग्य, और रोगी को प्रिय

लगने वाली होनी चाहिए। बर्नहीम की विधि से इसकी दो बातें निश्चित रूप से पूरी होती थीं। यह बहुत शीघ्र, अर्थात् विश्लेषण-चिकित्सा की अपेक्षा बहुत ही अधिक शीघ्र कार्य करती थी और इसमें रोगी को किसी परेशानी या दुविधा में नहीं पड़ना पड़ता था। चिकित्सक के लिए यह अन्त में नीरस हो जाती थी। इसका मतलब यह था कि हर रोगी का एक ही तरीके से इलाज किया जाए। बड़े भिन्न-भिन्न प्रकार के लक्षणों को रोकने के लिए सब कार्य सदा वैसे ही किए जाएं और उनके अर्थ या आशय के बारे में कुछ भी न जाना जा सके। यह एक तरह का यान्त्रिक कार्य था, वैज्ञानिक कार्य नहीं। इससे जादू, मंत्र-तंत्र और झाड़-फूंक का स्मरण होता था, पर तब भी रोगी के हित की दृष्टि से उसकी ओर आंख मूंदनी पड़ती थी। पर तीसरी बात इसमें नही थी। यह किसी भी दृष्टि से भरोसा करने योग्य नहीं थी। इसका उपयोग कुछ रोगियों में ही हो सकता था, सबमें नहीं। कुछ रोगियों में इससे बड़ी सफलता मिल जाती थी, और कुछ में कुछ भी सफलता नहीं मिलती थी, और इसका कारण कभी पता नहीं चलता था। पर इससे भी बुरी बात यह थी कि इसके परिणामों में स्थायित्व नहीं था। कुछ समय के बाद रोगी फिर आकर कहता था कि—रोग फिर दुबारा हो गया है, या उसके स्थान पर कोई और रोग हो गया है। तब आप उसे फिर सम्मोहित करना शुरू कर सकते हैं। साथ ही, आपको अनुभवी लोगों की यह चेतावनी भी ध्यान में रखनी थी कि बार-बार सम्मोहन करके रोगी से उसकी स्वतंत्रता छीनना उचित नहीं, और उसे इस इलाज की आदत डाल देना ठीक नहीं, मानो यह कोई नींद लाने वाली दवा हो। उधर, यह भी सच है कि कभी-कभी सब चीज़ हमारे मन के अनुकूल हो जाती थी, मामूली परिश्रम से पूर्ण और स्थायी सफलता मिल जाती थी। पर इस संतोषजनक परिणाम की अवस्थाएं छिपी रहती थीं। एक रोगिणी में मैंने थोड़े-से सम्मोहन के इलाज द्वारा एक उग्र अवस्था को पूरी तरह दूर कर दिया, पर जब रोगिणी ने बिना उचित कारण के मेरे प्रति दुर्भाव अपनाया, तब वह रोग फिर उसी रूप में हो गया। तब आपसी समझौते के बाद मैंने फिर उसे और अधिक पूरी तरह दूर कर दिया। पर जब वह दूसरी बार मेरी विरोधी बनी, तब वह रोग फिर पैदा हो गया। एक और अवसर पर मुझे यह अनुभव हुआ। एक रोगिणी ने, जिसके स्नायविक लक्षण मैं कई बार दूर कर चुका था, एक विशेषरूप से जमे हुए रोग के इलाज के समय, एकाएक अपनी भुजाएं मेरी गरदन में डाल दीं। मैं चाहूं या न चाहूं, पर इस तरह की चीज़ ने अन्त में यह अनिवार्य कर दिया कि मैं अपने आदेश देने के अधिकार की प्रकृति और स्रोत की समस्या की जांच करूं।

इतनी बात तो अनुभव के बारे में हुई। इससे पता चलता है कि सीधे आदेश का त्याग करके हमने कोई ऐसी चीज नहीं त्याग दी, जिसके स्थान पर कोई और चीज़ न आ सकती हो। अब इन तथ्यों के साथ कुछ बातें और जोड़नी हैं।

सम्मोहन की विधि का प्रयोग होने पर रोगी को और चिकित्सक को कुछ भी प्रयत्न नहीं करना पड़ता। यह विधि अधिकतर डाक्टरों द्वारा स्नायु-रोगों के बारे में माने जाने वाले आम विचार से पूरी तरह मेल खाती है। डाक्टर स्नायविक व्यक्ति से कहते हैं : "आप में कोई रोग नहीं है। यह सिर्फ स्नायविकता है, इसलिए मेरे कुछ शब्दों से ही पांच मिनट में आपके सब कष्ट दूर हो जाएंगे।" पर यह बात ऊर्जा के बारे में हमारे साधारण विश्वासों के विरुद्ध है, कि बहुत थोड़ा प्रयास किसी भारी बोझ को, बिना किसी उपयुक्त साधन की सहायता के, सीधे ही जाकर हटा सकता है। जहां तक दोनों परिस्थितियों की तुलना हो सकती है, वहां तक अनुभव से पता चलता है कि यह तिकड़म स्नायु-रोगों में सफल नहीं हो सकती। पर मैं जानता हूं कि यह युक्ति अकाट्य नहीं है; विस्फोटों जैसी चीजें भी होती हैं।

मनोविश्लेषण के द्वारा हमने जो जानकारी हासिल की है, उसे देखते हुए सम्मोहन के और मनोविश्लेषण के आदेशों के भेद का इन शब्दों में वर्णन किया जा सकता है : सम्मोहन चिकित्सा-शैली मन में चल रही बात को ढकने को जैसे मानो उस पर पोचा फेरने की कोशिश करती है, और विश्लेषण की शैली उसे उघाड़ने की और कुछ चीज़ हटाने की कोशिश करती है। पहली, अर्थात् सम्मोहन की शैली प्रसाधन करती है, और विश्लेषण की शैली शल्यक्रिया। सम्मोहन-शैली आदेश का उपयोग लक्षणों को रोकने में करती है; यह दमनों को और ताकत देती है; पर इतने काम के अलावा, उन सब प्रक्रमों को जैसे का तैसा छोड़ देती है, जिनसे लक्षण-निर्माण हुआ है। विश्लेषण-चिकित्सा-शैली नीचे गहराई में रोग की जड़ों के पास उन द्वन्द्वों में पहुंचती है जिनसे लक्षण पैदा होते हैं। यह आदेश का उपयोग उन द्वन्द्वों के परिणाम को बदलने में करती है। सम्मोहन-चिकित्सा-शैली रोगी को निष्क्रिय और अपरिवर्तित रहने देती है, और इसलिए वह रोग के प्रत्येक नए उत्तेजन के सामने असहाय होता है। विश्लेषण के इलाज में चिकित्सक की तरह रोगी को भी प्रयास करना पड़ता है, अर्थात् भीतरी प्रतिरोधों को खत्म करने के लिए उद्योग करना पड़ता है। इन प्रतिरोधों को दूर कर देने पर रोगी का मानसिक जीवन स्थायी रूप से बदल जाता है। वह परिवर्धन की अधिक ऊंची सतह पर उठ आता है और रोग की नई सम्भावनाओं से अप्रभावित बना रहता है। प्रतिरोधों को दूर करने का परिश्रम विश्लेषण-चिकित्सा का आवश्यक कार्य है। रोगी को इसे पूरा करना पड़ता है, और चिकित्सक उसे आदेशों द्वारा, जो **शिक्षण** के रूप में होते हैं, इसे पूरा करने में सहायता देता है। इसलिए यह ठीक कहा गया है कि मनोविश्लेषण द्वारा इलाज एक प्रकार का **पुनः शिक्षण** है।

मुझे आशा है कि आदेश का चिकित्सा में उपयोग करने की हमारी विधि में और सम्मोहन-चिकित्सा-शैली में इसका प्रयोग करने की एक मात्र विधि में जो अन्तर है, वह मैंने आपके सामने स्पष्ट कर दिया है। क्योंकि हमने आदेश का प्रभाव

पीछे की ओर जाकर स्थानान्तरण तक देखा है, इसलिए आप यह भी समझ गए होंगे कि सम्मोहन-चिकित्सा-शैली में परिणाम इतना अविश्वसनीय क्यों होता है, और विश्लेषण-चिकित्सा-शैली, अपनी सीमाओं के अन्दर, क्यों भरोसे योग्य है। सम्मोहन का प्रयोग करते हुए हमें पूरी तरह रोगी के स्थानान्तरण की दशा पर निर्भर रहना पड़ता है, और फिर भी हम इस दशा पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकते। जिस रोगी को सम्मोहित किया जा रहा है, उसका स्थानान्तरण ऋणात्मक भी हो सकता है, या उभयात्मक भी हो सकता है, जैसा कि आमतौर से होता है; या हो सकता है कि उसने विशेष रुख़ अपनाकर अपने स्थानान्तरण से अपने को बचाए रखा हो। इस सबके बारे में हमें कुछ पता नहीं चलता। मनोविश्लेषण में हम स्वयं स्थानान्तरण पर विचार करते हैं। जो कुछ इसके मार्ग में बाधक होता है, उसे हटा देते हैं, और जिस साधन को कार्य करना है, उसे संचालित करते हैं। इस प्रकार आदेश की शक्ति से हम बिलकुल नए फायदे उठाते हैं। हम इसका नियन्त्रण कर सकते हैं। अब रोगी अकेला अपनी इच्छा के अनुसार अपनी आदेश-वश्यता की व्यवस्था नहीं करता, बल्कि जहां तक वह इसके प्रभाव के अधीन हो सकता है, वहां तक हम उसकी आदेशवश्यता को रास्ता दिखाते हैं।

अब आप कहेंगे कि इस बात की परवाह बिना किए कि विश्लेषण के पीछे मौजूद प्रेरक बल को स्थानान्तरण कहा जाए या आदेश, यह खतरा अब भी है कि रोगी पर हमारे प्रभाव के कारण, हमारी खोजों की आलम्बननिष्ठ निश्चितता पर सन्देह पैदा हो जाए, और जो चीज चिकित्सा में लाभकारक है, वही गवेषणा में हानिकारक है। यह आक्षेप मनोविश्लेषण पर बहुत बार किया गया और यह मानना होगा कि यद्यपि यह आक्षेप उचित नहीं कहा जा सकता, पर फिर भी यह तर्कविरुद्ध नहीं है। यदि इसे उचित सिद्ध किया जा सकता तो मनोविश्लेषण एक विशेष रूप से छिपाया हुआ और खास प्रभावकारी किस्म का आदेश वाला इलाज ही होता, और रोगी के पिछले जीवन के अनुभवों, मानसिक गतिकी, अचेतन, इत्यादि के बारे में इसके सब निष्कर्षों को हल के रूप में ही ग्रहण किया जा सकता था। इस प्रकार, हमारे विरोधी यह सोचते हैं कि सारे अनुभव न सही, तो भी यौन अनुभवों का महत्व, हमने पहले अपने भ्रष्ट मनों में ये सब बातें गढ़कर 'रोगी के मन में डाल दी हैं।' इन आरोपों का खंडन सिद्धान्त की अपेक्षा अनुभव की सहायता से अधिक सन्तोषजनक रीति से हो जाता है। जिसने स्वयं किसीका मनो-विश्लेषण किया है, उसे असंख्य बार यह निश्चय हुआ होगा कि इस तरह रोगी के मन में बातें डाल देना असम्भव है। उसे किसी सिद्धान्त-विशेष का अनुयायी बना लेने में, और इस प्रकार चिकित्सक द्वारा माने जाने वाले किसी ग़लत विश्वास का विश्वासी बना लेने में कोई कठिनाई नहीं है। इस मामले में वह किसी आज्ञाकारी शिष्य की तरह व्यवहार करता है, पर इस तरह आपने सिर्फ़ उसकी बुद्धि पर असर

डाला है, रोग पर नहीं। उसके द्वन्द्वों का समाधान और उसके प्रतिरोधों की पराजय तभी होती है जब उसको अपने भीतर खोजने के लिए बताई बातें वही हों जो सचमुच उसमें मौजूद हैं। जो चीज़ चिकित्सक ने करने में ग़लत अनुमान की है, वह विश्लेषण के समय दूर हो जाएगी। इसे हटाना होगा और इसके स्थान पर अधिक सही चीज़ लानी होगी। चिकित्सक का लक्ष्य यह है कि वह बड़ी सावधानी से चलता हुआ आदेश से पैदा होने वाली अस्थायी सफलताओं को रोके, पर यदि वे पैदा हो जाती हैं तो कोई बड़ी हानि नहीं होती, क्योंकि हम पहले परिणाम से ही सन्तुष्ट नहीं हो जाते। यदि रोग की सब अस्पष्ट बातों की व्याख्या न हो जाए, स्मृति के सब खाली स्थान न भर जाएं, और दमनों के आरम्भिक अवसरों का पता न लग जाए तो हम विश्लेषण को अधूरा ही समझते हैं। जब परिणाम समय से पहले दिखाई देते हैं, तब हम उन्हें विश्लेषण-कार्य को आगे बढ़ाने वाले के बजाय रोकने वाले समझते हैं, और बीच-बीच में उस स्थानान्तरण को उद्घाटित करके, जिस पर वे स्थिर होते हैं, उन्हें फिर नष्ट कर दिया जाता है। मूलतः यह अन्तिम विशेषता विश्लेषण-कार्य और शुद्ध आदेश में भेद करती है, और यह स्पष्ट कर देती है कि हमारे परिणाम विश्लेषण के परिणाम हैं, आदेश के नहीं। दूसरे प्रकार के प्रत्येक आदेशात्मक इलाज में स्थानान्तरण को सावधानी से जैसे को तैसा कायम रखा जाता है। विश्लेषण में स्वयं इसका इलाज किया जाता है और इसको इसके विविध रूपों में काट-छांट दिया जाता है। विश्लेषण के बाद स्वयं स्थानान्तरण ही नष्ट हो जाना चाहिए। यदि तब सफलता आती है और बनी रहती है, तो वह आदेश के आधार पर नहीं खड़ी है, बल्कि आदेश की सहायता से की गई, भीतरी प्रतिरोधों की विजय पर, रोगी के भीतर लाए गए आन्तरिक परिवर्तन पर, खड़ी है।

इलाज के समय आदेश के एकाकी प्रभावों को पैदा होने से सम्भवतः रोकने-वाली चीज वह द्वन्द्व है जो प्रतिरोधों के खिलाफ लगातार चल रहा है, और इन प्रतिरोधों को, अपने आपको ऋणात्मक (विरोधपूर्ण) स्थानान्तरण में रूपान्तरित करना आता है। हम यह बताये बिना भी नहीं रह सकते कि विश्लेषण के बहुत सारे सूक्ष्म निष्कर्षों की, जिनके आदेश द्वारा उत्पन्न होने का शक हो सकता है, दूसरे अखंडनीय स्रोतों से पुष्टि हो जाती है। हमारे पास इस सम्बन्ध में असंदिग्ध गवाह हैं, अर्थात् डेमेन्शिया रोगी और पैरानोइआ रोगी हैं, जिनके बारे में यह शक नहीं हो सकता कि वे आदेशों से प्रभावित हुए हैं। ये रोगी अपनी चेतना में घुसी हुई कल्पना-सृष्टियों और प्रतीकों के अनुवादों के रूप में जो कुछ बताते हैं, वह स्थानान्तरण स्नायु-रोगियों के अचेतन के बारे में हमारी जांच-पड़ताल के परिणामों से बिलकुल मिलता है, और इस प्रकार हमारे किए हुए निर्वचनों की, जिन पर प्रायः सन्देह किया जाता है, आलम्बननिष्ठ सत्यता की पुष्टि हो जाती है।

मैं समझता हूं कि यदि इन मामलों में आप विश्लेषण पर विश्वास करें तो आपका यह विश्वास ग़लत सिद्ध नहीं होगा।

अब हमें स्वास्थ्य-लाभ के प्रक्रम को राग-सिद्धान्त की पदावली में प्रकट करके उसके वर्णन को पूरा करना है। स्नायु-रोगी सुख-भोग में या कार्य-सिद्धि में असमर्थ है—सुख-भोग में तो इस कारण कि उसका राग किसी यथार्थ आलम्बन से नहीं लगा हुआ है, और कार्य-सिद्धि में इसलिए क्योंकि बहुत अधिक ऊर्जा, जो वैसे उसके पास उपयोग करने के लिए होती है, राग को दमन किए रखने में और उसकी सिर उठाने की कोशिशों को विफल करने में ही खर्च हो जाती है। यदि उसके अहम् और राग के बीच चल रहा द्वंद्व खत्म हो जाए और उसके अहम् को उपयोग करने के लिए राग फिर मिल जाए, तो वह स्वस्थ हो जाए। इसलिए इलाज का काम यह है कि वह इसके पहले वाले लगावों से राग को छुड़ाए, जो अहम् की पहुंच से परे हैं, और इसे फिर अहम् के लिए उपयोगी बनाए। अब स्नायु-रोगी का राग कहां है? इसका आसानी से पता चल जाता है: यह लक्षणों से लगा हुआ है जिनसे इसे इन परिस्थितियों में प्राप्त हो सकने वाली एकमात्र चीज—स्थानापन्न सन्तुष्टि—मिल जाती है। तो, हमें लक्षणों को अपने वश में करना होगा, उन्हें खत्म करना होगा, और रोगी हमसे यही चाहता है। लक्षणों को खत्म करने के लिए आवश्यक है कि हम पीछे लौटकर उस स्थान पर पहुंचें, जिस स्थान पर वे शुरू में पैदा हुए थे। जिस द्वन्द्व से वे पैदा हुए, उसपर विचार करें, और उन नोदक बलों की सहायता से, जो उस समय उपलब्ध नहीं थे, इसे रास्ता दिखाते हुए नए समाधान की ओर ले जाएं। दमन के प्रक्रम का यह संशोधन दमन तक पहुंचाने वाले प्रक्रमों के स्मृति-लेशों की सहायता से अंशतः ही किया जा सकता है। इस कार्य का असली अंश उन आरम्भिक द्वन्द्वों के नए संस्करण—चिकित्सक के साथ सम्बन्ध में 'स्थानान्तरण'—में पैदा करके किया जाता है, जिसमें रोगी वैसा ही व्यवहार करने की कोशिश करता है जैसा उसने पहले किया था, और चिकित्सक उसकी आत्मा के सब उपलब्ध बलों को ऐसे प्रेरित करता है कि वे उसे दूसरे निश्चय पर पहुंचाएं। इस प्रकार स्थानान्तरण वह युद्ध-क्षेत्र है जिसमें द्वन्द्व करने वाले सब बलों को मिलना पड़ता है।

सारा राग और इसका विरोध करने वाले सब बलों की पूरी शक्ति एक चीज—चिकित्सक के साथ सम्बन्ध—पर केन्द्रित हो जाती है। इस प्रकार यह अनिवार्य हो जाता है कि लक्षण अपने राग से वंचित हो जाएं। रोगी के पहले वाले रोग के स्थान पर कृत्रिम रूप से बनाया गया स्थानान्तरण विकार पैदा हो जाता है। उसके राग के अनेक अयथार्थ आलम्बनों के स्थान पर चिकित्सक के व्यक्तित्व का एक आलम्बन आ जाता है, और यह भी 'कल्पित' होता है। इस आलम्बन के विषय में यह जो नया द्वंद्व पैदा होता है, वह विश्लेषक के आदेशों के ऊपरी तल पर, अधिक

ऊंची मानसिक सतहों पर आए हुए विश्लेषक के आदेशों द्वारा पैदा हुआ है, और वहां यह एक प्रकृत मानसिक द्वन्द्व के रूप में चलाया जाता है। क्योंकि इस प्रकार एक नया दमन नहीं होने दिया जाता, इसलिए अहम् और राग के बीच विरोध खत्म हो जाता है। रोगी के मन में फिर एकता या अखंडता पैदा हो जाती है। जब राग चिकित्सक के व्यक्तित्व-रूप अपने अस्थायी आलम्बन से अलग किया जाता है, तब यह अपने पहले वाले आलम्बनों पर नहीं लौट सकता, और अब यह अहम् के उपयोग के लिए उसकी सेवा में रहता है। इलाज के समय इस द्वन्द्व में हमारा विरोध करने वाले बलों में एक ओर तो राग की कुछ प्रवृत्तियों से अहम् की अरुचि है, जो प्रवृत्तियों का दमन करने के रूप में प्रकट हुई है, और दूसरी ओर, राग की आसक्तता या लगन या 'चिपकूपन' है, जो उन आलम्बनों से आसानी से अलग नहीं होता, जिन्हें इसने एक बार आच्छादित किया है।

इस प्रकार चिकित्सा-कार्य में दो कलाएं होती हैं। पहली कला में सारे राग को लक्षणों से परे धकेलकर स्थानान्तरण में लाया जाता है और वहां इकट्ठा कर दिया जाता है, और दूसरी कला में इस नए आलम्बन के आसपास द्वन्द्व होता रहता है, और राग को इससे मुक्त किया जाता है। इस नए संघर्ष के सफल परिणाम का निश्चायक परिवर्तन यह है कि दमन को परे रखा जाय जिससे राग अचेतन में भागकर अपने आपको अहम् से फिर न हटा सके। यह बात विश्लेषक के आदेशों के परिणामस्वरूप अहम् में होने वाले परिवर्तनों से सम्भव हो जाती है। अचेतन को क्षीण करके अहम्, निर्वचन-कार्य द्वारा, जिससे अचेतन सामग्री चेतन में आ जाती है, विस्तृत हो जाता है। शिक्षण के द्वारा इसका राग से फिर मेल हो जाता है, और इसे राग को कुछ सन्तुष्टि देने के लिए तत्पर बना लिया जाता है, और अपने राग की मांग से इसे जो भय था, वह इसके उस नए सामर्थ्य से कम हो जाता है; जो यह राग की कुछ मात्रा उदात्तीकरण में खर्च करने के लिए प्राप्त करता है। इलाज का रास्ता इस आदर्श वर्णन के जितना समीप होता है, मनोविश्लेषण-चिकित्सा में उतनी ही सफलता होती है।

इसके मार्ग की रुकावटें हैं—राग की चलिष्णुता का अभाव, जो इसके आलम्बनों से युक्त किए जाने का प्रतिरोध करता है, और रोगी की स्वरति की दृढ़ता, जो आलम्बन-स्थानान्तरण को एक निश्चित मात्रा से अधिक नहीं पैदा होने देगी। शायद स्वास्थ्य-लाभ के प्रक्रम की गतिकी तब अधिक स्पष्ट हो जाएगी जब हम इसका वर्णन यों करें कि स्थानान्तरण के जरिए इसका एक भाग अपनी ओर खींचकर हम राग की उस सारी मात्रा को इकट्ठा कर लेते हैं, जो अहम् के नियन्त्रण से हटाई गई है।

यहां यह स्पष्ट कर देना भी उचित होगा कि विश्लेषण के समय और विश्लेषण के द्वारा राग के जो वितरण हुए हैं, उनसे पहले वाले रोग में इसके स्वभाव

के विषय में कोई सीधा अनुमान नहीं किया जा सकता। मान लो कि कोई प्रबल पिता-स्थानान्तरण कायम करके और फिर उसे चिकित्सक के व्यक्तित्व पर लाकर किसी रोगी का सफलता से इलाज कर दिया जाता है, पर इसका यह आवश्यक निष्कर्ष नहीं है कि रोगी पहले अपने पिता पर राग का अचेतन संयोग करके इस तरह रोगी हुआ था। पिता-स्थानान्तरण सिर्फ वह युद्ध-क्षेत्र है जिसपर हम राग को जीतते और कैदी बना लेते हैं। रोगी के राग को अन्य स्थानों से हटाकर यहां खींच लिया गया है। आवश्यक नहीं कि यह रण-क्षेत्र दुश्मन का सबसे महत्वपूर्ण मोर्चा हो। दुश्मन की राजधानी की रक्षा इसके द्वारों से ठीक पहले करने की आवश्यकता नहीं। स्थानान्तरण की फिर समाप्ति हो जाने के बाद ही चिकित्सक अपनी कल्पना में रोग द्वारा निरूपित राग के स्थानों की पुनः रचना आरम्भ कर सकता है।

राग-सिद्धान्त के प्रकाश में स्वप्नों के बारे में एक अन्तिम बात कहनी होगी। स्नायु-रोगी की 'ग़लतियों' और उसके मुक्त साहचर्यों की तरह उसके स्वप्नों की सहायता से हम लक्षणों का अर्थ जान पाते हैं, और राग के स्थानों का पता लगा सकते हैं। उनमें इच्छा-पूर्ति जो रूप ग्रहण करती है, उनसे हमें यह पता चलता है कि दमन किए गए इच्छा-आवेग कौन-से हैं, और वे आलम्बन कौन-से हैं, जिनपर अहम् से हटने के बाद राग ने अपना लगाव किया है। इसलिए मनोविश्लेषण-चिकित्सा में स्वप्नों का निर्वचन बहुत बड़ा कार्य करता है, और बहुत-से रोगियों में यह बहुत समय तक विश्लेषण का सबसे महत्वपूर्ण साधन होता है। हम पहले देख चुके हैं कि नींद की अवस्था अपने आप ही दमनों को कुछ शिथिल कर देती है। इसपर जो भारी दबाव होता है, उसमें यह कमी होने पर यह दमित इच्छा स्वप्न में अपनी इतनी स्पष्ट अभिव्यक्ति कर सकती है जितनी दिन में लक्षणों के रूप में नहीं की जा सकती। इसलिए दमित अचेतन की जानकारी का, जो अहम् से हटे हुए राग का घर है, सबसे आसान रास्ता स्वप्नों का अध्ययन ही हो जाता है।

पर स्नायु-रोगियों के स्वप्नों में और प्रकृत लोगों के स्वप्नों में कोई सारभूत भेद नहीं होता। सच पूछिए तो शायद इनको उनसे अलग भी नहीं किया जा सकता। स्नायु-रोगियों के स्वप्नों की ऐसे तरीके से व्याख्या करना, जो प्रकृत लोगों के स्वप्नों पर ठीक न बैठे, तर्क विरुद्ध होगा। इसलिए हमें यह निष्कर्ष निकालना पड़ता है कि स्नायु-रोग और स्वास्थ्य का अन्तर सिर्फ दिन के समय होता है—स्वप्न-जीवन में कायम नहीं रहता। इस प्रकार, यह आवश्यक हो जाता है कि कुछ ऐसे निष्कर्ष, जो स्नायु-रोगियों के स्वप्नों और लक्षणों के परस्पर सम्बन्ध के परिणामस्वरूप प्राप्त हुए हैं, स्वस्थ व्यक्तियों पर लागू किए जाएं। हमें मानना पड़ता है कि स्वस्थ आदमी में भी मानसिक जीवन के वे कारक होते हैं, जो स्वप्न का या लक्षण का निर्माण कराने वाले एकमात्र कारक हैं, और हमें यह निष्कर्ष भी निका-

लना पड़ता है कि स्वस्थ व्यक्तियों में भी दमन मौजूद होते हैं, और उन्हें कायम रखने के लिए ऊर्जा की कुछ मात्रा खर्च करनी पड़ती है। इसी तरह, हमें यह भी मानना पड़ता है कि उनके अचेतन मनों में भी दमित आवेग रहते हैं, जिनमें अब भी ऊर्जा होती है, और **उनमें भी राग का कुछ हिस्सा अहम् के उपयोग से हटाया हुआ होता है**। इसलिए स्वस्थ आदमी भी, फलतः, स्नायु-रोगी होता है, पर उसमें ऐसा एकमात्र लक्षण, जो परिवर्धित होने में समर्थ प्रतीत होता है, स्वप्न ही है। जब आप उसके जागृत जीवन की आलोचनात्मक जांच करते हैं, तब आपको एक ऐसी चीज़ मिलती है जो इस तर्कसंगत मालूम होने वाले निष्कर्ष का खंडन करती है, क्योंकि ऊपर से स्वस्थ लगने वाले इस जीवन में असंख्य छोटे-छोटे और व्यवहार की दृष्टि से महत्वहीन लक्षण-निर्माण व्याप्त हैं।

इसलिए स्नायविक स्वास्थ्य और स्नायविक रोग (स्नायु-रोग) का अंतर कम होकर एक व्यावहारिक अंतर या विभेद रह जाता है, और उसका निश्चय व्यावहारिक परिणाम द्वारा किया जाता है—कोई व्यक्ति जीवन में सुख-भोग और सक्रिय कार्य-सिद्धि के सामर्थ्य की काफी मात्रा का अनुभव करने में कहां तक समर्थ है? सम्भवतः इस अन्तर का रूप उस अनुपात के अनुरूप होता है, जो उसके पास मौजूद मुक्त ऊर्जा में और दमन से बंधी हुई ऊर्जा में होता है, अर्थात् यह मात्रात्मक अन्तर है, गुणात्मक नहीं। मुझे आपको यह याद दिलाने की आवश्यकता नहीं कि इस विचार से हमारे इस विश्वास का सैद्धान्तिक आधार बनता है कि स्नायु-रोगों का सारतः इलाज अवश्य किया जा सकता है चाहे उनका आधार शरीर-रचना पर आश्रित स्वभाव या मनोविन्यास भी हो।

इसलिए स्वास्थ्य की विशेषताओं की जानकारी प्रदान करते हुए इतनी बात, स्नायु-रोगी और स्वस्थ व्यक्तियों के स्वप्न समान होने से,अनुमित की जा सकती है। पर स्वयं स्वप्नों के बारे में एक और अनुमान निकालना होगा, और वह यह है कि उन्हें स्नायविक लक्षणों के साथ उनके बन्धन से पृथक् नहीं किया जा सकता, कि हम यह मानने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं कि उनकी सारभूत प्रकृति उन्हें इस सूत्र में बांध लेने से खत्म हो जाती है, कि वे 'विचारों का, अभिव्यक्ति के बहुत पुराने और अप्रचलित रूपों में अनुवाद' हैं। और हमें यह निष्कर्ष निकालना होगा कि उनसे राग के वे विन्यास और इच्छा के वे आलम्बन प्रकट होते हैं, जो उस समय सचमुच क्रियाशील और प्रबल हैं।

अब हम लगभग अन्त पर आ गए हैं। शायद आप इस बात से निराश होंगे कि मनोविश्लेषण-चिकित्सा की चर्चा करते हुए मैंने सिर्फ़ सिद्धान्त पर विचार किया है, और जिन अवस्थाओं में इलाज किया जाता है या इसके जो परिणाम होते हैं, उनके बारे में मैंने आपको कुछ नहीं बताया, पर मैं उन दोनों को छोड़ता हूं: पहले को तो इस कारण कि मेरा आशय यह कभी भी नहीं था कि मैं आपको

विश्लेषण की विधि का प्रयोग करने की क्रियात्मक शिक्षा दे दूं; और पिछले को इस कारण, क्योंकि इसके विरोध में मेरे मन में अनेक भाव हैं। इन व्याख्यानों के आरम्भ में मैंने बलपूर्वक कहा था कि अनुकूल परिस्थितियों में हम ऐसे इलाज करने में सफल हो जाते हैं जो अन्य चिकित्सा-शैलियों के सर्वोत्तम इलाजों से किसी तरह भी घटिया नहीं होते। शायद मैं यह भी कह सकता हूं कि ये परिणाम और किसी विधि से प्राप्त नहीं किये जा सकते। यदि मैं इससे अधिक कहूंगा तो यह सन्देह किया जाएगा कि मैं आत्मविज्ञापन द्वारा अपने विरोधियों की निन्दाकारक आवाज़ को दबा देना चाहता हूं। 'सहयोगी' चिकित्सकों ने सार्वजनिक सम्मेलनों में भी मनोविश्लेषकों को बार-बार यह धमकी दी है कि हम विश्लेषण की विफलताओं और हानिकारक प्रभावों का संग्रह प्रकाशित करके इलाज की इस विधि की निरर्थकता के बारे में जनता की आंखें खोल देंगे। इस तरह की कार्यवाही द्वेषपूर्ण और खण्डनात्मक तो होगी ही, पर उस बात को छोड़ दिया जाए, तो भी, इस तरह के संग्रह को विश्लेषण के चिकित्सा सम्बन्धी परिणामों के बारे में सही अन्दाज़ा लगाने के लिए ठीक गवाही नहीं माना जा सकता। मनोविश्लेषण-चिकित्सा-शैली, जैसा कि आप जानते हैं, अभी शैशव काल में है। इसकी विधि को पूरा बनाने में अनेक वर्ष लगेंगे, और यह काम विश्लेषण करते हुए, अनुभव बढ़ने के साथ-साथ ही किया जा सकता है। इसकी विधियों की शिक्षा देने में जो कठिनाइयां हैं, उनके कारण नए आदमी को अपनी क्षमता बढ़ाने के लिए अधिकतर अपनी ही सूझ-बूझ पर निर्भर होना पड़ता है और उसके आरम्भिक वर्षों के परिणामों को विश्लेषण-चिकित्सा की अधिकतम सम्भव सफलताओं का सूचक नहीं माना जा सकता।

मनोविश्लेषण के आरम्भ में किये गए इलाज के बहुत-से प्रयत्न विफल रहे थे, क्योंकि वे प्रयत्न ऐसे रोगियों में किए गए जो इसकी प्रक्रिया के लिए बिलकुल अनुपयुक्त थे, और जिन्हें आज हम कुछ संकेतों का अनुसरण करके अलग कर देते ह। पर इन संकेतों का पता जांच करने से ही चलता है। शुरू में हम यह नहीं जानते थे कि पैरानोइआ और डेमेन्शिया प्रीकौक्स जब पूर्णतः परिवर्धित होते हैं, तब वे विश्लेषण से काबू में नहीं आते। फिर भी, सब तरह के रोगों पर इस विधि की परख करना उचित है। पर उन आरम्भिक वर्षों की अधिकतर विफलताओं का कारण चिकित्सक की त्रुटियां पात्र के चुनाव में अनुपयुक्तता नहीं थी, बल्कि प्रतिकूल बाह्य अवस्थाएं थीं। मैंने सिर्फ आन्तरिक प्रतिरोधों की चर्चा की है, जो रोगी की ओर से किए जाते हैं—ये अनिवार्य हैं और इन्हें दूर किया जा सकता है। रोगी की परिस्थितियां और वातावरण विश्लेषण के विरुद्ध जो बाह्य प्रतिरोध खड़े कर देते हैं, उनका सैद्धान्तिक महत्व कुछ भी नहीं है पर व्यावहारिक महत्व बहुत अधिक है। मनोविश्लेषण द्वारा इलाज की तुलना शल्य-कार्य या शरीर के आपरेशन से की जा

सकती है, और उसकी तरह इसे भी अपनी सफलता के लिए अनुकूलतम परिस्थितियों में किए जाने का अधिकार है। सर्जन या शल्य-चिकित्सक जो पूर्व व्यवस्थाएं करता है उनसे आप परिचित हैं—उपयुक्त कमरा, काफी प्रकाश, विशेषज्ञ सहायक, रिश्तेदारों को अलग हटा देना, आदि। अब आप बताइए कि यदि आपरेशन करने के समय उसका सारा परिवार आपरेशन स्थल में झांक रहा हो, और हर नश्तर लगने पर ज़ोर से चीख़ रहा हो तो कितने आपरेशन सफल होंगे! मनोविश्लेषण द्वारा इलाज में रिश्तेदारों का दखल पूरा ख़तरा है, और साथ ही ऐसा ख़तरा है जिसको दूर करने का तरीका हमारी समझ में नहीं आता। हमारे पास रोगी के भीतरी प्रतिरोधों को, जिन्हें हम आवश्यक मानते हैं, दूर करने का उपाय है, पर इन बाहरी प्रतिरोधों से हम अपने आप को कैसे बचाएं? कितना भी स्पष्टीकरण कीजिए, पर रिश्तेदारों को समझा लेना असम्भव है, और न आप उनसे कह सकते ह कि वे इस सारे मामले से बिलकुल अलग रहें। आप उन्हें अपने मन की बातें भी नहीं बता सकते, क्योंकि तब यह खतरा है कि रोगी को हम पर विश्वास नहीं रहेगा, क्योंकि वह यह चाहता है, और ठीक ही चाहता है, कि जिस मनुष्य को वह अपने मन की बात बताता है, वह उसका ही पक्ष ले। जिसे पारिवारिक जीवन में आमतौर से फूट डालने वाले मतभेदों की जानकारी है उसे, विश्लेषक के नाते, यह देखकर कुछ भी आश्चर्य नहीं होगा कि रोगी के निकटतम लोग बहुधा उसके इलाज में कम और उसके वर्तमान रूप को कायम रखने में ज्यादा दिलचस्पी रखते हैं। जब ऐसा होता है कि स्नायु-रोग परिवार के विभिन्न सदस्यों के आपसी संघर्षों से सम्बन्धित होता है, तब स्वस्थ व्यक्ति अपने निजी हित को रोगी के स्वास्थ्य-लाभ के मुकाबले अधिक महत्व देता है। आखिर यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि पति ऐसे इलाज को पसन्द नहीं करता जिसमें, जैसी कि उसकी सही कल्पना है, उसके सब पाप खुल जाएंगे। हम इसपर आश्चर्य भी नहीं करते, पर जब हमारे प्रयत्न निष्फल रहते हैं और वे बीच में ही इसलिए छोड़ देने पड़ते हैं कि रोगी-पत्नी के प्रतिरोधों के साथ पति का भी प्रतिरोध आ मिला, तब हम अपने आप को दोष नहीं दे सकते। इतना ही है कि हमने एक ऐसा काम उठा लिया था, जो मौजूदा अवस्थाओं में किया नहीं जा सकता।

आपके सामने बहुत सारे रोगियों का वर्णन करने के बजाय मैं सिर्फ़ एक रोगी की चर्चा करूंगा, जिसके मामले में मुझे अपने पेशे के प्रति सच्चा रहने की खातिर कष्ट उठाना पड़ा। बहुत वर्ष पहले मैंने एक नौजवान लड़की का विश्लेषण द्वारा इलाज शुरू किया। पहले बहुत समय तक वह डर के कारण घर से बाहर नहीं जा सकती थी और न अकेली घर पर रह सकती थी। बहुत हिचकिचाहट के बाद उसने स्वीकार किया कि उसके मन में उस अनुराग के कुछ चिह्न बहुत अधिक हैं जो उसने अपनी माता और उस परिवार के एक धनी मित्र के बीच देख

लिया था। उसने तब बड़े व्यवहार शून्य तरीके से—अथवा बड़ी चतुराई से—अपनी माता को संकेत से यह बता दिया कि विश्लेषण के समय क्या बातचीत हुई थी। ऐसा उसने अपनी माता के प्रति अपना व्यवहार बदलकर, यह ज़िद करके कि उसे अकेलेपन के भय से माता के अलावा और कोई नहीं बचा सकता, और जब उसने घर से जाने की कोशिश की तब उस दरवाजे को पकड़े रखकर, यह बात जताई। उसकी माता भी पहले बहुत स्नायविक थी, पर कई वर्ष पहले एक जल-चिकित्सा के अस्पताल में जाने से स्वस्थ हो गई थी या दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि उसने वहां एक आदमी से अच्छा परिचय कर लिया था, और उसके साथ ऐसा सम्बन्ध स्थापित कर लिया था जो एक से अधिक बातों में तृप्तिकारक सिद्ध हुआ था। अपनी पुत्री की ज़िद से संदेह पैदा होजाने पर माता एकाएक **समझ गई** कि लड़की के भय का क्या अर्थ है। वह अपनी माता को रोके रखने के लिए और उसे अपने प्रेमी से अपना सम्बन्ध बनाए रखने के लिए आवश्यक आज़ादी से वंचित करने के लिए रोगी हो गई थी। माता ने तुरन्त निश्चय कर लिया। उसने इस हानिकारक इलाज को बन्द कर दिया। लड़की को स्नायु-रोगियों के एक आश्रम में भेज दिया गया, और बहुत वर्षों तक उसे दिखाकर यह कहा जाता रहा कि यह 'बेचारी मनोविश्लेषण की मारी हुई' है, और मेरे इलाज के दुष्परिणामों के बारे में भी ऐसी ही विरोधी अफवाहें उड़ती रहीं। मैं चुप रहा, क्योंकि मैं यह समझता था कि मैं अपने पेशे की गोपनीयता के नियमों से बंधा हुआ हूं। वर्षों बाद मुझे एक सहयोगी से पता लगा, जो उस आश्रम में गया था और जिसने अकेलेपन से डरने वाली उस लड़की को देखा था, कि उसकी माता और उस धनी आदमी के सम्बन्ध के बारे में हर कोई जानता है, और सम्भवतः उस स्त्री का पति और लड़की का पिता जान-बूझकर इसकी ओर से आंखें बन्द किये हुए है। इस 'रहस्य' पर उस लड़की के इलाज को कुर्बान कर दिया गया।

युद्ध से पहले के वर्षों में, जबकि बहुत-से देशों से रोगियों के आ जाने के कारण मैं अपने नगर की खुशी-नाखुशी पर निर्भर नहीं रहा था, तब मैंने यह नियम बना लिया था कि मैं ऐसे व्यक्ति का इलाज अपने हाथों में नहीं लेता था जो जीवन के सब आवश्यक रिश्तों से स्वतन्त्र न हो। हरेक मनोविश्लेषक यह नियम नहीं बना सकता। रिश्तेदारों के बारे में मेरी चेतावनियों से शायद आप यह निष्कर्ष निकालेंगे कि मनोविश्लेषक को, मनोविश्लेषण के हित की दृष्टि से, रोगी को उसके परिवार के वातावरण से अलग कर देना चाहिए, और यह चिकित्सा उनकी ही करनी चाहिए जो निजी संस्थाओं में रहते हैं। पर मैं इस विचार का समर्थन नहीं कर सकता। रोगियों के लिए—कम से कम उन रोगियों के लिए जिनकी हालत बहुत गिरी हुई नहीं है—यही अधिक लाभदायक है कि वे इलाज के दिनों में उन परिस्थितियों में रहें जिनमें उन्हें अपने सामान्य जीवन की आवश्यकताओं से द्वंद्व

करना पड़े । पर रिश्तेदारों को अपने व्यवहार से इस लाभ को नष्ट नहीं होने देना चाहिए, और सबसे बड़ी बात यह है कि उन्हें डाक्टर के चिकित्सा-प्रयत्नों का विरोध नहीं करना चाहिए । पर जिन लोगों से आप नहीं मिलते, उन्हें यह रुख अपनाने के लिए आप कैसे प्रेरित करेंगे ? स्वभावतः आप यह नतीजा निकालेंगे कि इलाज की सफलता पर सामाजिक वातावरण का और रोगी के निकटतम लोगों की सुसंस्कृति की मात्रा का बड़ा असर पड़ेगा ।

यदि हम अपनी बहुत सारी विफलताओं का कारण इन बाधाकारक बाह्य कारकों को बता दें, तो भी चिकित्सा-शैली के रूप में मनोविश्लेषण की प्रभावकारिता के लिए बड़ा निराशामय क्षेत्र है । मनोविश्लेषण के प्रेमियों ने हमें यह सलाह दी है कि विफलताओं के संग्रह के मुकाबले में हम अपनी सफलताओं के आंकड़े तैयार करें । मैंने यह सुझाव भी पसन्द नहीं किया । मैंने यह युक्ति पेश की कि यदि इकट्ठे किए गए अलग-अलग रोगी एक जैसे नहीं हैं, तो आंकड़े अर्थहीन हो जाते हैं; और जिन रोगियों का इलाज किया गया है, वे असल में बहुत-सी दृष्टियों से एक जैसे नहीं थे । इसके अलावा, जितने समय पर विचार किया गया था, वह इतना थोड़ा था कि उसके आधार पर इलाजों के स्थायित्व का निर्णय नहीं किया जा सकता, और कुछ रोगियों के बारे में तो कुछ भी विवरण देना असम्भव है । वे ऐसे लोग थे जिन्होंने अपने रोग और इलाज, दोनों को गुप्त रखा था, और इसलिए उनके स्वास्थ्यलाभ को भी उसी तरह गुप्त रखना था । पर इसके खिलाफ सबसे ज़बरदस्त दलील यह है कि हम जानते हैं कि चिकित्सा-शैली के मामलों में मनुष्य जाति सबसे अधिक विवेकहीन है । इसलिए तर्कसंगत दलीलों से उसे प्रभावित कर सकने की कोई सम्भावना नहीं है । इलाज के संबंध में नई बात को या तो बड़े प्रबल उत्साह से ग्रहण किया जाता है, जैसे कि उदाहरण के लिए, तब हुआ था जब कोच ने ट्युबरक्युलिन के बारे में अपने परिणाम पहले पहल प्रकाशित किए थे; अथवा, इसपर बहुत अधिक अविश्वास किया जाता है, जैसा जेनर के टीके (वैक्सीनेशन) के बारे में हुआ था, जो असल में एक स्वर्गीय वरदान था, पर जिसके विरोधी आज भी मौजूद हैं । मनोविश्लेषण के खिलाफ एक बहुत स्पष्ट पक्षपात दिखाई देता है । जब आप किसी बड़े कठिन रोगी का इलाज कर देते हैं, तब लोग कहते हैं : "इससे कुछ भी सिद्ध नहीं होता । इतने दिनों बाद वह अपने आप ठीक हो जाता;" और जब एक रोगी, जो गिरावट और उन्माद के चार चक्रों में से गुज़र चुकने के बाद उदासी रोग के बाद के मध्यान्तर में मेरे पास आया और तीन सप्ताह बाद उसमें फिर उन्माद का दौरा दिखाई देने लगा, तब परिवार के सब लोगों की और जो बड़े-बड़े डाक्टर बुलाए गए थे, उन सब की यह निश्चित धारणा थी कि नया दौरा विश्लेषण के प्रयत्न का परिणाममात्र है । पूर्वग्रह का आप कोई उपाय नहीं कर सकते, जैसे कि आप आज फिर युद्ध में लगे हुए प्रत्येक राष्ट्र-समूह में

देख रहे हैं, जिनमें एक दूसरे के विरुद्ध पूर्वग्रह पैदा हो गए हैं। सबसे अधिक समझदारी की बात यह है कि प्रतीक्षा करो और समय बीतने के साथ उन्हें दूर हो जाने दो। एक दिन आता है जब वही लोग उन्हीं वस्तुओं को पहले से भिन्न रूप में देखने लगते हैं। पहले उनका विचार क्यों और था,यह बात सदा छिपी रहती है।

सम्भवतः विश्लेषण-चिकित्सा-शैली के विरुद्ध पूर्वग्रह ढीला पड़ने लगा है। विश्लेषण के सिद्धान्त के लगातार फैलते जाने से और अनेक देशों में विश्लेषण-चिकित्सा अपनाने वाले डाक्टरों की संख्या से यही बात सूचित होती है। जब मैं युवक था, तब सम्मोहन के आदेश-इलाज के लिए चिकित्सक वर्ग में मेरे विरुद्ध रोष का तूफान आ गया था, और आज 'समझदार और गम्भीर लोग' उसे मनो-विश्लेषण के विरोध में रखते हैं। पर चिकित्सा के साधन रूप में सम्मोहन से जो आशाएं की गई थीं, उन्हें वह पूरा नहीं कर सका। हम मनोविश्लेषक लोग इसके सच्चे उत्तराधिकारी होने का दावा कर सकते हैं, और हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इससे हमें कितना अधिक बढ़ावा और सैद्धांतिक प्रकाश प्राप्त हुआ है। मनोविश्लेषण के जो हानिकारक प्रभाव हुए बताए जाते हैं, वे सिर्फ द्वंद्व की अति-शयता या प्रकोप के बीच में आने वाले रूप तक ही सीमित हैं, और ये रूप तब पैदा हो सकते हैं, जब विश्लेषण ठीक तरह न किया जाए, या इसे एकाएक छोड़ दिया जाए। हम अपने रोगियों के साथ जो कुछ करते हैं, उसका वर्णन आप सुन सकते हैं, और अब आप स्वयं यह फैसला कर सकते हैं कि क्या हमारे प्रयत्नों से स्थायी हानि हो सकती है? विश्लेषण का दुरुपयोग कई तरह किया जा सकता है: विशेष रूप से स्थानान्तरण धूर्त चिकित्सक के हाथ में बड़ा खतरनाक हथियार है, पर कोई भी दवाई दुरुपयोग से नहीं बच सकती। यदि किसी चाकू में धार नहीं है, तो वह शल्य चिकित्सक के लिए भी बेकार है।

अब मैं समाप्त ही करने वाला हूं। मैं सिर्फ परम्परागत औपचारिकता के रूप में यह बात नहीं कह रहा कि मैंने आपके सामने जो व्याख्यान दिए हैं, उनकी बहुत-सी त्रुटियों से मैं स्वयं बहुत परेशान हूं। मुझे इस बात का सबसे अधिक खेद है कि अनेक बार मैंने किसी विषय का संक्षिप्त उल्लेख करने के बाद आगे फिर उसपर विचार करने का वचन दिया, और फिर जिस प्रसंग में मैं अपना वचन पूरा कर सकता था, वह नहीं आया। मैंने एक ऐसी चीज़ का विवरण आपके सामने पेश करने का भार उठाया था, जो अभी अधूरी है, और परिवर्धित हो रही है, और अब मेरा संक्षिप्त सारांश भी अधूरा रह गया है। बहुत-से स्थानों पर मैंने निष्कर्ष निकालने के लिए सारी चीज तैयार कर दी पर निष्कर्ष नहीं निकाला; पर मैं आपको मनोविश्लेषण का विशेषज्ञ बनाने का लक्ष्य नहीं रख सकता था। मैं तो सिर्फ यह चाहता था कि आपको इसकी समझ के रास्ते पर डाल दूं, और इसमें आपकी दिलचस्पी पैदा कर दूं।"

○ ○ ○